

वसिष्ठ ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका सप्तममण्डल तथा अथर्ववेदके मन्त्र)

लेखक

पं० श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष—स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'

किल्ला-पारडी, (जि. सूरत)

संवत् २००८; सन १९५२

मूल्य ७) रु.

वसिष्ठ ऋषिका संदेश

ऐसा वीर हो

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥

ऋ० ९।९०।३

(शूरग्रामः) शूरवीरोंका संघ बनानेवाला, (सर्ववीरः) सब प्रकारके वीरोंको अपने पास रखनेवाला, (सहावान्) [illegible] करनेवाला, (जेता) विजयी, (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण आयुधोंको धारण करनेवाला, (क्षिप्रधन्वा) शीघ्र धनुष्य चलानेवाला, (समत्सु असाळ्हः) युद्धोंमें शत्रुके लिये अजिंक्य, (पृतनासु शत्रून् साह्वान्) युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेवाला, (धनानां सनिता) धनोंका दान करनेवाला ऐसा वीर तुम बनो और सबको (पवस्व) पवित्र करो।

मुद्रक तथा प्रकाशक
व. श्री. सातवळेकर, बी. ए.
भारत-मुद्रणालय, आनन्दाश्रम, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)



वसिष्ठका मण्डल

ऋग्वेदका सप्तम मण्डल '**वसिष्ठ मण्डल**' करके प्रसिद्ध है। इसमें १०४ सूक्त हैं और ८४१ मंत्र हैं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेदमें वासिष्ठमंत्र हैं। वे अष्टम मण्डलके (८।८७) सतासीवे सूक्तमें ६ मंत्र हैं और नवम मण्डल–सोममण्डलमें ५३ मंत्र है। सूक्त ६७।१९–३२ और ९०।१–६ तथा ९७।१–३०; १०८।१४–१६)। ऋग्वेदके १०।१३७।७ वाँ एक मंत्र है। और अथर्ववेदमें ४४ मंत्र हैं। इस तरह कुल मंत्र ९४५ हुए। इनके अतिरिक्त यजुर्वेदमें तथा ब्राह्मणग्रंथोंमें थोडेसे वासिष्ठ मंत्र होंगे, परंतु उनका संग्रह यहां किया नहीं है।

ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलसे पाहिले छ मण्डल सप्तऋषियोंके मुख्यतः हैं (मण्डल २) गृत्समद, (३) विश्वामित्र, (४) वामदेव, (५) अत्रि, (६) भरद्वाज, (७) वसिष्ठ ये बडे ऋषि हैं। प्रथम मण्डलमें शतर्चीं ऋषि हैं। दशम मण्डलमें छोटे छोटे अनेक ऋषि हैं। नवम मंडल सोमदेवताका है और अष्टम मंडल भी फुटकर छोटे सूक्तवाले ऋषियोंका है। इन सबमें मुख्य और प्राचीन अर्थात् माननीय ऋषि वासिष्ठ हैं। इसलिये इसका मण्डल प्रथम प्रकाशित किया है।

विश्वामित्र राजा था। वह ब्राह्मण होनेकी इच्छा करके तपस्या करने लगा। उसको ब्राह्मण कहके घोषणा करनेका मान वसिष्ठका था, क्योंकि उस समयके ब्राह्मण समुदायमें वसिष्ठ ऋषि मुख्य थे। वसिष्ठने विश्वामित्रको ब्राह्मण मान लिया, तो सब लोग उसको ब्राह्मण मानने लगे इतना महत्त्व वसिष्ठका था।

नवीन स्तोत्र

नवीन स्तोत्र करता हूं ऐसा वसिष्ठमंत्रोंमें निम्नलिखित मंत्रोंमें है—

८५ **इदं वचः... अग्नये उद्... अजनिष्ट।** ऋ० ७।८।६ यह स्तोत्र अग्निके लिये बनाया है।

१०५ **अग्ने! त्वां वर्धन्ति मतिभिः वसिष्ठाः।** ऋ० ७।१२।३ हे अग्ने! वसिष्ठ लोग अपने स्तोत्रोंसे तेरा वर्णन करते हैं।

१५० **वसिष्ठः ब्रह्माणि उपसृजे।** ऋ. ७।१८।४ वसिष्ठ स्तोत्रोंको निर्माण करता रहा।

२१० हे **इन्द्र! ये च पूर्वे ऋषयो ये च नूत्ना ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः।** ऋ० ७।२२।९।— हे इन्द्र! जो प्राचीन ऋषि और जो अर्वाचीन विप्र स्तोत्र करते हैं।

२४५ **उप ब्रह्माणि शृणव इमा नः।** ऋ० ७।२९।२ ये हमारे स्तोत्र श्रवण कर।

२४७ **येषां पूर्वेषां अशृणोः ऋषीणां।** ऋ० ७।२९।४ जिन प्राचीन ऋषियोंके स्तोत्र तुमने सुने थे।

३४५ **जुषन्त इदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः।** ऋ० ७।३५।१४ नये किये जानेवाले इस स्तोत्रका सब देव स्वीकार करें।

३४८ **इमां सुवृक्तिं... कृण्वे ... नवीयः।** ऋ० ७।३६।२ इस नवीन स्तोत्रको करता हूं।

३५९ **वयं... ब्रह्म कृण्वन्तो.. वसिष्ठाः।** ७।३७।४१ हम वसिष्ठ स्तोत्र करते हैं।

५२० **मन्मानि नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन् इमानि।** ७।६१।६। ये नवीन किये मननीय स्तोत्र हैं।

५९४ **पुरूणि अभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम्।** ७।७०।५— बहुतसे ऋषियोंके किये स्तोत्र तुम देखते हो।

७७५ **इयं...सुवृक्तिर्ब्रह्म इन्द्राय वज्रिणे अकारि।** ७।९७।९, यह उत्तम स्तोत्र वज्रधारी इन्द्रके लिये किया है।

वसिष्ठके मंत्रोंमें ये मन्त्र बडे महत्त्वके हैं। इनमें—

नूत्ना ब्रह्माणि विप्रा जनयन्त (७।२२।९)
नवीयः क्रियमाणं ब्रह्म (७।३५।१४)
नवीयः सुवृक्तिं कृण्वे (७।३६।६)
नवानि इमानि मन्मानि कृतानि (७।६१।२)

इन मंत्रोंमें नये स्तोत्र बनानेका स्पष्ट उल्लेख हैं। '**विप्राः नूत्नानि ब्रह्माणि जनयन्तः**' (७।२२।९) ज्ञानी ब्राह्मण नये स्तोत्र रचते हैं ऐसा स्पष्ट कहा है। इसी मंत्रमें—

'**पूर्वे ऋषयः ये च नूत्नाः ब्रह्माणि जनयन्त**
(७।२२।९)

' प्राचीन ऋषि और नये ऋषि स्तोत्र करते हैं। ' एसा कहा है। '**नवीयः क्रियमाणं ब्रह्म**' (७।३१।१४) नया स्तोत्र किया जा रहा है। यह वर्णन तो स्पष्ट है कि स्तोत्र बनाया जाता था। बडे वृद्ध ऋषि भी स्तोत्र बनाते थे और नये तरुण ऋषि भी बनाते थे। ये सब मंत्र होते हुए इनके साथ यह भी एक मंत्र है—

दैव्यः श्लोकः इन्द्रं सिषक्तु।
देवकृतस्य ब्रह्मणः राजा। (७।९७।३)

' यह दिव्य श्लोक इन्द्रका वर्णन करे। यह इन्द्र देव के बनाये स्तोत्रका राजा है।' यहां देवकृत स्तोत्र हैं ऐसा स्पष्ट कहा है।

देवस्य पश्य काव्यं
न ममार न जीर्यति। (अथर्व० १०।८।३२; १०।१५।१०।९)

' देवका यह काव्य देखो जो मरता नहीं और न जीर्ण होता है, ऐसा अथर्ववेदका वचन है। अब इनकी संगति कैसी है उसका विचार करना चाहिये। '**देवस्य पश्य काव्यं**' इतना मंत्रभाग दो बार आया है (अ० १०।८।३२; १०।१५ (१०) ९) और '**न ममार न जीर्यति**' यह मन्त्रभाग अथर्वमें एक ही बार आया है। यह देवका काव्य है, इसको देखो, यह मरता नहीं और यह जीर्ण भी नहीं होता।

यहां दो प्रकारके भाव हमारे सामने आगये। एक यह कि ' यह ईश्वरका काव्य है अतः यह मरता नहीं और न यह जीर्ण होता है। ' तथा दूसरा यह भाव है कि ' यह सूक्त नया भी बनाया जाता है। ' इन दो भावोंका समन्वय कैसा हो सकता है। इसका विचार करना चाहिये। पूर्व स्थानमें जो मंत्र दिये हैं उनमें '**नवीन स्तोत्र**' बनानेका भाव स्पष्ट है। '**क्रियमाणं**' आदि शब्द स्पष्ट हैं। वसिष्ठका नाम भी है और अनेक वसिष्ठोंका भी उल्लेख है। अनेकवचनी वसिष्ठपद होनेसे यह वसिष्ठ पद कुलका-कुटुंबका-नाम प्रतीत होता है। नहीं तो अनेक वसिष्ठ होनेका अर्थ कुछ भी नहीं हो सकता।

देवका काव्य है, उसके द्रष्टा वसिष्ठ, जो एक या अनेक होंगे, हो सकते हैं। एक वसिष्ठ जो मूल गोत्रका प्रवर्तक है वह भी द्रष्टा हो सकता है और उसके गोत्र धारण करनेवाले द्रष्टा हो सकते हैं। अर्थात् यह एक योगसाधनकी प्रक्रिया होगी जो उसका अनुष्ठान करनेवालेको प्राप्त हो सकती है। अर्थात् योगसाधनसे मनुष्य उस उच्च अवस्थाको प्राप्त हो सकता है कि जिस अवस्थामें उसको मंत्रोंका स्फुरण होना संभव है।

आकाशका गुण शब्द है। आकाश ईश्वरका देह है उसका निज स्वभाव शब्द है। अतः यह शब्द सनातन और शाश्वत है। शाश्वत शब्द ही वेद है। यदि ईश्वरके शाश्वत आकाशका गुण शाश्वत शब्द है, और वही शब्द वेद है, तब तो यह निःसंदेह है कि जो उस आकाशके प्रकंपनोंको प्राप्त कर सकता है वह वेद मंत्रोंको देख सकता है और देखकर उच्चार भी कर सकता है। इसलिये ऐसी एक प्रक्रिया देखनी चाहिये जिससे हम आकाशके स्थायी प्रकंपनोंको स्वीकार कर सकें और वही हम भी बोल सकें। दूसरे नीच स्तरवाले कंपन उसमें न मिल सकें।

'आकाशका गुण शब्द है और आकाशके सात विभाग हैं। उनमें उच्चसे उच्च विभागमें वेदके शब्द हैं। जो अपना संबंध उससे निर्माण कर सकता है वह उन शब्दोंका स्फुरण अपने अन्तःकरणमें होनेका अनुभव कर सकता है। इसलिये मंत्र में कहा है कि—

पूर्वे ऋषयः नूत्नाः च ब्रह्माणि जनयन्तः।
(७।२२।९)

पूर्व समयके ऋषि और नवीन ज्ञानी स्तोत्रोंको प्रकट करते हैं। ' जैसे पूर्व समयके ऋषि स्तोत्र बोलते थे वैसे नवीन ऋषि भी स्तोत्र बोलते हैं। क्योंकि उनका स्फुरणका मूलस्रोत एक ही है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वरका सनातन काव्य है, उसका स्फुरणसे दर्शन जिस रीतिसे प्राचीन ऋषि

करते थे, वैसे ही नवीन ऋषि भी करते हैं। इसलिये वे कह सकते हैं कि हम नवीन स्तोत्र करते हैं।

श्री न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षणका नियम देखा और उन्होंने उस नियमका प्रकाशन किया। पर यह नियम सनातन ही है। श्री न्यूटनने उसको बनाया नहीं। श्री न्यूटनने उसका दर्शन किया वैसा ही वैशेषिकोंने भी दर्शन किया था और '**गुरुत्वात् पतनं**' यह सूत्र भी उन्होंने लिखा था। इस नियमका दर्शन आज भी कोई कर सकता है। जैसा प्राचीन द्रष्टाओंने किया था। इसलिये कहा है—

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।

ऋ० १।१।२

'अग्निकी स्तुति जैसी प्राचीन ऋषियोंने की वैसी ही नूतन ऋषियोंने भी की हैं।' इसका भाव यही हैं।

योगसाधन द्वारा मनकी एकाग्रता करनेसे आंखें बंद करनेपर भी नाना प्रकारके पृथिवी आप आदि तत्त्वोंके रंग दिखाई देते हैं। जो तत्त्व उस समय सामने आता है उसका रंग आंखके सामने दीखता है। इन रंगोंसे एकतत्त्व जाने जा सकते हैं। इसी तरह ध्यानके समय शब्द भी सुनाई देते हैं। यह बात प्रसिद्ध है कि रंगरूप ध्यानमें दिखाई देनेका कार्य अग्नितत्त्वके साक्षात्कारसे होता है और शब्दका श्रवण होनेका सुयोग आकाश तत्त्वके साक्षात्कारसे होता है। यही शब्दश्रवणका साक्षात्कार आकाशके अत्यंत सूक्ष्मतत्त्वके संपर्कसे होने लगा तो वही शाश्वत शब्दका स्फुरण समझना योग्य है। यह साधन करनेवालोंको हो सकता है। इससे सबको विदित होगा कि किसी नवीन ऋषिको स्फुरण हुआ तो भी वह शाश्वत शब्दका ही स्फुरण है। आकाशतत्त्व शाश्वत है, उसमें व्यापक आत्मा शाश्वत है। आत्माका ज्ञान सत्य सनातन और शाश्वत है। यह परमात्माका ज्ञानमय शब्द परमात्माकी प्रेरणासे आकाशमें व्यापक है। वह आकाशका निज स्वभाव ही है। जो उसके प्रकंपनोंको ले सकता है, उसमें वही शब्द स्फुरित हो सकता है। मास दोमास प्राणायाम, करनेपर अद्भुत शब्दका नाद सुनाई देता है। यह नाद इतना मधुर रहता है कि देरतक इसका श्रवण करनेपर भी इसकी मधुरिमामें न्यूनता नहीं आसकती। यह शब्दश्रवण प्राणायामाभ्यासीके परिचयकी बात है। यह प्राथमिक अनुभव है। शाश्वत शब्दश्रवण अन्तिम सिद्धि है। पर आकाशतत्त्वका अनाहत शब्द प्रारंभावस्थामें भी सुनाई देता है।

गंध-रस-रूप-स्पर्श-शब्द ये क्रमशः पृथिवी-आप-तेज-वायु आकाशके निजगुण हैं और प्राणायामाभ्यासीको इन तत्त्वोंके साक्षात्कारके साथ इन गुणोंका साक्षात्कार होता है। यह अधिक अभ्यास होनेपर शाश्वत शब्दका स्फुरण होना स्वाभाविक है और इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है।

इसलिये 'नूतन ऋषि नवीन स्तोत्र करते हैं' इस प्रकारके वर्णन इस मानसिक एकाग्रताकी अवस्थामें साक्षात् होनेवाली बात है। इसलिये वह शक्य है।

भावका सनातनत्व

अब मन्त्रोंके भावका सनातनत्व कैसा होता है यह देखना है। इसके लिये एक दो उदाहरण हम देते हैं—

१ रामने रावणका वध किया,

२ हे राम! तू रावणका वधकर्ता है,

३ मैं राम हूं और मैं रावणका वध करूंगा।

पहिले वाक्यमें तृतीय पुरुषका प्रयोग है, दूसरे वाक्यमें द्वितीय अथवा मध्यम पुरुषका प्रयोग है और तीसरे वाक्यमें प्रथम या उत्तम पुरुषका प्रयोग है। इसी तरह पहिला वाक्य भूतकालमें, द्वितीय वर्तमानकालमें और तीसरा भविष्यकालमें है। पर इनसे 'रामके द्वारा रावणका वध' का भाव ही प्रकट हो रहा है और यही मुख्य सनातन तथा शाश्वत भाव है। मुख्य वक्तव्य वचनका उद्देश ही यह है। देखिये और उदाहरण—

१ इन्द्रः वृत्रं हन्ता। ऋ० ७।२०।२

२ हे इन्द्र! स्वेन शवसा वृत्रं जघन्थ।

ऋ० ७।२१।६

३ इन्द्रः वृत्राणि अप्रति जघन्वान्।

ऋ० ७।२३।४

४ हे शूर! वृत्रा सुहना कृधि। ऋ० ७।२५।५)

यहां वृत्र पद एकवचनमें है और बहुवचनमें भी है। तथा भूत- वर्तमान-भविष्यकालोंके प्रयोग भी हैं। परंतु इससे

मन्त्रके मुख्य उद्दिष्टमें कोई भेद नहीं होता। ' इन्द्र वृत्रका वध-कर्ता है। ' यह मुख्यभाव है। इन सब मंत्रोंमें वही स्थायी-भाव है, शाश्वत और सनातन भाव है, न बदलनेवाला भाव है। इसलिये मुख्यभावको सामने रखकर कालमें तथा पुरुषमें थोडासा व्यत्यय किया तो कोई सनातन अर्थकी हानि नहीं होती।

इसी तरह एक मंत्रके अनेक टुकडे करके, सब पदोंका भाव स्थायी रखकर, अर्थ देखनेमें भी कोई हानि नहीं है, प्रत्युत अर्थका गौरव ही है, इसका उदाहरण देखिये—

मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे।

तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे॥

ऋ० ७।३२।९

१ **सोमिनः मा स्रेधत**– यज्ञ करनेवालोंको कष्ट न दो,

२ **दक्षत**— दक्षतासे कर्म करो।

३ **महे आतुजे कृणुध्वं**– बडे शत्रुनाशके युद्धके लिये यत्न करो,

४ **राये कृणुध्वं**– धन प्राप्त करनेका यत्न करो,

५ **तरणिः इत् जयति**– त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला निःसंदेह विजय प्राप्त करता है,

६ **तरणिः इत् क्षेति**– त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला घरमें सुखसे रहता है।

७ **तरणिः इत् पुष्यति**— त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला धन धान्यसे, सेवकोंसे पुष्ट होता है।

८ **कवत्नवे देवासः न**— कुत्सित कर्म करनेवालेकी सहायता देव नहीं करते।

यहां एक मंत्रके अनेक विभाग किये हैं। कई पद और कई क्रियाएं पुनः पुनः ली हैं। और इन्द्रके वर्णनपरक मन्त्रमें भी सनातन शाश्वत धर्मका दर्शन किया है। यह पद्धति अशुद्ध नहीं है। मन्त्रके पदोंमें यह सब अर्थ है वह अधिक स्पष्ट करनेके लिये ऐसा किया गया है। वह योग्य ही है

आगेके दिये अर्थमें प्रथम मन्त्रका अर्थ दिया है और पश्चात् आशय मनमें धारण करके उससे प्रकट होनेवाला मानव धर्म दिया है। तथा मन्त्रका सनातन, शाश्वत, स्थायीभाव ऐसे मन्त्रोंके टुकडे देकर दिया है। यह पद्धति मंत्रका रहस्य ध्यानमें आनेके लिये अत्यन्त आवश्यक है और पाठक भी इस पद्धतिका अवलंबन करके जितने रहस्यार्थ यहां दिये हैं उनसे अधिक अर्थ मननसे कर सकते हैं। ऐसा करनेके समय कहांका पद कहां भी लगा देना उचित नहीं है। पर एक वाक्यके अधिक वाक्य बनाना और उससे अर्थगौरवको प्रकट करना योग्य है। इस अर्थमें ऐसा अनेक मंत्रोंके साथ किया है।

इसी तरह ' **वज्रहस्त शूर इन्द्र** ' ये संबोधनके पद हैं। ये संबोधनके पद मंत्रोंके अर्थमें संबोधनपरक ही रहेंगे। पर रहस्य अर्थके प्रकाशन करनेके समय ' **इन्द्रः शूरः वज्रहस्तः आस्ति** ' इन्द्र वीर शूर और शस्त्रधारी होता है। जो शूर है वह शस्त्रधारी हो ऐसा सामान्य अर्थ भी इससे प्रकट हो जाता है। इसी रीतिसे संबोधनके वाक्य (सामान्य सनातन अर्थ करने-वाले) करनेमें भी कोई दोष नहीं है उदाहरणके लिये देखिये —

' **हे शूर इन्द्र! सूरिभ्यः वरूथं यच्छ** ' हे शूर इन्द्र! तू ज्ञानियोंको धन दो। यह इन्द्रको संबोधन करके कहा है, वह बदलकर ' शूर वीर ज्ञानियोंके लिये धन देवे। ' ऐसा भाव देखनेमें कोई हानि नहीं, प्रत्युत इससे अच्छा मानव धर्म प्रकट हो जाता है। इस तरह अनेक मंत्रोंमें शाश्वत अर्थ पाठक देख सकते हैं।

मंत्रोंके अर्थ करने और स्पष्टीकरण देनेमें जो हमने विशेषता की है वह यही है। पाठक इसको इस पुस्तकमें देखेंगे। इसके पश्चात् विषयवार मंत्रोंके वचन दिये हैं, तथा क्रमसे मंत्रोंके सुभाषित भी दिये हैं। ये सुभाषित और ये विषयवार संग्रह व्याख्याता तथा लेखकोंके लिये अत्यंत उपयोगी सिद्ध होनेवाले हैं। आशा है कि पाठक इनका यथायोग्य उपयोग करके लाभ उठावेंगे।

इस पद्धतिसे वेदमंत्रोंका अर्थ दर्शाना और रहस्य बताना यह इस समयतक किसीने नहीं किया है। यही प्रथम प्रयत्न है। वेदमंत्रसे स्मृतिका संबंध हम इस रीतिसे बता सकते हैं। हमने इसमें यह नहीं बताया है, परंतु मानवधर्ममें हमने यह

निर्दर्शित किया है। आगे स्वतंत्र लेखसे किस श्रुतिसे कौनसा स्मृतिवचन बना है यह हम बतायेंगे।

ऋषि देवताकी स्तुति करता है वहां उस देवतामें वह आदर्श पुरुषका दर्शन करता है और उस देवतामें प्रतीत होनेवाले आदर्श पुरुषका वह वर्णन होता है। इसलिये वेदका देवताका वर्णन आदर्श पुरुषका वर्णन है, अतः वह मानवोंके लिये अपने सामने आदर्श रखने योग्य है। यह बात हमने इस पुस्तकमें बतायी है। पाठक इसका अधिक मनन करें। इससे वेद मंत्रोंसे मानवधर्म प्रकट होता है। यही मुख्य वेदका मननीय विषय है। हमने प्रायः प्रत्येक सूक्तके विवरणमें यह बताया है। जो पाठकोंके लिये मार्गदर्शन करा सकता है।

देवताके वर्णनमें आदर्श पुरुष

देवताओंके वर्णनमें आदर्श पुरुषका दर्शन है, अथवा आदर्श पुरुषका वर्णन है, यह नवीन बात पाठक यहां देख सकते हैं। इसका नमूना यहां दिखाना योग्य है। इसलिये यहां थोडासा नमूना दिखाते हैं—

अग्निवर्णनमें आदर्श पुरुष

देखिये अग्निका वर्णन ऋषि कर रहा है, वह केवल 'आग' का ही वर्णन नहीं है, क्योंकि उस वर्णनमें ऐसे पद प्रयुक्त हुए हैं कि जो आगमें संगत नहीं हो सकते। देखिये— "५० **कविः (६७); ८७ कवितमः, ८९ अमूरः कविः**" ये पद आगका वर्णन करनेमें सार्थ नहीं हो सकते, क्योंकि आग कभी 'कवि' नहीं हो सकती। अमूढ कवि तो आगका होना संभव ही नहीं है। पर ज्ञानी पुरुषके वर्णनके समान पद और वाक्य अग्निके वर्णनमें हैं। वे आदर्श ज्ञानीका वर्णन करते हैं। (सूचना- यहां जो क्रमांक दिये हैं वे वसिष्ठ मंत्रोंके क्रमांक हैं। उस क्रमांकके मंत्रमें वे पद पाठक देख सकते हैं।)

'**७७ ब्रह्मा; १९८ सुब्रह्मा**' ये अग्निके वर्णनके पद बडे ज्ञानीके वाचक हैं। अग्नि तो ज्ञानी नहीं है। पर उसका वर्णन ज्ञानी जैसा किया जाता है। इसलिये हम कह सकते हैं कि यहां अग्निमें ऋषिने आदर्श ज्ञानी पुरुषका दर्शन किया है। '**१९८ सुशमी**' उत्तम रीतिसे इन्द्रियोंका दमन या शमन करनेवाला। यह अग्नि नहीं है, पर अग्निमें जिस ज्ञानी पुरुषका दर्शन ऋषिने किया, उसका यह वर्णन है।

'**८८ विशां तमः तिरः ददर्श**' प्रजाजनोंका अन्धकार यह अग्नि दूर करता है। अग्नि प्रकाशता है और उजाला करता है, उस उजालेसे अन्धकार दूर होता है। अग्निमें यह बात है। जहां वह जलता है, वहांका अन्धेरा दूर होता है। इसलिये अन्धेरेमें प्रवास करनेवाले लोग अपने साथ जलती लकडी, दीप तथा कुछ अन्य प्रकाशका साधन रखते हैं और मानते हैं कि अग्नि हमारा मार्गदर्शक होता है। अग्नि हमें अन्धेरेसे पार करता है। यह सत्य भी है। परंतु ज्ञानी पुरुषमें यह विशेष रीतिसे सत्य है। ज्ञानी अज्ञानीमें ऐसा ज्ञान दीप जलाता है कि, उससे उसका अज्ञानान्धकार दूर हो जाता है और उसके लिये प्रकाशका मार्ग खुल जाता है। इस तरह शुद्ध आगका वर्णन भी ज्ञानीका वर्णन हो जाता है और ज्ञानीका वर्णन भी कभी कभी आगका वर्णन होता है। इसीलिये हमने कहा कि 'अग्निमें ऋषि आदर्श पुरुषका दर्शन करता है।'

अग्निका वर्णन करते हुए '**१८ सत्यवाक्, ७६ मधुवाचा, १९ ऋतावा**' ये पद प्रयुक्त हुए हैं। यह अग्नि सत्यभाषण करनेवाला है, मीठा भाषण करनेवाला है, सत्यनिष्ठ है। पाठक देखें कि ये पद केवल आगका वर्णन किस तरह कर सकते हैं। कौन कह सकता है कि यह आग सत्यभाषण करती है। इसलिये ये पद निःसंदेह आदर्श पुरुष, जो सत्यभाषण करनेवाला है, मधुरभाषण करनेवाला है, उसका दर्शन कर रहे हैं।

वास्तवमें '**अग्नि**' पद भी '**अग्रणी**' अथवा नेताका वाचक है। अग्रणीमें '**अ-ग्-र-णी**' इन अक्षरोंके बीचके 'र' कारका लोप होकर '**अग्नी**' बना है, अतः यह अग्रणी ही है और अग्रणी तो ज्ञानी, मार्गदर्शक होना ही चाहिये। इस तरह अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन होता है।

'**४८ तरुणः, ३४ वीरः, ४ सुवीरः**' ये वीरके वाचक पद अग्निके वर्णनमें आये हैं। अग्नि वीर है, अर्थात् अग्रणी वीर होना चाहिये। जो वीर नहीं होगा, वह नेता किस तरह बन सकता है? नेतृत्वमें वीरताका होना अत्यंत आवश्यक है।

'**६९ नृतमः, ५८ नेता**' ये पद नेताके वाचक हैं, ये यहां अग्निके लिये प्रयुक्त हुए हैं। वे बता रहे हैं कि यहांका अग्नि नेता है। संचालक है। धुरीण है। जनताका प्रमुख है।

'१३ स्वनीकः' अर्थात् उत्तम सेना अपने साथ रखनेवाला अग्नि है। यह निःसन्देह नेता है, जो अपने साथ उत्तम सेना रखता है। इसका वर्णन भी '४० ते सेना सृष्टा एति' तेरी सेना आज्ञा होनेपर शत्रुपर आक्रमण करती है। ऐसी जिसकी सेना होगी वह आग किस तरह हो सकती है? यह तो अग्रणी ही होगा।

इस तरह अग्निके वर्णनमें आदर्श पुरुषका दर्शन ऋषि करता है। वेदके मंत्र देखकर उनमें आदर्श पुरुषका दर्शन पाठकोंको करना उचित है। वेदमें यही देखना चाहिये। वेदके मंत्रोंका मनन करनेपर यह आदर्श पुरुष कैसा है, वह पाठकोंको जानना चाहिये और ऐसा आदर्श मैं अपने जीवनमें ढालूंगा, ऐसा यत्न पाठकोंको करना चाहिये। वेदका प्रत्येक पद बडा बोध-प्रद हो सकता है, यदि उससे इस तरह बोध प्राप्त किया जाय।

इसी तरह इन्द्रके वर्णनमें शक्तिकी प्रधानता और शत्रुके नाश करनेका वर्णन विशेष है। अग्निका आदर्श ब्राह्मणका आदर्श है और इन्द्र क्षत्रियका आदर्श है। अन्यान्य देवताएं अन्यान्य आदर्श दर्शाते हैं। वेदके पदोंके अर्थकी अपेक्षा यह आदर्श अधिक उपयोगी है। साधकको इसी आदर्शकी ओर अपना ध्यान लगाना उचित है। मैं ऐसा बनूंगा ऐसा मनमें निश्चय करना और वैसा बननेका प्रयत्न करना साधककी उन्नतिके लिये आवश्यक है। इस ग्रंथमें यह आदर्श बताया है।

इस तरहका विचार हमने प्रथम ही जनताके सन्मुख रखा है। प्रथम रखनेके कारण इसमें त्रुटि रहनेकी संभावना है। यदि किसी पाठकको इस तरहकी त्रुटी मालूम हुई तो कृपा करके वह विद्वान पाठक उसको लिखकर हमारे पास भेज दें। हम उसका विचार करेंगे और योग्य सुझावका हम स्वीकार करेंगे।

स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'
किल्ला-पारडी (जि. सूरत)
११ माघ २००८

लेखक
श्री. दा. सातवलेकर
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

वसिष्ठ ऋषिका दर्शन

सप्तमं मण्डलम् ।

(ऋग्वेदके ५१–५६ अनुवाक)

अनुवाक ५१ वाँ

अग्नि प्रकरण

(१) १५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । विराट्, १९-२५ त्रिष्टुप् ।

१ अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् । दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् १

[१] (नरः प्रशस्तं दूरेदृशं) नेता लोग प्रशंसा करने योग्य, दूरदर्शी (गृहपतिं अथर्युं) अपने घरोंका पालन करनेवाले प्रगतिशील (अग्निं) अग्निको (अरण्योः) दोनों अरणियोंमेंसे (हस्तच्युती) हाथोंकी कुशलतासे (दीधितिभिः जनयन्त) अपनी अंगुलियोंके द्वारा निर्माण करते हैं।

मानव धर्म— नेता लोग प्रशंसा योग्य, दूरदर्शी, अपने घरोंकी सुरक्षा करनेमें समर्थ, प्रगतिशील अग्रणिको प्रकाशित करते हैं । उसके निज तेजसे ही वह प्रकाशित होता है, उसको अपने प्रयत्नसे आगे बढावें ।

मनुष्य (नरः) नेतृत्व करे, लोगोंको प्रशस्त मार्गसे चलावे, (दूरे दृशं) दूरदर्शी हो, दूरसे भी जिसका नाम सुनाई देता है, अथवा दूरसे भी जिसको दीखता है, भविष्यमें होनेवाली बातें जो स्वयं पहिले ही जानता है ऐसा दूरदर्शी हो, (गृहपतिं) अपने घर, अपने प्रदेश, अपने राष्ट्रका संरक्षण करनेमें समर्थ हो, संरक्षणकी शक्ति अपनेमें रखे और बढावे, (अथर्युं) प्रगतिशील हो, पर वह शक्ति उसके अंदर गुप्त रहे, न्यून न होती रहे, ऐसा (अग्निं) अग्रणी हो । (अग्निः अग्रं नयति) जो अन्ततक पहुंचाता है उसको अग्रणी कहते हैं । जो बीचमें ही छोडकर चला न जावे, सहारा देकर अन्ततक सब कार्यका संचालन करे । अग्नि जैसा अपने प्रकाशसे दूसरोंको मार्ग दर्शाता है, उत्साह ठंडा पडने नहीं देता और सदा प्रगतिशील रहता है वैसा नेता, जनताको मार्ग बतावे, सिद्धितक आगे ले जावे, उत्साह बढाता रहे । ऐसे अग्रणीको नेता लोग उसके तेजसे प्रकाशित करें, यह नेता है ऐसा प्रसिद्ध करें । अपने प्रयत्नोंसे उसको बढावें और ऐसे पुरुषकी ही (प्रशस्तं) प्रशंसा करते रहें ।

२ तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन् त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् । दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः २
३ प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नो ऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ३
४ प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः । यत्रा नरः समासते सुजाताः ४
५ दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् । न यं यावा तरति यातुमावान् ५

[२] (यः दक्षाय्यः) जो दक्ष रहनेवाला अथवा बलवान् (नित्यः दमे आस) सदा अपने स्थानमें रहता था, (तं सुप्रतिचक्षं अग्निं) उस उत्तम दर्शनीय अग्निको (कुतः चित्) सब ओरसे (अवसे) उसकी सुरक्षा करनेके लिये (वसवः) निवास करनेवालोंने (अस्ते नि ऋण्वन्) अपने घरमें, रहनेके स्थानमें लाकर रख दिया ।

मानव धर्म—बलवान पुरुष सदा अपने घरमें रहे और उसकी सुरक्षा दक्षतासे करता रहे । ऐसे वीर पुरुषको सब ओरसे अपनी सुरक्षा करनेके लिये आदरसे लावें और महत्वके स्थानपर रखें अर्थात् निवास करनेवाले नागरिक ऐसे पुरुषको सुरक्षाके कार्य में नियुक्त करें ।

जो (दक्षाय्यः) बलके कारण सत्कार करने योग्य है, जो (नित्यः दमे आस) जो सदा अपने घरमें रहकर घरकी सुरक्षा करता था, ऐसे दर्शनीय वीर अग्रणीको (वसवः) निवास करनेवाले, जनताका निवास सुरक्षासे करनेवाले नेता लोग (कुतः चित अवसे) किसी स्थानसे भय न हो और सब ओरसे सुरक्षा हो इसलिये (अस्ते नि ऋण्वन्) अपने घरमें, ग्राममें, प्रदेशमें लायें और महत्त्वके स्थानपर रखें । और ऐसे अपने प्रदेशको सुरक्षित करें । जिससे सब लोग सुख शान्तिसे निवास कर सकें ।

[३] हे (यविष्ठ अग्ने) तरुण अग्ने ! (प्र इद्धः अजस्रया सूर्म्या) प्रदीप्त होकर प्रचण्ड ज्वालाओंसे (नः पुरः दीदिहि) हमारे सन्मुख प्रकाशित हो । (त्वां शश्वन्तः वाजाः उपयान्ति) तेरे पास बहुत अन्न और बल आते रहते हैं ।

मानव धर्म—तरुण अग्रणि अपने अतुल तेजसे प्रकाशित होता रहे । जो ऐसा तेजस्वी होगा, उसके पास अन्न और बल स्वयं उपस्थित होते रहेंगे ।

जो बलवान और तेजस्वी होगा उसके पास अन्न और बल स्वयं उपस्थित होंगे, उसके पास धनवान् और बलवान वीर आयेंगे और इससे उसका बल अधिकाधिक बढता जायगा ।

[४] (अग्निभ्यः वरं द्युमन्तः) अग्नियोंसे भी अधिक तेजस्वी (ते सुवीरासः अग्नयः) वे उत्तम वीररूप अग्नि (प्र निः शोशुचन्त) विशेष रीतिसे अधिक प्रकाशित होते हैं । (यत्र सुजाताः नरः) जहां उत्तम कुलीन वीर (सं आसते) संगठित होकर बैठते हैं ।

मानव धर्म — जहां उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए वीर उत्तम रीतिसे संगठित होकर रहते हैं, वहां उत्तम वीर अग्निसे भी अधिक तेजस्वी होकर प्रकाशते हैं । (अतः वीर अपना संगठन करें । एक विचारसे कार्य करें और उत्तम वीरोंको अधिक वीरता करनेके लिये अवसर दें ।)

इस मंत्रके स्मरण करने योग्य वाक्य —

१ अग्निभ्यः वरं द्युमन्तः सुवीरासः—अग्निसे भी अधिक तेजस्वी हमारे वीर हों । हमारे पुत्र पौत्र ऐसे वीर हों कि जो अग्निसे भी अधिक तेजस्वी हों ।

२ सुजाताः नरः समासते— उत्तम कुलीन पुरुष एक स्थानपर बैठते हैं । एक स्थानपर बैठकर अपनी संघटना करते है ।

३ सुवीरासः प्र निः शोशुचन्त—उत्तम वीर ही निःसंदेह चमकते हैं । उत्तम वीर यशस्वी होते हैं ।

[५] हे (सहस्य अग्ने) शत्रुका पराभव करनेमें कुशल अग्ने ! (नः) हमें (सुवीरं स्वपत्यं प्रशस्तं रयिं) जिसके साथ वीर हों, उत्तम संतति हों, ऐसे प्रशंसित धनको (धिया दाः) बुद्धिके साथ दो । (यं यातुमावान् यावा न तरति) जिसको हिंसक शत्रु कभी बाधा नहीं कर सकता ।

मानव धर्म—शत्रुका पराभव करनेका बल प्राप्त करो । धन ऐसा प्राप्त करो कि जिसके साथ वीर पुरुष हों, वीर संतति हो और जिसकी प्रशंसा होती हो ॥

६ उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची। उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ६
७ विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम्। प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम् ७

जिसके साथ वीर पुरुष तथा वीर संतति नहीं होती, वह धन अपने पास रहेगा भी नहीं। इसी तरह धन प्रशंसित हो। जिसकी निंदा होती है वैसा धन न हो अर्थात् निंदनीय साधनोंसे धन प्राप्त किया न हो। इसी तरह धनके साथ बुद्धिमत्ता भी रहे। निर्बुद्धका धन बुरे व्यवहारमें व्यर्थ खर्च होता है। धन ऐसा हो कि जिसको डाकू चोर या शत्रु न लूट सकें। अर्थात् धनके संरक्षणका पूरा साधन अपने पास रहे।

स्मरण रखने योग्य वचन—

१ सुवीरं स्वपत्यं प्रशस्तं रयिं धिया नः दाः— उत्तम वीरोंसे तथा उत्तम वीर संतानोंसे युक्त यशस्वी धन बुद्धिके साथ हमें दे।

२ यातुमावान् याता यं रयिं न तरति— हिंसक डाकू जिसको लूट नहीं सकता ऐसा धन हमें चाहिये अर्थात् उसके संरक्षण का बल भी हमारे पास चाहिये।

[६] (यं सुदक्षं) जिस उत्तम बलवानके पास (हविष्मती घृताची युवतिः) अन्नवाली घृत परोसनेवाली तरुणी (दोषा वस्तोः) रात्रीके और दिनके समय (उप एति) जाती है, (एनं स्वा वसूयुः अरमतिः उपैति) उसके पास धनके साथ रहनेवाली बुद्धि भी होती है।

मानव धर्म—बलवान तरुणके पास घी और अन्न लेकर तरुणी रात और दिन जाती है, वैसी ही उसके साथ धन प्राप्त करनेकी बुद्धि भी होती है।

यहां अग्निको तरुण वीर कहा है और ऐसा कहा है कि उसके पास जुहू घी और अन्न लेकर हवनकी आहुति डालनेके लिये जाती है। इससे तरुण पुरुष पर आसक्त होकर प्रेमसे पौष्टिक अन्न तथा उत्तम घी लेकर तरुणी जाती है ऐसा सूचित किया है। यह उत्तम आलंकारिक वर्णन है। उस वीरके पास धन प्राप्त करनेकी बुद्धि भी होती है। जो तरुण बलवान् तथा बुद्धिमान होता है उसपर तरुण स्त्री प्रेम करती है।

*

स्मरणीय वचन—

१ वसूयुः अरमतिः एनं उपैति, सुदक्षं युवतिः उपैति— धन प्राप्त करनेकी उत्तम बुद्धि जिसके पास होती है उस उत्तम बलवान् तरुण पुरुषके पास तरुणी जाती है। अर्थात् निर्बुद्ध और निर्बल मनुष्यको तरुणी नहीं चाहती। इसलिये मनुष्य बुद्धिमान और बलवान बनें।

[७] हे अग्ने! (विश्वाः अरातीः तपोभिः अप दह) सब शत्रुओंको अपने तेजोंसे जला दो, (येभिः जरूथं अदहः) जिनसे कठोर भाषी शत्रुको तूने जलाया था, तथा (अमीवां निःस्वरं प्र चातयस्व) रोगोंको निःशेष रीतिसे हटा दो।

मानवधर्म— अपने तेजोंसे ही शत्रुओंको दूर करना, कठोरभाषी को हटाना और रोगोंको भी दूर करना चाहिये।

कठोर भाषी शत्रुको अपने तेजसे ही लज्जित करना योग्य है। इसी तरह अपने तेजोंसे ही शत्रुओंको निस्तेज करना, जलाकर भस्म करना। रोगोंको भी अपने आन्तरिक जीवन-तेजसे दूर करना। अन्दरका जीवनरस जिसके अन्दर प्रबल होता है उसके शरीरमें रोग घुस नहीं सकते।

स्मरणीय वचन—

१ विश्वाः अरातिः तेजोभिः अपदह— सब शत्रुओंको अपने तेजोंसे जला दो।

२ जरूथं अदहः— कठोरभाषी, असत्यवादी, को दूर कर।

३ अमीवां प्रचातयस्व— रोगोंको हटादो,

'अमी-वा' आमसे, अन्नके अपचनसे, होनेवाले रोगोंको अमीवा कहते हैं। इन रोगों और शत्रुओंको दूर करनेकी युक्ति अपना तेज बढाना है।

४ निःस्वरं चातयस्व— चुपचाप शत्रु दूर हो जाय ऐसा कर। अपना तेज बढ जानेसे शत्रु स्वयं दूर होते हैं।

८ आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक । उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ८
९ वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा । उतो न एभिः सुमना इह स्याः ९
१० इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः । ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् १०
११ मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा । प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य ११

[८] हे (वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक अग्ने) हे निवास हेतु शुद्ध तेजस्वी पवित्रता करनेवाले अग्ने ! (यः ते अनीकं आ एधते) जो तेरे तेजको प्रदीप्त करता है; उन (नः उतो एभिः स्तवथैः इह स्याः) हम सबके पास इन प्रशंसा स्तोत्रोंके साथ आकर यहां रह ।

मानव धर्म-- लोगोंका उत्तम निवास करनेवाला स्वयं शुद्ध और पवित्र, स्वयं तेजस्वी, सबकी पवित्रता करनेवाला वीर अग्निके समान तेजस्वी होता है। इसका सैन्य या बल इसका सामर्थ्य ही है। ऐसे तेजस्वी पुरुषकी प्रशंसा सब करते हैं और यह अपने पास आकर रहे ऐसा भी चाहते हैं।

जैसा अग्नि (वसिष्ठ) सबका निवास करता है, (शुक्र दीदिवः) पवित्र, बलिष्ठ और तेजस्वी होता है और (पावक) सर्वत्र पवित्रता करता है। वैसा मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी होवे। जैसा (अनीकं आ एधते) बल तथा सैन्य बढाया जाता है, वैसा मनुष्य अपना बल बढावे । ऐसा वीर (नः इह स्याः) हमारे समाजमें आकर यहां रहे । क्योंकि इससे सबका निवास उत्तम होगा, सबकी पवित्रता और तेजस्विता बढेगी और स्वच्छता होगी । रक्षक सैन्य अधिक बढनेसे सबकी सुरक्षा होगी । इसलिये सभी चाहेंगे कि यह वीर हमारे पास आकर हमारे समाजमें रहे ।

[९] हे अग्ने ! (ते अनीकं) तेरा तेज, (पित्र्यासः मर्ताः नरः) पितरोंका हित करनेवाले मर्त्य लोगोंने (पुरुत्रा विभेजिरे) अनेक स्थानोंमें, अनेक देशोंमें फैलाया है, उनके समान (नः उतो एभिः सुमना इह स्याः) हमारे इन स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर तुम यहां रहो ।

मानव धर्म---अपने उपास्य देवका यश जैसा हमारे पूर्वज पितर नेता लोग देश विदेशमें फैलाते थे । वैसा हमें भी करना उचित है । ऐसा करनेसे प्रभुकी प्रसन्नता होगी ।

देश विदेशमें धर्मका प्रचार करना चाहिये और सबको आर्य बनाना चाहिये

[१०] (ये मे प्रशस्तां धियं पनयन्त) जो मेरी प्रशंसनीय बुद्धि की स्तुति करते हैं, (इमे नरः वृत्रहत्येषु शूराः) वे ये नेता वृत्र वध करनेके लिये शुरू किये युद्धमें शूरवीरता करनेवाले वीर पुरुष (अदेवीः विश्वाः मायाः अभि सन्तु) सब आसुरी कपटोंको पराभूत करें ॥

मानव धर्म—प्रशंसा योग्य बुद्धि तथा कर्मकी सब लोग प्रशंसा करें । युद्धोंके अन्दर उपस्थित शूरवीर नेता असुरोंके शत्रुपक्षके सब कपटजालोंको दूर करके अपना विजय हो ऐसा प्रयत्न करें ।

संस्मरणीय वचन—

१ प्रशस्तां धियं पनयन्त—प्रशंसा योग्य बुद्धिकी तथा वैसे कर्मकी प्रशंसा करो,

२ शूराः नरः अदेवीः मायाः अभिसन्तु—शूर नेता आसुरी कपट जालोंको दूर करें, उनमें न फंसे ।

[११] हे अग्ने । (शूने मा नि सदाम) पुत्र पौत्रादि रहित शून्य घरमें हम न रहें। हे (दुर्य) घरके लिये हित कर्ता ! (नृणां) मनुष्योंके बीचमें हम ही (अ-शेषसः अवीरता मा) पुत्र पौत्र रहित तथा वीरता रहित न रहें। प्रजावतीषु दुर्यासु त्वा परि) पुत्र पौत्रादिकोंसे युक्त घरोंमें हम तेरी उपासना करते हुए रहें।

मानव धर्म—पुत्र रहित घरमें हमें रहना न पडे । हमारे पुत्र पौत्र हमारे घरमें हों । और बाहर भी जहां हमें रहना पडे, वहां भी पुत्र पौत्रोंसे भरे घर हों । पुत्र रहित तथा वीरतारहित जीवन बुरा है । पुत्र पौत्रोंसे युक्त घरमें रह कर हम प्रभुकी भक्ति करेंगे ।

१२ यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः। स्वजन्मना शेपसा वावृधानम् १२
१३ पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात् पाहि धूर्तेररुषो अघायोः। त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् १३
१४ सेदग्निरग्नीरँत्यस्त्वन्यान् यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः। सहस्रपाथा अक्षरा समेति १४

स्मरण रखने योग्य वाक्य—

आदर्श गृहस्थीका घर

१ शूने मा निसदाम—पुत्र पौत्र रहित, संतान हीन घरमें हम न रहें। हम ऐसे घरोंमें रहें कि जहां पुत्र पौत्र प्रपौत्र बहुत हों। पुत्रोंसे घर भरे हुए हों।

२ नृणां अशेषसः अवीरता मा—मनुष्योंमें पुत्ररहित तथा वीरता रहित जीवन बहुत बुरा है, वैसा जीवन हमें कभी प्राप्त न हो।

३ नृणां मा निसदाम--दूसरे मनुष्योंके घरमें रहनेका अवसर हमें न प्राप्त हो। हम अपने घरमें रहें। रहनेका घर अपना हो।

४ प्रजावतीषु दुर्यासु त्वा परि निसदाम-- संतानोंसे युक्त घरोंमें प्रभुकी उपासना करते हुए हम रहें।

घरमें संतान अवश्य हों। '**दशास्यां पुत्रानाधेहि**'–दस पुत्र संतान हों ऐसा वेदमें अन्यत्र कहा है। इसके अतिरिक्त पुत्रियां भी होनी चाहिये। ऐसी संतानोंसे घर भरे हों। यह वैदिक आदर्श गृहस्थीका घर है।

[१२] (यं यज्ञं अश्वी नित्यं उपयाति) जिसके पास पूजनीय अश्वारूढ अग्नि जैसा तेजस्वी वीर जाता है (तं प्रजावन्तं स्वपत्यं) वैसा प्रजावाला उत्तम संतानवाला (स्वजन्मना शेपसा वावृधानं) अपनेसे उत्पन्न हुए औरस संतानसे बढनेवाला (क्षयं नः देहि) घर हमें दो।

मानव धर्म--घर ऐसे हों कि जो पुत्र पौत्रादि संतानोंसे युक्त हों, अपने घरमें अपने औरस संतान हों, और घर औरस संतानोंसे बढनेवाले हों।

दत्तक संतान दूसरेसे लेनी न पडे। अपने घरमें औरस संतान हों और घर उनसे बढनेवाला हो।

स्मरण रखने योग्य वचन—

१ अश्वी यं नित्यं उपयाति--अश्वारूढ वीर जहां नित्य आते जाते हों ऐसे घर हों।

२ प्रजावंतं स्वपत्यं स्वजन्मना शेपसा वावृधानं क्षयं--सेवकोंसे युक्त उत्तम बालकोंसे युक्त, औरस संतानसे बढनेवाला घर हो।

[१३] हे अग्ने ! (अजुष्टात् रक्षसः नः पाहि) संबंध रखनेके लिये अयोग्य ऐसे दुष्ट राक्षसोंसे हमें बचाओ। (अररुषः अघायोः धूर्तेः पाहि) दुष्ट पापी धूर्तसे हमें सुरक्षित कर। (त्वा युजा पृतनायून् अभिस्यां) तुम्हारी सहायतासे सेना लेकर हमला करनेवाले शत्रुका भी हम पराभव करेंगे।

मानव धर्म—राक्षसोंसे अपना बचाव करो, पापी छली दुष्टोंसे अपने आपको सुरक्षित रखो और सेना लेकर आक्रमणकारी शत्रुका पराभव करनेकी तैयारी करो।

शत्रुका नाश करनेकी तैयारी करो।

[१४] (यत्र वाजी वीळुपाणिः) जहां बलवान् सुदृढ शस्त्रधारी (सहस्र-पाथाः तनयः) सहस्रों प्रकारके धनस्रोतोंसे युक्त अपना पुत्र (अक्षरा सं एति) अक्षरोंसे ज्ञानोंसे युक्त होता है-स्तोत्रोंसे अग्निकी उपासना करता है, (स इत् अग्निः) वही अग्नि (अग्नीन् अति अस्तु) अन्य अग्नियोंसे श्रेष्ठ है।

मानव धर्म--अपना औरस पुत्र बलवान् हो, शूर हो, शस्त्रधारी हो, धन अन्न युक्त हो, विद्वान हो ऐसा पुत्र जिस अग्निमें हवन करता है वही अग्नि श्रेष्ठ है।

ऐसा शिक्षाका प्रबंध करना चाहिये कि जिससे अपने औरस पुत्र बलवान् बनें, शूरवीर हों, सुदृढ शस्त्रधारी बनें, धनों अन्नों तथा साधनोंसे संपन्न हों, विशेष विद्वान हों, ऐसे अपने पुत्र जहां हों वही स्थान श्रेष्ठ समझना चाहिये।

१५ सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात् । सुजातासः परि चरन्ति वीराः १५
१६ अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् । परि यमेत्यध्वरेषु होता १६
१७ त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या । उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे १७
१८ इमो अग्ने वीततमानि हव्या ऽजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ । प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु १८
१९ मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै ।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः १९

[१५] (यः समेद्धारं वनुष्यतः निपाति) जो जगानेवालेकी हिंसकसे सुरक्षा करता है, (उरुष्यात् अंहसः निपाति) अधिक पापसे बचाता है, (यं सुजातासः वीराः परिचरन्ति) जिसकी पूजा कुलीन वीर पुत्र करते हैं (सः इत् अग्निः) वही श्रेष्ठ अग्नि है ।

मानव धर्म— जो अपने उद्बोधन कर्ताको सुरक्षित करता है, जो पापसे बचाता है और अपने औरस वीर पुत्र जिसकी पूजा करते हैं वह अग्नि श्रेष्ठ है ।

१ समेद्धारं वनुष्यतः निपाति – जगानेवालेकी हिंसकसे सुरक्षा करो

२ उरुष्यात् पापात् निपाति–पापसे बचाओ,

३ सुजातासः वीराः परिचरन्ति––उत्तम कुलीन वीर पुत्र बैठकर पूजा करें । जहां पुत्र ऐसा करते हैं वह घर श्रेष्ठ है ।

[१६] (यं हविष्मान् ईशानः सं इन्धे) जिसको हविष्यान्न देनेवाला ऐश्वर्यवान् याजक प्रदीप्त करता है, (यं होता अध्वरेषु परि एति) जिसको होता हिंसारहित यज्ञोंमें प्रदक्षिणा करता है (सः अयं अग्निः पुरुत्रा आहुतः) वह यह अग्नि है कि जो बहुतवार आहुतियोंसे हुत हुआ है ॥

[१७] हे अग्ने ! (त्वे ईशानासः) तुम्हारी कृपासे धनके स्वामी बने (नित्या उभा वहतू कृण्वन्तः) नित्य करने योग्य दोनों प्रकारके स्तोत्र तथा शस्त्र करनेवाले हम (मियेधे भूरि आहवनानि जुहुयाम) यज्ञमें बहुत प्रकारका हवन तुम्हारे लिये करते हैं ।

सुगंधयुक्त द्रव्योंका हवन

[१८] हे अग्ने ! तू (अजस्रः इमो वीततमानि) अखंडित रीतिसे ये अत्यंत प्रिय (हव्या) हवन द्रव्य (देवतातिं अभि वक्षि) देवताओंके समूहके पास पहुंचावे, (अच्छ गच्छ च) और वहां सीधा जा । (नः ईं सुरभीणि प्रतिव्यन्तु) हमारे ये सुगंधित हविर्द्रव्य प्रत्येक देवताको प्रिय हो ॥

इस मन्त्रमें (सुरभीणि वीततमानि हव्या) सुगंधित, प्रिय और आल्हाददायक हवनीय पदार्थ कहे हैं । इससे हवनीय पदार्थोंमें सुगंधित पदार्थोंका समावेश होता है, यह बात स्पष्ट होती है ।

[१९] हे अग्ने ! (नः अवीरते मा परादाः) हमें पुत्रहीनता न प्राप्त हो । (दुर्वाससे च नः मा परा दा) मलिन वस्त्र परिधान करनेकी अवस्थाको हमें न पहुंचा । (अस्यै अमतये नः मा परा दाः) इस निर्बुद्धताको हमें न पहुंचा । (नः क्षुधे मा) हमें भूखके कष्ट न हों । (मा रक्षसः) राक्षस हम पर हमला न करें । हे (ऋतावः) सत्यवान् अग्ने ! (नः दमे मा) हमें घरमें कष्ट न हों (वने मा आजुहूर्थाः) हमें वनमें कष्ट न हों ।

मानव धर्म—हमारे पास पुत्रहीन अवस्था न आवे । बुरे वस्त्र पहननेकी दुःस्थिति हमें न मिले । निर्बुद्धता हमारे पास न आवे । भूख हमें न सतावे । राक्षस हम पर हमला न करें । हमें घरमें अथवा वनमें कोई कष्ट न हों । हम सर्वत्र प्रसन्न रहें ।

१ नः अवीरता मा परा दाः—पुत्र न होना, वीर संतान न होना, अथवा हमारे पास वीरोंका अभाव होना ये कष्ट

२० नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवभ्द्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २०
२१ त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक् सुदीती सूनो सहसो दिदीहि ।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ्मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् २१
२२ मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु देवेद्धेष्वग्निषु प्र वोचः ।

हमारे पास न आजांय । हमें पुत्र हों, वे वीर पुत्र हों और हमारे पास शूरवीर सदा रहें ।

२ **दुर्वाससे नः मा परा दाः**—बुरा वस्त्र पहननेकी अवस्था हमें कभी प्राप्त न हो । करावास, दारिद्र्य आदिके कारण बुरे वस्त्र पहनने होते हैं । यह अवस्था हमें भोगनी न पडे ।

३ **अमतये नः मा परा दाः**— हमारे पास बुद्धि हीनता, भ्रान्ति, विचारमें भ्रम कभी न हो ।

४ **क्षुधे नः मा दाः**—भूख हमें न सतावे, अकाल दुर्भिक्ष्य हमारे पास न आवे ।

५ **रक्षसः नः मा दाः**—राक्षसोंके अधीन हम न हों, राक्षस हमपर हमला न करें, हमारे राष्ट्रके स्वामी राक्षस न हो ।

६ **दमे वने वा नः मा आजुहूर्थाः**) घरमें अथवा मनमें हमारा घात पात न हो । हम सर्वत्र सुराक्षित रहें । हमारा नाश न हो ।

मनुष्योंको उचित है कि वे इन आपत्तियोंसे अपने आपको बचानेका प्रयत्न करें ।

[२०] हे अग्ने ! (मे ब्रह्माणि नुउत् शशाधि) मेरे लिये अन्नोंको उत्तम प्रकारसे पवित्र कर । हे (देव) तेजस्वी अग्नि देव ! (त्वं मघवद्भ्यः सुषूद) तू हम सब हविर्द्रव्यरूप धनोंको धारण करनेवालोंके लिये अन्नोंको प्रेरित कर । (ते रातौ उभयासः आ स्याम) तेरे दानमें हम दोनों लेनेवाले होकर रहेंगे । (यूयं सदा नः स्वतिभिः पात) आप सदा हमें कल्याण करनेद्वारा सुरक्षित करो ।

मानव धर्म--अन्नोंको परिशुद्ध रीतिसे तैयार करना चाहिये । मलिनता उसमें रखना योग्य नहीं है । अन्नवानों को भी उत्तम अन्न मिलना चाहिये । प्रभुके दानके हम सब भागी हों । हमारा कल्याण हो ऐसी रीतिसे हमारी सुरक्षा हो ।

[२१] हे (सहसः सूनो अग्ने) बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (सुहवः रण्वसंदृक्) उत्तम प्रार्थित होनेवाला और रमणीय दीखनेवाला तू (सुदीती दिदीहि) ज्वालाओंसे प्रकाशित हो । (तनये नित्ये त्वे सचा) पुत्रके लिये नित्य सहायक होकर (मा आ धक्) उसे मत् जला । (वीरः नर्यः मा असत् वि दासीत्) वीर और मानवोंका हित करनेवाला पुत्र हमसे विनष्ट न हो ।

मानव धर्म—बालकोंकी सहायता करना, बालमृत्यु न हो ऐसा प्रबंध करना, तथा शूरवीर तथा जनताका हित करनेवाले पुत्रको सब प्रकारसे सुरक्षित रखना ।

१ **तनये मा आधक्**— पुत्र जल न मरे । पुत्रका ऐसा संभाल करना चाहिये ।

२ **वीरः नर्यः असमत् मा विदासीत्**— वीर और रावका हित करनेवाला पुत्र हमसे दूर न हो ऐसा प्रबंध करना योग्य है ।

३ **सुहवः रण्वसंदृक् सहसः सूनुः**— प्रेमसे बुलाने योग्य तथा रमणीयताका पुतला जैसा पुत्र है जो अपने ही बलसे उत्पन्न हुआ है । अतः उसकी उत्तम पालना होनी चाहिये ।

[२२] हे अग्ने ! (सचा देवेद्धेषु एषु अग्निषु) तू हमारा साथी है अतः तू देवों द्वारा प्रदीप्त किये अग्नियोंको (नः दुर्भृतये मा प्रवोचः) हमारे भरण पोषण न करनेके लिये न कहना । हे (सहसः सूनो) बलसे उत्पन्न होनेवाले पुत्र ! (देवस्य ते दुर्मतयः) प्रकाशमान होनेवाले तेरी बुद्धियां

मा ते अस्मान् दुर्मतयो भ्रमाच्चिद् देवस्य सूनो सहसो नशन्त २२

२३ स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यम् ।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति २३

२४ महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान् रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम् ।
येन वयं सहसावन् मदेमाऽविक्षितास आयुषा सुवीराः २४

२५ नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २५

हमारे विषयमें कदापि दोष युक्त न हों; (भ्रमात् चित् नशंत) भ्रमसे भी हमपर तुम्हारा विरोधी भाव न हो ।

मानव धर्म—मित्रको उचित है कि वह अपने मित्रका भरणपोषण न हो ऐसा कोई कार्य न करे । मित्रके विषयमें बुरे विचार भी प्रकाशित न करे । भ्रमसे भी मित्रका घातपात न हो ऐसा कोई कार्य न करे ।

१ सचा नः दुर्मतये मा प्रवोचः—कोई साथी अपने मित्रोंके भरणपोषणमें बाधा डालनेका यत्न न करे ।

२ दुर्मतयः मा—कोई मित्र अपने साथीके संबंधमें बुरे विचार प्रकट न करे ।

३ भ्रमात् चित् सचा मा नशंत— भ्रमसे भी मित्रके विषयमें उसका साथी बुरे विचार प्रकट न करे ।

[२३] हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम तेजस्वी अग्ने ! (अमर्त्ये यः हव्यं आ जुहोति) अमर ऐसे तुझ अग्निमें जो हवन करता है । (सः मर्तः रेवान्) वह मनुष्य धनवान् होता है । (यं सूरिः अर्थी पृच्छमानः एति) जिसके विषयमें ज्ञानी और धनकी कामना करनेवाला पूछता हुआ आता है (सः देवता वसुवनिं दधाति) वह देवताके उद्देश्यसे धन अर्पण करता है ।

[२४] हे अग्ने ! (नः महो सुवितस्य विद्वान्) हमारे बडे कल्याणकारक कर्मके ज्ञाता तू है । (सूरिभ्यः बृहन्तं रयिं आ वह) विद्वानोंके लिये उस बडे ऐश्वर्यका प्रदान कर । हे (सहसाऽवन्) बलसे संरक्षण करनेवाले अग्ने ! कि (येन वयं आयुषा अविक्षितासः) जिससे हम आयुसे क्षीण न होते हुए, पूर्णायुषी होकर, (सुवीराः मदेम) उत्तम वीर पुत्र पौत्रोंके साथ आनंदसे रहेंगे ।

मानव धर्म--कल्याण जिससे होगा, उस मार्गको जानना चाहिये । ज्ञानियोंको धनका दान करना योग्य है । ऐसा कर्म करना चाहिये कि जिससे आयु क्षीण न हो, मनुष्य पूर्णायुषी हो और वे उत्तम वीर सन्तानोंके साथ रहकर हृष्ट पुष्ट हों ।

१ महो सुवितस्य विद्वान्— महान कल्याण जिससे निःसंदेह होगा उस मार्गको जानना चाहिये ।

२ सूरिभ्यः बृहन्तं रयिं आवह—ज्ञानियोंके लिये बडा धन देना चाहिये ।

३ आयुषा अविक्षितासः— आयुसे क्षीण कोई न हो, सब पूर्ण आयुवाले हों, दीर्घायु हों।

४ सुवीराः मदेम—उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर सब आनंदसे युक्त हृष्ट पुष्ट हों ।

[२५] (पच्चीस वां मन्त्र २० वाँ मंत्र ही है । इसका अर्थ पूर्वोक्त २० वें मंत्रका अर्थ ही देखो ।)

(२) ११ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। आप्रीसूक्तं =(१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः)। त्रिष्टुप्।

१ जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद् यजतं धूममृण्वन्।
उपस्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य २६

२ नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या २७

३ ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम्।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम २८

---

[१] (२६) हे अग्ने! (नः समिधं अद्य जुषस्व) हमारी समिधाका आज स्वीकार करो। (यजतं धूमं ऋण्वन्) प्रशस्त धूमको फैलाकर (बृहत् शोच) बहुत प्रकाशित हो। (दिव्यं सानु स्तूपैः रश्मिभिः उपस्पृश) अन्तरिक्षमें पहुंचे पर्वतके ऊंचे भागको अपने तप्त रश्मियोंसे स्पर्श करो। (सूर्यस्य रश्मिभिः संततनः) सूर्यके किरणोंके साथ मिलकर रहो।

[२] (२७) (ये देवाः सुक्रतवः) जो देव उत्तम यज्ञका संपादन करनेवाले हैं, (शुचयः धियंधाः) शुद्ध हैं और बुद्धिका वा कर्म शक्तिका धारण करते हैं, वे (उभयानि हव्या स्वदन्ति) दोनों प्रकारके हविर्द्रव्योंका आस्वाद लेते हैं। (एषां) उनके मध्यमें (नराशंसस्य यजतस्य) नरोंद्वारा प्रशंसित तथा पूजनीय अग्निकी (महिमानं) महिमाको (यज्ञैः उपस्तोषायः) हविर्द्रव्योंके अर्पणके साथ हम वर्णन करते हैं।

मानव धर्म--जो उत्तम कर्म करनेवाले शुद्ध और बुद्धिमान हैं, उनमें जो सब मनुष्यों द्वारा प्रशंसित और अधिक पूजनीय है उसकी महिमाका वर्णन करना चाहिये।

१ सुक्रतवः शुचयः धियंधाः--उत्तम कर्म करना, पवित्र होना और बुद्धि तथा श्रेष्ठ कर्म उत्तम रीतिसे करनेकी शक्तिको धारण करना प्रत्येकको योग्य है।

२ नराशंसस्य यजतस्य महिमानं उपस्तोषाम--सब मनुष्यों द्वारा प्रशंसित होनेवाले पूजनीय वीरकी महिमाका हम वर्णन करते हैं।

मनुष्य उत्तम कर्म करे, अत्यंत पवित्र बने, और उत्तम बुद्धिका तथा कर्म शक्तिका धारण करे। मानवों द्वारा प्रशंसित तथा पूजनीय महा पुरुषका गुणगान गायन करे।

[३] (२८) (वः ईळेन्यं असुरं सुदक्षं) आप सबके लिये स्तुत्य, बलवान, उत्तम दक्ष, (रोदसी अन्तः दूतं) द्युलोक और पृथिवीके मध्यमें दूतके समान कार्य करनेवाले (सत्यवाचं) सत्यभाषी, (मनुष्वत् मनुना समिद्धं) मनुष्योंके समान मनुने प्रदीप्त किये (अग्निं अध्वराय) अग्निको अहिंसामय कर्म करनेके लिये (सदं इत् संमहेम) सदा ही हम सुपूजित करते हैं।

मानव धर्म--जो स्तुत्य, बलवान्, दक्ष, सत्यभाषी सेवकके समान कार्यकर्ता होता है, उसको हिंसा-कुटिलता रहित कार्यके लिये बुलाना और सत्कार करना योग्य है।

१ इळेन्यं असुरं सुदक्षं सत्यवाचं अध्वराय महेम--प्रशंसनीय कार्य करनेवाले बलवान्, उत्तम दक्षतासे कर्तव्य करनेवाले, सत्यभाषी, दूतका उसके अहिंसक कर्मके लिये सत्कार करना योग्य है।

ये उत्तम दूतके तथा राजदूतके लक्षण हैं।

४ सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् २९
५ स्वाध्यो३ वि दुरो देवयन्तोऽशिश्रयू रथयुर्देवताता ।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् ३०
६ उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ३१
७ विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै ।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ३२

[४] (२९) (सपर्यवः) अग्निकी सेवा करनेवाले (अभिज्ञु भरमाणाः) घुटने टेककर पात्रको भरते हुए (बर्हिः नमसा अग्नौ प्रवृञ्जते) दर्भोंको हविर्द्रव्यके साथ अग्निमें अर्पण करते हैं। हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो! (घृतपृष्ठं पृषद्वत्) घृतसे सिंचित स्थूल घृत बिंदुओंसे युक्त दर्भमुष्टिको (हविषा आजुह्वानाः मर्जयध्वं) हविके साथ हवन करनेके समय परिशुद्ध करके हवन करो।

[५] (३०) (स्वाध्याः देवयन्तः) उत्तम कर्म करनेवाले, देवताकी भक्ति करनेवाले (रथयुः) रथकी कामना करनेवाले (देवताता दुरः विअशिश्रियुः) यज्ञके अन्दर द्वारोंका आश्रय करते हैं। (समनेषु पूर्वीः) यज्ञोंमें पूर्वकी ओर अग्रभाग करके रहनेवाले जुहू आदिकोंको (शिशुं न मातरा) वत्सको गोमाताके (रिहाणे) चाटनेके समान तथा (अग्रुवः न) अग्रगामी नदियाँ क्षेत्रोंको अपने जलसे सिंचन करनेके समान (सं अंजन्) अग्निको घृतसे सिंचन करते हैं।

[६] (३१) (उत दिव्ये योषणे) और दो दिव्य युवतियां (मही बर्हिषदा) बडी और दर्भोंपर बैठनेवाली (पुरुहूते मघोनी) बहुतों द्वारा प्रशंसित होनेवाली तथा धनवाली (यज्ञिये उषा सानक्ता) पूजनीय उषा और रात्री (सुदुघा धेनुः इव) उत्तम दूध देनेवाली गौके समान (नः सुविताय आ श्रयेतां) हमारे कल्याणके लिये हमें आश्रय देती रहें।

उषा और रात्रीको- अहोरात्रको यहां दो स्त्रियोंकी उपमा दी है। ये दिव्य स्त्रियां हैं, धनवाली हैं, बहुतों द्वारा प्रशंसित हो रही हैं। उत्तम गुणवाली होनेके कारण सब लोग इनकी प्रशंसा करते हैं।

'मघोनी योषणे' इन दो पदोंसे यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियां भी धनवती हो सकती हैं, अपना निज धन अपने पास अपने अधिकारमें रख सकती हैं। तथा ये धनवती होनेके कारण **'नः सुविताय आश्रयेतां'** हमारा कल्याण करनेके लिये हमें आश्रय देवें। अर्थात् दूसरोंका कल्याण करनेके लिये उनको आश्रय दे सकती हैं। इससे पता चलता है कि ये स्त्रियां सर्वथा परतंत्र नहीं थीं। अपना धन पास रखतीं, दूसरोंको आश्रय देती और उनका कल्याण कर सकती थी। इस वेदमंत्रने स्त्रियोंको अपना धन अपने पास रखनेका अधिकार दिया है।

[७] (३२) हे (विप्रा जातवेदसा) ज्ञानी और धन उत्पन्न करनेवाले, (मानुषेषु कारू) मानवोंमें कुशलतासे कर्म करनेवाले दिव्य होताओ! (वां यजध्यै मन्ये) आपकी मैं यज्ञके लिये स्तुति करता हूं। (हवेषु नः अध्वरं ऊर्ध्वं कृतं) इन हवनोंमें हमारे हिंसा रहित यज्ञ कर्मको उच्च करो। (ता देवेषु वार्याणि वनथः) वे आप दोनों देवोंमें हमारे धनोंको पहुंचाइये।

मानव धर्म— कारीगरलोग मानवोंमें कुशल हों और वे विशेष ज्ञानी तथा धनका उत्पादन करनेवाले हों। सब ऐसे कारीगरोंकी प्रशंसा करें। वे यज्ञमें सत्कार पावें। यज्ञको उत्तम रीतिसे निभावें। व्यवहार करनेवालोंको धन देवें।

८ आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ३३
९ तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ३४

१ मानुषेषु कारू विप्रौ जातवेदसौ—मनुष्योंमें कारीगर विशेष बुद्धिमान, विशेष ज्ञानी और धनका उत्पादन करने वाले हों।

२ यजध्यै मन्ये—उन कारीगरोंका सत्कार करनेके लिये उनका सन्मान होता रहे।

३ अध्वरं ऊर्ध्वं कृतं—ये कारीगर अपने कर्मोंको हिंसा तथा कुटिलता रहित और उच्च बनावें।

४ देवेषु वार्याणि वनथः—विजिगीषु व्यवहार कर्ताओंको उत्तम धन देओ।

कारू—कर्ममें कुशल, कारीगर, कौशल्यके कर्म करनेवाले।

जातवेदसौ—जातधनौ-अपनी कारीगरीसे धनका उत्पादन करनेवाले, राष्ट्रमें कारीगर ही धनका उत्पादन करते हैं इसलिये वे सन्मानके योग्य हैं।

देवौ—देव वे होते हैं कि जो व्यवहार करते है, उन व्यवहारोंमें विजयी होनेकी इच्छा करते हैं। (दिवु-विजिगीषा, व्यवहार०)

वार्य—धन, जो सब प्रकारसे चोर आदिके निवारण पूर्वक संरक्षणके योग्य होता है।

[८] (३३) (भारती भारतीभिः सजोषा) भारती भारतीयोंके साथ (देवैः मनुष्येभिः इळा अग्निः) देवों और मनुष्योंके साथ इळा रूप अग्नि और (सारस्वतेभिः सरस्वती) सारस्वतोंके साथ सरस्वती ये (तिस्रः देवीः) तीन देवियाँ (अर्वाक्) पास आजांय और (इदं बर्हिः आ सदन्तु) इस आसनपर बैठें।

तीन देवियां

मानवधर्म— भारती यह देशभाषा है। मातृभाषा इसका नाम है। इळा मातृभूमिका नाम है। और सरस्वती प्रवाहवाली संस्कृति है। मातृभाषा, मातृभूमि और मातृ-सभ्यता ये तीन देवताएं हैं जिनका सत्कार यज्ञमें होना चाहिये।

ये तीनों अग्निके रूप है। मातृभाषा भी अग्निका रूप है क्योकि अग्निसे ही वाणी उत्पन्न होती है। मातृभूमि भी अग्निका रूप है क्योंकि भूमि अग्निका ही स्थान है और सभ्यता या संस्कृति भी अग्निके समान तेजस्वी होती है। इन तीन देवियोंकी भक्ति होती रहनी चाहिये।

भारतीभिः भारती— उपभाषाओंके साथ राष्ट्रभाषा, प्रांत भाषाओंके साथ राष्ट्रभाषा सहायक होकर रहे।

देवेभिः मनुष्यैः इळा—दिव्य मनुष्योंके साथ मातृभूमि उन्नत होती रहे। दिव्य वे हैं कि जो " क्रीडाकुशल, विजयेच्छु, व्यवहार चतुर, तेजस्वी, प्रशंसनीय, प्रसन्न, आनन्दित, प्रिय कर्मकर्ता, और प्रगतिशील " होते हैं।

सारस्वतेभिः सरस्वती--सरस्वतीके उपासकोंको सारस्वत कहते हैं। इनके साथ सभ्यता रहती है।

मनुष्योंको इन तीन देवियोंकी भक्ति करनी चाहिये।

उत्तम संतानकी उत्पत्ति

[९] (३४) हे (देव त्वष्टः) त्वष्टा देव ! (रराणः) प्रसन्न होकर तू (नः) हमें (तत् तुरीयं पोषयित्नु वि स्य स्व) उस त्वरित पुष्टि करनेवाले वीर्यका प्रदान करो। हमें वीर्यवान बनाओ। (यतः) जिस वीर्यसे (कर्मण्यः सुदक्षः) कर्म करनेमें तत्पर दक्ष (देवकामः युक्तग्रावा) देवत्वको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला और यज्ञकर्ता (वीरः जायते) वीर होता है।

मानवधर्म— मनुष्य अपने अन्दर ऐसा बलवर्धक और पोषक वीर्य उत्पन्न करें कि जिससे पुरुषार्थ साधक करनेवाला, दक्षतासे कर्म करनेवाला, दिव्यगुणोंको अपने अन्दर धारण करनेकी इच्छा करनेवाला, यज्ञ करनेकी इच्छावाला वीर पुत्र उत्पन्न हो।

१० वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ३५

११ आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ३६

मनुष्यको पुत्र चाहिये, पर वह पुरुषार्थी, कर्म करनेमें प्रवीण, दक्ष, दिव्यगुण संपन्न, सत्कर्म करनेवाला शूर वीर धीर ऐसा होना चाहिये। पुरुषार्थहीन, कुशलताहीन, ढीला, आसुरी दुर्गुणोंसे युक्त, स्वार्थी, लोभी, भोगी, भीरू ऐसा कुपुत्र नहीं होना चाहिये। मातापिता अपना पुत्र पूर्वोक्त सुलक्षणोंसे युक्त हो ऐसी इच्छा करें। जैसा वीर्य वैसा पुत्र। इसलिये मातापिता अपनेमें ऐसे सुपुत्रकी प्रबल इच्छा करें जिससे उनके वीर्यमें वे गुण उतरेंगे और वैसे ही गुण रजसे मिलकर निःसंदेह ऐसा दिव्य गुणवाला पुत्र उत्पन्न होगा।

१ तुरीयं पोषयिष्णु— अन्न ऐसा सेवन करना चाहिये कि जो सत्वर शुक्र बनानेवाला और पुष्टि देनेवाला हो।

ये सब नियम उत्तम संतानकी उत्पत्तिके लिये आवश्यक हैं।

[१०] (३५) हे वनस्पते ! (देवान् उप अव सृज) देवोंको यहां ले आ। (अग्निः शमिता हविः सूदयाति) अग्नि शान्ति करनेवाला होकर अन्नको पकाता है। (स इत् उ होता सत्यतरः यजाति) वह देवोंको बुलानेवाला अग्नि अधिक सत्य यज्ञनिष्ठ होकर यज्ञ करता है। (यथा देवानां जनिमानि वेद) वह देवोंके जन्म वृत्तान्तको यथायोग्य रीतिसे जानता है।

मानवधर्म— दिव्य विबुधोंको यहां पास बुला ले आओ। उनको देनेके लिये अन्न उत्तम रीतिसे पकाओ। सत्यनिष्ठासे वह अन्न उनको देओ। दिव्य विबुधोंके जीवन वृत्तोंको यथावत् जानो (जिनसे तुम्हें पता लग जायगा कि दिव्य जीवन किस तरह बन सकते हैं)।

१ देवान् उप अवसृज— दिव्य विबुधोंको समीप ले आओ। विद्वानोंमें एकता करो। वे एक स्थानपर आकर बैठें ऐसा करो। विद्वानोंकी सभा बनाओ, वे एक स्थानपर आयें और विचार करें ऐसा करो।

२ देवानां जनिमानि वेद— दिव्य विबुधोंके जीवन वृत्तान्त जानो। जानकर वैसा बननेका यत्न करो।

३ स सत्यतरः यजाति— ऐसा जाननेवाला अधिक सत्यनिष्ठ होता है और वह यजन करता है।

[११] (३६) हे अग्ने! (समिधानः) प्रदीप्त होकर (अर्वाक्) हमारे समीप (इन्द्रेण तुरेभिः देवैः) इन्द्र और त्वारा करनेवाले देवोंके साथ (सरथं आयाहि) एक रथमें बैठकर आओ। (सुपुत्रा अदितिः) उत्तम पुत्रोंकी माता अदिति (नः बर्हिः आस्तां) हमारे इस आसनपर बैठे। (अमृताः देवाः स्वाहा मादयन्तां) अमर देव स्वाहाकारसे दिये अन्नसे आनन्दित हों।

मानवधर्म— स्वयं तेजस्वी बनकर सत्वर कार्य करनेवाले विबुधोंके साथ यहां आकर कार्य करो। उत्तम पुत्रोंकी माता यहां आकर आसनपर बैठे, उस माताका सत्कार होता रहे। अमर देव उत्तम अन्नसे आनन्दित होते रहें।

१ सुपुत्रा अदितिः बर्हिः आस्तां— उत्तम पुत्रोंकी माता दीन नहीं होती, उसका सत्कार हो। जिसके पुत्र तेजस्वी होंगे उनकी वह माता कदापि (अदितिः– अदीना) दीन नहीं होती, वह समर्थ होती है, वह (अत्ति इति अदितिः) उत्तम भोजन करती है। उत्तम पुत्र होनेसे भाग्य बढता है।

२ अमृताः देवाः स्वाहा मादयन्तां— अमृत अन्न खानेवाले अर्थात् मुर्देसे प्राप्त होनेवाले पदार्थ न खानेवाले ज्ञानी (स्व–हा) आत्मार्पण करनेसे आनंदित होते हैं।

३ तुरेभिः देवैः सरथं आयाहि— सत्वर कर्तव्य कर्म करनेवाले विबुधोंके साथ एक रथमें बैठकर आजाओ। सुस्तोंके साथ न रह। चुस्तोंके साथ सदा रहना लाभदायक है।

(३) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ३७
२ प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद् व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ३८

---

[१] (३७) (वः) आप (अग्निभिः सजोषाः) अन्य अग्नियोंके साथ रहनेवाले (यजिष्ठं) पूजा योग्य (अग्निं देवं) अग्नि देवको (अध्वरे दूतं कृणुध्वं) हिंसा रहित प्रशस्ततम कर्ममें दूत बनाइये । (यः मर्त्येषु निध्रुविः) जो मर्त्योंमें रहनेवाला, (ऋतावा) सत्यका पालन करनेवाला (तपः मूर्धा) तेजसे तपनेवाला (घृतान्नः पावकः] घी खानेवाला और पवित्रता करनेवाला होता है ।

मानवधर्म-- जो स्वयं अग्निके समान तेजस्वी है, और जो तेजस्वी मित्रोंके साथ रहता है, ऐसे सत्कार करने योग्य पुरुषको दूत बनाना योग्य है। यह दूत मानवोंमें रहनेवाला हो, सत्यनिष्ठ हो, अपने तेजसे शत्रुको तपानेवाला हो; पवित्रता करनेवाला तथा घृतमिश्रित अन्न खानेवाला हो।

१ अग्निभिः सजोषा अग्निं देवं दूतं कृणुध्वं- तेजस्वी पुरुषोंके साथ सदा रहनेवाले तेजस्वी ज्ञानी पुरुषको विशेष कार्यमें नियुक्त करो । मित्र, दूत , राजदूत नियुक्त करना हो तो जिसके मित्र तेजस्वी हों ऐसा ही तेजस्वी पुरुष नियुक्त करना चाहिये । जो हीन साथीयोंके साथ सदा रहता है ऐसे हीन पुरुषको महत्त्वके स्थानपर रखना योग्य नहीं है । अग्निका ऊर्ध्वज्वलन है, प्रकाश देता है, मार्ग बताता है। ऐसे जिसके उत्तम कर्म हों वही महान कार्यके लिये योग्य है ।

२ मर्त्योंमें निध्रुविः--जो सदा मानवोंमें मिलजुलकर रहता है वही मानवके हितके कार्यमें नियुक्त करना योग्य है । जो मनुष्योंमें रहता नहीं, जो जनताके सुख दुःखको जानता नहीं, जो लोगोंसे सुदूर रहता है वह जनताके हितको कैसे जान सकेगा ? इसलिये महत्त्वके स्थानपर ऐसा पुरुष नियुक्त करना चाहिये कि जो जनतामें रहनेवाला हो ।

३ ऋतावा, पावकः, तपुर्मूर्धा—सत्यनिष्ठ, स्वयं पवित्र रह कर सर्वत्र पवित्रता करनेवाला और जिसका सिर तेजस्वी है ऐसा पुरुष महत्त्व पूर्ण कार्यके लिये नियुक्त करना चाहिये ।

४ घृतान्नः--जिस अन्नमें घी अधिक मात्रामें है ऐसा घृत मिश्रित अन्न खानेवाला पुरुष हो। अर्थात् पवित्र अन्न खानेवाला हो । घी विषका शमन करता है । इसलिये घी भोजनमें पर्याप्त प्रमाणमें हो ।

५ अध्वर--जिस कार्यमें हिंसा कुटिलता, टेढापन, कपट आदि न हो और जिससे सबका कल्याण होता हो वह कार्य यज्ञ कार्य है वह श्रेष्ठतम वा प्रशस्ततम कार्य हो । ऐसे कार्यके लिये इन शुभ गुणोंसे युक्त जो पुरुष होगा, उसीको नियुक्त करना उचित है ।

इस मन्त्रमें ' अग्नि ' के वर्णनके मिषसे महत्त्वके कार्यमें किसकी नियुक्ति हो, वह बताया है । ' जो अग्नि अग्नियोंके साथ रहता है उसको यज्ञमें नियुक्त करो ' यह मंत्र है इसीका अर्थ जो वीर वीरोंके साथ रहता है उसको वीरोचित कार्यमें नियुक्त करो । ' इसी तरह मंत्रसे मानव धर्मका बोध होता है ।

[२] (३८) (यवसे अविष्यन्) घास खानेवाला (प्रोथत् अश्वः न) घोडा जैसा शब्द करता है, वैसा (यदा महः संवरणात् व्यस्थात्) बडे निरोधनसे अग्नि काष्ठोंपर रहता है [उस समय वह शब्द करता है और लकडीयोंको खाता भी है] इस समय (अस्य शोचिः अनु) इसके प्रकाशके अनुकूल (वातः अनुवाति) वायु बहता है । (अध ते व्रजनं कृष्णं अस्ति) और तेरा मार्ग काला होता है ।

छोटापन और बडापन

यहां एक बडा सिद्धान्त कहा है वह यह कि जिस समय अग्नि छोटा रहता है उस समय वायु जोरसे बहने लगा, तो वह छोटा अग्नि बुझ जाता है । पर वही अग्नि जिस समय बडा रूप धारण करके दावानल बन जाता है, उस समय उसी अग्निकी सहायता

३ उद् यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ३९
४ वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत् तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः ।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि ४०
५ तमिद् दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः ।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ४१

वायु करता है। जो वायु छोटी अग्निका शत्रुसा था वही वायु बडे अग्निका मित्र और सहायक होता है। छोटेपनके कारण जो शत्रु जैसे बर्तते है, वेही बडापन प्राप्त होनेपर मित्र हो जाते हैं। यही विश्वव्यवहार है। छोटे अग्निरूप दीपको वायु बुझा देती है, पर वही अग्नि दावानल बनकर वनोंको जलाने लगे तो वही वायु उसका सहायक होता है। अर्थात् छोटेपनमें शत्रु बढते हैं और बडापन प्राप्त होनेपर वेही मित्रता करने लग जाते हैं।

१ अस्य शोचिः वातः अनुवाति-- इस अग्निका प्रकाश बढने लगा तो वायु भी अनुकूल होकर वहने लग जाता है।

छोटेपनमें दुःख और बडेपनमें सुख तथा निर्भयता है।

[३] (३९) हे अग्ने ! (नवजातस्य वृष्णः यस्य ते) नवीन उत्पन्न हुए तुझ बलशालीकी (अजराः इधानाः) जरा रहित ज्वालाएं (उत् चरन्ति) ऊपर उठती हैं। (अरुषः धूमः) इसका प्रकाशमान धूवां (द्यां अच्छ एति) द्युलोकमें सीधा जाता है। हे अग्ने ! तू हमारा (दूतः देवान् हि सं ईयसे) दूत होकर देवोंके पास पहुंचता है।

अग्निकाज्वलन ऊपर होता है. उसकी ज्वालाएं ऊपरकी ओर जाती हैं, धूवां ऊपर जाता है, यह स्वयं देवोंमें जाकर बैठता है। अग्निका सभी कर्म उच्च मार्गसे होता है। अतः अग्नि उच्च-प्रगति करनेवाली देवता है। नीच गति करनेवाली नहीं है। इसीलिये इनकी गति देवोंमें होती है। जिसका ऐसा स्वभाव होगा वह भी ऐसा ही प्रगति ही करेगा।

[४] (४०) (यस्य ते पाजः पृथिव्यां) तेरा तेज पृथिवीपर (तृषु व्यश्रेत्) शीघ्र ही फैलता है, (यत् अन्ना जंभैः समवृक्त) जब तू अपने काष्ठ रूप अन्नोंको अपने जबडों--ज्वालाओं-से खाने लगता है, तब (ते सेना इव सृष्टा प्रसितिः एति) तेरी सेना जैसी ज्वालाएँ तेरेसे छूटीं हुई धडाकेसे हमला करती है। हे (दस्म) दर्शनीय अग्ने ! तू (यवं न जुह्वा विवेक्षि) जौ के खानेके समान ज्वालाओंसे काष्ठोंको भक्षण करता है।

युद्धनीति

यहां अग्निकी ज्वालाओंको सेनाके (ते प्रसितिः सेना इव एति) आक्रमणकी उपमा दी है। इससे युद्ध विद्याकी एक बात मालूम पडती है वह यह कि जिस तरह अग्नि धडाकेसे क्रम पूर्वक वनकी लकडियोंको खाता जाता है, उस तरह अपने सैन्यके द्वारा शत्रुके प्रदेशको क्रम पूर्वक पादाक्रान्त करना चाहिये।

[५] (४१) (यविष्ठं अतिथिं तं इत् अग्निं) अत्यंत तरुण, अतिथिके समान पूज्य उस अग्नि को (दोषा उषसि) रात्रीके तथा उषा या दिनके समय (तं अस्य योनौ निशिशानाः नरः) उसके उत्पत्तिस्थानमें प्रदीप्त करनेवाले नेता लोग (अत्यं न) घोडेके समान (तं मर्जयन्तः) उसको शुद्ध करते वा सेवा करते हैं। (आहुतस्य वृष्णः शोचिः दीदाय) हवन हुए बलवान अग्निकी ज्वाला अधिक प्रदीप्त होती है॥

१ अतिथिं दोषा उषसि मर्जयन्तः—अतिथिकी सेवा दिन और रात्रीमें भी करो। 'अतिथि देवो भव' इसका वेदमंत्रमें यह आधारवचन है।

२ अत्यं न दोषा उषसि मर्जयन्तः— घुडदौडमें दौड लगानेवाले घोडेकी सेवा दिन रात करते हैं, या करनी चाहिये। घुड दौडके लिये घोडे इस तरह सेवा करके तैयार रखे जाते थे।

६ सुसंदृक् ते स्वनीक प्रतीकं वि यद् रुक्मो न रोचस उपाके।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ४२
७ यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ४३
८ या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः ।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत् सूरीञ्जरितॄञ्जातवेदः ४४

---

३ **यविष्ठं दोषा उषासि निशिशाना नरः मर्जयन्तः**- तरुणकी रात्रीमें तथा दिनमें उनको अधिक तेजस्वी करनेके लिये शुद्धता की जाती है, या की, जानी चाहिये। तरुण राष्ट्रके आधार स्तंभ हैं, इसलिये उन्हें अधिक कार्यक्षम बनना चाहिये, अधिक तेजस्वी बनना चाहिये, इसलिये उनकी कार्यक्षमता बढानेके लिये दिन रात यत्न करना चाहिये।

४ **अस्य योनौ निशिशानाः नरः**—इसके उत्पत्ति स्थानकी शुद्धता नेता लोग करते हैं। घोडेकी वंशावली देखते हैं, अग्निकी अरणियोंकी पवित्रता करते हैं, इसी तरह मातापिता-ओंको परिशुद्ध रखते हैं जिससे उत्तम वीर पुत्र उत्पन्न हों वे सामर्थ्यमें बढते जांय।

[६] (४२) हे (**स्वनीक**) **उत्तम तेजस्वी** अग्ने! तू (**यत् रुक्मः न**) **जब सूर्यके समान** (**उपाके रोचसे**) **समीप स्थानमें प्रकाशित होता है, तब** (**ते प्रतीकं सुसंदृक्**) **तेरा रूप उत्तम दर्शनीय होता है। तथा** (**ते शुष्मः दिवः तन्यतुः न एति**) **तेरा प्रकाश विद्युत्के समान फैलता है।** (**चित्रः सूरः न**) **दर्शनीय सूर्यके समान** (**भानुं प्रति चक्षि**) **अपनी दीप्तिको भी तू दर्शाता है।**

अग्निके समान मानव अधिकाधिक तेजस्वी होता जाय।

[७] (४३) हे अग्ने! (**अग्नये वः स्वाहा**) **तुझ अग्निके लिये दिये हुए हविसे तथा** (**इळाभिः घृतवद्भिः हव्यैः यथा परिदाशेम**) **गौओंके घृतसे मिश्रित हवन द्रव्योंसे जब हम तुम्हारी सेवा करते हैं, तब तू भीः** (**तेभिः अमितैः महोभिः**) **उन अपरिमित तेजोंसे** (**शतं आयसीभिः पूर्भिः नः नि पाहि**) **सैकडों लोहेके कीलोंसे हमारी सुरक्षा कर।**

१ अग्निमें गौके घीसे भीगे हवन द्रव्य डालने चाहिये।

२ **आयसीभिः शतं पूर्भिः अमितैः महोभिः नः पाहि**—लोहेके सेंकडों कीलोंसे और अपरिमित सामर्थ्योंसे हमारी उत्तम सुरक्षा कर।

यहां " आयसी शतं पूः " का वर्णन है। ' आयस ' का अर्थ, लोहा, पत्थर अथवा सुवर्ण है। ' पूः या पुर, पुरी ' नाम नगरीका है। पुरी बडी नगरीका नाम है। पुरीके बाहर पत्थरों-का शक्तिशाली कीला होना चाहिये। प्राकार लोहेसे प्रभावी बनाया हो ऐसे सेंकडों कीलोंसे अपना संरक्षण करनेका प्रबंध करना चाहिये। प्राकारमें सेंकडों पक्के स्थान हों जिनमें नगरीके संरक्षण करनेके स्थान हों। नगरीमें धन तथा सुवर्ण हो, और कीला लोहेके जैसा मजबूत हो। इस तरह नगरीयोंकी सुरक्षा करनी चाहिये। इस नगरीके बाहरके कीलेमें (अमितैः महोभिः) अपरिमित तेजस्वी साधन ऐसे हों कि जिनसे शत्रुका नाश सहजहीसे होता रहे। इस तरह नगरियां सुरक्षित होनी चाहिये। और राष्ट्रमें ऐसी सुरक्षित नगरियां सेंकडों होनी चाहिये। राष्ट्र रक्षाका प्रबंध किस तरह और कितना होना चाहिये, वह इस मंत्रसे विदित हो सकता है। मनुष्य अपनी नगरियोंको इस तरह सुरक्षित बनाकर उनमें सुखसे रहें।

[८] (४४) हे (**सहसः सूनो जातवेदः**) **बल-से उत्पन्न होनेवाले वेदोत्पादक अग्ने!** (**दाशुषे ते या वा सन्ति**) **दाताके लिये हितकारी जो तुम्हारी ज्वालाएं हैं, तथा जो** (**अप्रधृष्टाः गिरः वा**) **अहिंसित वाणियां हैं,** (**याभिः नृवतीः उरुष्याः**) **जिनसे सुपुत्रवती प्रजाका तुम रक्षण करते हो,** (**ताभिः न स्मत् सूरीन् जरितॄन् नि पाहि**) **उनसे हमारे विद्वानों और स्तोताओंको सुरक्षित कर।**

९ निर्यत् पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात् स्वया कृपा तन्वा३ रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ४५
१० एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४६

(४) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ४७

---

१ नृवतीः उरुष्याः—संतानवाली प्रजाका संरक्षण करना चाहिये । संतानका संरक्षण होना चाहिये ।

२ सूरीन् पाहि—विद्वानोंकी सुरक्षा कर ।

[९] (४५) **(यत् शुचिः स्वया तन्वा कृपा) जब पवित्र अग्नि अपनी फैली हुई ज्वालारूपी कृपासे (रोचमानः) प्रदीप्त होता है तब (पूता इव स्वधितिः) तीक्ष्ण शस्त्रके समान वह (निः गात्) बाहर आता है, अरणियोंसे बाहर आता है । (यः उशेन्यः) जो कामना योग्य प्रिय (सुक्रतुः पावकः) उत्तम कर्म करनेवाला, पवित्रता करनेवाला (मात्रोः आ जनिष्ट) दोनों अरणिरूप माताओंसे उत्पन्न हुआ वह (देव यज्याय) देवोंके यजन करनेके लिये ही हुआ है ।**

जिस तरह अग्नि दोनों अरणियोंसे उत्पन्न होता है, उस समय वह तीक्ष्ण शस्त्र म्यानसे बाहर आनेके समान चमकता है । म्यानसे बाहर निकलनेवाला शस्त्र जैसा चमकता है, वैसा अग्नि दोनों अरणियोंके मध्यमें चमकता है । यहां अरणीको म्यानकी और अग्निको तीक्ष्ण तेजस्वी शस्त्रकी उपमा दी है ।

१ रोचमानः शुचिः पूता स्वधितिः इव निःगात्-प्रकाशित होनेवाला पवित्र अग्नि तीक्ष्ण शस्त्र म्यानसे बाहर आनेके समान चमकता है ।

२ उशेन्यः सुक्रतुः पावकः देवयज्यायै मात्रोः आ जनिष्टः—प्रिय उत्तम कर्मकर्ता पवित्रता करनेवाला सुपुत्र देवोंके यजनके लिये ही मातापितासे उत्पन्न हुआ है ।

यहां पुत्रके गुण ये कहे हैं, (वशेन्यः) वशमें रहनेवाला, प्रिय, (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला, (पावकः) पवित्रता करनेवाला (देवयज्यायै) देवोंके पूजनके कार्य करनेवाला, ईश्वर भक्त । पुत्रमें ये शुभ गुण होने चाहिये ।

[१०] (४६) **हे अग्ने ! (एता सौभगा नः दिदीहि) ये उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम ऐश्वर्य हमें दे दो । (अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम) और उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम बुद्धिमान पुत्रको हम प्राप्त करेंगे । (विश्वा स्तोतृभ्यः गृणते च संतु) सब धन ईश्वर भक्तोंके लिये मिलते रहें । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करके सुरक्षित रखो ।**

१ सौभगा नः दिदीहि—हमें सब प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त हों । हम धनवान् और ऐश्वर्यवान् बनें ।

२ सुचेतसं क्रतुं वतेम—उत्तम बुद्धिवान् तथा उत्तम कर्म करनेवाले पुत्रको हम प्राप्त करें । हमें पुरुषार्थी बुद्धिमान पुत्र हों ।

३ गृणते विश्वा सन्तु-ईश्वर भक्तके लिये सब ऐश्वर्य प्राप्त हों

४ स्वस्तिभिः नः पात—कल्याणकारक उपायोंसे हमें सुरक्षित कर ।

ऐश्वर्य, धन, उत्तम संतान चाहिये इनका तिरस्कार करना उचित नहीं है ।

[१] (४७) **(वः शुक्राय मानवे सुपूतं) तुम सब शुद्ध तेजस्वी अग्निके लिये उत्तम पवित्र (हव्यं मतिं च प्रभरध्वं) हव्य पदार्थ तथा उत्तम बुद्धि अर्थात् स्तोत्र भर दो, कर दो, गाओ (यः दैव्यानि मानुषा विश्वानि) जो दिव्य और मानुष ऐसे सब (जनूंषि अन्तः विद्मना जिगाति) प्राणियोंके जन्मोंमें अन्दर ही अन्दर ज्ञानसे संचार करता है ।**

शुद्ध अग्निके लिये उत्तम पवित्र हवनीय पदार्थ अर्पण करो और उत्तम स्तोत्र गाओ । वह अग्नि सब दिव्य और मानुष आदि प्राणियोंके जन्मोंके अन्दर ज्ञान पूर्वक संचार करता है । अग्नि सब प्राणियोंमें व्यापक है ।

२ स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।
स यो वना युवते शुचिदन् भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ४८
३ अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे ।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ४९
४ अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ५०

---

१ शुक्राय भानवे सुपूतं हव्यं मतिं च प्रभरध्वं— वीर्यवान् तेजस्वी वीरके लिये पवित्र अन्न और प्रशंसाके शब्द अर्पण करो।

२ यः विश्वानि दैव्यानि मानुषा जनूंषि अन्तः विश्मना जिगाति ।—जो सब दिव्य और मानुष जन्मोंके आन्तरिक ज्ञानको जानता और उनमें संचार करता है ।

[२] (४८) (सः अग्निः गृत्सः तरुणः अस्तु) वह अग्नि बडा बुद्धिमान और तरुण है । (यतः मातुः यविष्ठः अजनिष्ट) जब माता रूप अरणियोंसे वह तरुण उत्पन्न होता है । (यः शुचिदन् वना सं-युवते) जो तेजस्वी दांतवाला अग्नि वनोंके साथ संमिलित होता है, लकडियोंको जलाता है, तब वह (भूरिचित् अन्ना सद्यः इत् सं अत्ति) बहुत अन्नोंको तत्काल ही खाजाता है ।

१ सः अग्निः गृत्सः यविष्ठः तरुणः मातुः अजनिष्ट- वह माताका सुपुत्र अग्नि समान तेजस्वी और अत्यंत उत्साही तरुण हो गया है । यहां पुत्रके गुण बताये हैं । ऐसा अपना पुत्र होना चाहिये ।

१ सः भूरि अन्ना सं अत्ति—वह बहुत प्रकारके अन्न उत्तम प्रकारसे खाता है । अन्नोंमें बलवर्धक, बुद्धिवर्धक तथा उत्साहवर्धक अन्न अनेक प्रकारके होते हैं ।

अग्नि परक मंत्रोंके शब्द तरुण पुत्र पर अर्थमें भी देखे जा सकते हैं। पाठक इस तरह देखें और बोध प्राप्त करें। अन्यथा केवल अग्निपरक ही ' विद्वान्, बुद्धिमान, वेदज्ञ ' आदि शब्दोंके कुछ भी अर्थ नहीं हो सकते, पर यदि यह वर्णन मनुष्य पर किसी अवस्थामें लगना हो तो ही ये पद सार्थ हो सकते हैं ।

[३] (४९) (अस्य देवस्य अनीके संसदि) इस देवके तेजस्वी यज्ञ सभामें (श्येतं यं मर्तासः जगृभ्रे) जिस तेजस्वी अग्निको मानवोंने धारण किया, जिसकी सेवा की । (यः पौरुषेयीं गृभं नि उवोच) जो अग्नि मनुष्यों द्वारा की गयी सेवाका स्वीकार करता है। वह (अग्निः आयवे दुरोकं शुशोच) अग्नि आयुके लिये सेवन करनेके लिये अशक्य रीतिसे प्रकाशित होता है। अत्यंत प्रकाशता है, जो प्रकाश सहन करना अशक्य है ।

मनुष्य अग्नि देवको निर्माण करते है, हविर्द्रव्योंसे उसकी सेवा करते हैं । इस सेवाका ग्रहण करनेके पश्चात् वह इतना प्रकाशता है कि जिसको सहना मानवोंके लिये अशक्य हो जाता है ।

[४] (५०) (कविः प्रचेता अमृतः) ज्ञानी विशेष बुद्धिमान् अमर ऐसा (अयं अग्निः) यह अग्नि (अकविषु मर्तेषु निधायि) अज्ञानी मानवोंमें रखा गया है । हे (सहस्वः बलवान् अग्ने ! (त्वे सुमनसः स्याम) तेरे विषयमें हम सदा उत्तम बुद्धि धारण करनेवाले हैं। इसलिये (सः त्वं अत्र नः मा जुहुरः) वह तू यहां हमें विनष्ट न कर ।

मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी ज्ञानी, बुद्धिमान और अमर हो । यदि वह अज्ञानी मर्त्योंमें रहने लग जाय, तो भी उसके विषयमें उत्तम विचार ही मनसे धारण करना योग्य है, क्योंकि वह किसीका भी नाश नहीं करता।

५ आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्यग्निरमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ५१
६ ईशे ह्यग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ५२
७ परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ५३

---

[५] (५१) (यः देवकृतं योनिं आ ससाद) वह अग्नि देवोंद्वारा बनाये स्थानपर बैठता है, क्योंकि (हि क्रत्वा अग्निः अमृतान् अतारीत्) वह अग्नि अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे अमर देवोंको भी सुरक्षित रखता है। (विश्वधायसं तं) विश्वका धारण पोषण करनेवाले उस अग्निको (ओषधीः वनिनः च भूमिः च गर्भं बिभर्ति) औषधियां, वृक्ष, तथा भूमि अपने अन्दर धारण करती हैं।

जो सबका तारण करता है वही श्रेष्ठ स्थानमें विराजता है। सबका धारण पोषण जो करता है उसको सब अपने अन्तः करणमें आदरसे धारण करते हैं।

१ यः क्रत्वा अमृतान् अतारीत् सः देवकृतं योनिं आससाद—जो अपने प्रयत्नसे श्रेष्ठोंका तारण करता है वह देवनिर्मित श्रेष्ठ स्थानमें विराजता है।

२ विश्वधायसं गर्भं बिभर्ति—सबका धारण पोषण करनेवालेको सभी अपने अन्तः करणमें आदरसे रखते हैं।

[६] (५२) (अमृतस्य भूरेः अग्निः ईशे हि) अन्नदान बहुत करनेके लिये अग्नि समर्थ है। (सुवीर्यस्य रायः दातोः ईशे) उत्तम वीर्य युक्त धन देनेमें अग्नि समर्थ है। हे (सहसावन्) बलवान् अग्ने! (वयं अवीराः त्वा मा परिषदाम) हम पुत्रहीन वा वीरताहीन होकर तेरी सेवा करनेके लिये न बैठें। (अप्सवः मा) रूपरहित होकर हम न बैठें। (अदुवः मा) भक्तिहीन भी हम न हों।

मानवधर्म-- मनुष्योंके पास बहुत अन्न हो, उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति हो, वे पुत्रहीन तथा वीरता हीन अर्थात् भीरु न बनें, कुरूप तथा सौंदर्यहीन न हों। भक्ति हीन भी न हों। मनुष्य धनवान्, शूर, पराक्रमी, वीर्यवान्, सामर्थ्यवान्, पुत्रपौत्रवान्, धैर्यवान्, सुन्दर, शोभायुक्त, भक्तिमान हों। मनुष्य मलीन न रहें। अपना सौंदर्य बढावें, शृंगार बढावें, अपने घर, उद्यान और शरीरकी सजावट करके शोभा बढावें। सुन्दर रहें, दुर्मुख कभी न रहें।

१ अमृतस्य भूरेः ईशे—बहुत अन्नका दान करनेमें हम समर्थ हों।

२ सुवीर्यस्य रायः ईशे—उत्तम वीर्य युक्त धनके हम स्वामी बनें।

३ वयं अवीराः मा—हम संतान रहित अथवा वीरता रहित न हों।

४ वयं अप्सवः मा—हम सौंदर्य हीन न हों।

५ वयं अदुवः मा--हम भक्ति हीन भी न हों।

[७] (५३) (अरणस्य रेक्णः परिषद्यं हि) ऋण रहित मनुष्य का धन पर्याप्त होता है। (नित्यस्य रायः पतयः स्याम) इसलिये हम नित्य रहनेवाले धनके स्वामी बनें। हे अग्ने! (अन्यजातं शेषः न अस्ति) अन्य मनुष्यका पुत्र औरस पुत्र नहीं कहलाता। (अचेतानस्य पथः मा विदुक्षः) निर्बुद्धके मार्ग को हम न जानें॥

मानवधर्म-- जो मनुष्य ऋण नहीं करता उसका धन पर्याप्त होता है। सब अपने पास नित्य रहनेवाले धनके स्वामी बनें। दत्तक पुत्र औरस नहीं कहलाता। मूर्ख मनुष्यके मार्गसे कोई न जावे।

१ अरणस्य रेक्णः परिषद्यं—ऋण रहित मनुष्यका धन बहुत होता है। मनुष्य ऋण न करे और अपने पासके

८ नहि ग्रभायारणः सुशेवो ऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।
अधा चिदोकः पुनरित् स एत्याऽऽनो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ५४
९ त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ५५
१० एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५६

धनमें ही अपनी आवश्यकताओंको निभावे । ऋण करके भोग न करे ।

१ नित्यस्य रायः पतयः स्याम—स्थायी रहनेवाला धन हमारे पास हो । विनष्ट होनेवाला धन हमारे पास न आवे ।

२ अन्यजातं शेषः नास्ति--अन्यका पुत्र अपना औरस पुत्र नहीं होता । अपना पुत्र औरस ही होना चाहिये ।

४ अचेतनस्य पथः मा विदुक्षः-- मूढोंके मार्गोंको हम कदापि न जानें और उनसे कभी हम न जांय ।

[८] (५४)(अन्य-उदर्यः सुशेवः अरणः) दूसरेका पुत्र सुखसे सेवा करनेवाला और ऋण न करनेवाला होनेपर भी वह पुत्र करके (ग्रभाय नहि) ग्रहण करने योग्य नहीं होता, इतना ही नहीं परंतु वह (मनसा मंतवै ऊं) मनसे माननेके लिये भी योग्य नहीं है । (अध ओकः चित् पुनः इत् स एति) क्योंकि वह अपने निज पिताके घरके पास ही खींचा जाता है। अतः (नव्यः वाजी अभीषाट् नः आ एतु) नवीन बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाला पुत्र ही हमें प्राप्त होवे ।

मानवधर्म-- दूसरेका पुत्र दत्तक लिया और वह उत्तम सेवा करनेवाला, ऋण न करनेवाला भी हुआ, तथापि वह अपना पुत्र नहीं हो सकता। जो दूसरेका है वह दूसरेका ही होता है । मनसे भी उसे औरस नहीं मान सकते। वह अपने मातापिताके घरकी ओर खींचा जायगा । इस लिये हमें बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाला ऐसा औरस पुत्र ही चाहिये ।

१ अन्योदर्यः सुशेवः अरणः ग्रभाय नहि—दूसरेका पुत्र उत्तम सेवा करनेवाला, तथा अधिक व्यय न करनेवाला, ऋण न करनेवाला होनेपर भी उसको औरस पुत्रका महत्त्व नहीं प्राप्त हो सकता । जो औरस पुत्र होता है वही उत्तम है ।

२ अन्योदर्यः मनसा मंतवै नहि—दूसरेका पुत्र औरस मानना, मनसे वैसी कल्पना करना भी अशक्य है ।

३ सः ओकः एति—वह अपने मातापिताके घरकी ओर ही जायगा । उसका मन इधर नहीं लगेगा ।

४ नव्यः वाजी अभीषाट् नः ऐतु—नवीन बलवान और शत्रुका पराभव करनेवाला औरस पुत्र हमें उत्पन्न हो ।

यहां औरस पुत्रका महत्त्व कहा है वह सत्य है । गृहस्थीको औरस संतान अवश्य होनी चाहिये ।

[९] (५५) हे अग्ने ! (त्वं वनुष्यतः नः निपाहि) तूं हिंसकों से हमें बचा। हे (सहसावन्) बलवान् ! (त्वं अवद्यात् नः पाहि) तूं पापसे हमें बचा । (त्वा ध्वस्मन्वत् पाथः अभिएतु) तुम्हारे पास निर्दोष अन्न पहुंचे। (स्पृहयाय्यः सहस्री रयिः सं एतु) हमारे पास प्राप्त करने योग्य सहस्रों प्रकारका धन आ जाय ।

मानवधर्म— हिंसकोंसे अपने आपको बचाओ। पापसे अपने आपको बचाओ। दोष रहित अन्नपानका सेवन कर। प्रशंसा करने योग्य हजारों प्रकारका धन प्राप्त करो ।

१ वनुष्यतः निपाहि—हिंसकोंसे बचाओ,

२ अवद्यात् निपाहि—पापसे बचाओ,

३ ध्वस्मन्वत् पाथः अभ्येतु--निर्दोष खान पान तुम्हारे पास आजावे

४ स्पृहयाय्यः सहस्री रयिः समेतु-स्पृहणीय हजारों प्रकारका धन हमें प्राप्त हो ।

१० (५६) अर्थ लिखा है देखो १० (४६) वां मंत्र ।

(५) ९ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। वैश्वानरोऽग्निः। त्रिष्टुप्।

१ प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः ।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः ५७
२ पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धुनां वृषभः स्तियानाम्
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण ५८
३ त्वद् भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि ।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः ५९
४ तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त ।
त्वं भासा रोदसी आ ततन्थाऽजस्रेण शोचिषा शोशुचानः ६०

---

[१] (५७) (तवसे दिवः पृथिव्याः अरतये) वृद्धिंगत हुए, द्युलोक और पृथिवीपर गमन करनेवाले (अग्नये गिरं भरध्वं) अग्निके लिये स्तोत्र भर दो, करो। (यः वैश्वानरः) जो वैश्वानर अग्नि (विश्वेषां अमृतानां उपस्थे) सब देवोंके समीप (जागृवद्भिः ववृधे) जागनेवालोंके द्वारा बढाया जाता है।

[२] (५८) (सिन्धूनां नेता) नदियोंका चालक और (स्तियानां वृषभः) जलोंका वर्षण कर्ता (पृष्ठः अग्निः) सुपूजित हुआ अग्नि (दिवि पृथिव्यां धायि) द्युलोकमें और पृथिवीपर स्थापित हुआ है। (सः वैश्वानरः वरेण ववृधानः) वह सर्वजन हितकारी अग्नि श्रेष्ठ हविसे बढता हुआ (मानुषीः विशः अभि वि भाति) मानवी प्रजाओंमें प्रकाशता है।

यह अग्नि वृष्टि करता है, वृष्टिसे नदियां भरपूर भरकर बहती हैं। यह अग्नि पृथिवीपर तथा आकाशमें है और यहां पूजा लेता है। वही अग्नि यहां हवनसे बढता हुआ मानवी प्रजाओंमें यज्ञोंके अन्दर प्रकाश रहा है।

[३] (५९) हे वैश्वानर! (त्वत् भिया) तेरी भीतिसे (असिक्नीः विशः) काली प्रजा (भोजनानि जहतीः) भोजनोंको भी त्यागती हुई (असमनाः आयन्) तितर बितर होकर भागने लगी थी। (यत् पूरवे शोशुचानः) जब तू पुरु राजाके लिये प्रकाशित होकर (पुरः दरयन् अदीदेः) शत्रुकी नगरियोंका विदारण करके प्रज्वलित हुआ था।

पुरु राजाके पास अग्नि था, यह अग्नि उसका सहायक था। पुरु राजाके लिये इसने शत्रुकी नगरियोंको जलाया, तब भोजन, धन आदि सबको त्याग कर इस अग्निकी भीतिसे काली प्रजा तितर बितर होकर भागने लगी थी।

युद्धके समय शत्रुकी नगरियोंको अग्नि प्रयोगसे जलाते हैं, उस समय जलनेवाले नगरकी प्रजा जल जानेके भयसे इतस्ततः भागती है, और अपने सब सुख साधन फेंक कर जहां अग्निभय नहीं होगा वहां जाती है। युद्धमें अग्निके अस्त्र प्रयोगसे शत्रुसेनाकी अवस्था ऐसी होती है।

[४] (६०) हे वैश्वानर अग्ने! (तव व्रतं त्रिधातु) तेरे व्रतका त्रिधातु अर्थात् पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोकमें रहनेवाले लोग (सचन्त) पालन करते हैं। (अजस्रेण शोचिषा शोशुचानः) विशेष प्रकाशसे प्रकाशित होता हुआ (त्वं) तू अपने (भासा रोदसी आततन्थ) तेजसे द्युलोक और पृथिवी लोकको विस्तृत करता है।

अग्निके व्रतका पालन सब करते हैं, उसका उल्लंघन कोई कर नहीं सकता। वह स्वयं अजस्र प्रकाशसे प्रकाशित होकर अपने प्रकाशसे सब स्थानोंको प्रकाशित करता है जिससे मानवी कार्यक्षेत्रके लिये विस्तृत स्थान मिलता है यही इसका द्यावापृथिवीको विस्तृत करना है।

५ त्वामग्ने हरितो वावशाना गिरः सचन्ते धुनयो घृताचीः ।
पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्नाम् ६१

६ त्वे असुर्यं वसवो न्यृण्वन् क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त ।
त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय ६२

७ स जायमानः परमे व्योमन् वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः ।
त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन्नपत्याय जातवेदो दशस्यन् ६३

[५] (६१) हे अग्ने! (कृष्टीनां पतिं) कृषि करनेवाली प्रजाके स्वामी, (रयीणां रथ्यं) धनों के संचालक, (उषसां अह्नां केतुं) उषाओं सहित दिनोंके ध्वजके समान (वैश्वानरं त्वां) तुझ वैश्वानरकी (वावशाना हरितः) चाहनेवाले घोडे (सचन्ते) सेवा करते हैं। तथा (घृताचीः धुनयः गिरः सचन्ते) घीको हविके साथ मिलाकर पापको धोनेवाली स्तुतियां भी तेरी सेवा करती हैं।

सूर्यरूपी अग्नि उषाओं और दिनोंका मानो ध्वज ही है, दिनमें सब व्यवहार होकर धन प्राप्त होते हैं, इसलिये यह धनोंका प्रेरक है, धनोंका रथ ही है। इस कारण प्रजाओंका कृषकोंका हितकारी है। इस अग्निको घोडों द्वारा चलाये रथमें रखकर चारों ओर घुमाते हैं, उस समय स्तोता इसकी प्रशंसा गाते हैं और साथ साथ हवन भी करते हैं।

[६] (६२) हे (मित्रमहः) मित्रके महत्त्वको बढानेवाले अग्ने! (त्वे वसवः असुर्यं नि ऋण्वन्) तेरे अन्दर वसु देवोंने बलको स्थापित किया है। तथा उन्होंने (ते क्रतुं जुषन्त हि) तेरी प्रीति करनेवाले कर्मको किया है। तथा (त्वं आर्याय उरु ज्योतिः जनयन्) तूने आर्योंके लिये विशेष प्रकाश उत्पन्न करके (दस्यून् ओकसः आजः) शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाड दिया है।

इस अग्निमें विलक्षण बल है वह बल उसमें वसुओंने रखा है। जो आठ वसु हैं उनके कारण यह बल इस अग्निमें है। इस बलसे यह अग्नि जिसका सहायक होता है उसका बल और महत्त्व बढा देता है। यह अग्निका अस्त्र है। उसके नियमोंका पालन करनेवालोंके लिये ही यह सहायक होता है। जो पुरुषार्थी लोग होते हैं वे आर्य हैं। उनके पास यह अग्निका अस्त्र था। युद्धमें वे इसका प्रयोग करके शत्रुओंको भगाते थे। युद्धमें इन अस्त्रोंका उपयोग करना और शत्रुओंको दूर करना चाहिये। यह इसका बोध है। शत्रुपर ऐसा हमला करना चाहिये कि जिससे शत्रु स्वस्थानको छोडकर भाग जाय।

[७] (६३) (सः त्वं) वह तू (परमे व्योमन् जायमानः) अति दूरके आकाशमें सूर्य रूपसे उत्पन्न होकर (वायुः न) वायुके समान (पाथः सद्यः परिपासि) सोमरसको प्रथम ही सत्वर पीता है। हे (जातवेदः) वेदके प्रकाशक! (त्वं भुवना जनयन्) तू भुवनों-जलोंको प्रकट करता हुआ (अपत्याय दशस्यन्) संतानकी कामनाओंको पूर्ण करता है और (अभिक्रन्) गर्जना करता है, विद्युत् रूपसे बडा शब्द करता है।

अग्नि द्युलोकमें सूर्य रूपसे, अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपसे रहता और गर्जना भी करता है और पृथ्वीपर रहकर मनुष्योंकी सहायता अनेक प्रकारसे करता है। अग्निका वाणीसे संबंध विद्युत् रूपी अग्निकी मेघगर्जनासे स्पष्ट अनुभवमें आता है। अग्निसे वाक् हुई, विद्युदग्निसे गर्जना हुई। यह अग्निसे वाणीका संबंध है।

अग्निसे जल उत्पन्न होनेका अनुभव भी अन्तरिक्षमें ही होता है, मेघोंमें विद्युत् चमकती है, पश्चात् वृष्टि होती है। यही अग्निसे जलका उत्पन्न होना है।

८ ताम॒ग्ने अ॒स्मे इष॒मेर॑यस्व॒ वैश्वा॑नर द्यु॒मतीं॑ जातवेदः ।
यया॒ राधः॒ पिन्व॑सि विश्ववार पृ॒थु श्रवो॑ दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ६४
तं नो॑ अग्ने म॒घव॑द्भ्यः पुरु॒क्षुं र॒यिं नि वाजं॒ श्रुत्यं॑ युवस्व ।
वैश्वा॑नर॒ महि॑ नः॒ शर्म॑ यच्छ रु॒द्रेभि॑रग्ने॒ वसु॑भिः स॒जोषाः॑ ६५

(६) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र स॒म्राजो॒ असु॑रस्य॒ प्रश॑स्तिं पुं॒सः कृ॑ष्टी॒नाम॑नु॒माद्य॑स्य ।
इन्द्र॑स्येव॒ प्र त॒वस॑स्कृ॒तानि॒ वन्दे॑ दा॒रुं वन्द॑मानो विवक्मि ६६

---

[८] (६४) हे (जातवेद वैश्वानर अग्ने) वेदके प्रकट करनेवाले विश्वके नेता अग्ने! (तां द्युमतीं इषं अस्मे आ ईरयस्व) उस दीप्तिमय वृष्टिको हमारे पास प्रेरित करो। (यया राधः पिन्वसि) जिससे अन्नका पालन तू करता है, और हे (विश्ववार) सबको स्वीकार करने योग्य अग्ने! (पृथु श्रवः दाशुषे मर्त्याय) बडा यश दाता मनुष्यके लिये तू ही देता है।

अन्तरिक्षमें मेघोंमें रहा अग्नि विद्युत् रूपसे चमकता है और वृष्टिको प्रेरित करता है, जिससे लोगोंको धान्यरूपी धन प्राप्त होता है, इसका दान यज्ञमें मनुष्य करते हैं और उससे उनको बडा यश मिलता है। " विद्युत्-अग्नि-वृष्टि-धान्य-धन-दान-यज्ञ-यश " का यह संबंध है। अग्निसे यह सब होता है।

[९] (६५) हे (वैश्वानर अग्ने) सब मानवोंका हित करनेवाले अग्ने! (मघवद्भ्यः नः) हविरूपी धन धारण करनेवाले हमारे लिये (तं पुरुक्षुं रयिं) उस बहुत यश देनेवाले धनको तथा (श्रुत्यं वाजं युवस्व) कीर्ति बढानेवाले बलको दो। हे अग्ने! (वसुभिः रुद्रेभिः सजोषाः) वसु और रुद्रोंके साथ रहनेवाला तू (नः महि शर्म यच्छ) हमारे लिये सुख दो।

हमारे पासका हवि हम अग्निको देते हैं और वह अग्नि हमें धन, बल, यश और सुख देवे। हमें धन चाहिये, बल चाहिये, यश, तथा सुख चाहिये। वह इस अग्निकी सहायतासे मिल सकता है। (वैश्वानरः अग्निः) मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी बने और सब लोगोंके हित करनेके कार्य करे। (पुरुक्षुं रयिं) धन ऐसा प्राप्त करे कि जिससे सबका जीवन सुखमय हो। (श्रुत्यं वाजं) बल ऐसा प्राप्त करे कि जिससे इसका यश सर्वत्र फैल जाय। और (महि शर्म) सबको अधिकसे अधिक सुख प्राप्त होता रहे। मानवोंके लिये अग्नि आदर्श है। उसके गुण योग्य मार्गसे मनुष्य अपने जीवनमें ढाल देवे।

[१] (६६) (दारुं वन्दे) शत्रुओंकी नगरियोंका नाश करनेवाले वीरको मैं प्रणाम करता हूं। (वंदमानः) उसको नमन करता हुआ मैं (सम्राजः असुरस्य पुंसः) सम्राट् बलवान् वीर (कृष्टीनां अनुमाद्यस्य) प्रजाओं द्वारा अनुमोदित (तवसः इन्द्रस्य इव) बलवान् इन्द्रके समान वैश्वानर अग्निके (कृतानि विवक्मि) किये कर्मोंका वर्णन करता हूं।

सब प्रजाजनोंका हित करनेवाला वैश्वानर अग्नि है। यह शत्रुओंके किलों और नगरोंको तोडता है। यह सम्राट् है, बलवान है और वीर है तथा प्रजाओं द्वारा अनुमोदित है, इसको प्रजाओंकी अनुमति है। इन्द्रके समान यह बलिष्ठ है। इसने पराक्रम किये हैं उनका मैं यहां वर्णन करता हूं।

१ **दारुं वन्दे**—शत्रुका विदारण, शत्रुके किलों और नगरोंका नाश करनेवाले वीरको प्रमाण करता हूं। ऐसा वीर सबके प्रणाम लेने योग्य होता है।

२ **कृष्टीनां अनुमाद्यः**—प्रजाजनों द्वारा, कृषि करनेवाले किसानों द्वारा अनुमोदित, इनकी संमतिसे सुप्रतिष्ठित जो होता है वह राजा होता है।

२ कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः ।
पुरंदरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि ६७
३ न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान् ।
प्र प्र तान् दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ६८

३ **सम्राट् असुरः पुमान्**-- प्रजाओंके द्वारा अनुमोदित सम्राट् बलवान् और वीर, पुरुषार्थ करनेकी शक्तिसे युक्त जो होता है वही सबको वन्दनीय है ।

४ **वैश्वानरः अग्निः**—यह सब जनोंका हित करता है, अग्नि समान तेजस्वी है, अग्रणी नेता और मार्ग दर्शक है । यही वीर वन्दनीय है ।

५ **इन्द्रस्य इव कृतानि विवक्मि**—इन्द्रके समान इस वीरके पराक्रमोंके कर्मोंका मै वर्णन करता हूं । इन्द्रके पराक्रमोंका वर्णन इन्द्रके सूक्तोंमें होगा और इस वैश्वानरके पराक्रमोंका वर्णन इस सूक्तमें तथा अन्य सूक्तोंमें होगा ।

६ **तवसः पूंसः कर्माणि**—बलवान् वीर पुरुषके ये कर्म हैं । ये शूरवीर विजेता और अपराजित विजयी वीरके ये पौरुष कर्म हैं ।

इस सूक्तमें अग्निके विशेषण ऐसे दिये हैं कि जो वीर सम्राट् के विशेषण हो सकते हैं । उत्तम आदर्श सम्राट्का यह वर्णन हो सकता है । वेदकी यह एक विशेष शैली है कि किसी देवताके वर्णनके मिषसे वह सम्राट्, नायक आदिका वर्णन करता है । पाठक इस वर्णनको देखें और यह श्लेषार्थ जानें ।

मानवधर्म— वीर युद्धमें शत्रुके किले और नगर तोडे । वह बलवान् पुरुषार्थी तथा उत्तम राजा होकर प्रजाका हित करनेके लिये राज्य करे । जिसके लिये प्रजाकी अनुमति हो वही राजा बने । ऐसे राजाके जो उत्तम पौरुषके पराक्रम हों, उनका वर्णन करना योग्य है ।

ऐसे वर्णनके वीरकाव्य गाये जांय । इनको सुनकर अन्य पुरुषार्थी वीरोंके मनोंमें उत्तम प्रेरणा होगी और वे भी पुरुपार्थी बननेका प्रयत्न करेंगे । वीर काव्योंके गानका यह समाज पर सुपरिणाम होता है ।

[२] (६७) कविं केतुं) ज्ञानी, सूचक, अथवा ज्ञापक, (अद्रेः धासिं भानुं) कीलोंका धारक, प्रकाशक, (रोदस्योः शं राज्यं) द्युलोक और पृथिवीका सुखकारक रीतिसे राज्य करनेवाला, ऐसे (पुरंदरस्य अग्नेः पूर्व्या महानि व्रतानि) शत्रुके किले तोडनेवाले अग्निके पुरातन बडे महान पुरुषार्थोंका (गीर्भिः आ विवासे) अपनी वाणीसे मैं वर्णन करता हूं । इस वर्णनसे मैं उसकी सेवा करता हूं ।

मानवधर्म— राजा ज्ञानी, दूरदर्शी, उत्तम प्रभावका सूचक, अपने किलों और नगरोंका संरक्षक, तेजस्वी, जनताको सुख देनेके लिये ही राज्य करनेवाला हो । ऐसे वीर राजाके पौरुषोंका काव्य किया जाय और गाया जाय ।

उत्तम राजाके गुण ये हैं--

१ **कविः**—राजा ज्ञानी हो, क्रान्तदर्शी, सुदूरदर्शी हो, जो अन्योंको दीखता नहीं वह उसको समझे, भविष्यमें जो होनेवाला है वह इसको प्रथम विदित हो और वैसा वह प्रबंध करे ।

२ **केतुः**-राजा ध्वज जैसे उच्च स्थानपर रहता है, वैसे उच्च स्थानपर विराजे । वह उत्तम राज्य व्यवस्थाका झंडा जैसा हो ।

३ **अद्रेः धासिः** – पहाडों, किलों और नगरके प्राकारोंका संरक्षण करे,

४ **भानुः**--राजा तेजस्वी हो,

५ **शं राज्यं**--शान्तिसे राज्य करे, जिससे जनताको सुख प्राप्त हो,

६ **पुरंदरः**--शत्रुके किलों और नगरोंको युद्धके समय तोडे,

७ **महानि व्रतानि**--महान पुरुपार्थ करता रहे.

[३] (६८) (अक्रतून् ग्रथिनः) सत्कर्म न करनेवाले, वृथा भाषण करनेवाले, (मृध्रवाचः पणीन्) हिंसक वाणी बोलनेवाले, पणी अर्थात् सूदका व्यवहार करनेवाले, (अश्रद्धान् अवृधान्) अश्रद्ध और हीन अवस्थाको पहुंचनेवाले (अय-

४ यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः ।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ६९
५ यो देह्यो अनमयद् वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ७०

ज्ञान् तान् दस्यून्) यज्ञ न करनेवाले उन दस्युओंको (अग्निः प्र प्र विवाय) अग्नि निःसंदेह हटा देता है। हीन कर देता है, दूर करता है। (पूर्वः अग्निः) मुख्य अग्नि (अ-यज्यून्) यज्ञ न करनेवालोंको (अ-परान् चकार) कनिष्ठ बना देता है। श्रेष्ठ स्थानपर नहीं रखता।

मानवधर्म-- जो शुभकर्म नहीं करते, जो केवल वृथा भाषण ही करते रहते हैं, हिंसाको बढानेवाला भाषण करते हैं, जो सूदका व्यवहार करते हैं, जो अत्यधिक सूद लेते हैं, जो ईश्वरपर श्रद्धा नहीं रखते, जो हीन अवस्थाको प्राप्त होनेके ही व्यवहार करते हैं, जो यज्ञ नहीं करते, जो डाका डालते रहते हैं, इनको राजा उच्च अधिकारके स्थानोंपर न रखे, उच्च स्थानसे हटा देवे।

अर्थात् जो सदा प्रशस्ततम सत्कर्म करते हैं, जो मित, पथ्य और हित कारक भाषण करते हैं, जो हिंसाको कम करनेका यत्न करते हैं, जो सूदका व्यवहार नहीं करते, पर करेंगे तो ऋणीको हानि पहुंचाने योग्य कठोर रीतिसे नहीं करते, जो श्रद्धालु हैं, जो उच्च होनेकी इच्छासे सतत प्रयत्नशील होते हैं, जो यज्ञ करते हैं, जो सज्जन होते हैं ऐसे पुरुषोंको राजा उच्च अधिकारके स्थानपर रखें।

उत्तम राज्यशासन होनेके लिये उत्तम लोग ही उच्च अधिकारके स्थानोंपर चाहिये। इसलिये-जो उच्च स्थानोंपर रहनेके योग्य नहीं हैं, उनका वर्णन इस मन्त्रमें किया है। ऐसे दुष्टोंको उच्च अधिकारके स्थानपर रखना उचित नहीं है।

[४] (६९) (नृतमः) उत्तम नेता ने (अपाचीने तमसि) गाढ अन्धकारमें (मदन्तीः) निमग्न होकर आनंद माननेवाली परन्तु स्तुति करनेवाली प्रजाको (शचीभिः प्राचीः चकार) प्रज्ञाबुद्धिसे ऋजुगामी किया। (तं वस्वः ईशानं) उस धनके स्वामी (अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं) अदीन परंतु सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका दमन करनेवाले (अग्निं गृणीषे) अग्निकी मैं प्रशंसा करता हूं।

मानवधर्म— उत्तम नेताको उचित है कि वह गाढ अन्धकारमें पडी और वहीं आनंद माननेवाली प्रजाको, उनकी प्रज्ञा जागृत करके, सीधे उन्नतिके मार्गसे चलावे। ऐसे धनके स्वामी, आत्मसंमान रखनेवाले तथा शत्रुका दमन करनेवाले अग्निसमान तेजस्वी वीरके गीत गाये जांय।

१ नृतमः अपाचीने तमसि मदन्तीः शचीभिः प्राचीः चकार--उत्तम नेता वह है कि जो अज्ञानमें पडी प्रजाको, उनकी बुद्धिमें जाग्रति उत्पन्न करके उन्नतिके मार्गसे चलावे।

२ वस्वः ईशानं अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं गृणीषे। —धनके स्वामी, आत्मसंमानी तथा शत्रुका दमन करनेमें समर्थ वीरकी स्तुति की जाय।

ऐसे वीरोंकी स्तुति की जाय। ये वीरोंके गीत सुननेवालोंमें वीरताकी ज्योति जगा सकते हैं।

[५] (७०) (यः देह्यः वधस्नैः अनमयत्) जो आसुरी घातकोंको अपने आयुधोंसे विनम्र करता है, (यः उषसः अर्यपत्नीः चकार) जो सूर्य पत्नी उषाको निर्माण करता है। (सः यह्वः अग्निः सहोभिः विशः निरुध्य) उस महान अग्निने अपनी शक्तियोंसे प्रजाका निरोध करके (नहुषः बलिहृतः चक्रे) उस प्रजाको राजाको कर देनेवाली बना दिया।

मानवधर्म-- प्रजाको सतानेवाले आसुरी गुण्डोंको अपने दण्डसे अथवा शस्त्रसे राजा नम्र तथा शासनानुकूल चलनेवाली बनावे। महान शासक अपने शासनके प्रबंधसे प्रजाको निरुद्ध करके कर देनेवाली बनावे।

६ यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ७१

७ आ देवो ददे बुध्न्या३ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ७२

प्रजाका पालन राजा करता है, इसलिये प्रजाको उचित है कि वह अपने संरक्षणके लिये अपने प्राप्त धनसे राजाको योग्य कर देवे। जो प्रजा कर न देनेका प्रयत्न करे, अर्थात् योग्यता होने पर भी कर न देनेका प्रयत्न करे, उन दुष्ट प्रजाजनोंको राजा चारों ओरसे घेर कर उनको कर देनेवाली बना देवे। सब ओरसे घेर कर ' कर देनेका एक ही मार्ग ' उनके लिये खुला छोडे, जिससे वह प्रजा जाय और कर देती रहे।

१ स वधस्नैः देह्यः अनमयत्—वह राजा शस्त्रोंसे हिंसक आसुरी कर्म करनेवाले गुण्डोंको विनम्र करे, गुण्डपन वे छोडें और उनको सज्जन बना देवे।

२ सहोभिः विशः निरुध्य बलिहृतः चक्रे—अपने सामर्थ्योंसे कर न देनेवाली प्रजाको निरोधन करके उनको कर देनेवाली बनावे। जो जान बूझकर कर देना टालते हैं, उनसे कर वसूल करे।

[६] (७१) (विश्वे जनासः शर्मन्) सब लोग अपने सुखके लिये (यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः) जिसकी उत्तम बुद्धिकी प्रार्थना करके (एवैः उप तस्थुः) अपने उत्तम कर्मोंके समीप खडे रहते हैं, वह (वैश्वानरः अग्निः) सब मानवोंका हितकर्ता अग्नि (पित्रोः उपस्थे) द्यावा पृथिवीके बीचमें (वरं आससाद) श्रेष्ठ स्थानपर बैठ गया।

मानवधर्म— **सब लोग अपनी सुरक्षाके लिये जिसकी सदिच्छाकी अपेक्षा करते हैं, और अपने उत्तम कर्म जिसके सामने रखते हैं, वह सर्वजन हितकारी वीर उच्च स्थानपर विराजने योग्य है।**

१ विश्वे जनासः शर्मन् यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः- सब लोग अपनी सुरक्षाके लिये जिसकी सद्‌बुद्धिकी अपेक्षा करते हैं वह श्रेष्ठ वीर हैं।

२ एवैः यं उपतस्थुः--सब लोग अपने कर्मोंको जिसके सन्मुख रखना चाहते हैं वह श्रेष्ठ पुरुष है।

३ वैश्वानरः वरं आससाद—सब जनोंका हित करने-वाला वीर उच्च स्थान प्राप्त करता है। जो सब जनोंका हित करनेके कार्य करेगा वह उच्च होगा।

सब जनोंको सुरक्षित रखना, सबके कर्मोंका निरीक्षण करके उनमें जो श्रेष्ठ होगा उसको उच्च स्थान देना और सर्वजन हितकारी वीरको श्रेष्ठ पदपर नियुक्त करना योग्य है।

[७] (७२) (वैश्वानरः अग्निः देवः) सब जनोंका हित करनेवाला अग्नि देव (बुध्न्या वसूनि सूर्यस्य उदिता आददे) अन्तरिक्षके अन्धकारको सूर्यके उदयके समय लेता है। (समुद्रात् अवरात् पृथिव्याः) समुद्रसे तथा इधरकी पृथिवीकी ओरसे (आ) अन्धकारको लेता है। (परस्मात् दिवः आददे) परले द्युलोकसे भी अन्धकारको लेता है। सबको प्रकाशित करता है।

मानवधर्म— **सब जनोंका हित करनेके लिये उन सब जनोंका अज्ञान पूर्णतया दूर करना चाहिये। बुद्धि, मन, इंद्रिय, शरीर तथा विश्व सम्बन्धी सब अज्ञानान्धकार दूर करना चाहिये।**

जिस तरह विश्वका अन्धकार दूर होनेसे सब मार्ग स्पष्ट रीतिसे दिखाई देते हैं, उसी तरह मानवोंके अज्ञान दूर होनेसे उनको भी उन्नतिके मार्ग दिखाई देंगे। जो राजा अथवा जनता का नेता है उसको उचित है कि वह जनताका अज्ञान दूर करने का प्रबल यत्न करे। और जनताको ज्ञान विज्ञान संपन्न बना दे। जिससे उनकी उन्नतिके मार्ग उनके सामने खुले हो जायगे।

(७) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र वो देवं चित् सहसानमग्निमश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान् त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ७३
२ आ याह्यग्ने पथ्या३ अनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः
आ सानु शुष्मैर्नदयन् पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि ७४
३ प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता ।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ७५
४ सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम् ।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणेऽ ऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ७६

---

[१] (७३) (वः देवं सहसानं) प्रकाशमान और राक्षसोंके पराभव कर्ता (अग्निं अश्वं इव वाजिनं) अग्रणीको अश्वके समान वेगवान जानकर मैं (नमोभिः चित् प्र हिषे) अन्नोंके साथ प्रेरित करता हूं। (विद्वान् नः अध्वरस्य दूतः भव) तू सब जानता है। इसलिये हमारे हिंसारहित यज्ञकर्मोंका तू दूत हो (त्मना देवेषु मितद्रुः विविदे) स्वयं देवोंमें वृक्षोंको जलानेवाला करके प्रसिद्ध हो।

मानवधर्म-- राक्षसों अथवा शत्रुओंका पराभव करनेवाला तेजस्वी वीर अग्रणी होता है, जो घोडेके समान वेगवान तथा बलवान होता है, उसका प्रणामोंसे, अन्नोंसे तथा धनोंसे सत्कार करना उचित है। जो विद्वान् होगा वही यज्ञोंमें कार्य करे।

[२] (७४) हे अग्ने! तू (मन्द्रः) आनंदित होकर (देवानां सख्यं जुषाणः) देवोंके साथ मित्रता करनेवाला (पृथिव्याः सानुं शुष्मैः) पृथ्वीके ऊपरके उच्च भागको अपने शोषक तेजोंसे (नदयन्) शब्द युक्त करके (जंभेभिः विश्वं वनानि उशधक्) अपनी ज्वालाओंसे सब वनोंको इच्छानुसार जलाता हुआ (स्वाः पथ्याः अनु आ आ याहि) अपने मार्गोंसे इस ओर आ जा।

[३] (७५) (यज्ञः प्राचीनः) यज्ञ पूर्वाभिमुख है। (बर्हिः हि सुधितं) दर्भासन अच्छी तरह रखा है। (ईळितः अग्निः प्रीणीत) प्रशंसित अग्नि तृप्त होता है। (होता न) और होता भी वैसा ही होता है। (विश्ववारे मातरा) विश्वके द्वारा वरणीय द्यावा पृथिवी (हुवानः) बुलाये जा रहे हैं। हे (यविष्ठ) तरुण अग्ने! तू (यतः) जब (सुशेवः जज्ञिषे) उत्तम सेवा करने योग्य होता है। तब यह सब ऐसाही होता है।

[४] (७६) (विचेतसः मानुषासः) विशेष बुद्धिमान मनुष्य (अध्वरे रथिरं सद्यः जनन्त) हिंसारहित यज्ञमें रथमें बैठनेवाले नेता अग्निको शीघ्रतासे उत्पन्न करते हैं। (यः एषां) जो इनके हविका हवन करता है वह (विश्पतिः मन्द्रः) प्रजाओंका पालक आनन्द बढानेवाला है, (मधुवचा ऋतावा) वह मधुरभाषी सत्यनिष्ठ अग्नि (विशां दुरोणे अधायि) प्रजाओंके घरमें स्थापित हुआ है।

विशेष ज्ञानी मनुष्य हिंसा रहित कर्म करते हैं और उसमें वीरका सत्कार करते है, क्योंकि वीर ही ऐसे कर्म कर सकता है। प्रजाओंका यह पालक--राजा--सबका आनन्द बढाता हुआ, मीठा भाषण करनेवाला तथा सत्यनिष्ठ रह कर प्रजाओंके स्थानमें ही रहे, प्रजाजनोंमें ही रहे। अपने राष्ट्रमें ही रहे।

जो राजा प्रजाओंमें रहता है उसको प्रजाके सुखदुःख मालूम होते हैं और इस कारण वह सत्य रीतिसे प्रजाका हित कर सकता है।

५ असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषद्ने विधर्ता ।
द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम् ७७

६ एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस्तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ७८

७ नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७९

(८) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ८०

२ अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ८१

---

[५] (७७) (वृतः वह्निः ब्रह्मा) वरण किया हुआ ब्रह्मा ज्ञानी (विधर्ता अग्निः) विशेष रीतिसे धारण करनेवाला अग्नि (आजगन्वान्) आ गया है और वह (नृषदने असादि) मनुष्योंके स्थानमें बैठा है । (यं द्यौः च पृथिवी च वावृधाते) जिसको द्युलोक और भूलोक बढाते हैं। और (यं विश्व-वारं होता आ यजाति) जिस सबके द्वारा वरण करने योग्यका यजन होता करता है।

[६] (७८) (एते द्युम्नेभिः विश्वं आ तिरंत) ये हमारे लोग अन्नोंसे सब पोष्यवर्गको पुष्टकर रहे हैं। (ये नर्याः मन्त्रं वा अरं अतक्षन्) ये मनुष्य मनन करने योग्य रीतिसे संस्कार करते हैं। (ये विशः श्रोषमाणाः प्रतिरन्त) जो प्रजाजन इसको सुनकर वीरको बढाते हैं। (मे ये ऋतस्य आ दीध-यन्) और मेरे ये लोग सत्यको प्रकाशित करते हैं।

यह सब यज्ञविधिका वर्णन है ।

[७] (७९) हे (सहसः सूनो अग्ने) बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने! (वसिष्ठाः वयं) हम सब वासिष्ठ (वसूनां ईशानं त्वां) धनोंके स्वामी तुझको हमारे (स्तोतृभ्यः मघवद्भ्यः इषं आनड्) स्तोता और हवि अर्पण करनेवालोंके लिये यह अन्न पहुंचा दो। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सदा हमें कल्याण करने द्वारा सुरक्षित करो।

[१] (८०) (राजा अर्यः अग्निः नमोभिः सं इन्धे) यह श्रेष्ठ राजा-अग्नि-अन्नोंसे प्रदीप्त हो रहा है। (यस्य प्रतीकं घृतेन आहुतं) जिसका रूप घीके द्वारा हवन करके बढाया जा रहा है। (नरः सबाधः हव्येभिः ईळते) मनुष्य मिलकर हव्योंद्वारा इसको पूजते हैं। वह (अग्निः उषसां अग्रे आ अशोचि) अग्नि उषाओंके सामने प्रका-शित हो रहा है।

[२] (८१) (स्य अयं होता मन्द्रः यह्वः अग्निः) यह हवन कर्ता सुखदायी बडा अग्नि (मनुषः सुमहान् अवेदि) मानवोंमें अत्यंत महान् करके प्रसिद्ध है। वह (भाः वि अकः) प्रकाश करता है। (कृष्णपविः पृथिव्यां ओषधीभिः ववक्षे) वह काले मार्गसे जानेवाला अग्नि इस पृथिवीपर औषधियोंसे-काष्ठोंसे-बढता है।

३ कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ८२

४ प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद् भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ८३

५ असन्नित् त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ८४

---

[३] (८२) हे अग्ने! तू (कया नः सुवृक्तिं वि वसः) किससे हमारी उत्तम स्तुतिको स्वीकारता है? (कां स्वधां शस्यमानः ऋणवः) किस अन्नको लेकर स्तुति करनेपर तू हमें प्राप्त होगा? हे (सुदत्र) उत्तम दान देनेवाले! हम (कदा दुष्टरस्य साधोः रायः पतयः) कब शत्रुके लिये अप्राप्य उत्तम धनके स्वामी और उस (वंतारः भवेम) धनका बटवारा करनेवाले होंगे?

धन ऐसा चाहिये कि जो शत्रुके लिये अप्राप्य हो। अर्थात् हम वीर हों और हमें धन मिले और उसको हम अपने मित्रोंमें बाट सकें।

[४] (८३) (अयं अग्निः भरतस्य प्रप्र शृण्वे) यह अग्नि भरतके यज्ञमें प्रसिद्ध हुआ है। (यत् सूर्यः न बृहद् भाः विरोचते) तब सूर्यके समान यह अत्यंत तेजसे प्रकाशता रहा। (यः पृतनासु पुरुं अभि तस्थौ) यह अग्नि युद्धोंमें पुरु नामक असुरके विरोधमें खडा रहा, (द्युतानः दैव्यः अतिथिः शुशोच) यह तेजस्वी दिव्य अतिथिके समान पूज्य होकर प्रज्वलित हुआ है।

(पृतनासु अभितस्थौ) युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेके लिये अग्नि खडा रहता है। इसका अर्थ स्पष्ट रूपसे यह है कि शत्रुपर अग्न्यस्त्रका प्रयोग करना और उसका पराभव करना। युद्धोंमें प्रदीप्त अग्नि शत्रुपर फेंका जाता था। अग्नि अस्त्र यही है।

यहां भरत और पुरु ये दो पद मानवोंके वाचक हैं। भरतके अनुकूल, अर्थात् भरतके पक्षमें यह अग्नि था और पुरुके विरोधमें यह युद्धमें खडा हुआ था। पुरुका नाश इस अग्निने किया था। 'भरत' पदका अर्थ 'भरण पोषणमें समर्थ' और 'पुरु' का अर्थ जो 'नगर करके उसमें वसता है,' 'पुरवासी' अथवा 'सब भोग साधनोंसे परिपूर्ण' यह शत्रु है, असुर है, विरोधी पक्षका है। अग्निने भरतका हित और पुरुका नाश किया है। पुरुका सहायक भी अग्नि वेदमें है, वहांका पुरु इससे भिन्न है।

[५] (८४) हे अग्ने! (त्वे आहवनानि भूरि असन् इत्) तेरे अन्दर हविर्द्रव्यकी आहुतियाँ बहुत डाली जाती हैं। तू विश्वेभिः अनीकैः सुमना भुवः) अनंत तेजोंसे सुप्रसन्न होता है। (स्तुतः चित् शृण्विषे) स्तुति करनेपर तू उसको श्रवण करता है। हे (सुजात) उत्तम जन्मवाले अग्ने! (गृणानः स्वयं तन्वं वर्धस्व) स्तुति करनेपर अपने शरीरका वर्धन कर। बडा हो जा।

१ विश्वेभिः अनीकैः सुमना भुवः--सब सैनिकोंसे प्रसन्नताके साथ वर्ताव कर। उत्तम सुप्रसन्न चित्तसे वीरोंके साथ बात कर। सबके साथ हास्यमुख रहकर बात कर।

२ स्वयं तन्वं वर्धस्व— स्वयं प्रयत्न करके अपने शरीरको बढा। अपना शरीर बढानेके लिये स्वयं प्रयत्न कर।

६ इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः ।
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ८५
७ नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ८६

(९) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता मन्द्रः कवितमः पावकः ।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ८७
२ स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः ।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ८८

---

[६] (८५) (शतसाः संसहस्रं द्विबर्हाः) सैंकडों और सहस्रों प्रकारका धन पास रखनेवाले तथा विद्या और कर्मसे श्रेष्ठ बने वसिष्ठने (इदं वचः अग्नये उत् अजनिष्ट) यह स्तोत्र अग्निके लिये बनाया है । (यत् द्युमत् अमीवचातनं रक्षोहा) जो तेजस्वी, रोग दूर करनेवाला, राक्षसोंको दूर करनेवाला तथा जो (आपये शं भवाति) बांधवोंके लिये सुखदायी होता है ।

यहां वसिष्ठको ' द्वि-बर्हाः ' कहा है । ज्ञान और कर्ममें प्रवीण ऐसा इसका शब्दार्थ किया है । दो शिखावाला ऐसा भी इसका अर्थ प्रतीत होता है । यहां ' द्विबर्हाः ' के अतिरिक्त वसिष्ठका निर्देश करनेवाला कोई निर्देश नहीं है । इस सूक्तका ऋषि वसिष्ठ है । इसलिये '**अग्नये इदं वचः अजनिष्ट**' अग्निके लिये यह सूक्त बनाया है, इन पदोंसे वसिष्ठका अध्याहार यहां किया है ।

यह सूक्त (अमीव चातनं) रोगोंका नाश करनेवाला (रक्षोहा) रोग कृमियोंका नाशक है अथवा अदृष्टदोषको दूर करनेवाला है । पाठक इस मंत्रका इस कार्यके लिये उपयोग करें । (आपये शं) बंधु बांधवोंको सुख प्राप्त कर देनेवाला यह सूक्त है । पाठक इस सूक्तका यह उपयोग करें और अनुभव लें।

७ (८६) यह मंत्र ७ (७९) में देखो ।

[१] (८७) (जारः होता मन्द्रः) सबकी वयोहानि करनेवाला, देवोंको आह्वान करनेवाला, आनन्द देनेवाला (कवितमः पावकः) अत्यंत ज्ञानी, पवित्र करनेवाला (उषसां उपस्थात् अबोधि) उषाओंके मध्यमें जाग उठा। (उभयस्य जन्तोः केतुं दधाति) दोनों प्रकारके प्राणियोंको ज्ञान देता है। (देवेषु हव्या) देवोंमें हवन द्रव्योंको और (सुकृत्सु द्रविणं) पुण्य कर्म करनेवालोंको धन देता है।

' जार ' शब्दका अर्थ " आयुष्यका नाश करनेवाला " ऐसा भी है और " स्तुति करनेवाला " भी है । अग्नि जागते ही यज्ञ स्थानमें स्तुतिके मंत्र बोले जाते हैं। अन्यान्य देवोंको बुलाया जाता है । यज्ञ कर्मका प्रारंभ होता है। इससे सबको आनंद होता है । यह अत्यंत अधिक ज्ञानी और परिशोधन करनेवाला है । यह उषः कालमें उठता है । मनुष्यों तथा पशु पक्षियोंको भी यह जगाता है । उषः कालमें अग्नि जागता है, पशु पक्षी उठते हैं, देवोंका गुणगान शुरू होता है और पुण्य कर्म करनेवालोंको धन दिया जाता है ।

कवि-ज्ञानी उषः कालमें उठता है, अपने शुद्धता करनेके कर्म करता है, देवोंको प्रार्थनासे बुलाता है, स्वयं आनंद प्रसन्न रहता है और दूसरोंको भी प्रसन्न रखता है । देवयज्ञ करके हवन करता है और शुभ कर्म कर्ताओंको उनके कर्मोंके अनुसार धन देता है। यह इसी मंत्रका भाव ज्ञानीके दैनंदिनके आचारके विषयमें है । अग्निसे ज्ञानीका वर्णन होता है ।

[२] (८८) (सः सुक्रतुः) वह उत्तम कर्म करनेवाला है, (यः पणीनां दुरः वि) जिसने पणियों-के--गौको चोरनेवालेके-- द्वार खोल दिये।

३ अमूरः कविरदितिर्विवस्वान् त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रे ऽपां गर्भः प्रस्व१ आ विवेश ८९
४ ईळेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज्जातवेदाः ।
सुसंदृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधन्त ९०
५ अग्ने याहि दूत्यं१ मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन ।
सरस्वतीं मरुतो अश्विनापो यक्षि देवान् रत्नधेयाय विश्वान् ९१
६ त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन् यक्षि राये पुरंधिम् ।
पुरुणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ९२

(पुरुभोजसं अर्कं नः धुनानः) वह अधिक दुग्धरूपी भोजन देनेवाले पूजा करने योग्य गौके झुण्डको ढूंढता है। (होता मन्द्रः दमूनाः) वह देवोंको बुलानेवाला, आनंददायक, मनःसंयमी है। (राम्याणां विशां तमः तिरः ददृशे) रात्रियोंका तथा प्रजाओंका अन्धेरा दूर करता है।

वह उत्तम कर्म करता है, चोरोंको पकडता है और उनके द्वार खोलकर गौवोंको मुक्त करता है, पश्चात् ये गौवें अधिक दूध देती है। वह हवन कर्ता, आनंद दायक तथा संयमी है। वह रात्रियोंका अन्धेरा दूर करता है और प्रजाजनोंमें जो अज्ञान होता है उसको भी दूर करता है।

अग्निके वर्णनके मिषसे यह ज्ञानीका भी वर्णन है।

[३] (८९) (यः अमूरः कविः) जो अमूढ और ज्ञानी (अदितिः विवस्वान्) अदीन और तेजस्वी (सुसंसत् मित्रः अतिथिः) उत्तम साथी, मित्र और पूज्य (नः शिवः) हमारे लिये शुभकारी (चित्रभानुः) विशेष तेजस्वी (उषसां अग्रे भाति) उषाओंके अग्र भागमें प्रकाशता है, (सः अपां गर्भः) वह जलोंका उत्पादक (प्रस्वः आ विवेश) ओषधियोंके अन्दर प्रविष्ट हुआ है।

वह मूढ नहीं है, वह ज्ञानी, अदीन, तेजस्वी, उत्तम मित्र, पूज्य, शुभ कारी, प्रकाशमान, जलोंका उत्पादक, उषाओंका पकाशक और ओषधियोंमें पविष्ट हो कर रहनेवाला है। अग्निके मिषसे यह ज्ञानीका वर्णन है।

[४] (९०) (वः) तू (मनुषः युगेषु) मनुष्योंके युगोंमें यज्ञके समयमें (ईळेन्यः) स्तुत्य है। (यः जातवेदाः) जो अग्नि धन और वेदका उत्पादक है, (समनगाः अशुचत्) युद्धमें सामना करनेके समयमें वह अधिक तेजस्वी होता है। (सु संदृशा भानुना) उत्तम दर्शन योग्य तेजसे (विभाति) वह प्रकाशता है। उस (समिधानं गावः प्रति बुधन्त) प्रदीप्त होनेवाले अग्निको गौवें अथवा स्तुतियां जगाती हैं।

ज्ञानी सर्व समयमें स्तुतिके लिये योग्य है। जो ज्ञान तथा धन उत्पन्न करता है वह शत्रुके साथ युद्ध करनेके समयमें भी अधिक उत्साही दीखता है। वह दर्शनीय तेजसे प्रकाशता है। इस तेजस्वी ज्ञानीके लिये गौवें प्राप्त होती हैं।

[५] (९१) हे अग्ने! (दूत्यं याहि) दूत कर्म करनेके लिये तू जा। (देवान् अच्छ) देवोंके प्रति जा। (गणेन ब्रह्मकृतः मा रिषण्यः) संघमें रहकर ब्रह्म-स्तोत्र-करनेवाले हम जैसोंका विनाश न कर। (सरस्वतीं मरुतः अश्विना अपः) सरस्वती, मरुत्, अश्विनौ और आप (विश्वान् देवान् रत्नधेयाय यक्षि) विश्वेदेवोंको रत्नोंका दान हमें देनेके लिये सुपूजित कर।

[६] (९२) हे अग्ने! (त्वां वसिष्ठः समिधानः) तुझे वसिष्ठ ऋषि प्रदीप्त करता है। (जरूथं हन्) तू कठोर भाषीका वध कर। (राये पुरंधिं यक्षि)

(१०) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

१ उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद् दविद्युतद् दीद्यच्छोशुचानः।
वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ९३
२ स्व१र्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म।
अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान् द्रवद् दूतो देवयावा वनिष्ठः ९४
३ अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः।
सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ९५

धनके लिये बहुत बुद्धिवान् दिव्य विबुधोंका सत्कार कर। हे (जात वेदः) अग्ने! (पुरुनीथा जरस्व) बहुत स्तोत्रोंसे देवोंकी स्तुति कर। (यूयं स्वतिभिः नः सदा पात) आप कल्याण करनेके साधनोंसे हम सबको सदा सुरक्षित रखो।

१ जरूथं हन्—कठोर भाषण करनेवालेके लिये ताडन कर। उसे दण्ड दे।

२ राये पुरंधिं यक्षि—धनके लिये बुद्धिमानका सत्कार कर।

[१] (९३ (उषः न जारः) उषाका नाश करनेवाला सूर्य है उसके समान, (पृथु पाजः अश्रेत्) बहुत तेज यह अग्नि अपनेमें धारण करता है। (दविद्युतत् दीद्यत् शोशुचानः) अत्यंत चमकनेवाला तेजस्वी और प्रकाशमान (वृषा हरिः शुचिः) बलवान् दुःखका हरण करनेवाला पवित्र अग्नि (धियः हिन्वानः) बुद्धि तथा कर्मोंको प्रेरित करता है और (भासा आभाति) अपने तेजसे प्रकाशता है। तथा (उशतीः अजीगः) सुखकी कामना करनेवालोंको जगाता है।

मानवधर्म—सूर्यके समान बहुत तेज मनुष्य अपने अन्दर धारण करे। अत्यंत तेजस्वी बलवान् पवित्र दुःखहरण करनेवाला ज्ञानी बुद्धि युक्त कर्मोंको करता है और अधिक तेजस्वी होता है। यह सुखकी इच्छा करनेवाली प्रजाको जगाता है।

१ पृथु पाजः अश्रेत्—मनुष्य बहुत तेज धारण करे।

२ वृषा शुचिः धियः हिन्वाति भासा आभाति—सामर्थ्यवान् शुद्ध पवित्र ज्ञानी बुद्धियों और कर्मोंको चलाता है और अपना तेज बढाता है।

[२] (९४) (अग्निः वस्तोः) अग्नि दिनके समय (उषसां अग्रे) उषाओंके आगे (स्वः न अरोचि) सूर्यके समान प्रकाशता है। (उशिजः न यज्ञं तन्वानाः) सुखकी इच्छा करनेवाले जैसे यज्ञ फैलाते हैं और (मन्म) मननीय स्तोत्र पढते हैं। (विद्वान् दूतः देवयावा वनिष्ठः) वैसा विद्वान् देवोंका दूत देवोंके पास जानेवाला दाता (अग्निः देवः वि आ द्रवत्) अग्नि देव अनेक प्रकारसे देवोंके सहायतार्थ गमन करता है।

मानवधर्म—ज्ञानी सूर्यके समान तेजस्वी बनें। सुख बढानेके लिये प्रशस्ततम कर्म करते रहें और मननीय विचार भी मनमें धारण करें। ज्ञानी ज्ञानियोंके साथ रहें और उनके साथ प्रगति करें।

१ वस्तोः स्वः न अरोचि—दिनके समय सूर्यके समान प्रकाशित हो जाओ।

२ उशिजः यज्ञं मन्म च तन्वानाः—सुखकी इच्छा करनेवाले प्रशस्त कर्मों और मननीय विचारोंका प्रचार करें, फैलावें।

३ वनिष्ठः विद्वान् देवयावा वि आ द्रवत्—दाता विद्वान् देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छासे विशेष प्रगति करता है।

[३] (९५) (मतयः देवयन्तीः) बुद्धियाँ देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली और (द्रविणं भिक्षमाणाः गिरः) धनकी प्रार्थना करनेवाली वाणियाँ (सुसंदृशं सुप्रतीकं) उत्तम दर्शनीय, सुरूप,

४ इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम् ।
आदित्येभिरदितिं विश्वजन्यां बृहस्पतिमृक्वभिर्विश्ववारम् ९६

५ मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश ईळते अध्वरेषु ।
स हि क्षपावाँ अभवद् रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ९७

(स्वञ्चं हव्यवाहं) उत्तम प्रगतिशील, तथा हव्यका वहन करनेवाले, (मनुष्याणां अरतिं) मनुष्योंके स्वामी (अग्निं अच्छ यन्ति) अग्निके समीप जाती है।

मानवधर्म- मनुष्यकी बुद्धियाँ देवत्व प्राप्त करें, तथा धनकी प्राप्तिकी इच्छा करें और उत्तम सुंदर शरीरधारी प्रगतिशील, धनवान, मनुष्योंके राजाके समीप जाय। (देवत्व प्राप्त करके अपनी योग्यता बढावें और धनके लिये सुन्दर प्रगतिशील, धनवान मानवोंके नेता अग्रणिके पास जावे ।)

१ देवयन्तीः मतयः--मनुष्यकी बुद्धियां देवत्व प्राप्त करनेका यत्न करें ।

२ गिरः द्रविणं—वाणियां धन चाहें। क्योंकि विना धनके इस लोकमें सुख नहीं होगा ।

३ सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहं मनुष्याणां अरतिं अच्छ यन्ति—सुन्दर सुडौल, प्रगतिशील, अन्न धनवान, मानवोंके नेताके पास मनुष्य जांय । जिससे उनको कर्म करनेके लिये मिलेगा और उससे धन भी मिलेगा ।

[४] (९६) हे अग्ने! (वसुभिः सजोषाः) वसुओंके साथ मिलकर तू (नः इन्द्रं आवह) हमारे लिये इन्द्रको बुलाओ। (रुद्रेभिः बृहन्तं रुद्रं) रुद्रोंके साथ मिलकर महान रुद्रको बुलाओ। (आदित्यैः विश्वजन्यां अदितिं) आदित्योंके साथ मिलकर सर्वजन हितकारी अदिति माताको बुलाओ। (ऋक्वभिः विश्ववारं बृहस्पतिं आ वह) स्तुतियोग्य ज्ञानी अंगिरा देवोंके साथ मिलकर सबके द्वारा संसेवित बृहस्पतिको बुलाओ ।

(१) जो लोगोंको वसाते हैं उनको वसु कहते हैं, उनके साथ देवराज इन्द्रको बुलाना है। राजाकी सहायतासे ये लोगोंका निवास कराते हैं। (२) जो शत्रुओंको रुलाते हैं वे वीर सैनिक हैं, इनके साथ महावीर रुद्रको बुलाना है। सेनाके साथ सेनापति आवे और शत्रुको दूर करे। (३) अदितिके पुत्र आदित्य है । पुत्रोंके साथ माता देवीको यज्ञमें बुलाना है । (४) ज्ञानियोंके साथ ज्ञानाधिपतिको बुलाना है ।

' वसु ' धनका नाम है । वसुदेव धनके देव हैं । रुद्र ये वीर है । बृहस्पति ज्ञानी है। बृहस्पति ब्राह्मण, रुद्र क्षत्रिय, वसु वैश्य हैं । ये त्रैवर्णिक हैं जो यज्ञमें बुलाये जाते हैं । पुत्रोंके साथ माताओंको भी बुलाना है । यज्ञ राष्ट्रका है इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनके प्रतिनिधि और बालकोंके साथ स्त्रियोंके प्रतिनिधि बुलाये गये हैं । यह यज्ञ इन सबके लिये है ।

[५] (९७) (उशिजः विशः) सुखकी कामना करनेवाली प्रजाएं (मन्द्रं होतारं यविष्ठं अग्निं) स्तुत्य, आह्वान करनेवाले, तरुण अग्निकी (अध्वरेषु ईळते) हिंसा रहित यागोंमें स्तुति गाते हैं। (सः हि क्षपावान्) वह रात्रीमें रहनेवाला, (रयीणां देवान् यजथाय) धनोंके लिये देवोंका यजन करनेके लिये (अतन्द्रः दूतः अभवत्) आलस्य रहित कार्य करनेवाला दूत हुआ है ।

जो प्रजा सुखकी इच्छा करती है वह प्रशंसनीय तरुण तेजस्वी अग्रणी नेताका प्रशस्त कर्म करनेके लिये स्वीकार करे। वह नेता रात्रीके अन्दर जागता है, धनोंके लिये धनवानोंको लाता है और अपना कर्तव्य आलस्य छोडकर करता रहता है।

(११) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते ।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह ९८
२ त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः ।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति ९९
३ त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय ।
मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान् भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा १००

[१] (९८) हे अग्ने! (अध्वरस्य महान् प्रकेतः असि) तू हिंसारहित कर्मका महान ध्वज जैसा सूचक है। (त्वत् ऋते अमृताः न मादयन्ते) तेरे विना अमर देव आनंदित नहीं होते। (विश्वेभिः देवैः सरथं आ याहि) सब देवोंके समेत एक रथपर बैठकर आओ और (इह प्रथमः होता नि षद) यहां पहिला आह्वाता होकर बैठो।

१ अध्वरस्य महान् प्रकेतः असि— हिंसा-कुटिलता रहित कर्मोंका महान् प्रचारक बन । क्योंकि जगत्‌मे हिंसा और कुटिलता बढ जाती है, इसलिये उसका प्रतिकार करनेके लिये महान् प्रयत्न सरलतावादियोंके द्वारा होना आवश्यक है ।

२ त्वदृते अमृताः न मादयन्ते—अहिंसा-सरलताका प्रचार तथा आचार करनेवालोंके विना श्रेष्ठ पुरुषोंकी प्रसन्नता नहीं होती । इसलिये अहिंसा-सरलता युक्त कर्मोका प्रचार करनेका कार्य मनुष्य करें।

३ विश्वेभिः देवैः सरथं आ याहि—सब विबुधोंके साथ एक रथमें बैठकर आओ। सदा विबुधों, ज्ञानियोंके साथ रहो ।

४ इह प्रथमः निषद—यहां पहिला बनकर रह । सब से प्रथम स्थानमें बैठनेकी योग्यतावाला बनकर रह !

इस तरह अग्निका ही वर्णन मानव धर्म बताता है पाठक इसका विचार करें ।

[२] (९९) हे अग्ने! (अजिरं त्वां) प्रगतिशील तुझको (मानुषासः हविष्मन्तः) मनुष्य हवि लेकर (सदं इत्) सदा ही (दूत्याय ईळते) दूत कर्म करनेके लिये प्रार्थना करते हैं। (यस्य बर्हिः) जिसके आसनपर (देवैः आसदः) देवोंके साथ तू बैठता है (अस्मै अहानि सुदिना भवन्ति) उसके लिये अच्छे दिन आते हैं।

मानवधर्म-- प्रगतिशील वीरको मनुष्य दूतकर्ममें नियुक्त करें । त्वरासे कर्म करनेवाला दूतकर्मके लिये अच्छा है । जिसके आसनपर विबुध आकर बैठते हैं, उसके लिये अच्छे दिन आयेंगे ।

१ मानुषासः अजिरं सदं इत दूत्याय ईळते— मनुष्य सत्वर कार्य करनेवाले दूतको ही सदा चाहते हैं ।

२ यस्य बर्हिः देवैः आसदः अस्मै अहानि सुदिना भवन्ति —जिसके घर विबुध आकर बैठते हैं उसके लिये उत्तम दिन आते हैं ।

दूत सत्वर कार्य करनेवाला, तथा तत्परतासे कार्य करनेवाला हो। सुस्त न हो । जिसके घरमें उत्तम ज्ञानी आते हैं उसके लिये उत्तम दिन प्राप्त होते हैं । अर्थात् जिसकी संगति बुरी है उसके लिये खराब दिन आते हैं । इसलिये संगति देवोंकी करनी चाहिये, असुरोंकी नहीं ।

[३] (१००) हे अग्ने! (त्वे अन्तः अक्तोः वसूनि त्रिः चित् मर्त्याय दाशुषे) तेरे पास दिनमें तीनवार दाता मनुष्योंको देनेके लिये धन है ऐसा (प्रचिकितुः) सब जानते हैं। (मनुष्वत् इह नः दूतः भव, देवान् यक्षि) मनुके समान यहां हमारा दूत होकर देवोंका यजन कर और (नः अभिशस्ति-पावा भव) हमारा रक्षण शत्रुओंसे करनेवाला हो।

४ अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याऽग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य ।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताऽथा देवा दधिरे हव्यवाहम् १०१
५ आग्ने वह हविरद्याय देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम् ।
इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १०२

(१२) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् १०३

मानवधर्म-- यज्ञ करनेवाले दाता मनुष्योंको धन दिया जावे । धन इसी कार्यके लिये है, यह मनुष्य जानें । दूत होकर विबुधोंका सत्कार करें और दूतको उचित है कि वह दुष्टोंसे संरक्षण करे ।

१ दाशुषे मर्त्याय अक्तोः त्रिः वसूनि प्र चिकितुः- दाता मनुष्योंको दिनमें तीन वार धनका दान करना योग्य है यह सब जानते है ।

२ इह दूतः भव, देवान् यक्षि, आभिशस्ति-पावा भव --यहां दूत हो, देवोंके लिये सत्कार कर और दुष्टोंको दूर कर तथा सबकी सुरक्षा कर । दूतका यह कर्तव्य है । जिसका जो दूत हो वह उसका संरक्षण अवश्य करे ।

३ अभिशस्ति-पावा भव--शत्रुओंसे अपनी सुरक्षा करनी चाहिये ।

जो सुरक्षा करनेवाला है उसको अन्न धन आदि देकर उसका सत्कार करना चाहिये । उसको उचित है कि वह अपने घर दैवी संपत्तिवालोंका सत्कार करे और आसुरी लोगोंको दूर करें ।

[४] (१०१) (बृहतः अध्वरस्य अग्निः ईशे) महान हिंसारहित प्रशस्ततम कर्मका अग्नि अधिपति है । (विश्वस्य कृतस्य हविषः) सब सत्कार किये हविष्यान्नका अग्नि ही अधिपति है । (हि अस्य क्रतुं वसवः जुषन्त) इसके किये क्रतुका वसुदेव सेवन करते हैं (अथ देवाः हव्यवाहं दधिरे) और देवोंने अग्निको हव्योंका वहनकर्ता करके धारण किया है ।

[५] (१०२) हे अग्ने ! (हविरद्याय देवान् आ वह) अन्नके भक्षण करनेके लिये देवोंको यहां बुलाकर ले आओ । (इह इन्द्रज्येष्ठासः मादयन्तां) इस यज्ञमें इन्द्र प्रमुख देव आनन्द प्रसन्न हों । (इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि) इस यज्ञको द्युलोकमें देवोंके अन्दर स्थापन कर । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सब हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित रखो ।

मानवधर्म-- भोजनके लिये विबुधोंको बुलाओ । वीर श्रेष्ठ विबुध यहां भोजन पाकर आनन्द प्रसन्न होते रहें । प्रशस्तकर्म ऐसा करो कि जो विबुधोंको प्रिय हो । और सबकी सुरक्षा करो ।

अग्निके वर्णनसे मानवधर्म और मानवोंके लिये जीवन धर्मका बोध किस तरह मिलता है । यह यहां पाठक देखें । और अधिक विचार करके अधिक बोध प्राप्त करें ।

[१] (१०३) (यः स्वे दुरोणे समिद्धः दीदाय) जो अपने स्थानमें जागकर प्रकाशित होता है, और (उर्वी रोदसी अन्तः) विस्तीर्ण द्यावापृथिवीके मध्यमें (चित्रभानुं यविष्ठं स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चं) विलक्षण प्रकाश देनेवाले तरुण उत्तम पदार्थोंसे हवन किये हुए और सब ओरसे संसेवित उस अग्निकी (नमसा अगन्म) नमस्कारसे हम सेवा करते हैं ।

१ स्वे दुरोणे समिद्धः दीदाय--अपने निज स्थानमें (घरमें, देशमें, राष्ट्रमें) तेजस्वी होकर प्रकाशित हो । अपने देशमें जागते हुए प्रकाशित हो । अपने राष्ट्रमें जागो और बाहेर अपने तेजको फैलाओ ।

२ चित्रभानुं स्वाहुतं, विश्वतः प्रत्यञ्चं यविष्ठं

२ स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यादस्मान् गृणत उत नो मघोनः १०४
३ त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १०५

नमसा अगन्म— विलक्षण तेजस्वी, उत्तम प्रकारसे सत्कार पूर्वक अन्नका सेवन करनेवाला, सब ओरसे जिसके पास लोग आते हैं ऐसे तरुण वीरके समीप हम नमस्कार करते हुए जाते हैं। तेजस्वी उत्तम अन्नका सेवन करनेवाले, सबके प्रिय तरुण वीरका सब सत्कार करें। तेजस्वी तरुणोंका राष्ट्रमें सत्कार हो।

[२] (१०४) (सः अग्निः मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वान्) वह अग्नि अपने महत्वसे सब पापोंको दूर करता है, (जातवेदाः दम आ स्तवे) वह वेदोंका तथा धनोंका उत्पादक अपने स्थानमें प्रशंसित होता है। (सः दुरितात् अवद्यात् नः रक्षिषत्) वह पापोंसे और निंदित कर्मोंसे हमें बचावे। (गृणतः अस्मान्) स्तुति करनेवाले हम सबकी तथा (उत नः मघोनः) हमारे धनवान यज्ञ कर्ताकी सुरक्षा करे।

मानवधर्म— तेजस्वी पुरुष अपने सामर्थ्यसे सब पापोंको दूर करता है। पापमय तथा निंदित कर्मोंसे सबको सुरक्षित रखता है। वह ज्ञानका प्रकाशक और धनका दाता अपने स्थानमें प्रशंसित होकर प्रकाशता है। जो ऐसे तेजस्वी पुरुषका वर्णन करते हैं, गुणगान गाते हैं, जो धनी अपने धनका दान प्रशस्त कर्ममें करते हैं, उनकी सुरक्षा वह करता है।

१ मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वान्— अपने महत्त्वसे सब पापोंको दूर करो। अपनी आत्मिक शक्ति बढाओ और पाप विचारोंको दूर करो। अपने उपस्थित रहनेसे ही सब पाप दूर हो जांय, इतनी अपनी शक्ति बढानी चाहिये।

२ दमे जातवेदाः— अपने स्थानमें, घरमें (देशमें राष्ट्रमें) विद्याका प्रचार करो, धनोंका वितरण करो, सबको ज्ञानी और धनी बनाओ।

३ सः दुरितात् अवद्यात् नः रक्षिषत्- वह पापों और निंदित कर्मोंसे सबको सुरक्षित रखे। पापोंसे और निंदित ही कर्मोंसे अपने आपको बचाना चाहिये।

४ गृणतः मघोनः रक्षिषत्— प्रभुका काव्य गान करनेवालों और यज्ञमें धन दान करनेवालोंकी राष्ट्रमें सुरक्षा हो।

'जात-वेदाः' में 'वेदस्' पदका अर्थ 'वेद और धन' है। जिससे वेदोंका और धनोंका प्रचार होता है वह 'जात वेदाः' है।

[३] (१०५) हे अग्ने! (त्वं वरुणः असि) तू वरुण है, (उत मित्रः) और मित्र भी तू है (वसिष्ठाः मतिभिः त्वां वर्धन्ति) वसिष्ठ मननीय स्तोत्रोंसे तुम्हें बढाते हैं। (त्वे वसु सुषणनानि सन्तु) तेरे पास सब प्रकारके धन संभजनीय हों। (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) आप कल्याणोंके साथ हम सबको सदा सुरक्षित रखिये।

अग्नि ही वरुण तथा मित्र है। अर्थात् वरुण और मित्र देवताके गुण धर्म अग्निमें हैं और अग्निके गुण इनमें हैं। जो वरण करने योग्य होता है वह वरुण है और जो मित्रवत् आचरण करता है वह मित्र है। अग्नि सबको स्वीकारने योग्य है और सबका मित्रवत् हितकारी है।

यहां "**वसिष्ठाः मतिभिः वर्धयन्ति**" सब वसिष्ठ स्तोत्रोंसे अग्निके महत्त्वका काव्य गाते और उसका महत्त्व बढाते हैं ऐसा कहा है। यहां '**वसिष्ठः**' पद बहुवचनमें है। इससे स्पष्ट होता है कि यह जातिनाम है, गोत्रनाम है, जो सबके लिये प्रयुक्त हो सकता है।

वसु सुषणनानि सन्तु- धन सबको संभजनीय हो। किसी एकके उपभोगके लिये धन नहीं है। जो धन है वह सबके लिये है। जिस किसीके पास धन हो वह उसका विश्वस्त पालक है, वह उसका भोक्ता नहीं। धन 'सु षणन' है। सबके उपभोगके लिये है। यदि धन किसी एकके ही उपभोगके लिये रहा तो वह पाप करेगा और वह सबका विनाश करेगा

(१३) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ प्राग्नये विश्वशुचे धियंधेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् १०६

२ त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा १०७

३ जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून् न गोपा इर्यः परिज्मा ।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १०८

---

[१] (१०६) (विश्वशुचे धियंधे) विश्वको प्रकाश देनेवाले, बुद्धियों और कर्मोंका धारण करनेवाले, (असुरघ्ने अग्नये) असुरोंके नाश कर्ता अग्निके लिये (मन्म धीतिं प्र भरध्वं) मननीय काव्यों और प्रशस्त कर्मोंको भर दो। (मतीनां यतये) कामनाओंके दाता और (वैश्वानराय बर्हिषि) विश्वके नेताके लिये यज्ञमें (हविः न) हविर्द्रव्यान्नके समान शुद्ध अन्न (प्रीणानः भरे) संतुष्ट हुआ मैं देता हूं अर्पण करता हूं।

मानवधर्म- जो विश्वमें प्रकाशमान-वा शुद्ध है, जो बुद्धिमान तथा पुरुषार्थी है, जो असुरोंका विनाश करता है, उसका काव्यगान करो और उसकी सहायतार्थ उत्तम कर्म करो। जो कामनाओंकी पूर्ति करता है, उस सबके नेता पुरुषके लिये संतुष्ट होकर उत्तम अर्पण देना योग्य है।

१ विश्वशुचे धियंधे असुरघ्ने अग्नये मन्म धीतिं प्रभरध्वं—विश्वमें तेजस्वी, पवित्र, बुद्धिमान् पुरुषार्थी, शत्रु-नाशक नेताका सन्मान करो। उसके चरित्रका गान करो, उसका महत्त्व बढाओ, उसको संतुष्ट करनेके लिये अर्पण करो।

२ प्रीणानः वैश्वानराय हविः भरे--संतुष्ट होकर सबके नेता अग्रणीके लिये मैं अन्न देता हूं। अर्पण करता हूं। उसको संतुष्ट करनेके लिये अपना समर्पण करता हूं।

मनुष्य विश्वमें पवित्र हो, सबको प्रकाश देनेवाला बने, दुष्टोंका नाश करे, सबका संचालन करे, विश्वका नेतृत्व करे।

[२] (१०७) हे अग्ने! (त्वं शोचिषा शोशुचानः) तू अपने तेजसे प्रकाशित होकर (जायमानः रोदसी अपृणः) उत्पन्न होते ही द्युलोक और पृथिवीको भरपूर भर देता है। हे (जातवेदः वैश्वानर) वेद और धनके उत्पन्न कर्ता और विश्वके नेता! (महित्वा) अपनी महिमासे (त्वं देवान् अभिशस्तेः अमुञ्चः) तूने देवोंको शत्रुओंके द्वारा होनेवाले विनाशसे बचाया है।

मानवधर्म- तेजस्वी पुरुष अपने तेजसे प्रकाशित हो और अपनी दीप्तिसे विश्वको भर देवे। ज्ञानका प्रसार करे, धनकी निर्मिति करे, विश्वका नेतृत्व करे। और अपनी शक्तिसे सबको शत्रुसे बचावे।

१ त्वं शोचिषा शोशुचानः रोदसी अपृणः—तू तेजस्वी होकर अपने तेजसे विश्वको भर दे।

२ जात-वेद, वैश्वानर—ज्ञानका प्रसार कर, धनका उत्पादन कर, विश्वका नेतृत्व कर।

३ त्वं अभिशस्तेः अमुञ्चः— तू शत्रुओंसे सबको बचाओ।

[३] (१०८) हे वैश्वानर अग्ने! (जातः) उत्पन्न होते ही तू (इर्यः परिज्मा) सबका प्रेरक और सर्वत्र गमन कर्ता होकर (पशून् गोपाः) पशुओंका संरक्षण करता है। (यत् भुवना व्यख्यः) जब तू भुवनोंका निरीक्षण करता है, तब (ब्रह्मणे गातुं विंद) ज्ञान प्रसारके लिये मार्ग प्राप्त करता है। (सदा नः यूयं स्वस्तिभिः पात) सदा हम सबको आप कल्याणोंके द्वारा सुरक्षित रखो।

(१४) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ बृहती ।

१ समिधा जातवेदसे देवाय देवहूतिभिः ।
हविर्भिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये १०९

२ वयं ते अग्ने समिधा विधेम वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र ।
वयं घृतेनाध्वरस्य होतर्वयं देव हविषा भद्रशोचे ११०

३ आ नो देवेभिरुप देवहूतिमग्ने याहि वषट्कृतिं जुषाणः ।
तुभ्यं देवाय दाशतः स्याम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १११

मानवधर्म- प्रकट होते ही सर्वत्र जाकर देखो और सबको प्रेरणा करो, पशुओंकी पालना करो, सब प्रदेशोंका निरीक्षण करो, ज्ञानके प्रसारका मार्ग देखो और सबकी सुरक्षा करो ।

१ जातः परिज्मा ईयः—बाहर प्रकट होते ही सब स्थानोंमें जाओ और सबको उन्नतिके मार्गपर चलनेकी प्रेरणा करो ।

२ पशून् गोपाः—पशुओंका संरक्षण करो ।

३ भुवना व्यख्यः—सब प्रदेशोंका निरीक्षण करो ।

४ ब्रह्मणे गातुं विंद्—ज्ञानके प्रसारका उत्तम मार्ग ढूंढो और उसको प्राप्त करो (अर्थात् उस मार्गसे ज्ञानका प्रचार करो ।)

५ स्वस्तिभिः पातं—कल्याणमय योजनाओंके द्वारा सब को सुरक्षित करो ।

[१] (१०९) (जातवेदसे अग्नये) जिससे वेद प्रकट हुए उस अग्निके लिये (समिधा वयं दाशेम) समिधाओंसे हम परिचर्या करते हैं । (देवाय देव-हूतिभिः) इस अग्निदेवके लिये देवस्तुतियोंसे, तथा (शुक्रशोचिषे नमस्विनः हविर्भिः) पवित्र प्रकाशवाले अग्निके लिये अन्न लेकर हम हविकी आहुतियोंसे (दाशेम) सेवा करते हैं ।

अग्निसे यज्ञ होता है और यज्ञमें वेद बोले जाते हैं, इस कारण अग्निसे वेद प्रकट हुए ऐसा कहा है । '**जातवेदा**' शब्दका अग्निपरक इस तरह अर्थ है । समिधा अग्निमें डालकर अग्निकी सेवा करनेसे अग्नि प्रदीप्त होता है । '**देव-हूति**' का अर्थ ईश्वरस्तुति है । ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये उसकी स्तुति गाई जाती है । यह गाई हुई स्तुति भक्तके लिये मार्ग बताती है । अग्नि आदि देवताके वर्णनसे मनुष्यकी उन्नतिका मार्ग मनुष्यके सन्मुख प्रकट होता है । अग्नि प्रदीप्त होनेपर उसमें आहुतियां डालना चाहिये । यह यज्ञविधि प्रसिद्ध है ।

१ समिधा वयं दाशेम—प्रथम अग्निमें समिधा डाल-कर उसे प्रदीप्त करना । अग्नि उत्पन्न करनेपर यह प्रथम करने योग्य सेवा है ।

२ देवहूतिभिः देवाय—ईश्वर स्तुतिके स्तोत्रोंका पाठ करना, यह द्वितीय विधि है ।

३ शुक्रशोचिषे हविर्भिः दाशेम—अग्नि प्रदीप्त होने-पर हविकी आहुतियां देना, यह यज्ञकी तीसरी सिधि है ।

इस तरह यहां यज्ञविधि बतायी है ।

[२] (११०) हे अग्ने ! (ते वयं समिधा विधेम) तेरी हम समिधाओंसे परिचर्या करते हैं । हे (यजत्र) यजनीय अग्ने ! (वयं सुष्टुतीः दाशेम) हम उत्तम स्तुतियोंसे तुम्हारी सेवा करते हैं । हे (अध्वरस्य होतः) हिंसारहित यज्ञके होता अग्ने ! हम (घृतेन) घृतसे तेरी परिचर्या करते हैं । हे (भद्रशोचे देव) कल्याण प्रकाशवाले अग्ने ! हे देव ! (वयं हविषा) हम हविके अर्पणसे तेरी परि-चर्या करते हैं ।

इस मंत्रमें यज्ञविधि बतायी है । प्रथम '**समिधा**' डालना और अग्निको जगाना, पश्चात् '**सुष्टुती**' स्तोत्र पाठ करना, पश्चात् '**घृतेन**' घीसे उसको प्रदीप्त करना, अग्नि अच्छी तरह प्रदीप्त होनेपर '**हवि**' अर्पण करना । यह यज्ञका क्रम है ।

[३] (१११) हे अग्ने ! (नः देवहूतिं) हमारी देवस्तुतिरूप यज्ञके प्रति (देवेभिः) देवोंके साथ

[१५] १५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । गायत्री ।

१ उपसद्याय मीळ्हुष आस्ये जुहुता हविः । यो नो नेदिष्ठमाप्यम् ११२
२ यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे । कविर्गृहपतिर्युवा ११३

(वषट्कृतिं जुषाण) वषट् कारसे दिये अन्नका सेवन करते हुए तू (उप आ याहि) आ (देवाय तुभ्यं शशतः स्याम) तुझ देवकी सेवा करनेवाले हम हों । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पातं) आप सदा हमारी कल्याणके साधनोंसे सुरक्षा कीजिये ।

हम ईश्वरकी स्तुति गाते हैं, वषट् कारसे अन्न अथवा हवि समर्पण करते हैं और देवताओंके उद्देश्यसे यज्ञ करते है। वह यज्ञ हमारा सफल हो । इससे हम सबकी सुरक्षा होती रहे ।

[१] (११२) **(उपसद्याय मीळ्हुषे) पास बैठने योग्य और इच्छाकी पूर्ति करनेवाले अग्निके लिये (आस्ये हविः जुहुत) उसके मुखमें हविका हवन करो । (यः नः नेदिष्ठं आप्यं) जो हमारा अत्यंत समीपका बंधु है ।**

मानवधर्म–अत्यंत समीपका बन्धु उसको कहते हैं कि जो समीप बैठनेयोग्य है और जो अपना हित करता है ।

(नेदिष्ठं आप्यं) समीपका बन्धु वह है कि जो (उपसद्यः) कठिन प्रसंगमें भी पास जाने और उससे सहायता मांगने योग्य है । तथा (मिळ्हुष्) जो समयपर आवश्यक सहायता करता है ।

आजकल हम देखते हैं कि भाई भाईमें मित्रताकी अपेक्षा द्वेष ही अधिक होता है। कौरव–पांडवोंका द्वेष प्रसिद्ध हैं । आज इससे भी अधिक द्वेष है । वेदमें समीपस्थ (नेदिष्ठं आप्यं) भाईचारा यहां वर्णन किया है । वैसी स्थिति समाजमें आजाय तो अच्छा है । वेदका आदर्श कुटुंब वह है कि जिसमें,—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्
मा स्वसारमुत स्वसा ।(अथर्व)

' भाई भाईसे द्वेष न करे और बहिन बहनसे वैर न करे।' यह आदर्श कुटुंब है । यही सुखी कुटुंब हो सकता है ।

[२] (११३) **(यः कविः गृहपतिः युवा) जो अग्नि ज्ञानी, गृहस्वामी और तरुण है, (पंच चर्षणीः दमे दमे) पांचों लोगोंके घरघरमें (निषसाद) रहता है ।**

'**पंच चर्षणीः**' ये पञ्च मानव हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पञ्चजन हैं । इनमेंसे प्रत्येक घर, घरमें यह अग्नि रहता है। यह ज्ञानी गृहस्थी युवा है। आठवें वर्ष बालक गुरुकुलमें जाता है, वहां १२ वर्ष विद्या पढता है २० वें वर्ष स्नातक होकर वापस आता है । यह तरुण है, कवि- ज्ञानी है और गृहपति भी है । गुरुकुलका ब्रह्मचारी गृहपति नहीं होता, क्योंकि वह गुरुकुलमें प्रविष्ट होते ही घरका संबंध छोड देता है । वह विद्यामाताके गर्भमें जाता है। वानप्रस्थी और संन्यासी भी गृहपति नहीं होते। इन तीनों–ब्रह्मचारी, वाननप्रस्थी और संन्यासी—को गृहपति नहीं कहते । ये '**अ-निकेतन**' होते हैं । इनका अपना निज कोई घर नहीं होता। इसालिये गृहस्थाश्रमी युवा पुरुष ही गृही अथवा गृहपति कहलाता है । कवि-गृहपति–युवा ये विशेषण गृहस्थीके होते हैं । २५ वर्षसे ५० वर्षतक तारुण्य अवस्था है और इसी अवस्थामें ये तरुण गृहपति होते हैं ।

पंचजनोंके घर घरमें ये युवा गृहपति होते हैं । इससे स्पष्ट होता है ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास पञ्चजनोंमें सबमें होते थे। नहीं तो 'पञ्चजनोंमें युवा गृहपति' का दूसरा कोई तात्पर्य नहीं हो सकता।

' अनिकेतन ' ' अ–गृही ' होनेकी अवस्था जिनमें होगी उनको ही ' तरुण कवि गृहपति ' कहा जा सकता है । पञ्च जनोंमें ' युवा ही गृहपति ' होता था, और घर घरमें (दमे दमे) होता था । इससे स्पष्ट है कि इन पञ्चजनोंमें बालक, वानप्रस्थी, यती इन अवस्थाओंमें अर्थात् तरुण अवस्थाको छोडकर दूसरी किसी अवस्थामें गृहपति नहीं होता था ।

३	स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः	। उतास्मान् पात्वंहसः	११४
४	नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम्	। वस्वः कुविद् वनाति नः	११५
५	स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा	। अग्रे यज्ञस्य शोचतः	११६
६	सेमां वेतु वषट्कृतिमग्निर्जुषत नो गिरः	। यजिष्ठो हव्यवाहनः	११७
७	नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं देव धीमहि	। सुवीरमग्न आहुत	११८
८	क्षप उस्रश्च दीदिहि स्वग्नयस्त्वया वयम्	। सुवीरस्त्वमस्मयुः	११९

[३] (११४) (सः अग्निः नः आमात्यं वेदः) **वह अग्नि हमारा साथ रहनेवाला धन (विश्वतः रक्षतु) सब ओरसे सुरक्षित रखे। (उत अस्मान् अंहसः पातु) और हमें पापसे बचावे।**

' अमा-त्यं वेदः ' जन्मके साथ आया हुआ धन, पैतृक धन जो अपने साथ रहता है, साथ आया धन। गुरुकुलसे स्नातक बनकर अपने घर जानेपर उसका जैसा अपने घर पर स्वामित्व होता है, वैसा उसका पैतृक धन भी उसको प्राप्त होता है। यह **' अमा-त्य वेदः '** है। यह ' साथ रहा, साथ आया धन ' है। जन्म और धनका यहां साथ निवास कहा है। पैतृक संपात्तिपर पुत्रका जन्मके साथ अधिकार आता है यह इससे सिद्ध है। यद्यपि यह धन यज्ञके लिये है तथापि पिताके धनका अधिकारी पुत्र है यह इस शब्दसे सिद्ध होता है।

[४] (११५) (दिवः श्येनाय अग्नये) **द्युलोकमें श्येनपक्षीके सदृश शीघ्र गमन करनेवाले अग्निके लिये (नवं स्तोमं) नवीन स्तोत्र (जीजनं) मैं बनाता हूँ, वह अग्नि (नः) हमारे लिये (कुवित् वस्वः वनाति) बहुत धन देवे।**

[५] (११६) (यज्ञस्य अग्रे शोचतः) **यज्ञके अग्रभागमें प्रकाशित होनेवाले अग्निकी (श्रियः) शोभा देनेवाली ज्वालाएँ (वीरवतः रयिः यथा) जैसा वीर पुत्रवालेका धन होता है, उस प्रकार (दृशे स्पार्हाः) देखनेके लिये स्पृहणीय होती हैं।**

वीरवतः रयिः स्पार्हः— वीर पुत्र जिसको हैं उसका धन स्पृहणीय होता है। पुत्रहीनके पासका धन वैसा शोभादायी नहीं होता। पुत्रका महत्त्व इतना है।

[६] (११७) (यजिष्ठः हव्यवाहनः अग्निः) **यजनके लिये योग्य हवनीय द्रव्योंका वहन करनेवाला अग्नि (इमां वषट्कृतिं) हमारी दी हुई इस आहुतिको (वेतु) स्वीकारे और (नः गिरः जुषतं) हमारे वचन सुने।**

[७] (११८) हे (नक्ष्य विशांपते) **पास जाने-योग्य, प्रजाओंके अधिपते (आहुत अग्ने देव) आहुति दिये हुए अग्निदेव! (द्युमन्तं सुवीरं त्वा नि धीमहि) तेजस्वी उत्तम वीरोंके साथ रहनेवाले ऐसे तेरा हम यहां स्थापन करते हैं।**

सुवीरं निधीमहि—जो उत्तम वीरोंसे युक्त है उसको यहां स्थापन करते हैं। ऐसा यहां कहा है। जिसके पास वीर नहीं अथवा जिसको संतान नहीं, उसको हम यहां नहीं सन्मानित करेंगे यह इसका भाव है। अपने पास वीर संतान अवश्य चाहिये।

[८] (११९) (क्षपः उस्रः च दीदिहि) **रात्रिमें और दिनमें प्रदीप्त होते रहो, (त्वया वयं स्वग्नयः) तेरे कारण हम उत्तम अग्निवाले होंगे और (त्वं अस्मयुः सुवीरः) तू भी हमारे कारण उत्तम वीरोंसे युक्त होगा।**

देवसे भक्त और भक्तोंसे देव लाभ प्राप्त करते हैं। देवसे भक्तोंको धनादि प्राप्त होता है और भक्तोंके कारण देवका यश तथा माहात्म्य बढता है।

९	उप त्वा सातये नरो विप्रासो यन्ति धीतिभिः ।	उपाक्षरा सहस्रिणी	१२०
१०	अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः ।	शुचिः पावक ईड्यः	१२१
११	स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो ।	भगश्च दातु वार्यम्	१२२
१२	त्वमग्ने वीरवद् यशो देवश्च सविता भगः ।	दितिश्च दाति वार्यम्	१२३
१३	अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः ।	तपिष्ठैरजरो दह	१२४
१४	अधा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये ।	पूर्भवा शतभुजिः	१२५

[९] (१२०) (त्वा नरः विप्रासः) तेरे पास नेता ज्ञानी लोग (धीतिभिः सातये उपयन्ति) बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंके साथ धन प्राप्तिके लिये आते हैं। (सहस्रिणी अक्षरा उप) सहस्रों अक्षरोंवाली हमारी वाणी भी तेरे पास पहुंचती है।

[१०] (१२१) (शुक्रशोचिः अमर्त्यः) शुभ्र किरणवाला अमर (शुचिः पावकः ईड्यः) पवित्र शुद्धता करनेवाला स्तुत्य (अग्निः रक्षांसि सेधति) अग्नि राक्षसोंका नाश करता है।

तेजस्वी शुद्ध पवित्र प्रशंसनीय वीर शत्रुओंका नाश करे, उनको दूर भगावे, जैसा अग्नि करता है।

[११] (१२२) हे (सहसः यहो) बलके पुत्र अग्ने! (सः ईशानः नः राधांसि आ भर) वह सबका स्वामी तू हमें भरपूर धन दो। (भगः च वार्यं दातु) भाग्यवान् देव भी हमें धन देवे।

इस मंत्रमें धनके नाम दो दिये है। 'राधांसि' और 'वार्यं'। जो धन परम सिद्धितक सहायक होता है वह धन 'राधांसि' है, यह अनेक प्रकारका होनेसे इसका प्रयोग यहां बहुवचनमें किया है। सिद्धितक पहुंचानेवाले धन बहुत होते हैं। दूसरा धन 'वार्यं' है। शत्रुओंका निवारण करना जिसके लिये आवश्यक होता है उसको वार्य कहते हैं। सभी धन शत्रुसे संरक्षणीय होता है। हम धन प्राप्त करें और डाकू उसे लूट लेवे तो वह हमारे क्या कामका होगा। इसलिये धन भी चाहिये और उसका संरक्षण करनेकी शक्ति भी चाहिये।

[१२] (१२३) हे अग्ने! (त्वं वीरवत् यशः) तू वीर पुत्रोंसे युक्त यश हमें दे, (सविता भगः च वार्यं) सविता और भाग्यवान् देव वरणीय श्रेष्ठ धन हमें देवे। (दितिः च दाति) दिति देवी भी हमें धन देवे।

इस मंत्रमें अग्निके साथ सविता और भग, तथा दिति भी गिनाये हैं। दिति यह दैत्यों, राक्षसोंकी माता कही जाती है। वह यहां किस तरह गिनाई है यह अन्वेषणीय है।

[१३] (१२४) हे अग्ने! तू (नः अंहसः रक्ष) हमारा पापसे बचाव कर। हे देव! तू (अजरः) जरारहित है अतः तू (रिषतः तपिष्ठैः दह स्म) शत्रुओंको अपने दाहक तेजोंसे जला दे।

यहां अपना पापसे बचाव करना और शत्रुओंका नाश करना ये दो बातें है। पापसे बचकर हम पवित्र बनेंगे और शत्रुका नाश होनेसे हम निर्भय होंगे। उन्नतिके लिये इन दोनोंकी आवश्यकता है।

[१४] (१२५) (अध अनाधृष्टः) और शत्रुओंसे आक्रान्त न होकर (नः नृपीतये) हमारे सब मानवोंकी सुरक्षाके लिये (शतभुजिः मही आयसीः पूः भव) सैंकडों मानवोंसे सुरक्षित बडी विस्तृत लोहेके प्राकारावाली पुरी जैसा तू संरक्षक हो।

शतभुजिः मही आयसी पूः नृपीतये। - [शतभुजिः] सैंकडों वीरोंकी भुजाओंसे सुरक्षित होनेवाली बडी (आयसी पूः) लोहेके प्राकारोंसे वेष्टित नगरी, 'आयस्' का अर्थ लोहा है, तथा पत्थरोंसे बनी कीलेकी दिवार भी है। 'पूः' का अर्थ बडी नगरी है, जो सब सुख साधनोंसे भरपूर होती है, उसका नाम 'पूः या पुरी' है। इसकी सुरक्षाके लिये लोहेके अथवा

१५ त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्तरघायतः । दिवा नक्तमदाभ्य १२६

(१६) १२ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । प्रगाथः (= विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

१ एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् १२७

२ स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् १२८

पत्थरोंके शक्तिशाली प्राकार होते हैं। सात प्राकार होनेका वर्णन है। ऐसे सात प्राकारोंसे वेष्टित होनेके कारण पुरी सुरक्षित होती है। वेदमें ऐसी नगरियोंके निर्माण करनेका आदेश है। पुरीके बाहर सात प्राकार हों और प्रत्येक प्राकारका संरक्षण सैंकडो वीर, आलस्य छोडकर करते रहें। ऐसा सुरक्षाका प्रबंध होगा, तो अंदर रहनेवाले नागरिक सुरक्षित होनेका आनंद प्राप्त कर सकते हैं। नागरिकोंकी सुरक्षा (नृपीतये) होनी चाहिये।

[१५] (१२६) **हे (अदाभ्य) न दबनेवाले वीर ! (त्वं नः) तू हमें (दोषावस्तः) रात्रीके समय और दिनके समय (अंहसः पाहि) पापसे बचाओ और (दिवा नक्तं अघायतः) दिनमें और रात्रीमें दुष्ट पापी शत्रुओंसे बचाओ।**

यहां सुरक्षाका प्रबंध जैसा रात्रीके समय वैसा ही दिनके समय भी जागरूकताके साथ होना चाहिये ऐसा कहा है। वह योग्य है। यह सुरक्षाका प्रबंध जैसा अन्धेरेमें वैसा ही प्रकाशमें होना चाहिये। प्रति समय संरक्षक वीर जागते रहें और अपना कर्तव्य करते रहें। सुरक्षाके प्रबंधमें ढिलापन न रहे।

[१] (१२७) **(ऊर्जः नपातं) बलका पतन न करनेवाले (प्रियं चेतिष्ठं) प्रिय और चेतना देनेवाले (अरतिं स्वध्वरं) प्रगतिशील और उत्तम अहिंसामय यज्ञ निर्माता (विश्वस्य अमृतं दूतं) सबका अमर दूत ऐसे (एना नमसा आ हुवे) इस अग्निको नम्रता पूर्वक (वः) आप सबके हितके लिये मैं बुलाता हूं।**

यहां का अग्नि '**ऊर्जः न-पातः**' है। बलको कम न करनेवाला है। बलको क्षीण न करनेवाला। '**चेतिष्ठः**' चेतना देनेवाला, उत्साह बढानेवाला, चित्तके व्यापारको चलानेवाला '**अरतिः**' गमनशील, प्रगतिवान् शीघ्र गति करनेवाला '**स्वध्वर (सु-अ-ध्वर)**' उत्तम रीतिसे हिंसारहित रीतिसे प्रशस्ततम कर्म करनेवाला, जिसमें कुटिलता, टेढापन, हिंसा नहीं है ऐसे कर्म करनेवाला। 'अमृतः दूतः' जो मरनेवाला नहीं ऐसा दूत, जो मुर्दा जैसा नहीं जो जीवित और जाग्रत रहता है ऐसा दूत। ऐसे दूत अग्निको यहां बुलाया है।

मानवधर्म— अपना बल कम होने योग्य कुछ भी न करना, प्रिय आचरण करना, उत्साह बढाना, प्रगतिशील होना, हिंसारहित कर्म करना, मुर्दा जैसा न रहना, प्रभुसेवाके भावसे कार्य करना, नम्रतापूर्वक वीरको बुलाना, सबके हितके लिये प्रयत्नशील रहना।

[२] (१२८) **(सः विश्वभोजसा अरुषा) वह अग्नि विश्वको भोजन देनेवाले अपने तेजसे (योजते) युक्त होता है। प्रकाशता है। और (स दुद्रवत्) शीघ्र गतिसे जाता है। वह (स्वाहुतः सुब्रह्मा) वह उत्तम आहुतियोंको लेनेवाला, उत्तम ज्ञानी, (यज्ञः सुशमी) यजनीय और उत्तम कर्म करनेवाला अग्नि (वसूनां देवं राधः) धनोंमें दिव्य धन (जनानां) लोगोंको देता है।**

पूजा योग्य तरुण वीर कैसा होना चाहिये, इसका उत्तर यहां दिया है—वह (विश्व-भोजसा अरुषा योजते) विश्वरक्षक, विश्वको भोजन देनेवाले तेजसे युक्त हो, (सु ब्रह्मा) उत्तम ज्ञानी हो, उत्तम अन्न अपने पास रखे, (यज्ञः) सत्कार-संगठन दानात्मक शुभ कर्म करता रहे, (सुशमी) इन्द्रियोंका शमन करनेवाला हो, उत्तम कर्म करे और उत्तम धन लोगोंको देता रहे।

३ उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीळ्हुषः ।
उद् धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः १२९
४ तं त्वा दूतं कृण्महे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह ।
विश्वा सूनो सहसो मर्तभोजना रास्व तद् यत् त्वेमहे १३०
५ त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम् १३१
६ कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते १३२
७ त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान् दयन्त गोनाम् १३३

---

[३] (१२९) (मीळ्हुषः आजुह्वानस्य) कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले और जिसमें हवन हो रहा है ऐसे (अस्य शोचिः उत् अस्थात्) इस अग्निकी ज्वालाएं ऊपर उठती हैं। (अरुषासः दिविस्पृशः धूमासः उत्) तेजस्वी आकाशको स्पर्श करनेवाले धूम ऊपर जा रहे हैं। ऐसे (अग्निं नरः सं इन्धते) अग्निको लोग प्रदीप्त करते हैं।

[४] (१३०) हे (सहसः सूनो) बलसे उत्पन्न हुए अग्ने! (यशस्तमं तं त्वा दूतं कृण्महे) अत्यंत यशस्वी ऐसे तुझे हम दूत करते हैं। वह तू (देवान् वीतये आवह) देवोंको हविका भक्षण करनेके लिये यहां ले आ। (यत् त्वा ईमहे) जब हम तेरे पास आते हैं तब (तत् विश्वा मर्तभोजना रास्व) सब मनुष्योंको भोगने योग्य धन हमें दो।

विश्वा मर्तभोजना रास्व — मनुष्योंके लिये जो जो धन भोगने योग्य हैं वे सब धन हमें चाहिये। धन, रत्न, घोडे, गौवें, रथ, घर आदि सभी भोग्य पदार्थ हमें चाहिये।

[५] (१३१) हे (विश्ववार अग्ने) सबके द्वारा वरने योग्य अग्ने! (त्वं नः अध्वरे गृहपतिः) तू हमारे यज्ञ कर्ममें गृहका संरक्षक है, (त्वं होता) तू देवोंको बुलानेवाला है, (त्वं पोता प्रचेता) तू पवित्र करनेवाला अत्यंत बुद्धिमान है अतः तू (वार्यं यक्षि वेषि च) यज्ञमें प्रयुक्त होनेवाले हविरूप अन्नका यजन कर और उसकी प्राप्तिकी इच्छा कर।

मनुष्य (विश्ववारः) सबको प्रिय, (गृहपति) अपने घरका स्वामी, अपने स्थानका स्वामी, देशका पालक, (प्रचेताः पोता) उत्तम बुद्धिमान और पवित्र करनेवाला बने। अग्निके गुण मनुष्यमें देखनेसे आदर्श व्यक्ति सामने खडी हो जाती है।

[६] (१३२) हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले अग्ने! (यजमानाय रत्नं कृधि) यजमानके लिये रत्न वा धन दो। (हि त्वं रत्न धाः असि) क्योंकि तू रत्नोंका धारण करानेवाला है। (नः ऋते) हमारे यज्ञमें (विश्वं ऋत्विजं आशिशीहि) सब ऋत्विजोंको तेजस्वी कर। (यः सुशंसः च दक्षते) जो उत्तम प्रशंसा योग्य है उसको दक्षतासे बढाओ।

[७] (१३३) हे अग्ने, हे (स्वाहुत) उत्तम आहुति लेनेवाले! (ते सूरयः प्रियासः सन्तु) तुझे विद्वान् प्रिय हों। विद्वानोंके लिये तू प्रिय हो। तथा (ये यन्तारः मघवानः) जो दाता धनवान हैं और जो (जनानां गोनां ऊर्वान् दयन्त) लोगोंको गौओंके झुण्डोंको दानमें देते हैं, वेभी तुझे प्रिय हों।

८ येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति ।
ताँस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् १३४
९ स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय १३५
१० ये राधांसि ददत्यश्व्या मघा कामेन श्रवसो महः ।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठय १३६

---

१ सूरयः ते प्रियासः सन्तु — ज्ञानी तुझे प्रिय हों, ज्ञानीयोंके पास रहो, उनकी संगतिमें रहो ।

२ मघवानः यन्तारः — धनवान् दाता हों, धनी लोग अपने धनका दान करते रहें ।

४ जनानां गवां ऊर्वान् दयन्त — उत्तम सत्पुरुषोंको गायोंके झुण्डके झुण्ड दानमें दिये जाय ।

[८] (१३४) (येषां दुरोणे घृतहस्ता इळा) जिनके घरमें घी हाथमें लेकर अन्न परोसनेवाली देवी (प्राता आ निषीदति) भरपूर अन्न लेकर बैठती है। हे (सहस्य) बलवान्! (तान् त्रायस्व) उनको सुरक्षित करो। (द्रुहः निदः) द्रोहकारी निंदक शत्रुसे उनको बचाओ। (नः दीर्घश्रुत् शर्म यच्छ) हमें दीर्घकाल टिकनेवाले यशसे युक्त सुख या घर दो ।

१ येषां दुरोणे घृतहस्ता इळा प्राता आ निषीदति — जिनके घरोंमें देवियाँ घी और अन्नके भरे पात्र लेकर अन्नपान करानेके लिये सिद्ध रहती हैं। **तान् त्रायस्व** – उनका संरक्षण कर।

२ द्रुहः निदः तान् त्रायस्व — द्रोही तथा निंदक शत्रुओंसे उनका संरक्षण कर ।

३ दीर्घश्रुत् शर्म नः यच्छ — जिसकी कीर्ति दीर्घकाल तक टिकी रहती है ऐसा घर, सुख, संरक्षण हमें दो। पूर्वोक्त प्रकारका अन्नदान करनेवाला घर ही ऐसा यशस्वी घर है।

इस मन्त्रसे पता लगता है कि घरमें भरपूर घी और अन्न चाहिये और उसको मुक्त हस्तसे देना चाहिये। पर आजकल अन्न, दूध, दही, घी शहदकी इतनी कमी हुई है कि यह वैदिक समयका घर आजकल मिलना असंभव सा दीखता है ।

[९] (१३५) हे अग्ने! (मन्द्रया आसा जिह्वया) आनन्ददायक मुखमें रहनेवाली जिह्वासे-ज्वालासे-(वह्निः विदुष्टरः) हवनीय द्रव्योंका वहन करनेवाला ज्ञानी (सः) वह अग्नि तू (मघवद्भ्यः नः रयिं आ वह) धन देनेवाले हम सबके लिये धन ले आओ, और (हव्यदातिं च सूदय) हवनीय अन्नका दान करनेवाले यजमानको प्रशस्त करो। प्रेरित करो ।

१ विदुष्टरः वह्निः मन्द्रया आसा जिह्वया नः रयिं आ वह — विद्वानोंमें श्रेष्ठ तेजस्वी वीर आनन्द देनेवाली मधुर भाषाके साथ हमें धन देवे। उत्तम भाषण करे और अन्न भी देवे ।

१ मघवद्भ्यः रयिं आ वह — धनवान् दानी मनुष्योंके लिये धन दो। जिससे वे अधिक दान देते रहें ।

३ हव्यदातिं सूदय— अन्नका दान करनेकी प्रेरणा कर

[१०] (१३६) हे (यविष्ठ्य) अत्यंत तरुण वीर अग्ने! (महः श्रवसः कामेन) बडे यशकी इच्छासे जो (राधांसि अश्व्या मघा) सिद्धिदायक अश्वयुक्त धन (ददति) दानमें देते हैं, (तान् अंहसः) उनको पापसे अथवा दुष्ट शत्रुसे (पर्तृभिः शतं पूर्भिः त्वं पिपृहि) संरक्षक साधनोंसे तथा सैकडों कीलोंवाली नगरियोंसे तू सुरक्षित रख ।

१ महः श्रवसः कामेन राधांसि अश्व्या मघा ददाति -- जो बडे यशकी इच्छासे सिद्धि देनेवाले धन, जिनमें अश्व गौ घर आदिका समावेश होता है, दानमें देते हैं, उसका संरक्षण होना चाहिये ।

११ देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम् ।
उद् वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद् वो देव ओहते १३७
१२ तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे १३८

(१७) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । द्विपदा त्रिष्टुप् ।

१ अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम् १३९
२ उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥१॥ १४०

१ तान् अंहसः पर्तृभिः पिपृहि — उनको पापसे बचाओ। उनको दुर्गतिसे बचाओ।

२ शतं पूर्भिः पिपृहि — सौ पौरकीलोंसे उनको सुरक्षित कर, सौ प्राकारोंके अन्दर ऐसे दाताओंको सुरक्षित रख।

यहां 'शतं पूर्भिः पर्तृभिः पिपृहि' ऐसा कहा है। नगरकी सुरक्षाका साधन नगरका प्राकार है, नागरिक दुर्ग है। दुर्गके ऊपर शतघ्नी, वीर, शत्रुनाशक यंत्र, शस्त्र अस्त्र आदि अनेक हैं। ये सब साधन सदा सुसज्ज रहें। जो अपने धनका दान करते हैं, उसको उत्तम संरक्षण मिलना चाहिये। यहां 'सैंकडों कीलों' का वर्णन है। एक ही नगरीमें सौ प्राकार नहीं होते। अधिकसे अधिक सात प्राकार होंगे। यहां राष्ट्रमें सैंकडों नगोरयोंमें ऐसे दुर्ग हों और उनसे प्रजा सुरक्षित हो, ऐसा कहा है। प्रजाकी सुरक्षाका प्रश्न बडे महत्त्वका है। नागरिकोंकी सुरक्षाका प्रश्न प्रथम विचारणीय है, यह प्रश्न अत्यंत महत्त्वका है।

[११] (१३७) (द्रविणोदाः देवः) धन देनेवाला अग्निदेव (वः पूर्णां आसिचं विवष्टि) आपकी घृतादिसे परिपूर्ण चमसकी इच्छा करता है। (वा उत् सिंचध्वं) पात्र भरपूर भर दो, अथवा (वा उप पृणध्वं) पात्रको परिपूर्ण करो। (आत् इत् देवः वः ओहते) अनंतर अग्निदेव तुम्हें उच्च अवस्थाको पहुंचा देता है।

चमस भरपूर भरकर आहुतियाँ दे दो। इससे यज्ञ सफल होगा और यज्ञकर्ताका यश फैलेगा।

[१२] (१३८) (देवाः प्रचेतसं तं वह्निं) देव उस ज्ञानी अग्निको (अध्वरस्य होतारं अकृण्वत) हिंसारहित कर्मका करनेवाला करके निर्माण करते हैं। वह (अग्निः विधते दाशुषे जनाय) अग्नि परिचर्या करनेवाले दाता मनुष्यके लिये (सुवीर्यं रत्नं दधाति) उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति और उत्तम धन देता है।

१ देवाः प्रचेतसं वह्निं अध्वरस्य होतारं अकृण्वत -- देवोंने विशेष ज्ञानी अग्निके समान तेजस्वी वीरको कुटिलता रहित कर्मके करनेके लिये निर्माण किया है।

२ अग्निः विधते दाशुषे जनाय सुवीर्यं रत्नं दधाति -- यह तेजस्वी वीर कर्ता दाता जनके लिये उत्तम वीर्य और धन देता है।

मनुष्य कुटिलता रहित कर्म करें, शौर्यके कर्म करे और धन प्राप्त करे। छल कपट, भीरुता आदि के द्वारा धन कमाना अच्छा नहीं है।

[१] (१३९) हे अग्ने ! (सुषमिधा समिद्धः भव) उत्तम समिधासे प्रदीप्त हो। (उत) और (उर्विया बर्हिः विस्तृणीतां) याजक उत्तम विस्तीर्ण आसन फैलावे।

यज्ञकर्ता लोग समिधा डालकर अग्निको प्रदीप्त करें और यज्ञशालामें बैठनेवालोंके लिये विस्तीर्ण आसन फैला देवे।

[२] (१४०) (उत उशतीः द्वारः विश्रयन्तां) और देवभक्ति करनेवाली देवियां विश्राम करें। (उत उशतः देवान् इह आ वह) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले देवोंको यहां यज्ञमें ले आ।

३	अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान् त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः	१४१
४	स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद् देवाँ अमृतान् पिप्रयच्च ॥२॥	१४२
५	वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य	१४३
६	त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम् ॥३॥	१४४
७	ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना वि दध इयानः ॥४॥	१४५

[३] (१४१) हे जातवेदः! (वीहि) जाओ (हविषा देवान् यक्षि) हविसे देवोंका यजन करो, उनको (स्वध्वरा कृणुहि) उत्तम यज्ञवाले बनाओ।

[४] (१४२) (जातवेदाः अमृतान् देवान्) जातवेद अग्नि अमर देवोंको (स्वध्वरा करति) उत्तम यज्ञवाले बनाता हैं, (यक्षत् पिप्रयत् च) यज्ञ करता और प्रसन्न करता है।

[५] (१४३) हे (प्रचेतः) उत्तम बुद्धिवान् अग्ने! (विश्वा वार्याणि वंस्व) सब प्रकारके धन हमें दो। और (नः आशिषः अद्य सत्या भवन्तु) हमारे आशीर्वाद आज सत्य हों।

[६] (१४४) हे अग्ने! (ऊर्जः नपातं त्वां बलको न गिरानेवाले तुझको (हव्यवाहं ते देवासः दधिरे उ) हविका वहन करनेके लिये उन देवोंने धारण किया है।

अग्नि शरीरके बलको गिराता नहीं, उत्साहको स्थायी रखता है, शरीर ठंडा होने लगा तो बल न्यून होता है। इस शरीर स्थानीय अग्निका धारण शरीरके इन्द्रियोंने – देवोंने किया है।

[७] (१४५) (देवाय ते) तुझ देवके लिये (ते दाशतः स्याम) वे हम हवि देनेवाले हों और (महः इयानः) महत्त्वको प्राप्त होकर (नः रत्ना विदधः) हमें रत्नोंको दे दो।

॥ यहां अग्नि प्रकरण समाप्त ॥

अनुवाक दूसरा [अनुवाक ५२ वाँ]

[२] इन्द्र प्रकरण

१ (१८) १५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः, २२-२५ सुदाः पैजवनः । त्रिष्टुप् ।

१ त्वे ह यत् पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः १४६

[१] (१४६) हे **इन्द्र** ! (**त्वे ह यत् नः पितरः चित्**) **तेरे पाससे ही हमारे पितर (जरितारः विश्वा वामा असन्वन्) स्तुति करते हुए सब प्रकारके धन प्राप्त करते रहे । (त्वे सुदुघा गावः) तेरे पास उत्तम दूध देनेवाली गौवें हैं, (त्वे हि अश्वाः) तेरे पास उत्तम घोडे हैं, (त्वं देवयते वसु वनिष्ठः) तू देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करने वालेके लिये अत्यंत श्रेष्ठ धन देता है।**

१ हे प्रभो ! हमारे पितर तुम्हारी भक्ति करते थे और तुम्हारे पाससे सब प्रकारका धन प्राप्त करते थे । हमारे माता पिता जिस तरह सर्व नियंता प्रभुकी उपासना करते थे, वैसे ही हम भी उसी प्रभुकी उपासना करते हैं ।

२ उसके पास गौवें, घोडे और सब प्रकारके धन हैं। जो देवभक्ति करते हैं उनको वह सब प्रकारका धन देता है ।

' इन्द्र ' वह है जो (इन् + द्र) शत्रुओंका विदारण या नाश करता है। शत्रुका नाश करना यह इसका स्वभाव है। इन्द्र युद्धकी देवता है । वेदमें वृत्रके साथ इन्द्रका युद्ध प्रसिद्ध है। असुरोंका नाश यह इन्द्रका मुख्य कर्म है।

' इन्द्र ' शरीरमें जीवात्मा है । यह देवोंका राजा है । यहां शरीरमें सब इन्द्रियां देव हैं और उनका शासक शरीरमें इन्द्र है। रोग, कुविचार आदि यहां शत्रु है । यह इन्द्र इनका नाश करके विजयी होता है ।

विश्वमें विश्वके प्रभुका नाम ' इन्द्र ' है । यह परमात्मा है । यहां सूर्य, विद्युत्, अग्नि, वायु, आदि देव हैं । इनका यह राजा है । अन्धकार यहां असुर है ।

राष्ट्रमें राजा इन्द्र है, राज्यशासनके अधिकारी देव हैं। राष्ट्र विरोध करनेवाले यहां असुर हैं। इस तरह इन्द्र, उसके शत्रु आदिका स्वरूप है । मनन पूर्वक यह इसका कार्यक्षेत्र जानना चाहिये ।

इस प्रभुकी — इस इन्द्रकी उपासना हमारे पितर करते थे, हम करते हैं और हमारे वंशज भी करेंगे । इस तरह इन्द्रकी भक्ति वंशानुवंश इन्द्र भक्ति होती रहेगी ।

' **विश्वा वामा** ' सब प्रकारके संसेवनीय धन हैं वे सबके सब इन्द्रके पास हैं और अपने भक्तोंको वह बांट देता है। जिसके पास जो धन होगा, वह अपने अनुयायियोंको बाटनेके लिये ही है । वह धन अपने भोगके लिये ही केवल नहीं। परंतु वह सबके लिये है । धनपर एक व्यक्तिका अधिकार नही है । सब धन संघका है । इसलिये वह अनुयायियोंमें बांट, दिया जाता है । बांट देना ही यज्ञ है और केवल अपने भोगके लिये रखना अयज्ञ है । यज्ञ उपकारक है और अयज्ञ हानिकारक है।

यहां धन गिनाये हैं ! ' **सुदुघाः गावः** ' उत्तम दूध देने वाली गौवें यह पहिला धन है । ' **अश्वाः** ' उत्तम घोडे यह दूसरा धन है । ' **वसु** ' अपने उत्तम निवासके लिये जो उपयोगी है वह धन है। धान्य, वस्त्र, गृह, भूमि आदि अनेक प्रकारके धन हैं । वे इन्द्रके पास रहते हैं और वह भक्तोंको बांट देता है ।

' **देवयन्** ' देव बननेकी इच्छा करनेवाला जो होता है, देवताके समान जो बनना चाहता है, उसको ये धन मिलते हैं। मनुष्योंकी उन्नतिका अनुष्ठान इस शब्दसे सूचित होता है । देवताके गुण जानना और वैसा बननेका यत्न करना, वे गुण अपने अन्दर ढालनेका प्रयत्न करना, यह भाव 'देवयन्'

२ राजेव हि जानिभिः क्षेष्येवाऽव द्युभिरभि विदुष्कविः सन् ।
पिशा गिरो मघवन् गोभिरश्वैस्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान् १४७
३ इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् १४८

शब्दसे सूचित होता है। दैवी संपत्ति अपने अन्दर बढाना और आसुरी वृत्तीको दूर करना ही मानवी उन्नतिका अनुष्ठान है। मनुष्य इस तरह अनुष्ठान करे और देवत्व प्राप्त करे।

[२] (१४७) (जानिभिः राजा इव) जैसा स्त्रियोंके साथ राजा रहता है वैसा (द्युभिः क्षेषि) दीप्तियोंके साथ तू निवास करता है। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! तू (विदुः कविः सन्) ज्ञानी और दूरदर्शी, होकर (पिशा गोभिः अश्वैः) सुंदर रूपसे, गौओं और घोडोंसे (गिरः) वाणियोंको (त्वायतः अस्मान् राये अभि शिशीहि) तेरे साथ रहनेकी इच्छा करनेवाले हम सबको धनके लिये संस्कार संपन्न कर।

जानिभिः राजा — अनेक स्त्रियोंके साथ राजा रहता या विलास करता है। यह उपमा यहां है। 'जनिभिः' का अर्थ कमसे कम तीन या तीनसे अधिक स्त्रियां ऐसा है। इतनी स्त्रियों के साथ राजा रहता है। दशरथकी जैसी तीन रानियाँ थी और अन्य स्त्रियां तीनसौं थी। यह आदर्श राजा नहीं है क्योंकि एक पात्नी भगवान् रामचन्द्र ही आदर्श पुरुष है। पर यहां इन्द्रका वर्णन करनेके प्रसंगमें अनेक स्त्रियोंके साथ रहनेवाले राजाकी उपमा है। संभव है कि इन्द्रके साथ भी स्त्रियां रहती होगी। पंखा, चंवर आदि तथा तांबूळधारी स्त्रियां इन्द्रके साथ रहती होंगी।

यहां '**द्युभिः क्षेषि**' ज्वालाओंके साथ रहता है ऐसा वर्णन है। ज्वाला, तेजकी दीप्ति यहां स्त्रीरूपसे वर्णन की है। अतः इन्द्रपर अनेक पत्नियां करनेका दोष नहीं आ सकता। अनेक दीप्तियोंका होना यह अनेक स्त्रियोंके साथ रहनेके समान है ऐसा यहां वर्णन है। यह एक आलंकारिक वर्णन है। तथापि उपमासे राजाकी अनेक पत्नियोंका होना सिद्ध हो रहा है, वह दूर नहीं हो सकता।

यहां इन्द्र (मघवान्) धनवान्, (विदुः) ज्ञानी और (कविः) क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी, अतींन्द्रियार्थदर्शी वर्णन किया है। राजा भी इन गुणोंसे युक्त हों। राज पुरुष, राज्याधिकारी इन गुणोंसे युक्त होने चाहिये। वे अज्ञानी, अदूरदर्शी और निर्धन होनेके कारण रिश्वतखोर नहीं होने चाहिये।

वह (पिशा) सुन्दर रूपवाला हो तथा उसके पास उत्तम गायें और श्रेष्ठ घोडें हो तथा अन्य प्रकारका धन भी उसके पास पर्याप्त हो। यह राजाका वैभव है। वह उसके पास अवश्य चाहियें।

(गिरः अभि शिशीहिं) वह राजा प्रजाकी वाणीको शुभ संस्कारोंसे सुसंस्कृत बनावे। तथा (राये अभि शिशीहि) धन प्राप्त करनेके लिये जैसे उत्तम संस्कार होने चाहिये वैसे उत्तम संस्कार प्रजापर होंगे ऐसा शिक्षा प्रबंध राज्यमें राजा करे। (त्वायतः – इन्द्रायतः) इन्द्रके समान बननेका यत्न करनेवाली प्रजा हो। राजा अपने राष्ट्रमें ऐसा शिक्षाका प्रबंध करे कि जिससे प्रजाजन इन्द्र जैसे शूरवीर हों और प्रजामें कोई भीरु न हो।

[३] (१४८) हे इन्द्र ! (त्वा अत्र पस्पृधानासः) तेरे वर्णन करनेमें यहां इस यज्ञमें स्पर्धा करनेवाली (मन्द्राः इमाः देवयन्तीः गिरः) आनन्ददायक और देवत्वको प्राप्त करनेवाली ये वाणियाँ (उपस्थुः) तेरे पास उपस्थित होती हैं, तेरा वर्णन करती हैं। (ते रायः पथ्या अर्वाची एतु) तेरे धनके मार्ग सीधे हमारे पास आवें। (ते सुमतौ शर्मन् स्याम) तेरी उत्तम बुद्धिमें रहकर हम सुखमें रहें।

१ **त्वा पस्पृधानासः गिरः** — तेरा वर्णन करनेमें स्पर्धा करनेवाली हमारी वाणियाँ हैं। हममें तेरा वर्णन करनेकी स्पर्धा लगी है।

२ **देवयन्तीः मन्द्रा गिरः** — हमारी वाणियाँ देवत्वको

४ धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा ऽऽ न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ १४९
५ अर्णांसि चित् पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत् सुपारा ।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः १५०

प्राप्त करनेकी इच्छा करती है, इसलिये तुम्हारे देवत्वका वर्णन वे कर रही हैं, इस कारण वे आनन्द देती हैं। तुम्हारे देवत्वके शुभ गुण काव्यरूपमें वर्णन करनेसे वे गुण अपनेमें धारण करनेकी स्फूर्ति हम में उत्पन्न होती है, और उन गुणोंके धारण करनेसे हमारे अन्दर देवत्व बढता जाता है। इस तरह तुम्हारा वर्णन स्तोताकी उन्नति करनेवाला होता है।

३ ते रायः पथ्या अर्वाची एतु -- तेरे धनके मार्ग सीधे हमारे पास पहुंचनेवाले हों। अर्थात् वह धन हमारे पास ही आ जावे।

४ ते सुमतौ शर्मन् स्याम — हम सब तेरी सुमतिमें रहकर सुखी हो जांय। तुम्हारी सुमति हमारे ऊपर रहे और हम सब प्रकारसे सुखी हो जांय।

[४] (१४९) (सुयवसे धेनुं न) उत्तम घास जहां है ऐसी गोशालामें रहनेवाली धेनुके पास जानेके समान (त्वा दुधुक्षन् वसिष्ठः) तेरा दोहन करके बहुत धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला वसिष्ठ (ब्रह्माणि उप ससृजे) बहुत स्तोत्र निर्माण करता है। (विश्वः त्वां इत् गोपतिं मे आह) सब लोग तू ही गौओंका स्वामी है ऐसा मुझे कह रहे हैं। (नः सुमतिं इन्द्रः अच्छ आ गन्तु) हमारे स्तोत्र सुननेके लिये इन्द्र सीधा हमारे पास आ जावे।

१ दुधुक्षन् सुयवसे धेनुं — दूध दुहनेकी इच्छा करनेवाला जहां घांस अच्छा है ऐसी गौशालामें रहनेवाली धेनुके पास जाता है। क्योंकि ऐसी धेनु पुष्ट होती है और उत्तम स्वादु दूध देती है। गौको उत्तम गौशालामें रखा जाय और उनको उत्तम घासका प्रबंध किया जाय। जिससे गौवें पुष्ट होकर अधिक दूध देती रहेंगी।

२ वसिष्ठः दुधुक्षन् ब्रह्माणि उप ससृजे -- वसिष्ठ धनकी कामनासे ज्ञानमय काव्य निर्माण करता है। इनके गानसे सुननेवालोंपर अच्छा प्रभाव होता है और वे धनको प्राप्त करनेके प्रयत्नमें लगे रहते हैं।

३ विश्वः इन्द्रं गोपतिं आह -- सब विश्व कहता है कि इन्द्रके पास बहुत गौवें हैं। जीवात्मा इन्द्र है और उसके पास इन्द्रिय रूपी गौवें है, राजा इन्द्र है उसके पास गौवें रहती हैं। सूर्य इन्द्र है उसके पास किरणें गौवें हैं।

४ नः सुमतिं इन्द्रः आगन्तु -- हमारी स्तुति सुननेके लिये इन्द्र आवे और हमें धन देवे।

[५] (१५०) (नव्यः इन्द्रः अर्णांसि) प्रशंसनीय इन्द्रने जलोंको (पप्रथाना) फैलाकर (सुदासे गाधानि सुपारा) सुदास राजाके लिये चलकर पार करने योग्य (अकृणोत्) किया, बनाया। (शर्धन्तं उचथस्य शिम्युं शापं) उत्साही उचथके शिम्युके पास शाप और तथा (सिन्धूनां अशस्तीः) नदियोंके घोर प्रशस्त महापूरको पहुंचने योग्य (अकृणोत्) किया, पहुंचाया।

१ इन्द्रः सुदासे अर्णांसि गाधा सुपारा अकृणोत् -- इन्द्रने राजा सुदासके लिये परुष्णी-रावी-नदीके अगाध जलोंको पार करने योग्य बना दिया। परुष्णी नदीको महापूर आया था, और सुदासकी सेना पार जा नहीं सकती थी। उस समय सुदासकी सहायताके लिये इन्द्र आया और उसने उतारके लिये नदीमेंसे मार्ग किया अथवा किसी अन्य युक्तिसे सुदासका सैन्य सुखसे नदीपार कर सके ऐसा प्रबंध किया। इसका बोध यह है कि महापूरके समयमें भी नदीके पार जानेके साधन अपने पास रखने चाहिये। अपना मार्ग कहीं भी रुकना नहीं चाहिये।

२ उचथस्य शापं, सिन्धूनां अशस्तीः शर्धन्तं शम्युं अकृणोत् — उचथके शापको, तथा नदियोंके महापूरके जलोंको शत्रुभूत शम्युके ऊपर भेजा अर्थात् नदियोंके जलोंने शत्रुका नाश किया और उसको कष्ट पहुंचाये। युद्धमें नदियोंके जल प्रवाह तथा अन्य आपत्तियां शत्रुको कष्ट दें ऐसा करना योग्य है। अपने लिये सुख हो और [illegible] खराबी हो ऐसा करना योग्य है।

६ पुरोळा इत् तुर्वशो यक्षुरासीद् राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद् विषूचोः १५१
७ आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः ।
आ योऽनयत् सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन् युधा नॄन् १५२

[६] (१५१) (यक्षुः पुरोळाः इत् तुर्वशः) यज्ञ करनेवाला प्रगतिशील तुर्वश राजा (आसीत्) था। (मत्स्यासः राये निशिताः अपि इव) मत्स्य लोग धन प्राप्तिके लिये सिद्ध जैसे थे। (भृगवः द्रुह्यवः च श्रुष्टिं चक्रुः) भृगु और द्रुह्य शीघ्र धन प्राप्तिके लिये स्पर्धा कर रहे थे। (विषूचोः सखा सखायं अतरत्) दोनों स्पर्धकों में मित्रने मित्रका संरक्षण किया।

१ तुर्वशः पुरोळाः यक्षुः आसीत् — तुर्वश पुरोडाश अन्न तैयार करके यज्ञ करना चाहता था। ' तुर्वश ' (तुर्-वश) त्वरासे वश करनेवाला, किसी कार्यको कुशलतासे सत्वर करनेवाला तुर्वश कहलाता है । ऐसा यज्ञ करनेकी इच्छा करता था। यह अपने कर्म कौशलसे धन प्राप्त करना चाहता है ।

२ मत्स्यासः राये निशिताः अपि इव — मत्स्य उनको कहते हैं कि जो अपने जीवनके लिये दूसरोंको निगलते हैं, खाते हैं। ' मत्स्य-न्याय ' उसको कहते हैं कि जहां बडा छोटेको खाजाता है। जीवन कलहमें बडा छोटेको खाता है । वह बडा है इसीलिये वह छोटेको खायगा । जो ऐसा आचरण करते हैं उनका नाम मत्स्य होता है । ये मत्स्यवृत्तिके लोग धन प्राप्त करनेके लिये तीक्ष्ण होकर आपसमें स्पर्धा करते रहते हैं। प्रत्येक अपने आपको अधिक योग्य सिद्ध करता रहता है और दूसरेको अपनेसे कम दिखाता है और उस कारण वह धन कमाता है। इस तरह मत्स्य लोगोंमें सतत स्पर्धाका जीवन रहता है। स्पर्धा करना और दुर्बलोंको खानाही उनका जीवनका मध्य बिन्दु होता है।

३ भृगवः द्रुह्यवः श्रुष्टिं चक्रुः — भृगु और द्रुह्युमें सत्वर धन प्राप्ति करनेकी स्पर्धा रहती है। ' भृ-गु ' अपने भरण पोषणके लिये जो हलचल करते हैं ' वे भृ-गु ' हैं। (भृ) भरणपोषणके लिये जो (गु) अपनी गति करते हैं, अपने प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा करते हैं वे भृगु हैं । आजीविका के लिये सदा प्रयत्न करना ही इनका कार्य होता है । ' द्रुह्यु ' वे हैं कि जो द्रोह करते हैं, घातपात करते हैं, डाका डालते हैं । भृगु-जीवन निर्वाहकी चिंतामें रहते हैं और द्रुह्यु द्रोह करके, घातपात करके अपनी आजीविका करते हैं । ये सब प्रत्येक अपनी पराकाष्ठा करके धन शीघ्रसे शीघ्र कमानेके यत्नमें रहते हैं ।

४ विषूचोः सखा सखायं अतरत् — इन परस्पर विरोधियोंमें जो मित्र होता है वह अपने मित्रका तारण करता है । उक्त स्पर्धा करनेवालोंमें मित्र और शत्रु होते ही हैं । जो जिसका मित्र होता है वह अपने मित्रको संकटसे तारता है ।

यहां धन कमानेवालोंके कई वर्ग हैं । वे ये हैं—

(अ) तुर्वशः यक्षुः -- सत्वर कुशलतासे अपना कर्म करनेवाला, यज्ञकर्म कुशलतासे करनेवाला,

(आ) मत्स्यासः — अपने जीवनके लिये दूसरोंको खानेवाले,

(इ) भृ-गुः — अपने भरणपोषणके लिये हलचल करनेवाले,

(ई) द्रुह्युः — द्रोहकारी, घातपात कर्ता, डाकु,

(उ) सखा सखायं अतरत् -- कठिन समयमें सहायक होता है वह मित्र है ।

ये सब धन मनुष्य प्राप्त करना चाहते हैं । इनमें ' तुर्वश ' त्वरासे कुशलताद्वारा कर्म करनेवाला और ' सखा ' मित्रकी सहायता करनेवाला ये श्रेष्ठ हैं । इन्द्र इनका सहायक होता है । ये सब लोग इस समय भी समाजमें दिखाई देते हैं। परमेश्वर इनमेंसे तुर्वशकी सहायता करता है । इसलिये त्वरासे कुशलता द्वारा कर्म करनेकी पराकाष्ठा करना मनुष्यके लिये योग्य है। ऐसे कुशल मनुष्योंपर प्रभुकृपा होती है ।

[७] (१५२) (पक्थासः) हविष्यान्नका पाक यज्ञके लिये करनेवाले, (भलानसः भल-आनसः) सुन्दर प्रसन्न मुखवाले, (अलिनसः) अलिन, तपके कारण क्षीणशरीर, (विषाणिनः) सींग हाथमें लेनेवाले, खुजली करनेके लिये अथवा शत्रुपर प्रहार करने-

८ दुराध्यो३ अदितिं स्रेवयन्तोऽचेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीम् ।
मह्नाविव्यक् पृथिवीं पत्यमानः पशुष्कविरशयच्चायमानः १५३
९ ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाशुश्चनेदभिपित्वं जगाम ।
सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः १५४

…के लिये हाथमें कृष्ण मृगका सींग लेनेवाले, (शिवासः) सब जनोंका कल्याण करनेकी कामना मनमें धारण करनेवाले इन्द्रकी (आ भनंत) प्रशंसा करते हैं। (यः आर्यस्य सधमाः गव्याः) जो इन्द्र आर्यकी साथ रहनेवाली गायोंके झुण्डोंको (तृत्सुभ्यः आ अनयत्) हिंसक शत्रुओंसे वापस लाता है। और उसने (युधा नॄन् अजगन्) युद्धसे उन शत्रुके वीरोंपर आक्रमण करके उनका वध किया।

इन्द्रकी प्रसन्नता करनेके लिये यज्ञमें उत्तम अन्नका (पक्तासः) पाक करनेवाले, (भल--आनसः) यज्ञ हो रहा है यह देखकर जिनके मुखपर प्रसन्नता दीखती है, (अलीनसः) जो यज्ञमें आवश्यक परिश्रमके कारण क्षीण हो रहे हैं, (विषाणिनः) जो हाथमें सींग रखते हैं, शरीरपर खुजली करनेके लिये जिन्होंने हाथमें सींग लिया है, (शिवासः) सब कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले ये सब याजक इन्द्रके गुण गाते हैं। ये गुण ये हैं—

१ यः आर्यस्य सधमाः गव्याः तृत्सुभ्यः आ अनयत् — यह इन्द्र आर्योंके घरोंमें घरवालोंके साथ रहनेवाली गौवें हिंसक शत्रुओंसे वापस लाता है और जिसकी थी उनको वापस देता है। राजाका यह कर्तव्य है कि वह चोरको ढूंढ निकाले और उससे चोरीकी वस्तुएं प्राप्त करे और जिसकी वह थी उसको वापस देवे।

२ अजगन्, नॄन् युधा — शत्रुओंपर आक्रमण करे और शत्रुके वीरोंका वध युद्धमें करे।

इन्द्र ये कर्म करता है। मनुष्य ये कर्म देखे और वैसे कर्म करे और इन्द्र जैसे पराक्रम करे।

'सध-माः गव्यः' ये पद बता रहे हैं कि गौवें घरके घरवालोंके समान आर्योंके घरमें रहती थीं। जैसी माताएं वैसी ही गोमाताएं घरमें रहती थी। गौको घरके कुटुंबका अंग माना जाता था। और गौका इतना संमान होता था। गौ घरके परिवारका एक सदस्य थी।

[८] (१५३) (दुराध्यः अचेतसः) दुष्टबुद्धिवाले मूढ शत्रु (अदितिं परुष्णीं) अन्न देनेवाली परुष्णी नदी-रावी नदीके तटको (स्रेवयन्तः वि जगृभ्रे) तोडते रहे। उस इन्द्रने (मह्ना पृथिवीं आविव्यक्) अपने सामर्थ्यके द्वारा पृथिवीको व्याप दिया। अर्थात् उसका यश पृथिवीपर फैल गया। और शत्रुरूपी (चायमानः कविः पत्यमानः पशुः अशयत्) चायमानका कवि वीर पशु जैसा सोया, अर्थात् इन्द्रके द्वारा उसका वध हुआ।

दुष्ट शत्रुने आक्रमण किया, उस समय शत्रुओंने परुष्णी नदीके तटोंको, बन्धारोंको तोड दिया, जिससे नदीका जल इतस्ततः फैल गया और बडी हानि हुई। युद्धमें शत्रु ऐसा करते ही रहते हैं। अपने पास उनका निवारण करनेकी योजना तैयार चाहिये। इन्द्रके पास ऐसी योजना थी, इसलिये इन्द्रने उस संरक्षक योजना द्वारा संरक्षक किया, जिससे उसका यश पृथिवीभर फैल गया। पश्चात् इन्द्रने शत्रुपर आक्रमण किया। शत्रु (चायमानः) अपने स्थानसे उखाडा गया और स्थानभ्रष्ट होनेके कारण (पत्यमानः) भाग रहा था। यद्यपि वह (कविः) ज्ञानी था, तथापि (पशुः) पाशवी बलसे युक्त था, पाशवी बलकी घमेंड उसमें था। इसलिये इन्द्रने उसको पशु जैसा मारकर गिरा दिया।

शत्रुके साथ, शत्रुका आक्रमण होनेके पश्चात्, किस तरह व्यवहार करना चाहिये और उसका नाश किस तरह करना चाहिये यह इस मन्त्रमें कहा है। इस दृष्टीसे इस मंत्रका विचार करना चाहिये।

[९] (१५४) इन्द्रने परुष्णीके जलप्रवाहोंको पहिलेके समान (अर्थं ईयुः) योग्य मार्गसे चलाया और (न्यर्थं परुष्णीं न ईयुः) अयोग्य मार्गसे परुष्णीके प्रति नहीं जाने दिया। (आशुः चन इत्) उसका शीघ्रगामी घोडा भी (अभिपित्वं

१० ईयुर्गावो न यवसादगोपा यथाकृतमभि मित्रं चितासः ।
पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च १५५
११ एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान् राजा न्यस्तः ।
दस्मो न सद्मन् नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् १५६

जगाम) अपने जानेके मार्गसे ही गया । (इन्द्रः सुदासे) इन्द्रने सुदासके लिये (मानुषे) मनुष्य लोकमें रहनेवाले (वध्रिवाचः सुतुकान् अमित्रान् अरंधयत्) व्यर्थ बडबड करनेवाले, उत्तम पुत्रवाले शत्रुओंको मार दिया।

१ इन्द्रने परुष्णीके दोनों ओरकी बाजुओंकी दिवारोंको ठीक किया और परुष्णी नदीका पानी जैसा पहिले बहता था, वैसा बहने योग्य बना दिया । इससे जो खेतोंकी हानि होना संभव थी वह हानि नहीं हुई । और खेतोंका संरक्षण हुआ ।

२ इससे घोडे गाडियां जानेके मार्ग भी ठीक हो गये ।

३ इन्द्रने सुदास राजाके लिये शत्रुओंको उनके पुत्रों समेत विनष्ट किया ।

यहां बताया है कि राजा नदी और नहरोंकी उत्तम व्यवस्था रखे । नदीके और नहरोंके बंध शत्रुने तोड दिये, तो उनको अतिशीघ्र ठीक करे और जलसे खेतोंको हानि न पहुंचे ऐसा करे । और दुष्ट शत्रुओंको संपूर्णतया विनष्ट कर देवे । ताकि उनमेंसे दुःख देनेके लिये एक भी अवशिष्ट न रहे । यहां राजनीतिका पाठ उत्तम स्पष्ट शब्दों द्वारा दिया है ।

[१०] (१५५) (पृश्नि-निप्रेषितासः) माताके द्वारा प्रेरित हुए (चितासः) उत्तम संगठित हुए (पृश्निगावः) नाना वर्णवाली गौवें जिनके पास हैं, ऐसे मरुत् वीर (यथाकृतं) जैसा पहिले किया था वैसा सहाय्य करनेके निश्चयसे (मित्रं) मित्र इन्द्रके पास (यवसात् अगोपाः गावः) जौ के खेतके पास गवालियेके विना रही गौवें जाती हैं, वैसे (अभि ईयुः) गये। (रंतयः नियुतः च श्रुष्टिं चक्रुः) आनंदित हुए मरुतोंके घोडे भी चपलतासे अच्छी दौड करने लगे।

पूर्वोक्त प्रकार सुदासके संरक्षणार्थ इन्द्र युद्धमें तत्पर हो रहा है, यह देखकर उत्तम संगठित हुए मरुद्वीर भी इन्द्रके सहायातार्थ दौडे । सैनिकोंका कर्तव्य यहां बताया है । मुख्य वीर युद्ध कर रहा है यह देखकर उसके सहायकोंको उचित है कि वे उस मुख्य वीरकी सहायता करनेके लिये उद्यत हों । (अ-गोपा गावः) जिनके लिये गवालिया नहीं हैं ऐसी स्वतंत्र गौवें जिस तरह घासवाली भूमिके पास दौडती हैं, वैसे ये वीर अपने नेता वीरके सहायातार्थ दौडे। यह उपमा बहुत ही अच्छी उपमा है घोडोंपर चढे वीर भी इसी तरह दौडें और अपने प्रमुख नेताकी सहायता करें ।

' पृश्निगावः ' गौका दूध पीनेवाले ये मरुद्वीर हैं, (चितासः) चित्तवाले, ज्ञानी तथा संगठित हैं । (पृश्नि-निप्रेषितासः) माताके द्वारा प्रेरित हुए ये वीर हैं । माताएं भी अपने पुत्रोंको युद्धमें जानेका उपदेश करें । राष्ट्रके वीर किस तरह तैयार रहें यह यहां बताया है ।

[११] (१५६) (यः राजा श्रवस्या) इस राजाने यशकी इच्छासे (वैकर्णयोः एकं च विंशतिं च जनान्) वैकर्ण राष्ट्रोंके इकीस वीरोंका (नि अस्तः) वध किया। जैसा (दस्मः न) दर्शनीय पुरुष (सद्मन् बर्हिः नि शिशाति) अपने घरमें दर्भोंको काटता है। ऐसे युद्धोंके लिये ही (शूरः इन्द्रः एषां सर्गं अकरोत्) शूर इन्द्रने इन मरुतोंको निर्माण किया था।

मानवधर्म– दुष्ट शत्रुओंके वीरोंका नाश शूरवीर ऐसा करें कि जिस तरह याजक यज्ञशालामें दर्भोंको काटते हैं । इसी कार्य करके लिये शूरोंका जन्म है ।

१ राजा श्रवस्या वैकर्णयोः जनान् नि अस्तः–राजा क्षत्रिय यशकी इच्छासे विकर्ण–न सुननेवाले शत्रुके लोगोंका वध करे । क्षत्रिय यशके लिये शत्रुका नाश करे ।

' विकर्ण ' उनको कहते हैं कि जो वारंवार समझानेपर भी बिलकुल सुनते नहीं हैं । संधि करनेके समय ' हां ' कहते हैं, पर पीछेसे वैसे ही उद्दण्डतासे वर्तते हैं । समझानेपर भी जान बूझ कर शत्रुता छोडते नहीं ।

१२ अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्युं नि वृणग्वज्रबाहुः ।
वृणाना अत्र सख्याय सख्यं त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा १५७
१३ वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पुरुं विदथे मृध्रवाचम् १५८

२ दस्मः सद्मन् बर्हिः नि शिशाति- तरुण सुंदर याजक यज्ञशालामें - घरमें दर्भोंको काटता है, वैसे शत्रुको काटा जाय।

३ शूरः इन्द्रः एषां सर्गं अकरोत्- शूर वीर इन्द्रने- प्रभुने- इन वीरोंको इस शत्रु निर्दालनके कार्यके लिये ही निर्माण किया है वीरोंका यही कार्य है कि वे शत्रुको दूर करे।

[१२] (१५७) (अध वज्रबाहुः) इसके पश्चात् वज्रधारी इन्द्रने (श्रुतं कवषं वृद्धं द्रुह्युं अनु) श्रुत, कवष, वृद्ध और द्रुह्यु इनको क्रमसे (अप्सु निवृणक्) जलमें डुबा दिया। (अत्र ये त्वायन्तः त्वा अनु अमदन्) इस समय जिन्होंने तेरे अनुकूल रहकर तेरे लिये आनन्द होने योग्य कर्म किया, वे (सख्याय सख्यं वृणानाः) तेरी मित्रताको प्राप्त हुए।

शत्रुमित्रकी परिक्षा

मानवधर्म- विद्वान् या वृद्ध भी यदि द्रोहकारी हुए तो शस्त्रधारी वीर उन वशमें न आनेवाले शत्रुओंको नष्ट करे। जो लोग अनुकूलतासे रहकर आनन्द बढानेवाले सहायक मित्र हैं उनके साथ मित्रवत् बर्ताव करे।

१ वज्रबाहुः श्रुतं वृद्धं द्रुह्युं कवषं अप्सु निवृणक्— शस्त्रधारी संरक्षक वीर, द्रोहकारी शत्रु ज्ञानी तथा वृद्ध भी हुआ तो भी उस, वशमें न आनेवाले शत्रुको जलमें डुबा देवे, उसका नाश करे।

'**श्रुतं**' = जो बहुश्रुत विद्वान है, '**वृद्धं**' = जो आयुसे वृद्ध है, '**कवषं** = क-वशं' = जो वशमें नहीं रहता, जो कठिनतासे वश हो सकता है, '**द्रुह्युं**' = जो द्रोह करता है। शत्रु ज्ञानी वयोवृद्ध भी हुआ तो भी उसको क्षमा करना उचित नहीं है। उसका नाश करना ही चाहिये।

२ ये त्वायन्तः त्वा अनुअमदन् सख्याय सख्यं वृणानाः — जो अनुकूल रहकर आनंद बढाते हैं, सख्य करते हैं, उनसे मित्रता करनी चाहिये।

इस मंत्रमें राजनीतिका उत्तम पाठ दिया है। जो सदा शत्रुता करनेवाले द्रोही दुष्ट हैं, वे विद्वान् हों, वृद्ध हों अथवा अन्य रीतिसे पूज्य भी हों, तो भी उनका नाश करना चाहिये। तथा जो अपने साथ मित्रता करता हैं, समय पर सहायता करता है, आनन्द बढाने योग्य व्यवहार करता है, उनके साथ मित्रता करनी चाहिये और उनका हित करना चाहिये।

[१३] (१५८) (एषां विश्वा दृंहितानि पुरः) इन शत्रुओंके सब सुदृढ नगरोंके (सप्त सहसा सद्यः विदर्दः) सातों प्राकारोंको बलसे तत्काल तोड दिया, और (अनवस्य गयं तृत्सवे वि भाक्) शत्रुभूत अनुके घरको तृत्सुको दिया। हमने (मृध्रवाचं पुरुं जेष्म) असत्यवादी मनुष्योंपर विजय किया।

मानवधर्म - शत्रुओंके सब कीलों और नगरोंको तथा सब प्राकारोंको तोड दो, शत्रुओंके स्थान मित्रोंको दो और असत्य व्यवहार करनेवालों पर विजय प्राप्त करो।

१ एषां विश्वा दृंहितानि पुरः सप्त सहसा सद्यः विदर्दः—इन शत्रुओंके सब कीले, नगर आदिके सब सातों प्राकारोंको अपने बलसे तत्काल तोड दो। अपना बल इतना बढाओ कि जिससे शत्रुके कीले तोडना सहज हो जाय।

२ अनवस्य गयं तृत्सवे वि भाक्—शत्रुके स्थान मित्रोंको दो। शत्रुका नाश करके वहां मित्रोंका निवास हो ऐसे करो।

३ मृध्रवाचं पुरुं जेष्म—असत्य भाषी मनुष्योंपर हमारा विजय हो। हम इस तरह उत्तम व्यवहार करते रहेंगे कि जिससे असद्व्यवहार करनेवालोंका पराजय ही होता रहे।

१४ नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि १५९
१५ इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः ।
दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे १६०
१६ अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम् ।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः १६१

---

[१४] (१५९) (गव्यवः अनवः द्रुह्यवः च) गौओंको चुरानेवाले अनु और द्रुह्युके अनुयायी (षष्टिः शता षट् सहस्रा षष्टिः च अधि षट् वीरासः) छियासठ हजार, छियासठ वीरोंको (दुवोयु नि सुषुपुः) सहायकोंके हित करनेके लिये निःशेष मारे गये, (विश्वा इत्) ये सभी (इन्द्रस्य वीर्या कृतानि) इन्द्रके किये पराक्रम हैं।

मानवधर्म – धन लूटनेवाले डाकू और द्रोहकारी शत्रु सहस्रोंकी संख्यामें रहे तो भी उनको निःशेष करना चाहिये।

१ गव्यवः द्रुह्यवः अनवः नि सुषुपुः—गौवें चुरानेवाले द्रोही तथा उनके अनुकूल रहनेवाले उनके साथी दुष्टोंको निःशेष सुलाया, उनका वध किया। इनका नाश ही करना चाहिये।

[१५] (१६०) (एते दुर्मित्रासः तृत्सवः) ये दुष्टोंके साथ मित्रता करनेवाले बाधाकारी शत्रु (प्रकलवित्) विशेष युद्ध कलाको जाननेवाले (इन्द्रेण वेविषाणाः सृष्टाः) इन्द्रके द्वारा अन्दर घुसकर हटाये गये शत्रु (आपः न नीचीः अधवंत) जलप्रवाहोंके समान नीचे मुंह करके भागने लगे। (मिमानाः) मारे जानेपर (विश्वानि भोजना सुदासे जहुः) सब भोजन साधन रूप धनोंको सुदासके लिये छोडकर भाग गये।

मानवधर्म– दुष्टोंके साथ मित्रता करनेवाले बडे कला निपुण होनेपर भी शत्रु ही होते हैं। उनके अन्दर घुसकर उनका वध करना चाहिये, तथा उनको भगाना चाहिये। उनके अन्दर ऐसी घबराहट उत्पन्न करनी चाहिये कि वे जल प्रवाह जैसे नीचेकी ओर दौडते हैं, वैसे वे दौड कर भाग जांय और भागनेके समय उनके भोजन धन आदि उनको वहीं छोडने पडें।

१ दुर्मित्रासः तृत्सवः प्र-कल-वित्—दुष्टोंके मित्र विशेष कला निपुण होनेपर भी शत्रु ही समझने चाहिये। शत्रुके मित्र शत्रु ही होते हैं।

२ वेविषाणाः सृष्टाः नीचीः अधावंत—उनके अन्दर घुसकर उनको नीचे मुंह करके भगानेके योग्य घबराना चाहिये। उनको असावध अवस्थामें पकडकर मथना चाहिये और भगादेना चाहिये।

३ विश्वा भोजना जहुः—अपने भोजन छोडकर भाग जांय ऐसी घबराहट उनमें उत्पन्न करनी चाहिये।

[१६] (१६१) (इन्द्रः क्षां अभि) इन्द्र मातृभूमिको देखकर (वीरस्य अर्धं) वीरका नाश करनेवाले तथा (शृतपां शर्धन्तं अनिन्द्रं परा नुनुदे) हविष्यान्न खानेवाले विनाशक शत्रुका नाश करता रहा। (इन्द्रः मन्युभ्यः मन्युं मिमाय) इन्द्रने शत्रुता करनेवालेके शत्रुके क्रोधका नाश किया। और (पत्यमानः पथः वर्तनिं भेजे) भागनेवालेके मार्गका अवलंबन करनेके लिये शत्रुको बाधित किया।

मानवधर्म – मातृभूमिके हितका विचार मनुष्य करे। अपने वीरोंका नाश करनेवाले और अपने भोगोंका हरण करनेवाले शत्रुओंका नाश करना या इनको दूर करना चाहिये। शत्रुके क्रोधको निष्फल बनाना चाहिये और शत्रुको भागनेके मार्गसे भिन्न दूसरा कोई मार्ग रखना नहीं चाहिये।

१७ आध्रेण चित् तद्वेकं चकार सिंह्यं चित् पेत्वेना जघान ।
अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद् विश्वा भोजना सुदासे १६२
१८ शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम् ।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन् नि जहि वज्रमिन्द्र १६३

१ क्षां अभि—मातृ भूमिकी ओर ध्यान दो। प्रत्येक कार्य करनेके समय इसका परिणाम मातृ भूमिपर क्या होगा इसका विचार करो।

२ अनिन्द्रं वीरस्य अर्ध्यं शर्धन्तं परा नुनुदे—नास्तिक तथा वीर घातक हिंसाकारी शत्रुको दूर भगाना चाहिये।

३ मन्युम्यः मन्युं मिमाय— क्रोधी हिंसक शत्रुके क्रोधका नाश करना, अर्थात् उसके क्रोधको निष्फल करना चाहिये।

४ पत्यमानः पथः वर्तनिं भेजे—भागनेवालोंके मार्गका ही सेवन शत्रु करें। उनके लिये दूसरा मार्ग ही न रहे ऐसा करना चाहिये।

'अनिन्द्रः' (अन्-इन्द्रः) जो प्रभुको मानता नहीं, नास्तिक, ईश्वरको न माननेवाला शत्रु। 'मन्यु-म्यः' क्रोधसे हिंसा करने वाला। क्रोधी हिंसक शत्रु। 'शृत-पा' —सिद्ध किये अन्नको ले जाकर खानेवाला। ये सब शत्रुके लक्षण हैं।

[१७] (१६२) (तत् इन्द्रः आध्रेण चित् एकं चकार) तब इन्द्रने दरिद्रके द्वारा भी एक बडा दान कराया। (सिंह्यं चित् पेत्वेन जघान) प्रबल सिंहको भी बकरेसे मरवाया। (वेश्या स्रक्तीः अव अवृश्चत्) सूईसे स्तंभके कोने कटवा दिये। और (विश्वा भोजना सुदासे प्र अयच्छत्) सब भोग्य धन सुदासको दिये।

ये असंभवसे दीखनेवाले कर्म इन्द्रने अपनी शक्तिसे कराये। इसी तरह मनुष्यको उचित है कि वह अपनी शक्ति बढावे और असंभव कार्योंको भी सिद्ध करके दिखावे।

[१८] (१६३) हे इन्द्र! (ते शत्रवः शश्वन्तः रारधुः हि) तेरे बहुतसे शत्रु वशमें आ गये हैं। (शर्धतः भेदस्य रन्धिं विंद) स्पर्धा करनेवाले भेदकर्ताको वश करनेका उपाय प्राप्त कर। (यः स्तुवतः मर्तान् एनः कृणोति) जो भक्तोंके प्रति भी पाप करता है, (तस्मिन् तिग्मं वज्रं निजहि) उस शत्रुपर तीक्ष्ण वज्रका प्रहार कर।

मानवधर्म - शत्रुओंको वशमें कर, अपने समाजमें भेद करके आपसमें स्पर्धा करानेवालेका दमन कर, जो सज्जनोंके विरुद्ध भी पापका आचरण करता है उसको शस्त्रके प्रहारसे विनष्ट कर।

१ ते शत्रवः शश्वन्तः ररधुः—तेरे शत्रुओंको वशमें कर, वे शत्रुता न कर सकें ऐसे उनको शान्त कर।

२ शर्धतः भेदस्य रन्धिं विन्द—अपने समाजमें पक्षभेद निर्माण करनेवालोंको शान्त करनेका उपाय प्राप्त कर। अपने समाजमें रहकर अनेक पक्षभेद उत्पन्न करते हैं, आपसमें झगडते हैं और इस तरह संघटना नष्ट करते हैं। ये समाजके महा शत्रु हैं। इनको शान्त करना चाहिये। वे अपने समाजमें भेद उत्पन्न न कर सकें ऐसा प्रयत्न करना योग्य है। भेद उत्पन्न करनेवाले असफल रहें।

३ यः स्तुवतः मर्तान् एनः कृणोति—जो धार्मिक सदाचारी लोगोंको भी, स्वयं पाप करके, कष्ट देता है उसपर (तिग्मं वज्रं निजहि) तीक्ष्ण शस्त्र फेंककर उसका वध ही करना योग्य है। ऐसे असत्याचारी लोग समाजके लिये हानिकारक हैं।

शत्रुओंको दूर करना चाहिये। आपसमें फूट बढानेवालोंके षड्यंत्र असफल करने चाहिये, तथा आपसमें फूट नहीं होगी ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। समाज ऐसा सुसंस्कारसंपन्न करना चाहिये कि जो आपसमें फूट पाडनेवालोंके प्रयत्नोंको सफल होने न दे। तथा जो सज्जनोंके विषयमें भी पाप करता और उनको कष्ट देता है उसका वध शस्त्रसे करना चाहिये।

१९ आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत् ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि १६४
२० न त इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः ।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाऽवत्मना बृहतः शम्बरं भेत् १६५
२१ प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताऽधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् १६६

---

[१९] (१६४) (अत्र सर्वताता यः भेदं प्रमुषायत्) इस सर्वत्र फैले युद्धमें जिस इन्द्रने भेद करनेवाले शत्रुका वध किया, (तं इन्द्रं यमुना तृत्सवः च आवन्) इस इन्द्रका रक्षण यमुना और तृत्सुओंने किया। (अजासः च शिग्रवः यक्षवः च अश्व्यानि शीर्षाणि बलिं जभ्रुः) अज, शिग्रु तथा यक्षु लोगोंने प्रमुख घोडोंका प्रदान इन्द्रके लिये किया।

मानवधर्म – यज्ञमें उसको दूर करो कि जो आपसमें फूट निर्माण करता है। यम नियम पालन करनेवाले तथा संकटोंसे पार करनेवाले वीर अपने नेताका संरक्षण करें। हलचल करनेवाले, सत्वर कार्य करनेवाले तथा याजक ये सब अपने नेताको सहायता प्रदान करें और उसको युद्धमें प्राप्त किये उत्तम घोडोंका प्रदान करें।

'सर्वताता'–सर्वत्र फैलनेवाला यज्ञ तथा युद्ध। **'भेदः'**–समाजमें पक्ष भेद करनेवाला शत्रुका मनुष्य। **'यमुना'**–यमन, नियमन करनेवाले शासक। **'तृत्सवः'** संकटोंसे पार होनेवाले वीर। **'अजासः'**–हलचल करनेवाले वीर, (अजति इतिः अजः) सतत प्रयत्न शील जो होते हैं। **'शिग्रवः'**–सत्वर कुशलताके साथ कर्म करनेवाले। **'यक्षवः'** याजक, यजन करनेवाले।

१ सर्वताता भेदं प्रमुषायत्—सबका शक्ति-विस्तार करनेके कार्यके समय आपसमें फूट करनेवालेको दूर कर। आपसकी फूट बढेगी तो शक्तिका विकास नहीं होगा।

२ तं यमुना तृत्सवः आवन्—उस वीरको यमनियमोंके पालक तथा संकटोंसे पार करनेवाले वीर सुरक्षित रखें।

३ अजासः शिग्रवः यक्षवः अश्व्यानि शीर्षानि बलिं जभ्रुः—हलचल करनेवाले शीघ्रकारी याजक मुख्य श्रेष्ठ घोडोंका दान अपने नेताको करते है। शत्रुसे प्राप्त किये घोडे अपने नेताको अर्पण करते हैं।

[२०] (१६५) हे इन्द्र! (ते पूर्वाः सुमतयः न संचक्षे) तेरी पुरातन समयसे चली आयी शुभ कृपाएं अवर्णनीय हैं तथा (रायः) धन भी (उषसः न) उषाओंके समान (न संचक्षे) अवर्णनीय हैं तथा (नूत्नाः न) तुम्हारी नूतन कृपाएं भी अवर्णनीय हैं। (मान्यमानं देवकं चित् जघंथ) मान्यमान देवक शत्रुका तूने वध किया। और (त्मना बृहतः शंबरं अवभेत्) तूने स्वयं ही बडे पर्वतसे शंबर नामक असुर शत्रुका नाश किया।

१ पूर्वाः नूतनाः च सुमतयः न संचक्षे—पूर्व समयकी तथा इस समयकी कृपाएँ अवर्णनीय हैं। कृपा निष्कपट भावसे करनी चाहिये।

२ रायः न संचक्षे—धन भी नानाप्रकारके हैं और वे भी अवर्णनीय हैं। धन अनेक प्रकारके होते हैं और वे सब उपयोगी होते हैं।

३ मान्यमानं देवकं जघंथ—घमंडी गर्विष्ठ लोग ही जिसकी मान्यता करते हैं ऐसे दांभिक तुच्छ देवताके पूजकोंको' अर्थात् श्रेष्ठ एक देवकी भक्ति श्रद्धासे न करनेवाले शत्रुका वध करना योग्य है। देव, देवक इनमें 'देव-क' शब्द तुच्छ देवकी पूजाके निषेध अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। 'देवक' का अर्थ 'छोटा देव' है। हीन पूजक शत्रु।

४ बृहतः शंबरं अव भेत्—बडे पहाडपर रहकर युद्ध करनेवाले शत्रुका नाश करना योग्य है।

[२१] (१६६) (ये पराशरः शतयातुः वसिष्ठः) जो पराशर, सैंकडों राक्षसोंका सामना करनेवाला वसिष्ठ ये (त्वायाः) तेरी भक्ति करनेवाले ऋषि

२२ द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् १६७
२३ चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके ।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति १६८

(गृहात् प्र अममदुः) घरघरमें तुझे संतुष्ट करते हैं। (ते भोजस्य सख्यं न मृषन्त) वे ऋषि भोजन देनेवाले तुम्हारी मित्रताका विस्मरण नहीं होने देते। (अध सूरिभ्यः सुदिना वि उच्छान्) इन ज्ञानियोंको उत्तम दिन प्राप्त हों।

पराशर तथा वसिष्ठ ये ऋषि ऐसे हैं कि जो सेंकडों राक्षसोंका सामना करनेवाले (शत-यातुः) थे। ' परा-शर ' वह है कि जो दूरतक शर संधान कर सकता है और ' वसिष्ठ ' वह है कि जो शत्रुओंके हमले होनेपर भी (वसति इति वसिष्ठः) अपने स्थानपर रहता है। ये दोनों गुण विजयके लिये आवश्यक हैं। दूरसे बाणोंका प्रयोग करनेसे दूरसे ही शत्रु भाग जायगा अथवा विनष्ट होगा। तथा अपना स्थान न छोडनेवाला भी शक्तिशाली चाहिये। ऋषियोंके आश्रम शस्त्रास्त्रोंसे संपन्न थे इस बातकी सूचना इन शब्दोंसे बोधित होती है। राक्षसोंका प्रतीकार करनेकी शक्ति ये अपनेमें रखते थे। इस कारण ही वनमें आश्रम करके ये अपना कार्य कर सकते थे।

१ गृहात् प्र अममदु—घर घरमें अपने नेताको संतुष्ट करते थे। अपने नेताका यश घर घरमें गाया जाता था। धर्मका प्रचार घर घरमें करना चाहिये यह इसका बोध है।

२ ते भोजस्य सख्यं न मृषन्त--भोग्य वस्तुओंका प्रदान करनेवाले प्रभुकी भक्तिसे वे दूर नहीं होते थे। वे उसका नित्य स्मरण रखते थे।

३ सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान्-ज्ञानियोंके लिये अच्छे दिन प्राप्त हों। ज्ञानी, विद्वान, सदाचारी, सज्जन जो होंगे उनके लिये उत्तम दिवस होने चाहिये। राज्य व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि जिसमें सज्जनोंकी सुरक्षा हो और उनके लिये अच्छे दिन मिलते रहें। और जो दुष्ट लोग हों उनके लिये कष्ट हों। उनका निर्दालन होता रहे।

[२२] (१६७) हे (अग्ने) अग्ने! (देववतः नप्तुः) देव भक्तके पौत्र (पैजवनस्य सुदासः) पिजवनके पुत्र सुदासकी (गोः द्वे शते) दो सौ गाइयाँ (वधूमन्ता द्वा रथा) वधुओंके साथ दो रथ (दानं रेभन्) इस दानकी प्रशंसा करता हुआ मैं (अर्हन्) योग्य (होता इव सद्म परि एमि) होता यज्ञगृहमें जाता है वैसा मैं अपने घरमें जाता हूं।

इस मंत्रमें एक राजासे सौ गौवें, दो रथ तथा रथके साथ कन्याएं दानमें मिलनेका उल्लेख है। इस तरहके दान ऋषियोंके आश्रमोंको मिलते थे जिनपर आश्रम चलते थे। ऐसे दान देने चाहिये यह इसका तात्पर्य है।

गौवें तो छात्रोंके दूध पीनेके लिये है। रथ और घोडे तो वाहनके कार्यके लिये हैं। पर वधूयें, कन्याएं क्यों दी हैं? प्रत्येक रथके साथ कन्याएं क्यों दी जाती थी यह एक अन्वेषणीय विषय है। ये कन्याएं यहां वसिष्ठ जैसे महातपस्वी ऋषिको मिली है। और वसिष्ठ तो श्रेष्ठसे श्रेष्ठ ऋषि हैं। इस लिये इसकी खोज विशेष मनन पूर्वक होनी चाहिये

[२३] (१६८) (पैजवनस्य सुदासः) पिजवनके पुत्र सुदास राजाके (स्मद्दिष्टयः कृशनिनः) दानमें दिये, सुवर्णके अलंकारोंसे लदे (निरेके ऋज्रासः) कठिन स्थानमें भी सरल जानेवाले ऐसे सुशिक्षित (पृथिवीस्थाः दानाः चत्वारः) पृथिवीपर प्रसिद्ध दानमें दिये चार घोडे (तोकं मा) पुत्रवत् पालनीय मुझ वासिष्ठको (तोकाय श्रवसे वहन्ति) पुत्रोंके पास यशके साथ जानेके लिये ले जाते हैं।

दो रथोंके साथ, प्रत्येक रथमें दो घोडे मिलकर, चार घोडे हुए। ये घोडे सुवर्णालंकारोंसे लदे थे। इससे अनुमान हो सकता है कि कितना धन वसिष्ठको एक ही समय मिला होगा। ऐसे दान मिलने चाहिये और देने चाहिये यह इसका तात्पर्य है।

२४ यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके १६९
२५ इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु १७०

(१९) ११ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः १७१

---

[२४] (१६९) **(यस्य श्रवः उर्वी रोदसी अन्तः) जिसका यश इस बडी द्यावा पृथिवीके अन्दर फैला है, (विभक्ता शीर्ष्णे शीर्ष्णे विबभाज) जो मुख्य मुख्य विद्वानोंको ऐसा ही धन देता है, (सप्त इन्द्रं न इत् गृणन्ति) सात लोक इन्द्रकी स्तुति करनेके समान इसकी प्रशंसा करते हैं । उसके शत्रु (युध्यामधिं सरितः अभीके नि अशिशात्) युध्यामधिका नदीके समीप वध हुआ ।**

ऐसा दान देना कि जिससे चारों ओर यश फैले । विद्वानों में जो श्रेष्ठ विद्वान हों उनको ही दान देना । विद्या विहीनको दान न देना । दानका यह नियम " **विभक्ता शीर्ष्णे शीर्ष्णे विबभाज** " दान देनेवाला श्रेष्ठसे श्रेष्ठ विद्वानको दान देवे इस मंत्रसे सिद्ध होता है ।

युध्यामधिं सरितः अभीके नि अशिशात्–शत्रुको युद्धमें नदीके समीप नष्ट किया । यहां नष्ट करना मुख्य है। नदीके समीप शत्रुका नाश किया जाय वा अन्यत्र किया जाय, यह तो महत्त्वकी बात नहीं हैं, पर शत्रु का वध करना चाहिये यह मुख्य विषय है ।

' युध्या-मधि ' उसको कहते हैं कि जो शत्रु युद्धसे ही सदा दुःख देता रहता है । नाना प्रकारसे कहनेपर सुनता नहीं और आक्रमण करता ही रहता है। ऐसे शत्रुका वध करना योग्य है ।

[२५] (१७०) हे (नरः मरुतः) नेता मरुद्वीरो! (इमं पितरं दिवोदासं न) उसके, पिता दिवोदास के समान ही इस (सुदासः अनु सश्चत) सुदास- की सहायता करो। (दुवोयु पैजवनस्य केतं अविष्टन) आशीर्वाद प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले पिजवन पुत्र सुदासके घरकी सुरक्षा करो। तथा इसका (क्षत्रं दूणाशं अजरं) क्षात्र बल बढता जाय कभी कम न हो।

राष्ट्रसुरक्षाका अमर संदेश

जो (मर्-उत्) मरनेतक उठकर लडते हैं वे वीर मरुत् हैं। ये ही युद्धके नेता हैं। युद्ध संचालन करनेकी विद्या ये जानते हैं। इसीलिये इनको ' नरः ' पुरुष कहते हैं। ये वीर्यवान् पुरुष वीर हैं। ये सब जनताके संरक्षक है। दाताकी सुरक्षा ये करते हैं।

राष्ट्रकी सुरक्षा करनेके लिये ' अ-जरं क्षत्रं दूणाशं ' क्षात्र-बल अविनाशी और बढनेवाला, शिथिल न होनेवाला चाहिये। यह इस सूक्तका अंतिम संदेश बडा स्मरण रखने योग्य है ।

[१] (१७१) **(यः तिग्मशृंगो वृषभो न भीमः) जो तीखे सींगवाले बैलके समान भयंकर (एकः विश्वाः कृष्टीः प्र च्यावयति) अकेला ही सभी शत्रुओंको स्थानसे भ्रष्ट कर देता है। (यः अदाशुषः शश्वतः गयस्य) जो दान न देनेवालेके अनेक घरोंको भी स्थान भ्रष्ट कर देता है, वह (सुष्वितराय वेदः प्रयंता असि) तू यज्ञ करनेवालोंके लिये धन देता है ।**

मानवधर्म – वीर तीक्ष्ण सींगवाले बैलके समान बलवान और भयंकर हो। वह सब शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट करे । कोई शत्रु अपने स्थानपर स्थिर न रह सके। कंजूस और

२ त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् १७२
३ त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् १७३
४ त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चाऽस्वापयो दभीतये सुहन्तु १७४

उदार लोगोंके स्थान भी अस्थिर रहें, ऐसे लोग राष्ट्रमें विष्ट होने न पावें । जो यज्ञ करता और दान देता है, सको पर्याप्त धन प्राप्त हो ।

१ एकः भीमः विश्वाः कृष्टीः प्रच्यावयति–अकेला चा वीर सब शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाड देता है ।

२ अदाशुषः शश्वतः गयस्य च्यावयिता--कंजूसोंके रोंका उखाडनेवाला वीर हो । कंजूस राष्ट्रमें न रहे ।

३ सुष्वि-तराय वेदः प्रयंता--यज्ञकर्ताको धन दो, ब लोग यज्ञकर्ताको धनका दान देते रहें । धनके अभावके ारण यज्ञ बंद करना न पडे । राष्ट्रके दाता लोग राष्ट्रमें यज्ञ ोते रहें इतना दान यज्ञकर्ताओंको देवें ।

[२] (१७२) हे इन्द्र! (त्वं ह त्यत् तन्वा शुश्रूषमाणः) तूने तब अपने शरीरसे शुश्रूषा करके (समर्ये कुत्सं आवः) युद्धमें कुत्सकी सुरक्षा की, (यत् आर्जुनेयाय अस्मै शिक्षन्) उस अर्जुनीके पुत्र कुत्सको धन दिया और (दासं शुष्णं कुयवं नि अरंधयः) दास शुष्ण और कुयवका नाश किया ।

'**दास**' उनको कहते हैं कि जो (दस उपक्षये) नाश करता है, घात पात करता है, लोगोंको नष्ट भ्रष्ट करता है। समाजमें उपद्रव मचाता है । '**शुष्ण**' वह है कि जो लोगोंके नों भोगों और सुखोंका शोषण करता है, अपने सुखके लिये दूसरोंको चूरता है । '**कु-यव**' वह है कि जो अपने बुरे सडे नोंको अच्छे बताकर लोगोंको देता है । इससे खानेवालोंके स्वास्थ्यका बिगाड होता है। इनका समाजके हितके लिये नाश करना चाहिये । समाजसे इनको दूर करना चाहिये ।

१ **तन्वा शुश्रूषमाणः समर्ये कुत्सं आवः**—स्वयं अपने प्रयत्नसे युद्धमें अपने अनुयायी कुत्सकी रक्षा की । अपने जो अनुयायी होंगे उनकी सुरक्षा करनी चाहिये ।

२ **दासं शुष्णं कुयवं निरंधयः**—घातपाती, शोषण कर्ता तथा बुरे रोगोत्पादक धान्यका व्यवहार करनेवालोंका नाश कर । इनको दूर कर ।

३ **शिक्षन्**—इनको उत्तम शिक्षा दो, उनपर शुभ संस्कार कर, जिससे ये वैसे घातपातके कर्म न कर सकें ऐसा कर ।

[३] (१७३) हे (धृष्णो) शत्रुधर्षक इन्द्र! तूने (धृषता वीतहव्यं सुदासं) अपने बलसे अन्नका दान करनेवाले सुदासका (विश्वाभिः ऊतिभिः प्र आवः) अनेक संरक्षणके साधनोंसे संरक्षण किया। (वृत्र हत्येषु क्षेत्र साता) वृत्रवध करनेके युद्धमें तथा क्षेत्रका बंटवारा करनेके समय (पौरुकुत्सिं त्रसदस्यु पुरुं च प्र आवः) पुरुकुत्सके पुत्र त्रसदस्यु तथा पुरुका संरक्षण किया ।

१ **धृषता विश्वाभिः ऊतिभिः प्रावः**—शत्रुको उखाडनेके बलसे सब सुरक्षाके साधनों द्वारा प्रजाका संरक्षण करो । अर्थात् शत्रुको उखाड दो और संरक्षणके साधनोंसे प्रजाका संरक्षण करो ।

२ **वृत्रहत्येषु क्षेत्रसाता पुरुं आवः**—युद्धोंमें तथा भूमिका बटवारा करनेके समयमें झगडे होते हैं, उस समय नागरिकोंका संरक्षण करना चाहिये । भूमिका बटवारा करनेके समयमें भाई भाईयोंमें झगडे होते हैं, उस समय योग्य विभाग करके झगडेकी जड दूर करनी चाहिये ।

[४] (१७४) हे (नृ-मनः) मनुष्योंके मनोंको आकर्षित करनेवाले इन्द्र! अथवा जिसका मन मनुष्योंका हित करनेमें लगा है ऐसे इन्द्र! (देव-

५ तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहञ्च वृत्रं नमुचिमुताहन् १७५

६ सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् १७६

वीतौ त्वं नृभिः भूरीणि वृत्रा हंसि) युद्धमें तू अपने वीरोंके द्वारा बहुत शत्रुओंको मारता है। हे (हर्यश्व) हरिद्वर्णके घोडोंवाले इन्द्र! तूने (दभीतये सुहन्तु) दभीतिके लिये वज्रके द्वारा दस्यु चुमुरि और धुनिको (नि अस्वापयः) सुलाया, मारा।

'नृ-मनः'—मनुष्योंका, प्रजाजनोंका हित करनेमें जिसका मन तत्पर रहता है, इसलिये प्रजाओंका मन जिसपर लगा है, जिसने प्रजाओंका मन आकर्षित किया है। 'देव-वीती'—देवोंका सत्कार जहां होता है, व्यवहार करनेवाले जहां एकत्रित होते हैं, वीर जहां एकत्रित होते हैं। यज्ञ, सभा अथवा युद्ध। 'हर्यश्व'—हरित् वर्णके घोडे जिसके रथको जोते हैं। 'सु-हन्तु' जिससे शत्रु अच्छी तरह काटे जाते हैं वह शस्त्र, तीक्ष्ण धारावाला शस्त्र। 'दस्युः'—घातपात करनेवाला, 'चुमुरि' (चु-मुरि)=चुभ चुभ कर, कष्ट दे देकर नाश करनेवाला, 'धुनिः'—हिलानेवाला, भगानेवाला, जो अपने निवास स्थानमें सुखसे रहने नहीं देता, ये सब समाजके शत्रु हैं। इनको दूर करना चाहिये। 'द-भीतिः'—दमनके कारण जो भयभीत हुआ है।

१ नृ-मनः—मनुष्योंका हित करनेमें अपना मन लगा। प्रजाका हित करनेमें तत्पर हो। प्रजाके मनोंको आकर्षित करो।

२ देववीतौ नृभिः भूरीणि हंसि—युद्धोंमें अपने वीरों द्वारा बहुत शत्रुओंका नाश कर।

३ दस्युं चुमुरिं धुनिं नि अस्वापयः—घातपाती, कष्टदायी और घबराहट करनेवाले शत्रुओंका वध कर। ये फिर न उठें ऐसा कर।

४ दभीतये भूरीणि हंसि—दमनके कारण जो भयभीत हुआ है उसकी सुरक्षा करनेके लिये बहुत दुष्टोंका वध कर। प्रजापर कोई दमन न करे ऐसा कर।

[५] (१७५) हे (वज्रहस्त) वज्रधारी इन्द्र! (तव च्यौत्न्यानि तानि) तेरे वे प्रसिद्ध बल हैं कि जो (यत् नव नवतिं च पुरः सद्यः) तूने शत्रुके नौ और नव्वे नगरोंका भेदन तत्काल ही किया था और (निवेशने शततमा आविवेषीः) अपने ठहरनेके लिये जब सौवी नगरीमें तूने प्रवेश किया उसी समय (वृत्रं च अहन्) वृत्रको तूने मारा और (उत नमुचिं अहन्) नमुचिको भी मारा।

मानवधर्म - शत्रुके कीलों और प्राकारों तथा नगरोंका नाश करना चाहिये और उनपर अपना स्वामित्व स्थापन करना चाहिये। तथा उनमें जो नाना रूपोंमें कष्ट देनेवाले शत्रु रहते हों उनका नाश करना चाहिये।

'वज्रहस्त'—हाथमें वज्र, तीक्ष्ण धाराका शस्त्र, धारण करनेवाला वीर। यह वीर 'नव च नवतिं च पुरः' शत्रुके निन्यानवे नगरियोंका भेदन करता है, नगरीके बाहरके कीलोंका तथा उनके प्राकारोंका नाश करके विजयी होकर उन नगरियोंमें प्रवेश करता है। और स्वयं सौवी नगरीमें प्रवेश करके वहां रहता है। 'वृत्र' (आवृणोति)—जो घेरकर हमला करता है वह वृत्र है और 'नमुचि', (न मुञ्चति) जो प्रयत्न करनेपर भी जो छोडता नहीं, किसी न किसी रूपमें वहां रहता और कष्ट देता ही रहता है वह 'नमुचि' है। ये सब शत्रु हैं। इनका नाश इन्द्र करता है।

[६] (१७६) हे इन्द्र! (ते रातहव्याय दाशुषे सुदासे) तुझे हव्य देनेवाले दानी सुदासके लिये (ता भोजनानि सना) जो तू भोगके योग्य धन दिये, वे सदा टिकनेवाले थे। हे (पुरुशाक) बहुत शक्तिमन् वीर! (वृष्णे ते) बलशाली ऐसे तुझे लानेके लिये रथको (वृषणा हरी युनज्मि) बलशाली घोडोंको जोतता हूं। (ब्रह्माणि वाजं व्यन्तु) स्तोत्र बलशाली ऐसे तेरे पास पहुंचें।

७ आ ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम १७७
८ प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् १७८

१ दाशुषे सना भोजनानि-- दाताके लिये उपभोग लेने योग्य शाश्वत टिकनेवाले भोग दो ।

२ पुरु-शाकः-- बहुत शक्तिवाला बन, बहुत सामर्थ्य अपनेमें बढाओ । 'वृषा '-- बलवान्, बैल जैसा शक्तिमान् ।

३ वाजं ब्रह्माणि व्यन्तु-- बलवान् वीरके पास प्रशंसाके वर्णन पहुंचे । बलवानकी ही प्रशंसा होती रहे ।

४ वृषणा हरी रथे युनज्मि-- बलवान घोडेमें रथको जोतता हूं । रथमें बलवान घोडे जोतने चाहिये ।

[७] (१७७) हे (सहसावन् हरिवः) बलशाली और घोडोंवाले इन्द्र ! (तव अस्यां परिष्टौ) तेरी इस प्रशंसामें (परादै अघाय मा भूम) दूसरोंसे सहाय्य लेनेका पाप हमसे न हो । (नः अवृकेभिः वरूथैः त्रायस्व) बाधा न करनेवाले संरक्षक साधनोंसे हमें बचाओ । (सूरिषु तव प्रियासः स्याम) ज्ञानियोंमें हम तेरे अधिक प्रिय बनें ।

मानवधर्म - मनुष्य शक्तिशाली बनें । दूसरेकी सहायतासे ही सब करनेका पाप न करें, अपनी शक्तिसे अपने कार्य करें, स्वावलंबन शील बनें । क्रूरतारहित संरक्षक साधनोंसे प्रजाजनोंका बचाव होता रहे और ज्ञानियोंमें भी अधिक विद्वान बनकर प्रभुके प्यारे भक्त बनें ।

१ सहसावन्-- परिश्रम सहन करनेकी शक्ति, शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति ऐसे अनेक शक्तियोंसे युक्त, ' हरिवः ' --घोडे पास रखनेवाला वीर ।

२ परादै अघाय मा भूम-- दूसरोंसे सहायता लेकर ही अपने कार्य करनेकी स्थिति (पर-आदा) यह अत्यंत निकृष्ट स्थिति है । अतः यह पापकी अवस्था है। ऐसी स्थितिमें हमें रहना न पडे । अर्थात् हम अपनी शक्तिसे ही हमारे सब कार्य करें, इतनी हमारी शक्ति बढी हो ।

३ अवृकेभिः वरूथैः त्रायस्व-- वृक क्रूरताका रूप है । अवृकसे क्रूरतारहित वीरताका बोध होता है । वरूथ संरक्षणके साधनोंका नाम है । क्रूरतारहित रक्षासाधनोंसे हमारा तारण हो ।

४ सूरिषु तव प्रियासः स्याम-- महा ज्ञानियोंमें हम अधिक ज्ञानवान् बनें और इस ज्ञानकी अधिकताके कारण हम प्रभुके प्यारे बनें ।

[८] (१७८) हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते अभिष्टौ) तेरी स्तुति करते हुए (नरः सखायः प्रियासः शरणे इत् मदेम) हम सब नेता समान कार्य करनेवाले तुम्हें प्रिय होकर अपने घरमें आनन्दसे रहें । (अतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्) अतिथि सत्कार करनेवालेके लिये प्रशंसनीय सुखकी अवस्था निर्माण करके (तुर्वशं याद्वं नि नि शिशीहि) तुर्वश और याद्व इन शत्रुओंको अपने वशमें कर ।

मानवधर्म - धनवान बनो, क्योंकि धनसे सब कार्य होते हैं । अपने देशमें सुखसे रहो, अपने ही देशमें दुःख भोगनेका अवसर न आवे । अतिथिसत्कार करो । शत्रुओंको वशमें रखो, उनको बढने न दो ।

१ मघवान्-- धनवान् बनना चाहिये, क्योंकि धनसे ही सब कार्य होते है । ' मघवान् ' (इन्द्र) ही ' शतक्रतु ' सैंकडों कार्य करनेवाला होता है ।

२ सखायः प्रियासः नरः शरणे मदेम-- हम सब एक कार्य करनेवाले, परस्पर प्रीति करनेवाले नेता, अग्रगामी होकर कार्यको संपन्न करनेवाले होकर अपने स्थानमें आनंदसे रहें । दुःखमें न रहें । हमें अपने देशमें दुःख भोगना न पडे ।

३ अतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्-- अतिथि सत्कार करनेवालेका हित करो ।

९ सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै १७९
१० एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् १८०
११ नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १८१

---

४ **तुर्वशं याद्वं निशिशीहि**--त्वरासे वशमें होनेवाले और क्रूरकर्मा शत्रुओंको दूर करो। याद्व (यादोवान्)- जलोंमें जिसका स्थान है, द्वीपमें रहनेवाला शत्रु।

[९] (१७९) हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! **(ते नु अभिष्टौ उक्थशासः ये नरः सद्यः चित् उक्था शंसति)** तेरी स्तुति करनेके कार्यमें स्तोत्र **बोलनेवाले जो नेता तत्काल ही स्तोत्रोंको बोलते हैं। (ते हवेभिः पणीन् वि अदाशन्)** उन्होंने अपने **दानोंसे पण्य करनेवालोंको भी दान करनेवाले बना दिया है। (तस्मै युज्याय अस्मान् वृणीष्व) उस मित्रताके लिये हमारा स्वीकार कर।**

' **पणी** ' वे होते हैं कि जो पण्य करते हैं, वस्तुकी क्रय और विक्रय करते हैं। व्यापार व्यवहार करनेवाले ये है। ये अपना धन बढाना चाहते हैं। ऐसे लोगोंको भी (पणीन् वि अदाशन्) पण्यव्यवहारियोंको भी दाता बना दिया। यह परिणाम (हवेभिः) स्तुतिके काव्य पढनेसे हुआ। इसलिये इन्द्रकी स्तुति करनी चाहिये।

[१०] (१८०) हे (नृतम इन्द्र) नेताओंमें अत्यंत श्रेष्ठ इन्द्र! (तुभ्यं एते स्तोमाः मघानि ददतः) तुम्हें ये संघ धन देते हुए (अस्मद्र्यंचः) हमारी ओर आरहे हैं। (तेषां वृत्रहत्ये शिवः भूः) उनके लिये शत्रुका नाश करनेके युद्धमें तुम कल्याण करनेवाला हो, तथा उन (नृणां सखा च शूरः अविता च) मानवोंका मित्र और शूर संरक्षक हो।

मानवधर्म- मनुष्योंमें श्रेष्ठ बन। धनका दान कर। युद्धके समय मनुष्योंकी सहायता करके उनका कल्याण कर। मनुष्योंका संरक्षण कर और इसके लिये शूर बन और मनुष्योंके साथ मित्रवत् व्यवहार कर।

१ ' **नृतमः** '--नेताओंमें श्रेष्ठ नेता बन।

२ **मघानि ददतः अस्मद्र्यंचः**---धन देते हुए ये नेता हमारी ओर आरहे हैं। हमें भी ये धन देंगे और उस धनका हम यज्ञ करेंगे।

३ **वृत्रहत्ये तेषां शिवः भूः**-- युद्धमें उन दाताओंका कल्याण हो ऐसा करो। युद्धमें उनका नाश न हो।

४ **नृणां सखा शूरः अविता च भूः**---मानवोंका मित्र और शूर संरक्षक हो।

[११] (१८१) हे शूर इन्द्र! **(स्तवमानः (ब्रह्मजूतः) स्तुतिसे और ज्ञानसे प्रेरित होकर (तन्वा ऊती वावृधस्व) अपने शरीरसे और संरक्षणकी शक्तिसे बढता जा। (नः वाजान् उप मिमीहि) हमें अन्न और बल दो, (स्तीन् उप) हमें घर दो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभि पात) आप हमें सदा कल्याणोंसे सुरक्षित करो।**

मानवधर्म- मनुष्य शूर हों। देवता स्तुतिसे और ज्ञान विज्ञानसे उनको प्रशस्ततम कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती रहे। शरीर स्वस्थ नीरोग और बलवान बने और उनमें संरक्षण करनेका सामर्थ्य बढे। अन्न ऐसे प्राप्त हों कि जिससे बल बढे। रहनेके लिये उत्तम घर हों। मानवोंका कल्याण होकर उनका संरक्षण भी हो।

१ **शूरः**---नेता शूर हो, भीरु न हो

२ **स्तवमानः ब्रह्मजूतः**---स्तुति और ज्ञानसे उसको प्रेरणा मिले। प्रशस्त कार्य करनेकी प्रेरणा उसको **(स्तव)** ईशस्तुतिसे मिले तथा ज्ञानसे मिले! ईशस्तुतिसे ईश्वर जैसा बनूंगा इस भावसे सत्कर्मकी प्रेरणा मिलती है और ज्ञानविज्ञानसे भी प्रशस्त कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती है। वैसी प्रेरणा मिले।

(१०) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

१ उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत् करिष्यन्।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् १८२
२ हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् १८३

---

३ तन्वा ऊती वावृधस्व—अपना शरीर और अपने अन्दरकी संरक्षण करनेकी शक्ति बढायी जाय। देवता स्तुति और ज्ञानसे अपने शरीरके संवर्धनके उपाय तथा संरक्षणकी शक्ति बढानेके उपाय विदित हो सकते हैं।

४ वाजान् नः उपमिमीहि—अन्न और बल हमें प्राप्त हों। उत्तम बल बढानेवाले अन्न हमें मिलें और अन्न मिलनेपर उससे हमारे बल बढें। अन्नका उपयोग ऐसा किया जावे कि जिससे शरीरका बल बढे पर कभी न घटे।

५ स्तीन् उपमिमीहि— रहनेके लिये घर हों। विना घरके जीवित रहना पडे ऐसा कभी न हो।

६ स्वस्तिभिः नः पात—कल्याण करनेवाले साधनोंसे हमारी सुरक्षा हो। ऐसा न हो कि हम सुरक्षित तो हों पर हमारी हानि ही हानि होती जाय। तात्पर्य हमारा कल्याण भी हो और उत्तम संरक्षण भी हो।

[१] (१८२) (स्वधावान् उग्रः इन्द्रः वीर्याय जज्ञे) अपनी धारणा शक्तिसे युक्त वीर इन्द्र पराक्रम करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है। (नर्यः यत् करिष्यन् अपः चक्रिः) मानवोंका हित करनेकी इच्छासे जो कर्म करना चाहता है वह कर्म वह करता ही है। (नृषदनं युवा अवोभिः जग्मिः) मनुष्योंके स्थानमें यह तरुण संरक्षणके साधनोंसे जाता है। और (महः चित् एनसः नः त्राता) बडे पापसे हमारा संरक्षण करनेवाला है।

मानवधर्म-मनुष्य अपनी आन्तरिक धारणा शक्ति बढावे, उग्रवीर बने, मानवोंका हित साधन करनेके अर्थ आवश्यक पराक्रम करनेके लिये ही अपना जीवन है ऐसा समझे। मानवोंका हित साधन करनेके लिये जो प्रशस्त कर्म करने आवश्यक हों, उनको उत्तम रीतिसे करे, उनके करनेमें असावधानी न होने दे। मानवी समाजमें यह तरुण वीर अपने संरक्षक साधनोंके साथ जावे और उनका हित करे, उनको पतनके मार्गसे गिरने न दे, उनको बचावे, पापसे बचावे और सब प्रकारसे उनका कल्याण करके उनका संरक्षण करे।

१ स्व-धा-वान् उग्रः वीर्याय जज्ञे—(स्व) अपनी (धा) धारक शक्तिसे (वान्) युक्त, जिसके अन्दर अपनी निज शक्ति है, जो (स्वधा) अच्छा अन्न खाकर अपनी धारक शक्ति बढाता है। ऐसा (उग्रः) उग्र शूरवीर धीर प्रभावी तरुण पराक्रम करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है। यह केवल सुख भोगनेके लिये ही नहीं उत्पन्न हुआ, परंतु यह (नर्यः) जनताका हित करनेके लिये उत्पन्न हुआ है।

२ नर्यः यत् करिष्यन् अपः चक्रिः—(नर्यः नरेभ्यः हितः) मानवोंका हित करनेकी इच्छासे जो कार्य वह करना चाहता है वह (अपः चक्रिः) व्यापक कर्म वह कर ही छोडता है। 'अपः' आप्नोति व्याप्नोति इति अपः) जिसका परिणाम सब लोगोंतक पहुंचता है वह सार्वजनिक हितका कर्म '**अपः**' कहा जाता है। जैसा जल सर्वत्र फैलता है वैसा इस कर्मका परिणाम सब जनताका हित करता हुआ फैलता है।

३ युवा नृषदनं अवोभिः जग्मिः—यह तरुण वीर मनुष्य रहनेके स्थानके पास अपने सब संरक्षक साधनोंसे जाता है, और उनका उत्तम संरक्षण करता है। यह आदर्श तरुण है।

४ महः एनसः त्राता—बडे पापसे बचानेवाला यही है। जो ऐसे गुणोंसे युक्त तरुण होता है वही सच्चा संरक्षक है।

[२] (१८३) (इन्द्रः शूशुवानः वृत्रं हन्ता) इन्द्रः बढता हुआ वृत्रका वध करता है। (वीरः जरितारं नु ऊती प्र आवीत्) यह वीर स्तोताका संरक्षण अपने सुरक्षाके साधनसे करता है। (सुदासे लोकं कर्ता वै उ) सुदासके लिये लोगोंको,

३ युध्मो अनर्वा खजकृत् समद्वा शूरः सत्राषाड् जनुषेमषाळ्हः ।
व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान १८४
४ उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वाऽऽपप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः ।
नि वज्रमिन्द्रो हरिवान् मिमिक्षन् त्समन्धसा मदेषु वा उवोच १८५

नागरिकोंको, तैयार करता है। (दाशुषे अह वसु मुहुः दाता आ भूत्) दाताको धन वारंवार दे डालता है।

मानवधर्म- वीर सामर्थ्यसे बढे और शत्रुओंका नाश करें। वीर नागरिकोंका संरक्षण करें विशेष कर वीरकाव्योंके निर्माताओंको सुरक्षित रखें। राजाके लिये उत्तम नागरिक बना दें जिससे उनका राज्यशासन उत्तम रीतिसे चल सके। और जो उदार दाता हैं उनको वीर वारंवार धन देवे जिससे उनका दातृत्व खंडित न हो जावे।

१ शूशुवानः वृत्रं हन्ता—सामर्थ्यसे बढनेवाला वीर घेरनेवाले शत्रुका नाश करता है।

२ वीरः जरितारं ऊती प्रावीत्—वीर वीरोंके काव्यों-का गान करनेवालोंका अपनी रक्षासाधनोंसे संरक्षण करता है। वीरोंके काव्य सर्वत्र गाये जांय और उनके सुननेसे श्रोता लोग वीर बनें।

३ सुदासे लोकं कर्ता—उत्तम दान करनेवाले राजाके लिये उसके जनपदके नागरिकोंको शिक्षा और सुरक्षासे उत्तम नागरिक बनाता है।

४ दाशुषे मुहुः वसु दाता आभूत्—दाताके लिये वारंवार धनका दान करता है।

[३] (१८४) (युध्मः अनर्वा खजकृत्) योद्धा युद्धसे निवृत्त न होनेवाला युद्धमें कुशल (समद्वा शूरः जनुषा सत्राषाट्) युद्धमें जानेके लिये सिद्ध शूरवीर जन्मस्वभावसे ही शत्रुका पराभव करने-वाला (अषाळ्हः स्वोजाः ई इन्द्रः) स्वयं कभी पराभूत न होनेवाला उत्तम बलशाली यह इन्द्र (पृतनाः वि आसे) शत्रुकी सेनाको अस्तव्यस्त करता है। (अथ विश्वं शत्रुयन्तं जघान) और सब शत्रुके समान आचरण करनेवालोंका वध करता है।

मानवधर्म- वीर ऐसा हो कि जो (युध्मः) योद्धा हो, युद्ध करनेवाला हो, (अनर्वा) युद्धसे डरकर अथवा किसी अन्य कारण युद्धसे पीछे हटनेवाला न हो, (खज-कृत्) युद्ध करनेमें कुशल, (समत्-वा) युद्धमें जानेके लिये सदा सिद्ध, (शूरः) शूरवीर, (जनुषा सत्रा-साह) जन्मस्वभावसे शत्रुओंका पराभव करनेमें समर्थ, स्वभाव प्रवृत्तिसे ही युद्धमें साहस करनेवाला (अ-षाळ्हः) कभी पराभूत न होनेवाला, (स्वोजाः-सु ओजाः) उत्तम बलवान। ऐसा वीर ही शत्रुकी सेनाको तितर बितर कर देता है, उध्वस्त करता है। और शत्रुके समान दुष्ट व्यवहार करनेवालोंका नाश करता है।

अपने राष्ट्रमें ऐसे वीर निर्माण होने चाहिये। ऐसे वीर ही शत्रुका निःपात कर सकते हैं।

[४] (१८५) हे (तुवि-ष्मः इंद्र) बहुत धनसे युक्त इंद्र! (महित्वा ताविषीभिः) अपने महत्त्वसे और अपने बलोंसे तू (उभे रोदसी आ पप्राथ) दोनों द्यावा=पृथिवीको भरपूर भर देता है। (हरिवान् इंद्रः वज्रं नि मिमिक्षन्) घोडोंवाला इंद्र अपने वज्रको शत्रुओंपर फेंकता है और (मदेषु वै अन्धसा सं उवोच) यज्ञोंमें अन्नको प्राप्त करता है।

१ ' तुवि-ष्म ' बहुत धन प्राप्त करना।

२ महित्वा तविषीभिः आ पप्राथ—अपने महत्त्वसे और शक्तिसे सर्वत्र व्यापता है, सर्वत्र प्रसिद्धिको प्राप्त होता है।

३ हरिवान् वज्रं नि मिमिक्षन्—उत्तम घोडोंको अपने पास रखनेवाला घुडसवार वीर शत्रुपर वज्रको फेंकता है।

४ अन्धसा मदेषु समुवोच—अन्नरसको आनन्दके समयमें प्राप्त करता है। रसपान करता है।

५ वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः १८६
६ नू चित् स भ्रेषते जनो न रेषन् मनो यो अस्य घोरमाविवासात् ।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत् स राय ऋतपा ऋतेजाः १८७

पुत्र कैसा हो

[५] (१८६) (वृषा वृषणं रणाय जजान) **बलवान् पिताने बलवान् वीर पुत्रको युद्ध करनेके लिये उत्पन्न किया है, (नर्यं तं उ नारी चित् ससूव) मानवोंके हित करनेवाले उस पुत्रको स्त्रीने जन्म दिया। (अध यः नृभ्यः सेनानीः प्र अस्ति) और जो मानवोंका हित करनेवाला सेना नायक प्रभाव युक्त होता है वह (सः इनः) वह सबका स्वामी होता है वह (सत्वा) शत्रुनाशक (गवेषणः) गौओंको प्राप्त करनेवाला और (धृष्णुः) शत्रुओंका धर्षण करनेवाला है।**

मानवधर्म- पिता बलवान बने और बलवान् योद्धा पुत्र उत्पन्न करे, माता भी मानवोंका हितकर्ता, सेनापति होने योग्य वीर, प्रभावी, राजा होने योग्य, शत्रुनाशक, शत्रुको भय दिखानेवाला, शत्रुसे धन वापस लानेवाला पुत्र हो ऐसी इच्छा धारण करे ।

१ वृषा वृषणं रणाय जजान—बलवान पिताने अपने बलवान् पुत्रको युद्ध करके शत्रुनाश करनेके लिये उत्पन्न किया है। घर घरमें पिता स्वयं बलवान बने और अपनी संतान बलवान बनानेका यत्न करे ।

२ नारी नर्यं ससूव—स्त्री भी मानवोंका हित करनेमें समर्थ बलवान पुत्र निर्माण करे। इस तरह जहां पिता और पत्नी ये दोनों बलवान् शूर और युद्ध कुशल पुत्र निर्माण करना चाहती है वहां वैसे ही पुत्र उत्पन्न होगें ।

३ यः नृभ्यः सेनानीः प्र अस्ति--जो पुत्र मानवोंका हित करनेवाला और सेना संचालन करनेमें कुशल तथा प्रभावी नेता है, ऐसा पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा माता पिता करें ।

४ सः इनः सत्-वा गवेषणः धृष्णु--वह पुत्र स्वामी, शत्रुका नाश कर्ता, गौओंको शत्रुओंसे वापस लानेवाला और शत्रुका धर्षण करनेवाला हो । ऐसा पुत्र उत्पन्न करनेका प्रयत्न मातापिताको करना चाहिये ।

[६] (१८७) (यः अस्य घोरं मनः) **जो इस वीरके शूर मनको (यज्ञैः आ विवासत्) यज्ञों-द्वारा प्रसन्न करनेके लिये सेवा करता है (सः जनः नु चित् भ्रेषते) वह मनुष्य स्थानभ्रष्ट नहीं होता, और (न रेषत्) वह क्षीण भी नहीं होता । (यः इंद्रे दुवांसि दधते) जो इन्द्रके स्तोत्र धारण करता है, अपने पास रखता है, उसके लिये (सः ऋतपाः ऋते जाः) वह सत्यपालक और सत्यके लिये उत्पन्न हुआ इंद्र (राये क्षयत्) धन देता है।**

मानवधर्म- मनुष्य वीरके वीरता युक्त मनको प्रसन्न करें और वह वीर मनुष्योंको सुरक्षित रखे, सुस्थिर रखे तथा वह वीर सत्य पक्षका संरक्षण करे और उनके धनको सुरक्षित रखे ।

१ यः **अस्य घोरं मनः आ विवासत्, स जनः नुचित् भ्रेषते, न रेषत्**— जो इस वीरके शूर मनको प्रसन्न करता है वह अपने स्थानपर सुरक्षित रहता है और क्षीण भी नहीं होता है । सुरक्षित संपन्न अवस्थामें अपने स्थानमें वह रहता है।

२ यः **इन्द्रे दुवांसि दधते, सः ऋतपाः ऋतेजा राये क्षयत्**—जो इस वीरके काव्य गाता है उसको वह सत्य पालक और सत्यके लिये जन्मा वीर धन देता है ।

‘ **ऋतपाः** ’--वीरको सत्यका पालन करना चाहिये, सत्यका पक्ष लेना चाहिये । ‘ **ऋतेजाः** ’--सत्यको सुरक्षित रखनेके लिये ही अपना जन्म है ऐसा इस वीरने समझना चाहिये । ‘ **अस्य घोरं मनः** ’ वीरका मन घोर, साहसी, प्रभावी होना चाहिये, दुर्बल और निर्बल नहीं होना चाहिये ।

७ यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्षन्नयज्ज्यायान् कनीयसो देष्णम् ।
अमृत इत् पर्यासीत् दूरमा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः १८८
८ यस्त इन्द्र प्रियो जनो ददाशदसन्निरेके अद्रिवः सखा ते ।
वयं ते अस्यां सुमतौ चनिष्ठाः स्याम वरूथे अघ्नतो नृपीतौ १८९

[७] (१८८) हे (चित्र इंद्र) आश्चर्यकारक इंद्र ! (यत् पूर्वः अपराय शिक्षन्) जो धन पूर्वज वंशजको देता है, जो (देष्णं ज्यायान् कनीयसः अयत्) जो धन श्रेष्ठको कनिष्ठसे प्राप्त होता है, जो (अमृतः दूरं परि आसीत) धन मृत्युरहित होकर दूर देशमें जाकर धारण किया जाता है वह तीन प्रकारका (चित्र्यं रयिं नः आभर) विलक्षण धन हमें दे दो।

मानवधर्म- पितासे पुत्रको जो मिलता है, जो कनिष्ठ से श्रेष्ठको प्राप्त होता है, जो दूरके देशमें जाकर प्राप्त किया जाता है, ऐसे तीनों प्रकारके धन मनुष्योंको प्राप्त करने चाहिये ।

१ पूर्वः अपराय शिक्षन्--पूर्वज वंशजको जो देता है, जो पितासे पुत्रको मिलता है, बडा भाई छोटे भाईको जो देता है, जो बडेसे छोटेको मिलता है वह एक प्रकारका धन है ।

२ देष्णं कनीयसः ज्यायान् अयत्--जो धन कनिष्ठ से श्रेष्ठको मिलता है, जैसा प्रजा राजाको कर रूपसे देती है, पत्नीके घरसे पतिके घर आता है, सेवकके पाससे स्वामीके पास जो आता है वह एक प्रकारका धन है । यह धन देय धन होता है । देना ही चाहिये ऐसा यह धन है।

३ अमृतः दूरं परि आसीत--जो धन लेकर दूर दूरके देशमें जाकर वहां अमर जैसा रहकर जो व्यापार आदिसे बढाया जाता है वह भी एक धन है ।

४ चित्र्यं रयिं नः आभर--वह विलक्षण धन, उक्त तीनों प्रकारोंसे प्राप्त होनेवाला, हमें प्राप्त हो ।

यहां वंश परंपरासे प्राप्त होनेवाला धन कहा है । पिताका धन पुत्रको मिलता था, ऐसा यहां स्पष्ट रीतिसे दीखता है । दूसरा धन प्रजा राजाको देती है, भृत्य स्वामीको देता है, ऋणी श्रेष्ठीको देता है। तीसरा वह धन है कि जो देश देशान्तरमें जाकर प्राप्त किया जाता है, वहां व्यापार व्यवहार, कृषि आदि करके जो प्राप्त होता है । ऐसे तीन प्रकारके धन हैं । धन प्राप्त होनेके ये साधन हैं । मनुष्यको इन साधनोंसे जो धन मिलता है, वह प्राप्त करना चाहिये ।

[८] (१८९) हे इंद्र ! (यः ते प्रियः सखा जनः ददाशत्) जो तेरा प्रिय मित्रजन तुझे देता है, हे (अद्रिवः) किलोंमें रहनेवाले वीर ! वह (ते सखा) तेरा मित्र (निरेके असत्) तेरे दानमें रहे, उसे दान मिले । (वयं अघ्नतः ते सुमतौ चनिष्ठाः) हम अहिंसित होकर तेरी कृपामें रहकर अधिकसे अधिक अन्न युक्त, धनवान् (स्याम) हों और (नृपीतौ वरूथे) मानवोंकी सुरक्षा करनेके समय हम स्वस्थानमें सुरक्षित रहें।

मानवधर्म- मनुष्य परस्परकी सहायता करें । राष्ट्रकी सुरक्षाके लिये पर्वतों पर किले बनाये जांय और उनमें वीर रहें । सब लोग दुःखी कभी न हों, सब धनधान्य संपन्न हों । सब लोग सुरक्षित हों और अपने निवासस्थानमें आनन्द प्रसन्न रहें ।

१ प्रियः सखा ते ददाशत्--प्रिय मित्र तुझे दान देवे और ' निरेके ते सखा असत् ' --तेरा मित्र तेरे दानका संनिभागी हो । अर्थात् लोग परस्परकी सहायता करके उन्नत होते रहें ।

२ अद्रि-वः--(अद्रि-वान्) पर्वतके ऊपर किले बनाकर उसमें लोग रहें, वीर और सैनिक रहें और राष्ट्रका संरक्षण करें ।

३ अघ्नतः चनिष्ठाः वयं सुमतौ स्याम--हम दुःखी न होकर अत्यंत धनधान्यसे संपन्न होकर तेरी कृपाके भागी बनें । प्रभुकी कृपा हमपर सदा रहे ।

४ नृ-पीतौ वरूथे स्याम--जनताकी सुरक्षा करनेके कार्यमें और उनको उनके स्थानमें सुरक्षित रखनेके कार्यमें हम कार्य करनेवाले हों । हम यह कार्य करें ।

९ एष स्तोमो अचिक्रदद् वृषा त उत स्तोमुर्मघवन्नक्रपिष्ट ।
रायस्कामो जरितारं त आगन् त्वमङ्ग शक्र वस्व आ शको नः १९०

१० स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १९१

(२१) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु १९२

२ प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः ।
न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः १९३

---

[९] (१९०) हे (मघवन्) धनवान् इंद्र! (ते वृषा एषः स्तोमः अचिक्रदत्) तेरा बल बढानेवाला यह सोम शब्द करता है। (उत स्तोमुः अक्रपिष्ट) और स्तुति करनेवाला स्तुति करता है। (ते जरितारं रायः कामः आ अगन्) तेरी स्तुति करनेवाले मेरे पास धनकी कामना आ गयी है। हे (अंग शक्र) प्रिय इन्द्र! (त्वं वस्वः नः आशकः) तू धन हमें शीघ्र दे।

हे इन्द्र! तेरे लिये यह सोमका रस निकाला जा रहा है और निचोडनेका यह शब्द हो रहा है। इस समय स्तोत्र गान हो रहा है। मैं स्तोत्रका पाठ कर रहा हूं और मुझे धनकी इच्छा हुई है। अतः मुझे पर्याप्त धन दो।

यह सोम यज्ञका वर्णन है। सोमरस निकाला जा रहा है, स्तोत्र पाठ हो रहा है। यज्ञ चल रहा है। यज्ञकर्ता यज्ञके लिये धनकी प्राप्तिकी इच्छा कर रहे है।

[१०] (१९१) हे इन्द्र! (सः) वह तू (त्वयताया इषे नः धाः) तूने दिये अन्नका भोग करनेकी शक्ति हममें रहे। हमारा धारण कर, हमें सुरक्षित रखो। (ये च मघवानः त्मना जुनन्ति) जो धनी लोग हविर्द्रव्य तुझे देते हैं उनको भी सुरक्षित रखो। (ते जरित्रे वस्वी सु शक्तिः अस्तु) तेरी स्तुति करनेवालेको निवास करनेकी उत्तम शक्ति रहे। (यूयं सदा स्वस्तिभिः नः पात) आप सब सदा कल्याण करनेवाले साधनोंसे हमें सुरक्षित रखो।

१ नः इषे धाः—हम सबको अन्नके लिये धारण कर, प्राप्त अन्नका भोग करनेके लिये हमें सुरक्षित रख।

२ वस्वी शक्तिः सु अस्तु—सुखसे निवास करनेकी उत्तम शक्ति हमारे अन्दर रहे। हम सुखसे निवास कर सकें ऐसी उत्तम शक्ति हमारे अन्दर रहे।

३ नः स्वस्तिभिः पात—हमारा कल्याण हो और हम सुरक्षित भी हों। सुरक्षाके साथ कल्याण हो।

[१] (१९२) (देवं गोऋजीकं अन्धः असावि) दिव्य गोदुग्धसे मिश्रित सोमरस निचोडा गया है। (ईं इंद्रः अस्मिन् जनुषा नि उवोच) यह इंद्र इस सोमरसमें जन्म स्वभावसे ही संगत होते हैं, प्रीति रखते हैं। हे (हर्यश्व-हरि+अश्व) हरिद्वर्णके घोडोंको जोतनेवाले वीर! हम (त्वा यज्ञैः बोधामसि) तुम्हें यज्ञोंसे जगाते हैं, उत्साहित करते हैं। यहां (अन्धसः मदेषु नः स्तोमं बोध) सोमपानके आनन्दमें हमारे स्तोत्र पाठका श्रवण कर।

सोमयागमें सोम औषधिका रस निकालते हैं। उसमें गौओंका दूध मिला देते हैं। इस दुग्धमिश्रित सोमका अर्पण इन्द्रादि देवोंको करते हैं, इस समय वेद मंत्रोंका गान होता है, और पश्चात् इस रसका पान करते हैं। यह विधि इस मन्त्रमें है।

[२] (१९३) (यज्ञं प्रयन्ति) लोग यज्ञके पास जाते हैं। यज्ञशालामें (बर्हिः विपयन्ति) आसन फैलाये जाते हैं। (विदथे सोममादः दुध्रवाचः) यज्ञमें सोमकूटनेके पत्थर कूटनेका कठोर शब्द

३ त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
त्वद् वावक्रे रथ्यो३ न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा १९४

४ भीमो विवेषायुधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान् ।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोत् वि वज्रहस्तो महिना जघान १९५

करते हैं, सोम कूटा जाता है। (यशसः दूर-उपब्दः नृ-षाचः) यश देनेवाले, दूरसे जिनका शब्द सुनाई देता है, ऐसे मनुष्योंकी सेवा करनेवाले (वृषणः गृभात् नि म्रियन्ते) बल बढानेवाले सोम कूटनेके पत्थर घरमेंसे लिये जाते हैं।

इस तरह सोम कूटकर सोमका रस निकाला जाता है।

[३] (१९४) हे शूर इंद्र ! (त्वं अहिना परिष्ठिता पूर्वीः अपः) तूने वृत्रके द्वारा आक्रान्त होकर स्तब्ध हुए बहुतसे जल प्रवाह (स्रवितवा कः) प्रवाहित होनेवाले बना दिये। (धेना त्वत् रथ्यः न वावक्रे) नदियाँ तेरे कारण ही रथीवीरोंके समान चलने लगी। (विश्वा कृत्रिमाणि भीषा रेजन्ते) सब कृत्रिम भुवन तेरे भयसे कांपते हैं।

' अहि ' (अ+हि) कम न होनेवाला शत्रु अ-हि कहलाता है। जिस शत्रुका बल बढता ही जाता है, उसको अ-हि कहते हैं। यह शत्रु हमला करके जलस्थान, नदियाँ आदिपर अपना अधिकार स्थापित करता है, जिससे प्रजा जलसे वंचित रहती है। इन्द्र इस शत्रुको परास्त करता है, जलस्थानोंपर अपना अधिकार स्थापन करता है और जल प्रवाह सब लोगोंके लिये खुले करता है। इस भयंकर युद्धके कारण सब भुवन कांपने लगते हैं।

अहि, वृत्र आदि नाम मेघके अथवा बर्फके हैं। सर्दीके कारण तालाब नदियां बर्फ बनकर सख्त हो जाती हैं, पहाडोंके ऊपर बर्फ जम जाता है। बर्फ बननेके कारण जल बहता नहीं। जल जहांका वहां रुकजाता है। सर्दीका ऋतु समाप्त होते ही सूर्यका उदय होकर प्रखर ताप बढने लगता है। इस सूर्यके तापसे सर्दी दूर होती है और बर्फ पिघलनेके कारण नदियोंको महापूर आते हैं। यही अहि तथा वृत्रका मारा जाना है और नदियोंका चलने लगना है। इसका आलंकारिक वर्णन इन्द्र वृत्र युद्धके रूपमें वेदके मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं।

[४] (१९५) इन्द्रः नर्याणि विश्वा अपांसि विद्वान् इन्द्र लोगोंके हितके लिये करने योग्य सब कर्मोंको जानता है। (आयुधेभिः) भीमः एषां विवेष) शस्त्रोंसे भयंकर हुआ इन्द्र इन शत्रुसेनाओंके अन्दर प्रविष्ट होता है। और (पुरः विधुनोत्) शत्रुओंके नगरोंको यह कंपाता है। (जर्हृषाणः महिना वज्र-हस्तः विजघान) हर्षित होकर अपनी महिमासे वज्र हाथमें लेकर शत्रुका वध करता है।

मानवधर्म- सब मानवोंका हित करनेके लिये जो कर्म करने चाहिये उनको प्रथम जानना चाहिये। प्रचण्ड भयंकर शस्त्रोंको लेकर शत्रुसेनामें घुसना चाहिये और उनके नगरों और सेना शिबिरोंको मथना चाहिये। शत्रुपर वज्र प्रहार करके शत्रुका नाश करना चाहिये।

१ नर्याणि विश्वा अपांसि विद्वान्— मानवोंका हित करनेके लिये जो कर्म करना आवश्यक है वे कर्म अच्छीतरह इन्द्र जानता है। कौनसे कर्म मानवोंका हित करनेके लिये करने चाहिये, और उनको किस तरह करना चाहिये यह सब यह तरुण वीर जानता है।

२ भीमः आयुधेभिः एषां विवेश—यह प्रचण्ड भयंकर वीर आयुधोंको लेकर शत्रुसेनामें घुसता है और **' पुरः विधुनोत् '**—उनके नगरोंको मथता है। शत्रुके सब लोग कांपने लगते हैं।

३ जर्हृषाणः वज्रहस्तः महिना जघान-- प्रसन्न चित्तसे वज्र हाथमें पकडकर अपनी पूर्ण शक्तिसे शत्रुपर मारता है। और शत्रुको परास्त करता है।

*

५ न यातव इन्द्र जुजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः १९६

६ अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन् न ते विव्यङ् महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद् युधा ते १९७

---

[५] (१९६) हे इन्द्र! (यातवः नः न जुजुवुः) राक्षस हमारा घात पात न करें। हे (शविष्ठ) बलशाली वीर! (वंदना वेद्याभिः न) वंदन करके हमारे अन्दर रहनेवाले हमारे अन्तःशत्रु उनके जाननेके साधनोंसे हमारा नाश न कर सकें। (सः अर्यः विषुणस्य जन्तोः शर्धत्) वह आर्य इन्द्र विषम मनुष्य प्राणियोंपर भी अधिकार चलानेकी इच्छा करता है। (शिश्नदेवाः नः ऋतं अपि मा गुः) शिश्न पूजक, ब्रह्मचर्यका पालन न करनेवाले, हमारे यज्ञके पास न आजांय।

मानवधर्म- डाकू हमारे पास न आवें। गुप्तरीतिसे अपने आपको सज्जन बताकर, हमारे समाजमें रहकर, अन्दर ही अन्दरसे हमारा नाश करनेकी आयोजना करनेवालोंका नाश उनके व्यवहारोंको ठीक तरह जानकर किया जावे। हमारे अन्दरके श्रेष्ठ पुरुष दुष्टोंका ठीक तरह शासन करें और हमारे समाजमें शिश्न परायण लोग न रहें।

१ यातवः नः न जुजुवुः--डाकू लुटेरे हमारे पास न आवें और हमें कष्ट न देवें।

२ वंदना वेद्याभिः नः न जुजुवुः- प्रणाम करके हमारे अन्दर ही नम्रभावसे रहनेवाले हमारे शत्रु, हमारे अन्दर रहकर हमारा नाश करनेकी योजना करनेवाले हमारे अन्तः शत्रु हमें कष्ट न देवें। यह साध्य होनेके लिये 'वेद्याभिः' उनकी यथावत् जाननेके साधनोंसे उनको जानना चाहिये। उनके मनके गुप्तभाव जाननेको 'वेद्य' कहते हैं। ऐसा जान कर उनको ऐसा रखना चाहिये कि वे गुप्त रीतिसे कुछ भी उपद्रव न कर सकें। जीवित जाति ऐसा उपाय करके अपना बचाव कर सकती है।

३ सः अर्यः विषुणस्य जन्तोः शर्धत्- वह आर्यश्रेष्ठ वीर विषम भाव रखनेवाले दुष्ट मानवोंका भी ठीक तरह प्रशासन कर सकता है।

४ शिश्नदेवाः नः ऋतं मा गुः--शिश्नपरायण भोगी लोग हमारे यज्ञमें न आवें।

विजयका मुख्य सूत्र

[६] (१९७) हे इन्द्र! (त्वं क्रत्वा ज्मन् अभिभूः) तू अपने पुरुषार्थसे पृथ्वीके ऊपरके सारे शत्रुभूत प्राणियोंका पराभव करता है (अध ते महिमानं रजांसि न विव्यक्) और तेरी महिमाको सारे लोक नहीं जानते। (स्वेन शवसा हि वृत्रं जघन्थ) अपने बलसे तू वृत्रका वध करता है। (शत्रुः युधा ते अन्तं न विविदत्) शत्रु युद्ध करके तेरा नाश नहीं कर करता।

मानवधर्म- अपने प्रयत्नसे शत्रुका पराभव करना परन्तु अपनी शक्तिका पता अपने शत्रुओंको न होने देना। अपनी शक्तिसे शत्रुका वध करना, परन्तु शत्रु कदापि अपना वध कर न सके ऐसी सुरक्षित स्थितिमें स्वयं रहना।

१ क्रत्वा ज्मन् अभिभूः--अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे अपने शत्रुओंका पूर्ण रीतिसे पराभव करना, परंतु--

२ ते महिमानं रजांसि न विव्यक्--तेरी शक्तिको रजोगुणी भोगी लोग अर्थात् तेरे शत्रु न जान सकें ऐसा प्रबंध करना योग्य है।

३ स्वेन शवसा वृत्रं जघन्थ--अपने निज बलसे घेरनेवाले अपने शत्रुका वध करना, परंतु--

४ शत्रुः युधा ते अन्तं न विविदत्--तेरा शत्रु युद्ध करके तेरा नाश न कर सके, तेरे वध करनेका उपाय शत्रुको विदित न हो सके, ऐसा अपनी सुरक्षाका प्रबंध करना।

इस मंत्रमें विजयका मुख्य सूत्र कहा है जो विजय चाहनेवाले वीरोंको कभी भूलना नहीं चाहिये।

७ देवाश्चित् ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि ।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ १९८
८ कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः ।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता १९९
९ सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीकेऽभीतिमर्यो वनुषां शवांसि २००

[७] (१९८) हे इन्द्र! (पूर्वे देवाः चित्) पूर्व देवों अर्थात् असुर लोगोंने (असुर्याय क्षत्राय) अपने बल और क्षात्र तेजको (ते सहांसि अनु-ममिरे) तेरे बलोंकी अपेक्षा हीन ही मान लिया था। यह (इन्द्रः विषह्य मघानि दयते) इन्द्र शत्रुका पराभव करके भक्तोंके लिये धनोंका दान करता है। और (वाजस्य सातौ इन्द्रं जोहुवन्त) धनकी प्राप्तिके लिये भक्त इन्द्रकी स्तुति करते हैं।

असुर लोग जो अपनी शक्तिकी घमंडमें सदा रहते हैं, वे भी अपनी शक्तिको इन्द्रकी शक्तिसे न्यून ही अनुभव करते है। यह इन्द्र शत्रुका पराभव करके, उनसे धन प्राप्त करके, उस धनको अपने अनुयायियोंके लिये बांटता है। तथा धनकी आवश्यकता यज्ञके लिये हुई तो वे अनुयायी इन्द्रके पास ही आकर मांगते हैं।

राक्षस पहिले [पूर्व-देवाः) देव थे, अच्छे सत्पुरुष थे। पश्चात् वे स्वार्थसे बिगड गये, इसलिये वे राक्षस कहलाये गये। संरक्षक ही रात्रीके समय स्वार्थवश चोरी करने लगते हैं और दण्डनीय समझे जाते हैं, वैसा ही यह है। प्रजा उत्पन्न हुई, तब प्रजापतिने पूछा कि तुम क्या कार्य करोगे? तब कईयोंने कहा कि (यक्ष्यामः) हम यज्ञ करेंगे, उनको प्रजापतिने 'यक्ष' माना। और दूसरोंने कहा कि (रक्षामः) हम प्रजाका संरक्षण करेंगे, उनको प्रजापतिने 'राक्षस' माना। ये 'राक्षस' जनताका संरक्षण करनेवाले थे। ये देव थे। पश्चात् ये ही रक्षक जनताका संरक्षण न करते हुए उनका भक्षण करने लगे, नाना प्रकारसे सताने लगे। इसलिये उन 'रक्षकों' के ही राक्षस माने गये। जो पहिले 'देव' थे वे ही राक्षस हुए। 'पूर्वे देवाः' पदका यह भाव पाठक ध्यानमें धारण करें।

[८] (१९९) हे इन्द्र! (ईशानं त्वां कीरिः अवसे जुहाव हि) तुझ प्रभुकी प्रार्थना स्तोता अपने संरक्षणके लिये करता है। हे (शतं ऊते) सैंकडों साधनोंसे रक्षा करनेवाले इंद्र! (अस्मे भूरेः सौभगस्य अवः बभूथ) हमारे बहुतसे धनोंकी सुरक्षा तू कर। तथा (अभिक्षत्तुः त्वावतः वरूता) तेरे साथ स्पर्धा करनेवाले शत्रुका निवारण कर।

मानवधर्म— अपने राष्ट्रके कारीगरोंका संरक्षण करना चाहिये। अनेक रीतिसे शत्रु आक्रमण करते हैं, उनके सैंकडों आक्रमणोंके क्षेत्रोंमें बचाव करना चाहिये। प्रजाओंके अनेक प्रकारके धनोंका संरक्षण होना चाहिये। स्पर्धा करनेवाले दुष्ट शत्रुओंका निवारण करना चाहिये।

१ कीरिः अवसे ईशानं जुहाव-- कारीगर अपनी सुरक्षाके लिये राजाको बुलावें। राजा अथवा राजपुरुष अपने राष्ट्रके कारीगरोंका संरक्षण करें।

२ शतं ऊतिः— राजा अनेक साधनोंसे अपनी प्रजाका संरक्षण करें।

३ भूरेः सौभगस्य अवः-- नागरिकोंके सभी धनों और सौभाग्योंका संरक्षण होना चाहिये। यह राजाका कर्तव्य है।

४ त्वावतः अभिक्षत्तुः वरूता— तेरे साथ चारों ओरसे हिंसा करनेमें स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका निवारण कर।

[९] (२००) हे इंद्र! (ते नमोवृधासः विश्वह सखायः स्याम) तेरे यशकी वृद्धि करनेवाले हम सब सदा तेरे मित्र होकर रहेंगे। हे (महिना तरुत्र) अपनी शक्तिसे तारण करनेवाले इंद्र! (ते अवसा) तेरे संरक्षणसे (समीके अर्यः अभीतिं) संग्राममें आर्य वीर अनार्य आक्रमकोंका तथा (वनुषां शवांसि वन्वन्तु) हिंसकोंके बलोंका नाश करें।

१० स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २०१

(२२) ९ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। इन्द्रः। विराट्, ९ त्रिष्टुप् ।

१ पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा २०२

२ यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु २०३

३ बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व २०४

मानवधर्म- यज्ञ करनेवाले सदा मित्रभावसे आपसमें मिलजुल संघटित होकर रहें । अपनी शक्ति बढाकर लोगोंका तारण करें। युद्धमें आर्यदलके वीर अनार्य दलके आक्रमणकारियोंको तथा सभी हिंसक दुष्टोंको विनष्ट करें।

१ **नमो वृधासः विश्वह सखायः स्याम**- अन्नकी वृद्धि करनेकी इच्छा करनेवाले सभी आपसमें सदा मित्रभावसे मिल जुलकर रहें ।

२ **महिना तरुत्रः**—अपनी शक्ति बढाकर जनताका संरक्षण कर ।

३ **अवसा समीके अर्यः अभीतिं वनुषां शवांसि वन्वन्तु**—अपने बलसे युद्धमें आर्यदलके वीर आक्रमणकारियोंका तथा हिंसकोंके सब प्रकारके बलोंका नाश करें ।

'**नमो-वृधासः**'-अन्नसे बढनेवाले, अन्नकी वृद्धि करनेवाले, शस्त्रसे बढनेवाले । '**नमः**'—अन्न, शस्त्र। 'तरुत्रः' (तरु-त्रः)- स्वयं तैरकर दूसरोंका संरक्षण करनेवाले । '**समीके**' (सं+ईके) सब ओरसे समूहके द्वारा जिसमें आक्रमण होता है, चारों ओरसे मारपीट होनेवाला युद्ध। '**अभीति**' (अभि+इति) चारोंओरसे जिसमें आक्रमण होता है ।

[१०] (२०१) यह मंत्र १९१ स्थानपर अर्थके लिये देखो॥

[१] (२०२) हे इंद्र ! (सोमं पिब) सोमका यह रस पीओ। (त्वां मन्दतु) यह सोमरस तुझे आनंद देवे। हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंको जोतनेवाले वीर! (ते सोतुः बाहुभ्यां, अर्वा न सुयतः, अद्रिः यं सुषाव) तेरे लिये यह सोमरस निचोडनेवालेके बाहुओंसे, रश्मियोंसे संयमित किये घोडेके समान, ये पत्थर इस रसको निकालते हैं ।

पत्थरोंसे कूटकर सोमरस निकालते हैं। दोनों हाथोंसे ये पत्थर पकडे जाते हैं, जिस तरह सारथी घोडोंको संभालता है, उस तरह ये पत्थर दोनों हाथोंसे संभाले जाते हैं । इस मंत्रमें (सुयतः अर्वा न) वशीभूत घोडेकी उपमा पत्थरको दी है । हाथसे ठीक तरह संभाल कर न पकडे गये तो वे पत्थर स्थानपर रहेंगे नहीं और कूटनेका कार्य ठीक तरह होगा भी नहीं ।

[२] (२०३) हे (हर्यश्व) हे घोडोंवाले इंद्र! (ते यः युज्यः चारुः मदः) जो यह तेरे योग्य उत्तम आनंद देनेवाला सोम है। (येन वृत्राणि हंसि) जिसके पीनेसे तू वृत्रोंका वध करता है। हे (प्रभुवसो) बहुत धनवाले इंद्र! (सः त्वां ममत्तु) वह तुम्हें आनन्द देवे।

सोम पीनेसे उत्साह और शक्ति बढती है, जिसके पश्चात् वृत्रोंका वध इन्द्र करता है। यह सोम शक्तिवर्धक है ।

[३] (२०४) हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (ते प्रशस्तिं) तेरे प्रशंसारूप (यां इमां वाचं वसिष्ठः अर्चति) जिस स्तोत्रका पाठ वसिष्ठ कर रहा है (तां मे वाचं सु आबोध) उस मेरी वाणीको तू अच्छी तरह जान लो। और (इमा ब्रह्माणि सधमादे जुषस्व) इन स्तोत्रोंको यज्ञमें स्वीकृत करो।

वैदिक सूक्तोंसे उपासना होती है ।

४ श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा २०५
५ न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान्
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि २०६
६ भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक् कः २०७
७ तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि २०८
८ नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः २०९
९ ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २१०

[४] (२०५) हे इंद्र! (विपिपानस्य अद्रेः हवं श्रुधि) सोमरसका पान करनेवाले पत्थरकी इस प्रार्थनाका श्रवण कर। (अर्चतः विप्रस्य मनीषां बोध) पूजा करनेवाले इस ब्राह्मणकी मनकी इच्छाको जान लो। (इमा दुवांसि अन्तमा सचा कृष्व) इन सेवाओंको अन्तःकरणमें पहुंचने-वाली साथ साथ करो। ये प्रार्थनाएं तुम्हारे अन्तःकरणमें पहुंचे।

[५] (२०६) हे इंद्र! (ते असुर्यस्य विद्वान्) तेरे सामर्थ्यको जाननेवाला मैं (तुरस्यः गिरः अपि न मृष्ये) शत्रुका विनाश करनेवाले ऐसे तेरी प्रशंसाके भाषणोंको नहीं छोडूंगा और (न सुष्टुतिं) नहीं तुम्हारी स्तुति करना छोडूंगा। (स्वयशसः ते नाम सदा विवक्मि) उत्तम यशस्वी ऐसे तेरा नाम मैं सदा लेता ही रहूंगा।

इन्द्र शत्रुका नाश करता है इसलिये मैं उसका काव्य गाऊंगा और उसका यशस्वी नाम भी लेता रहूंगा।

[६] (२०७) हे (मघवन्) धनवान् इंद्र! (ते सवना मानुषेषु भूरि हि) तेरे लिये सोमरस निकालनेके सवन मनुष्योंमें बहुत हैं। (मनीषी त्वां इत् भूरि हवते) ज्ञानी स्तोता तेरा ही आह्वान करता है। (अस्मत् आरे ज्योक् मा कः) हमसे दूर अपने आपको तू न कर।

इन्द्रके लिये मनुष्य सोमरस निकालते हैं, उसके स्तोत्र गाते हैं और उसको अपने पास चाहते हैं।

[७] (२०८) हे शूर! (तुभ्य इत् इमा विश्वा सवना) तुम्हारे लिये ही ये सब सोमके सवन हैं। (तुभ्यं वर्धना ब्रह्माणि कृणोमि) तुम्हारे लिये ही ये यश बढानेवाले स्तोत्र हैं। (त्वं नृभिः विश्वधा हव्यः असि) तू ही मनुष्यों द्वारा प्रार्थना करने योग्य है।

[८] (२०९) हे (दस्म) दर्शनीय वीर! (मन्य-मानस्य ते महिमानं नू चित् उत् अश्नुवन्ति) सन्मा-ननीय ऐसी तेरी महिमाका कोई पार नहीं लगा सकते। तेरी महिमा अपार है। हे (उग्र) शूर वीर! (ते राधः वीर्यं न उत् अश्नुवन्ति) तेरे धन और वीर्यका भी पार किसीको लगता नहीं है।

इन्द्रकी महिमा, धन और पराक्रम शक्ति अपार है।

[९] (२१०) हे इंद्र! (ये च पूर्वे ऋषयः) जो प्राचीन ऋषि थे (ये च नूत्नाः) और जो नवीन ऋषि हैं, जो (विप्राः ब्रह्माणि जनयन्त) ज्ञानी विद्वान् स्तोत्रोंको करते हैं (अस्मे ते सख्यानि शिवानि सन्तु) उनमें और हम सबमें तेरी मित्र-ताएँ कल्याण करनेवाली हों। (यूयं सदा नः) तुम सब हम सबको सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित कीजिये।

(२३) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि २११
२ अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् २१२
३ युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् २१३
४ आपश्चित् पिप्युः स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् २१४

---

[१] (२११) (श्रवस्या ब्रह्माणि उत् ऐरयत उ) यशकी इच्छासे स्तोत्रोंको इन्द्रकी प्रसन्नताके लिये प्रेरित करो। हे वसिष्ठ ! (समर्ये इंद्रं महय) यज्ञमें इंद्रके महत्त्वका वर्णन कर। (यः विश्वानि शवसा ततान) जो सब भुवनोंको अपने बलसे फैलाता है, (ईवतः मे वचांसि उपश्रोता) उपासना करनेवाले ऐसे मेरे स्तुतियोंको वही सुननेवाला है।

ईश्वर इन सब भुवनोंको यथायोग्य रीतिसे निर्माण करके यथास्थान रखता है, वही सबकी पुकार सुनता है उसीका यश गाओ और उसीको प्रसन्न करो।

[२] (२१२) (यत् शु-रुधः इरज्यन्त) जब शोकको रोकनेवाली कृतियां बढती हैं, तब हे इंद्र ! (विवाचि देवजामिः घोषः अयामि) हमारी स्तुतिका घोष देवताके पास मैं पहुंचाता हूँ। (जनेषु स्वं आयुः नहि चिकीते) लोगोंमें अपनी आयुको कोई नहीं जानता, जिससे आयु क्षीण होती है (तानि अंहांसि इत् अस्मान् अति पर्षि) उन सब पापोंसे हमें पार ले जाओ।

(शु-रुधः) शोक या दुःखको रोकनेके कार्य करने चाहियें। ईश्वरकी स्तुति शोकको दूर रख सकती है, इसलिये ईश्वर स्तुति करनी चाहिये। इससे शोकको दूर करनेका मार्ग मिल सकता है। अपनी आयु कहांतक होगी यह कोई मनुष्य नहीं जान सकता, परंतु मनुष्य पापसे तो अपने आपको बचा सकता है। उतना मनुष्य अवश्य करे।

[३] (२१३) (गवेषणं रथं हरिभ्यां युजे) गौवें प्राप्त करानेवाले इंद्रके रथको मैं दो घोडे जोतता हूं। (ब्रह्माणि जुजुषाणं उप अस्थुः) स्तोत्र हमारे सेवा करने योग्य इंद्रकी उपासना करते हैं। (स्यः इंद्रः महित्वा रोदसी वि बाधिष्ट) यह इंद्र अपनी महत्त्वसे द्यावापृथिवीको व्यापता है। (इन्द्रः वृत्राणि अप्रति जघन्वान्) इंद्र वृत्रोंको अतुलनीय रीतिसे मारता है।

१ इन्द्रः महित्वा रोदसी विबाधिष्ट—ईश्वर अपने महत्त्वसे द्यावा पृथिवीको व्यापता है।

२ इन्द्रः वृत्राणि अप्रति जघन्वान्—इन्द्र शत्रुओंको अप्रतिम रीतिसे नष्ट करता है।

[४] (२१४) हे इंद्र ! (आपः चित्, स्तर्यः गावः न पिप्युः)— जल प्रवाह, प्रसूत न हुई गाय की तरह, बढते जांय। (ते जरितारः ऋतं नक्षन्) तेरे स्तोतागण यज्ञको व्यापते रहें, यज्ञ करें। (नियुतः, वायुः न, नः अच्छ याहि) घोडा वायुके समान हमारे पास सीधा आजावे। अर्थात् इंद्र वेगसे आवे। (त्वं हि धीभिः वाजान् विदयसे) तूं बुद्धियोंके साथ अन्नों और बलोंको देता है।

५ ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व २१५
६ एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २१६

(२४) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः २१७

---

१ स्तर्यः गावः न आपः चित् पिप्युः—अप्रसूत गौवें अधिक पुष्ट होती हैं वैसे जलके स्रोत बढें ।

२ ऋतं नक्षन्—यज्ञ करते रहें । कोई यज्ञ करना छोड न देवे ।

३ त्वं धीभिः वाजान् विदयसे— तू बुद्धियोंके साथ अन्नों और बलोंको देता है । बुद्धि देता है, अन्न देता है और बल भी देता है ।

[५] (२१५) हे इंद्र! (त्वा ते मदाः मादयन्तु) तुझे ये सोमरस आनन्द देवें। (जरित्रे शुष्मिणं तुविराधसं) तेरे उपासकको बलवान् और अनेक सिद्धि जिसको प्राप्त है ऐसा पुत्र हो। (हि देवत्रा एकः मर्तान् दयसे) देवोंमें एक ही तू देव मानवोंपर दया करता है। (अस्मिन् सवने, हे शूर! मादयस्व) इस यज्ञमें, हे शूर! तू आनन्दित हो।

१ शुष्मिनं तुविराधसं (पुत्रं)-- बलवान् और अनेक कला सिद्धियाँ जिसको प्राप्त हैं, अनेक प्रकारका धन जिसको प्राप्त होता है ऐसा पुत्र होना चाहिये । ' संसिद्धि ' का अर्थ ' राधः ' शब्दसे प्रकट होता है । जिसको अनेक सिद्धियां प्राप्त हैं ऐसा पुत्र हो । पुत्रको सुशिक्षासे अनेक सिद्धियां प्राप्त हों ।

२ देवत्रा एकः मर्तान् दयसे—देवोंमें एक ही मानवोंपर दया करनेवाला है । मानवोंपर दया करना योग्य है ।

[६] (२१६) (वसिष्ठासः वज्रबाहुं वृषणं इंद्रं एव इत्) वसिष्ठ लोग वज्रके समान बाहुवाले बलवान् इंद्रको (अर्कैः अभि अर्चन्ति) स्तोत्रोंसे पूजते हैं।

(सः स्तुतः वीरवत् गोमत् नः धातु) वह स्तुति करनेपर वीरोंसे और गौओंसे युक्त धन हमें देवे। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) आप कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमें सुरक्षित रखो।

१ वज्रबाहुं वृषणं अर्चन्ति— वज्रके समान शक्तिशाली बाहुओंवाले बलवान् वीरकी सब पूजा करते हैं ।

२ सः वीरवत् गोमत् नः धातु—वह वीरोंसे युक्त भी तथा गौओंसे युक्त धन हमें देवे । हमें वीरपुत्र हों और हमारे घरमें गौवें रहें ।

[१] (२१७) हे इन्द्र! (ते सदने योनिः अकारि) तेरे बैठनेके लिये यह स्थान बनाया है। हे (पुरुहूत) बहुतोंद्वारा सुपूजित इन्द्र! (तं नृभिः आ प्र याहि) उस स्थानके प्रति तू अपने साथी नेताओंके साथ जा। और (नः यथा अविता वृधे च असः) हमारा संरक्षक हो और हमारे संवर्धन करनेके लिये तू सिद्ध रह। (वसूनि च ददः) अनेक प्रकारके धन दे और (सोमैः ममदः च) हमने दिये सोमरससे आनन्दित हो।

१ सदने योनिः अकारि—रहनेके लिये घर बनाओ,

२ नृभिः आप्रयाहि—नेताओंके साथ भ्रमण कर, श्रेष्ठोंके साथ घूमता रह ।

३ अविता वृधे च असः—संरक्षक और बढानेवाला हो,

४ वसूनि ददः— धनका दान कर ।

२ गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा २१८
३ आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि ।
वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चमाङ्गूषमच्छा तवसं मदाय २१९
४ आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि ।
वरीवृजत् स्थविरेभिः सुशिप्राऽस्मे दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्र २२०
५ एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरी३वात्यो न वाजयन्नधायि ।
इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः २२१

---

[२] (२१८) हे इन्द्र ! (द्विबर्हाः ते मनः गृभीतं) दोनों स्थूल और सूक्ष्म— स्थानोंमें रहनेवाले ऐसे तेरे मनको हमने अपनी ओर आकर्षित किया है। यहां (सोमः सुतः) सोमरस तैयार है। (मधूनि परिषिक्ता) शहद उसमें मिलाया है। (विसृष्टधेना इयं जोहुवती मनीषा सुवृक्तिः) मध्यम स्वरसे उच्चारी जानेवाली यह प्रार्थनामय मनन योग्य स्तुति (इन्द्रं भरते) इन्द्रके लिये उच्चारी जाती है।

(विसृष्टधेना मनीषा सुवृक्ती) जिह्वा जिसमें शनैः शनैः प्रयुक्त की जाती है, अर्थात् मध्यम स्वरसे जिसका उच्चारण किया जाता है वह मननीय उत्तम वचनोंवाली ईश्वरस्तुति है। यही मानवोंकी तारक है।

सोमरस छाननेके बाद उसमें शहद मिलाया जाता और पश्चात् विधिपूर्वक पिया जाता है। देवताओंको अर्पण करके, हवन करके पश्चात् पीया जाता है।

[३] (२१९) हे (ऋजीषिन्) सोमपान करनेवाले इन्द्र ! (नः इदं बर्हिः) यह हमारा आसन है, उसपर बैठकर (सोमपेयाय) सोमपान करनेके लिये (दिवः पृथिव्याः आ याहि) द्युलोकसे अथवा पृथिवीके ऊपरसे, जहां तुम होगे वहांसे, आओ। (तवसं मद्र्यंचं त्वा) बलवान और मेरी ओर आनेवाले ऐसे तुझे (हरयः आंगूषं अच्छ मदाय वहन्तु) घोडे स्तोत्र पाठके स्थानके पास आनन्द लेनेके लिये तुझे सीधा ले आवें।

[४] (२२०) हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंको जोतनेवाले (सुशिप्र) उत्तम शिरस्त्राणवाले इंद्र ! (विश्वाभिः ऊतिभिः सजोषाः) संपूर्ण संरक्षणके साधनोंसे युक्त रहनेवाला तू (स्थविरेभिः वरीवृजत्) युद्धनिपुण श्रेष्ठ वीरोंके साथ रहकर शत्रुका नाश करता है। (अस्मे वृषणं शुष्मं दधत्) हमें बलवान सामर्थ्यशाली पुत्रको देता है। ऐसा तू (ब्रह्म जुषाणः नः आ याहि) स्तोत्रको सुननेके लिये हमारे पास आ।

१ वृषणं शुष्मं वीरं दधत्— बलवान् और सामर्थ्यवान् पुत्र चाहिये। निर्बल और निस्तेज पुत्र न हो, परंतु सामर्थ्यवान् हो।

२ हर्यश्वः सुशिप्रः—शीघ्रगामी घोडे हों और वीरके लिये कवच हो।

३ विश्वाभिः ऊतिभिः सजोषाः स्थविरेभिः वरीवृजत्—संपूर्ण संरक्षणकी शक्तियोंके साथ अपना वीर रहे, और युद्ध कलामें जो वृद्ध अर्थात् निपुण वीर हैं, उनको अपने साथ रखकर शत्रुओंको दूर करे। यहां 'स्थविर' का प्रसिद्ध अर्थ 'जीर्ण वृद्ध बुढ्ढा' नहीं है। विद्यामें वृद्ध अर्थात् अनुभवी वीर ऐसा अर्थ यहां इष्ट है।

[५] (२२१) (महे उग्राय वाहे) महान वीर विश्वके संचालक इन्द्रके लिये, (धुरि इव अत्यः न) रथकी धुरामें घोडे जोतनेके समान, (वाजयन् एष स्तोमः अधायि) बल प्रकट करनेवाला यह स्तोत्र किया है। हे इन्द्र! (त्वा अयं अर्कः

६ एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २२२

(१५) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत् समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत् २२३
२ नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्राँ अभि ये नो मर्तासो अमन्ति ।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सोरा नो भर संभरणं वसूनाम् २२४

वसूनां इट्टे) तेरे पास यह स्तोता धनोंको मांगता है। वह तू (नः दिवि इव श्रोमतं अधि धाः) हमारे लिये द्युलोकमें भी यशस्वी धन या पुत्र दे।

१ मह उग्राय वाहे वाजयन् एषं स्तोमः अधायि—बडे उग्र वीरका प्रभाव वर्णन करनेवाला यह काव्य है। काव्यमें वीरका वर्णन किया जाता है।

२ धुरि अत्यः अधायि—रथ खीचनेके लिये दौडनेवाला घोडा जानते हैं। वैसा यह काव्य वीरका यश फैलानेवाला है।

३ अयं वसूनां इट्टे--यह धन मांगता है, चाहता है।

४ नः श्रोमतं अधिधाः— हमें धन कमानेवाला पुत्र हो। यशस्वी पुत्र हो।

[६] (२२२) हे इन्द्र ! (नः एव वार्यस्य पूर्धि) हमें संरक्षणीय धनसे परिपूर्ण कर। भरपूर धन दे डाल। (ते महीं सुमतिं प्र वेविदाम) तेरी महनीय सुमति हम सब प्राप्त करेंगे। (मघवद्भ्यः सुवीरां इषं पिन्व) हम धनवानोंके लिये वीर युक्त धन दे डाल। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) आप कल्याणोंके साथ सदा हमें सुरक्षित रखिये।

१ नः वार्यस्य पूर्धि—हमें संरक्षण करने योग्य धन भरपूर दे।

२ ते महीं सुमतिं प्रवेविदाम—तेरा वडा आशीर्वाद हमें मिले।

३ सुवीरां इषं पिन्व—उत्तम वीर जिसके साथ रहते हैं वह धन हमें मिले। वीर पुत्रोंके साथ रहनेवाला धन हमें प्राप्त हो।

[१] (२२३) हे उग्र इन्द्र ! (यत् समन्यवः सेनाः समरन्त) जब उत्साहयुक्त सेना युद्ध करती है तब (महः नर्यस्य ते बाह्वोः दिद्युत्) मानवोंका हित करनेवाले ऐसे तेरे बडे बाहुओंमें रहा शस्त्र (ऊती पताति) हमारी सुरक्षा करनेके लिये शत्रु पर गिरे। तेरा (विश्वद्र्यक् मनः) सर्वतोगामी मन (मा विचारीत्) इधर उधर न जाय, वह हमारे हितके कार्यमें ही लग जाय।

१ समन्यवः सेनाः समरन्त—उत्साही सेना युद्ध करती है। जिसमें उत्साह नहीं वह क्या करेगी ?

२ नर्यस्य महः बाह्वोः दिद्युत् ऊती पताति—मानवोंका हित करनेका यत्न करनेवाले महान वीरका तेजस्वी शस्त्र मानवोंका हित करनेके लिये ही शत्रुपर गिरे। अर्थात जो मानवोंके हितमें बिगाड करता है वही शत्रु है और उसीका नाश शस्त्रसे करना चाहिये।

३ विश्वद्र्यक् मनः मा विचारीत्—इधर उधर भटकने वाला वीरका मन मानवोंके हित करनेके कार्यको छोडकर इधर उधर न विचरे, इसी कर्तव्यमें दत्तचित्त और स्थिर रहे।

४ उग्रः—वीर पुरुष उग्र हो। मन्द न हो, शिथिल न हो, निर्बल निस्तेज न हो।

[२] (२२४) हे इन्द्र ! (दुर्गे ये मर्तासः अभि) युद्धमें जो शत्रुके मानव वीर हमारे सन्मुख खडे रहकर (नः अमन्ति) हमारा पराभव करना चाहते हैं, उन (अमित्रान् निश्नथिहि) शत्रुओंका नाश कर। तथा (निनित्सोः तं शंसं आरे कृणुहि) निंदा करनेवाले शत्रुके उस प्रलापको दूर कर और

३ शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्याऽस्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि २२५
४ त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः २२६
५ कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम् २२७

(नः वसूनां संभरणं आ भर) हमारे पास धनोंको भरपूर ले आओ।

मानवधर्म - युद्धमें रहकर जो वीर हमारा नाश करना चाहते हैं वे शत्रु हैं, उनका नाश करना चाहिये। शत्रुओंके निंदाभरे शब्द सुनने नहीं चाहिये। अनेक प्रकारका भरपूर धन प्राप्त करना चाहिये।

१ दुर्गे मर्तासः नः अमान्ति, अमित्रान् नि श्नथिहि — युद्धमें अथवा कीलेमें रहकर जो शत्रुके वीर हमारा नाश करनेके इच्छुक हैं वे शत्रु हैं, उनका नाश करो। ये ही नाश करने योग्य हैं।

२ निनित्सो शंसं आरे कृणुहि —— निंदकोंके शब्द दूर करो अर्थात् उनको तुम न सुनो।

३ वसूनां संभरणं नः आभर — धनोंका समूह हमारे पास ले आओ। बहुत प्रकारके धन हमें प्राप्त हों।

[३] (२२५) हे (शिप्रिन्) शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्र! (ते शतं ऊतयः सुदासे) तेरी सैकडों प्रकारकी संरक्षणकी साधनें हमारे जैसे तेरे उत्तम भक्तके संरक्षणके लिये रहें। तथा (सहस्रं शंसाः सन्तु) हजारों प्रशंसाएं हों। तथा (उत रातिः) वैसा दान भी हो। (वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि) हिंसक शत्रुके मनुष्यके वधकारी शस्त्रको विनष्ट कर। और (अस्मे द्युम्नं रत्नं च आधि धेहि) हमें तेजस्वी रत्न दो।

मानवधर्म - जो मानवोंकी सेवा करते हैं उनको उत्तम संरक्षण मिलना चाहिये। उनको ही दान मिले। उनकी प्रशंसा हो। घातपात करनेवालोंको दूर करना चाहिये।

१ सुदासे शतं ऊतयः — उत्तम दाता भक्तके संरक्षणके लिये सैकडों संरक्षणके साधन रहें। ऐसे सज्जनोंका संरक्षण हो। 'सु-दास.' वह है कि जो जनताकी सेवा करता है। यही सज्जनका लक्षण है।

२ सुदासे सहस्रं शंसाः सन्तु — उत्तम दाता भक्तके संरक्षणके लिये हजारों प्रशंसा योग्य संरक्षक साधन सदा तैयार रहें।

३ रातिः अस्तु — उक्त प्रकारके सज्जनको ही दान मिले, सुखसाधन प्राप्त हों।

४ वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि — घातपात करनेवाले शत्रुके मनुष्यने हमारा वध करनेके लिये जो शस्त्रके प्रयोग किये हों, उनका नाश कर।

५ अस्मे द्युम्नं रत्नं अधि धेहि — हमें तेजस्वी रत्न प्राप्त हों। तेजस्वी रत्नका तात्पर्य यह है कि रत्नोंपर उत्तम संस्कार करके उत्तम चमकनेवाले रत्न बनाये जाते हैं ऐसे संस्कार किये रत्न हमारे पास हों। 'द्युम्नं रत्नं' इन शब्दोंसे रत्नोंपर चमक लानेकी विद्या थी ऐसा सिद्ध होता है।

[४] (२२६) हे इन्द्र! (त्वावतः क्रत्वे अस्मि हि) तेरे अनुकूल कर्ममें ही मैं दत्तचित्त रहता हूं। हे शूर! (अवितुः त्वावतः रातौ) तेरे अनुकूल रहकर संरक्षण करनेवालेके दान मुझे मिलें। हे (तविषीवः उग्र) बलवान् उग्र वीर! (विश्वा अहानि ओकः कृणुष्व) सब दिनोंमें हमारा घर अपना ही घर करो, हमारे पास रहो। हे (हरिवः) उत्तम घोडोंवाले वीर (न मर्धीः) हमारा नाश न कर।

[५] (२२७) (एते वयं हर्यश्वाय शूषं कुत्साः) ये हम सब उत्तम घोडे पास रखनेवाले इन्द्रके लिये सुखकर स्तोत्र करते हैं। (इन्द्रे देवजूतं सहः

६ एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २२८

(२३) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः ।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद् यथा नः २२९
२ उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः ।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते २३०
३ चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु ।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः २३१

इयानाः) इन्द्रके पाससे देवोंद्वारा सेवित बल प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं। (तरुत्रा वाजं सनुयाम) दुःखसे पार होनेवाले हम बलको प्राप्त करेंगे। हे शूर ! (वृत्रा सत्रा सुहना कृधि) शत्रुओंको सदा सहज रीतिसे वधके योग्य करो। शत्रुओंका वध सहज ही हो जावे ऐसा कर ।

मानवधर्म – उत्तम वीरके काव्य गान करो। प्रशंसनीय बल प्राप्त करो। दुःखसे दूर होनेका यत्न प्रथम करो और भोग पीछेसे करो। अपना बल बढाओ और शत्रु सहजहीसे विनष्ट हो सके ऐसा यत्न करो।

१ हर्यश्वाय शूषं कुत्साः—उत्तम घोडोंकी पालना करनेवाले शूरका ही काव्य हम करेंगे। जो वीर नहीं उनका काव्य कदापि नहीं करेंगे ।

२ देवजूतं सहः इयानाः—देव भी जिसकी प्रशंसा करेंगे वैसा बल हमें प्राप्त हो । सज्जनों द्वारा प्रशंसा होने योग्य बल हमारे पास हो ।

३ तरुत्रा वाजं सनुयाम— दुःखोंसे पार होकर हम बल अन्न तथा सुख प्राप्त करेंगे ।

४ सत्रा वृत्रा सुहना कृधि—सदा शत्रु सहज ही से नाश करने योग्य हों, अर्थात् अपना बल इतना बढे कि शत्रुका नाश सहजहीसे हो सके ।

[६] (२२८) इस मन्त्रकी व्याख्या ६ (२२२) के मन्त्रके स्थानपर देखो।

[१] (२२९) (मघवानं इन्द्रं असुतः सोमः न ममाद) धनवान इन्द्रके लिये जो सोमरस निचोडा नहीं वह सोम आनंद नहीं देता । (सुतासः अब्रह्माणः न) रस निकालनेपर जो स्तोत्र पाठ रहित होता है वह सोम भी आनंद नहीं देता। (नः यत् उक्थं) हमारा जो सूक्त इन्द्र (जुजोषत्) स्वीकार करेगा (यथा नृवत् शृणवत्) और मनुष्योंमें बैठकर सुनेगा वैसा (नवीयः उक्थं तस्मै जनये) नवीन स्तोत्र उस वीरके लिये मैं बनाता हूं ।

सोमरस इन्द्रके लिये निकाला जाय, उसे अर्पण किया जाय, और स्तोत्र पाठसे जो पवित्र हुआ हो वही सोम सच्चा आनंद देता है । हम ऐसा स्तोत्र पाठ करते है कि जो इस वीरको प्रिय लगे और सभामें बैठकर वह इसे ध्यानसे सुनना भी चाहें ।

[२] (२३०) (उक्थे उक्थे सोमः इंद्रं ममाद) प्रत्येक स्तोत्रमें सोम इंद्रको आनंद देता है। (सुतासः नीथे नीथे मघवानं) सोमरस प्रत्येक प्रार्थनाके मंत्रमें धनवान् इंद्रकी प्रशंसा गाते हैं, (पुत्राः पितरं न) पुत्र जैसे पिताको बुलाते हैं उस तरह (सबाधः समानदक्षाः ईं अवसे हवन्ते) इकट्ठे मिले समानतया दक्ष रहनेवाले लोग अपनी सुरक्षाके लिये इंद्रको बुलाते हैं ।

[३] (२३१) (वेधसः सुतेषु यानि ब्रुवन्ति) स्तोत्र पाठ करनेवाले सोमरस निकालनेके समय जिन इंद्रके कर्मोंका वर्णन करते हैं, (ता नूनं चकार) वे कर्म निश्चय ही इंद्रने पूर्व समयमें किये थे, (कृणवत् अन्या) दूसरे कर्म वह अब भी करता है । वही इंद्र (सर्वाः पुरः) शत्रुके सब

४ एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम् ।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि २३२
५ एवा वसिष्ठ इन्द्र तये नृन् कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति ।
सहस्रिण उप नो माहि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २३३

(२७) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत् पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः २३४

नगरोंको (समानः एकः) समवृत्तिसे अकेला-दूसरेकी सहायता न लेता हुआ ही (पतिः जनीः इव) पति अपनी पत्नियोंको वश करता है वैसा ही वह इन्द्र (सु नि मामृजे) उनको अपने वशमें करता है ।

[४] (२३२) (यस्य मिथस्तुरः पूर्वीः ऊतयः) जिस इन्द्रके पास परस्पर मिले जुले अनेक अपूर्व रक्षासाधन हैं, (तं एव आहुः) उसीका सब वर्णन करते हैं, (उत शृण्वे) और सुनते हैं कि (एकः इन्द्रः मघानां विभक्ता तरणिः) वही एक इन्द्र धनोंका दाता है और सबका तारक भी है। उसकी कृपासे (अस्मे) हमें (प्रियाणि भद्राणि सश्चत) प्रिय कल्याण हमें प्राप्त हों।

१ यस्य मिथस्तुरः ऊतयः—उसके रक्षा साधन ऐसे हैं कि जो परस्पर मिले जुले हैं और त्वरासे सुरक्षा करनेवाले भी हैं।

२ एकः मघानां विभक्ता तरणिः—वह एक ही वीर ऐसा है कि जो धनोंका विभाग करके सबको यथा योग्य रीतिसे देता है और सबकी सुरक्षा भी करता है।

३ अस्मे प्रियाणि भद्राणि सश्चत—हमें प्रिय कल्याण करनेवाले सुख मिलें।

[५] (२३३) (वसिष्ठः नृन् कृष्टीनां ऊतये) वसिष्ठ मानवोंकी सुरक्षा करनेके लिये (वृषभ इन्द्रं एव) बलवान इन्द्रका ही (सुते गृणाति) यज्ञमें वर्णन करता है। स्तोत्र गाता है। हे इन्द्र ! (नः सहस्रिणः वाजान् उप माहि) हमें सहस्रों प्रकारके अन्न बल तथा धन दे डालो। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेवाले रक्षा साधनोंसे सुरक्षित करो।

१ वृषभं इन्द्रं कृष्टीनां नृन् ऊतये गृणाति—बलवान् इन्द्र वीरकी मानवोंकी तथा नेताओंकी सुरक्षा करनेके हेतुसे प्रशंसा गाते हैं।

२ नः सहस्रिणः वाजान् उप माहि—वह सहस्रों प्रकारके धन बल अन्न हमें देवे। जो हमें धन अन्न और बल बढानेमें सहायक होता है उसकी हम प्रशंसा करें।

[१] (२३४) (यत् ताः पार्याः धियः युनजते) जब संकटोंसे बचनेके लिये बुद्धि युक्त कर्म किये जाते हैं तब (नरः नेमधिता इन्द्रं हवन्ते) नेता लोग युद्धके समय इन्द्रको ही बुलाते हैं। वह (त्वं शूरः नृषाता) तू शूर और मनुष्योंको धन देनेवाला (शवसः चकानः) तथा बल चाहनेवाला (गोमति व्रजे त्वं नः आ भज) गौओंके स्थानमें तू हमें पहुंचाओ।

१ नरः पार्याः धियः युनजते—नेता लोग संकटोंसे पार होनेके लिये बुद्धि पूर्वक प्रयत्न करते हैं, करने चाहिये।

२ नेमधिता नरः इन्द्रं हवन्ते—युद्धमें नेता लोग वीर (इन्द्र) को ही सहायार्थ बुलाते हैं। युद्धके समय वीरोंको इकट्ठा करते हैं।

३ शूरः नृषाता शवसः चकानः—शूर वीर मनुष्योंको उनकी योग्यतानुसार धनका बंटवारा करता है और उस

२ यं इन्द्र शुष्मो मघवन् ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।
त्वं हि दृळ्हा मघवन् विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः २३५

३ इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् २३६

समय बलको ही चाहता है, अर्थात् जिसका जैसा बल युद्धमें उपयोगी हुआ, उसको वैसा धन देता है।

४ **नः गोमति व्रजे त्वं आभज**—हम सबको गौओं वाले गोस्थानमें, गोशालामें, व्रजमें, रखो, जहां बहुत गौवें हों वहाँ हमें रहनेके लिये स्थान हो।

[ ] (२३५) हे (**पुरुहूत मघवन् इंद्र**) **बहुतों-द्वारा प्रार्थित धनवान् इंद्र!** (**ते यः शुष्मः अस्ति**) **तेरा जो बल है उसको तू** (**सखिभ्यः नृभ्यः शिक्ष**) **एक विचारसे कार्य करनेवाले मनुष्योंको देओ। हे** (**मघवन्**) **धनवान् इंद्र!** (**त्वं हि दृळ्हा**) **तू सुदृढ कीलोंको भी तोड देता है इसलिये वह तू** (**विचेताः परिवृतं राधः**) **विशेष ज्ञानी गुप्त धनको भी** (**न अपवृधि**) **निःसंदेह हमारे लिये प्रकट कर।**

१ **यः ते शुष्मः अस्ति, सखिभ्यः नृभ्यः शिक्ष**—जो तेरा सामर्थ्य है, उसको तू समान विचारके संघटित नेताओंको, संघटित मनुष्योंको सिखाओ। बल बढानेकी, बलका प्रयोग करनेकी विद्याको सुसंघटित मानवोंको सिखाओ।

२ **त्वं दृळ्हा**—तूं शत्रुके सुदृढ कीलोंको तोड देता है ऐसी जो युद्धविद्या तुम्हारे पास है, उस विद्याकी हमारे वीरोंको शिक्षा दो।

३ **त्वं विचेताः परिवृतं राधः न अपवृधि**--तूं विशेष ज्ञानी गुप्त धनको भी हमारे लिये प्रकट कर। तुम्हारे पास अपने जो गुप्त धन है, अथवा शत्रुके नगरों और कीलोंमें जो गुप्त धन होंगे, उन सबको हमारे लिये प्रकट कर दो।

'राधः' वह धन है कि जो कर्मसिद्धि द्वारा प्राप्त होता है। कर्मकी कुशलतासे प्राप्त होता है। वह कुशलता हमें प्राप्त हो यह भाव यहां है।

[३] (२३६) (**जगतः चर्षणीनां इन्द्रः राजा**) **जंगम और मानव इन सबका इन्द्र ही एकमात्र राजा है।** (**अधि क्षमि यत् विषुरूपं अस्ति**) **इस पृथिवीपर जो नाना प्रकारके रूपोंवाला जो भी कुछ है, उसका भी वही राजा है।** (**ततः दाशुषे वसूनि ददाति**) **इसलिये वह दाताको धन देता है। वह** (**उपस्तुतः चित**) **स्तुति करनेपर** (**राधः अर्वाक् चोदत्**) **धनको हमारे समीप प्रेरित करता है।**

१ **क्षमि अधि यत् विसुरूपं अस्ति तस्य जगतः चर्षणीनां इन्द्रः राजा**--पृथ्वीपर जो (विरूपं सुरूपं) कुरूप अथवा सुरूप ऐसा जो भी कुछ है, उस (जगतः) जंगम पदार्थका तथा स्थावर पदार्थ मात्रका भी, इतना ही नहीं परंतु (चर्षणीनां) नाना प्रकारके व्यवसाय करनेवाले मानवोंका भी वही एकमात्र प्रभु है। सब स्थावर जंगमका एक ही प्रभु है।

२ **ततः दाशुषे वसूनि ददाति**—वह दाताके लिये अनेक प्रकारके धन देता है। जो उदारचरित पुरुष हैं, जो मानवोंके हितके लिये यत्न करते हैं उनको वह प्रभु अनेक प्रकारके धन देता है।

३ **उपस्तुतः चित् राधः अर्वाक् चोदत्**--उसकी उपासना करनेपर वह अनेक प्रकारके धनोंको उपासकोंके समीप प्रेरित करता है।

इस मंत्रमें स्थावर जंगम संपूर्ण विश्वका, कुरूपों और सुरूपोंका, बलवानों और निर्बलोंका एक ही प्रभु है यह बात निःसंदेह रीतिसे कही है। वही सबका उपास्य है और वही सबको अनेक प्रकारके धन, जो सुखकी सिद्धिके लिये आवश्यक हैं, देता है। उसके काव्य गाने चाहिये और उसीके गुणोंको अपने अन्दर धारण करना चाहिये।

४ नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः २३७
५ नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय ।
गोमदश्वावद् रथवद् व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २३८

(२८) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

१ ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः ।
विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व २३९

राष्ट्रकी राज्यशासन संस्था भी राष्ट्रके सब स्थावर जंगम पदार्थों तथा मानवोंका शासन करनेमें समर्थ रहनी चाहिये । वही सब प्रजाजनोंको सब सुखसाधन देती रहे यह भाव यहां लेना योग्य है। परमेश्वरके गुण राजपुरुषोंमें होने चाहिये।

[४] (२३७) **(मघवा दानः इन्द्रः) धनवान् दाता इन्द्र (नः सहूती नः ऊती वाजं नूचित् नियमते) हमारे बुलानेपर हमारी सुरक्षाके लिये शीघ्र ही हमें बल देता रहे। (यस्य अनूना अभिवीता दक्षिणा) जिसका संपूर्ण प्राप्त दान (सखिभ्यः नृभ्यः वामं पीपाय) एक विचारसे कार्य करनेवाले नेताओंके लिये धन दुहता है, देता है।**

१ दानः मघवा नः सहूती नः ऊती वाजं नियमते--दाता धनपति हमारे कहनेपर हम सबकी सुरक्षा करनेके लिये हमें बल देवे । धनपति सबकी सुरक्षा करनेके लिये अपना धन देवे और धनसे बलवान वीर संगठित होकर सबकी सुरक्षा करें।

२ यस्य अनूना दक्षिणा सखिभ्यः नृभ्यः वामं पीपाय— जिसने दी हुई न्यूनतारहित धनकी पूंजी एक विचारसे कार्य करनेवाले नेता वीरोंके लिये आवश्यक धन दुहाती रहे ।

' दक्षिणा '—दान, **' अ-नूना '**—जिसमें किसी तरह न्यून नहीं है। **' स-खिभ्यः नृभ्यः '**—समान ख्यानवाले सखा कहे जाते हैं । एक विचारसे कार्य करनेवाले ' नृ ' नेता, संचालक, वीर पुरुष। दाताओंका दान ऐसे वीरोंके लिये आवश्यक सहायता समयपर पहुंचानेमें समर्थ हो ।

[५] **(२३८) हे इन्द्र! (नः राये नु वरिवः कृधि) हमारे ऐश्वर्यवृद्धिके लिये तू सत्वर ही धन दे, धन निर्माण कर। हम (ते मनः मघाय) आ ववृत्याम) तेरे मनको धनके दानके लिये प्रवृत्त करते हैं। (गोमत् अश्ववत् रथवत् व्यन्तः) गौवों, घोडों और रथोंके साथ रहनेवाला धन तुम्हारे पास है, उसका तू दाता है। (स्वस्तिभिः यूयं सदा नः पात) अपने कल्याणकारक साधनोंसे तुम सदा हमारी सुरक्षा करो।**

१ नः राये वरिवः कृधि — हमारी ऐश्वर्यकी वृद्धि होनेके लिये श्रेष्ठ धन हमें चाहिये । श्रेष्ठ साधनोंसे प्राप्त हुआ धन (वरिवः) वरिष्ठ, श्रेष्ठ कहलाता है।

२ ते मनः मघाय आववृत्याम — तेरे मनको धन प्राप्ति करनेके लिये हम आकर्षित करते हैं। धनको प्राप्त करना और उसको सुरक्षित रखना, तथा उसका सत्कार्यमें अर्पण करना ऐसे कार्योंमें तेरा मन लगे ।

३ गोमत् अश्ववत् रथवत् व्यन्तः - गौवों, घोडों और रथोंके साथ रहनेवाला धन है। घर, सेवक, इष्ट मित्र आदि भी धनके साथ रहनेवाले हैं। इनके साथ रहनेवाला धन हमें चाहिये ।

[१] **(२३९) हे इन्द्र! (विद्वान् नः ब्रह्म उपयाहि) तुम सब जाननेवाला हमारे स्तोत्र पाठके पास आओ। (ते हरयः अर्वाञ्चः युक्ताः सन्तु) तेरे घोडे हमारी ओर आनेके लिये ही जोते हुए हों। हे (विश्वमिन्व) विश्वको संतोष देनेवाले वीर! (त्वा विश्वे मर्ताः चित् ह विहवन्त) तुम्हें सारे मनुष्य पृथक् पृथक् बुलाते रहते हैं। तथापि (अस्माकं इत् शृणुहि) हमारी प्रार्थना सुनो।**

२ हुवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत् पासि शवसिन्नृषीणाम् ।
आ यद् वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन् क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः २४०
३ तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान् त्सं यन्नॄन् न रोदसी निनेथ ।
महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञेऽतूतुजिं चित् तूतुजिरशिश्नत् २४१
४ एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।
प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात् २४२

[२] (२४०) हे (शवसिन् इन्द्र) बलवान् इन्द्र! (यत् ऋषीणां ब्रह्म पासि) जब ऋषियोंका स्तोत्र तुम सुरक्षित रखते हो, तब (ते महिमा वि आनट्) तुम्हारी महिमा उसमें व्याप्त होती है। हे (उग्र) शूर वीर! (यत् हस्ते वज्रं आ दधिषे) जब तुम हाथमें वज्रका धारण करते हो, तब (घोरः सन् क्रत्वा अषाळ्हः जनिष्ठाः) तुम भयंकर शूर बनकर अपने युद्धरूप कर्मसे अपराजित होते हो।

मानवधर्म – वीर बलिष्ठ शूर और उग्र बने। जिन काव्योंमें वीरोंकी वीरताका वर्णन किया है वे ही काव्य सुरक्षित रहें। वीर हाथमें शस्त्र लेकर ऐसे पराक्रम करें कि वे शत्रुके लिये असह्य हों।

१ **शवसिन् उग्र**— वीर बलवान् हो और उग्र हो।

२ **ते महिमा व्यानट्, ऋषिणां ब्रह्म पासि**— वीरोंकी महिमा जिन काव्योंमें फैली है, गायी है, ऋषियोंके उन काव्योंकी सुरक्षा हो।

३ **हस्ते वज्रं आदधिषे, घोरः सन् क्रत्वा अषाळ्ह जनिष्ठाः** — जब तुम अपने हाथमें वज्र धारण करके युद्ध करता है, तब भयानक वीर बन कर अपने युद्ध कर्मसे शत्रुके लिये असह्य होता है।

[३] (२४१) हे इन्द्र! (यत् तव प्रणीती जोहुवानान्) जब तुम अपनी नेतृत्वकी पद्धतिके अनुसार स्तोत्र पाठ करनेवाले (नॄन् रोदसी सं निनेथ) मानवोंको द्युलोकसे पृथिवीतक सुप्रतिष्ठित करते हो, तब तुम (महे क्षत्राय शवसे जज्ञे) महान् क्षात्र कर्म तथा बलके कार्य करनेके लिये ही उत्पन्न हुए हो (हि) यह यह निःसंदेह ही है। (अतूतुजिं तूतुजिः चित् अशिश्नत) अदाताको दाता पराजित करता है।

मानवधर्म – उत्तम नीतिसे चलनेवाले वीरोंकी विश्वभरमें प्रतिष्ठा होती है। वीर पुरुष बलके और शौर्यके महान कार्य करनेके लिये उत्पन्न हुए होते हैं। नियम यह है कि दाता कंजूसको पीछे रखकर जगत्में प्रसिद्धि पाता है

१ **तव प्राणीती नॄन् रोदसी संनिनेथ** — तुम अपनी पद्धतिके अनुसार नेता वीरोंको इस विश्वमें सुप्रातिष्ठित करते हो, वीर नेताकी प्रतिष्ठा इस विश्वमें होती है। वीरोंकी प्रतिष्ठा होना उचित है।

२ **महे क्षत्राय शवसे जज्ञे**— वीर बडे शौर्यके और बलके कार्य करनेके लिये उत्पन्न हुआ है। वीर कभी कुछ भी हीन कार्य न करे।

३ **तूतुजिः अ-तूतुजिं चित् अशिश्नत्** — उदार दाता कंजूसको पीछे रखता है। दाताका यश विश्वमें फैलता है।

[४] (२४२) हे इन्द्र! (दुर्मित्रासः क्षितयः पवन्ते) जो दुष्ट मनुष्य हम लोगोंपर हमला करते हैं, (एभिः अहभिः नः दशस्य) उनको इन अच्छे दिनोंके साथ हमारे अधीन करो। (अनेनाः मायी वरुणः) निष्पाप कुशल वरुण (यत् अनृतं प्रति चष्टे) जो असत्य हमारे अन्दर देखेगा वह (द्विता अव सात्) द्विधा होकर हमसे दूर हो जाय।

मानवधर्म– जब सज्जनोंपर दुष्ट लोग मित्ररूपसे रह कर आक्रमण करेंगे, तब उन दुष्टोंका नियंत्रण करना चाहिये और सज्जनोंको अच्छा अवसर देना चाहिये। इस नियमनका अधिकारी निष्पाप स्वकर्ममें प्रवीण और श्रेष्ठ हो। वह जो असत्य देखे, उसको वह दूर करे। किसी स्थानपर असत्य न रहने पावे।

५ वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २४३

(१९) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।
पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः २४४
२ ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः २४५
३ का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन् दाशेम ।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाऽधा म इन्द्र शृणवो हवेमा २४६

---

१ दुर्मित्रासः क्षितयः पवन्ते, एभिः अहभिः नः ...अस्य — जो दुष्ट लोग सज्जनोंपर निष्कारण आक्रमण करते ... उनको हमारे अधीन रख, हमें अच्छे दिन प्राप्त हों और दुष्ट लोग दूर हों।

'दुर्मित्र' — मित्रता दिखाते हुए जो दुष्टता करते हैं, वे शत्रुही हैं। जब ऐसे दुष्ट सज्जनोंपर हमला करें, तब उनका निग्रह करना चाहिये और सज्जनोंको अच्छा समय प्राप्त हो ऐसा शासन करना चाहिये।

२ अनेनाः मायी वरुणः — वरुण शासक देव है, वह वरिष्ठ है, श्रेष्ठ है, पापरहित है, (मायी) काममें कुशल है, ज्ञानवान्, बुद्धिपूर्व कर्म करनेवाला है। शासन कर्ममें नियुक्त अधिकारी निष्पाप, बुद्धिमान, अपने कर्ममें कुशल तथा वरिष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ होना चाहिये।

३ यत् अनृतं प्रति चष्टे द्विता अवसात् — जो पाप हममें दिखाई देगा वह द्विधा होकर दूर किया जावे। उसके टुकडे टुकडे होकर वह दूर हो। वह हममें किसी तरह न रहे।

[५] (२४३) (यत् महः राधसः रायः नः ददत्) जो बडे सिद्धिप्रद धनका हमें दान करता है (यः अर्चतः ब्रह्मकृतिं अविष्ठः) जो स्तोताके स्तोत्ररूप कृतिका संरक्षण करता है (एनं मघवानं इन्द्रं इत् वोचेम) उस धनवान् इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी सुरक्षा उत्तम कल्याणोंके साथ करो।

१ महः राधसः रायः नः — बडी सिद्धि देनेवाले धन हमें चाहिये। जिससे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है वैसे धन हमें मिलें। हीनता उत्पन्न करनेवाले धन हमारे पास न आवें।

२ ब्रह्मकृतिं अविष्ठः — ज्ञान पूर्ण कृतिका रक्षण करं। जिससे ज्ञान बढे वैसी कृति सुरक्षित रहे।

[१] (२४४) हे इन्द्र! (तुभ्यं अयं सोमः सुन्वे) तुम्हारे लिये यह सोमरस निकालते हैं। हे (हरिवः) उत्तम घोडे रथको जोतनेवाले इन्द्र! (तदोकाः तु आ प्रयाहि) उस स्थानपर तुम सत्वर आओ। (अस्य सुसुतस्य चारोः तु पिब) इस उत्तम सुन्दर रसका पान करो। हे (मघवन्) धनवान्! (इयानः मघानि ददः) उपासना करनेपर धनोंका प्रदान कर।

[२] (२४५) हे (ब्रह्मन् वीर) ज्ञानी वीर! (ब्रह्मकृतिं जुषाणः) ज्ञानपूर्वक की हुई इस कृतिका-स्तुतिका सेवन करके (अर्वाचीनः हरिभिः तूयं याहि) हमारी ओर मुख करके घोडोंके साथ सत्वर हमारे पास आओ। (अस्मिन् सवने सु मादयस्व) इस सोमसवनसे आनंदित हो। (नः इमा ब्रह्माणि उप शृणवः) और हमारे ये स्तोत्र श्रवण कर।

[३] (२४६) (सूक्तैः ते अरंकृतिः का अस्ति) इन सूक्तोंसे तुम्हारी शोभा कैसी हो रही है।' हे

४ उतो घा ते पुरुष्या३ इदासन् येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम् ।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव २४७

५ वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २४८

(३०) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन् भवा वृध इन्द्र रायो अस्य ।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर २४९

(मघवन्) धनपते ! (कदा ते नूनं दाशेम) कब तुम्हें हम सचमुच प्रसन्न करें ? (त्वाया विश्वा मतीः आततने) तुम्हारे लिये ही ये स्तुतियां मैं करता हूं। हे इन्द्र ! (अध मे इमा हवा शृणवः) और मेरे ये स्तोत्र श्रवण करो।

[४] (२४७) हे (मघवन्) धनपते ! (उत येषां पूर्वेषां ऋषीणां) और जिन प्राचीन ऋषियोंकी स्तुतियां (अशृणोः) तुमने सुनी थीं, (ते पुरुष्याः इत् आसन्) वे ऋषि मनुष्योंका हित करनेवाले थे। (अध अहं त्वा जोहवीमि) अतः मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं, हे इन्द्र ! (त्वं नः पिता इव प्रमतिः असि) तुम हमारे पिता जैसे उत्तम बुद्धि दाता हो।

१ ते पुरुष्याः आसन्— वे ऋषि मानवोंका हित करनेवाले थे। मानवोंका हित साधन करना ऋषियोंका कर्तव्य था।

२ त्वं नः पिता प्रमतिः असि — ईश्वर हम सबका पिता और शुभमतिका प्रदाता है।

[५] (२४८) यह मंत्र २४३ पर है। वहीं उसका अर्थ देखिये।

[१] (२४९) हे (देव शुष्मिन् इन्द्र) प्रकाशमान बलशाली इन्द्र ! (शवसा नः आयाहि) बलके साथ हमारे पास आओ। (अस्य रायः वृधः भव) इस धनको बढानेवाले बनो। हे (नृपते सुवज्र) मनुष्योंके पालनकर्ता उत्तम वज्रधारी इन्द्र ! (महे नृम्ण) बडे बलको बढानेवाले बनो। हे शूर ! (महि क्षत्राय पौंस्याय) बडे क्षात्र सामर्थ्य और विशाल पौरुषके बढानेवाले बनो।

मानवधर्म – धन बढाओ, बल बढाओ, क्षात्र सामर्थ्य बढाओ और पौरुष बढाओ।

१ देव शुष्मिन् सुवज्र शूर इन्द्र नृपते— प्रकाशमान् तेजस्वी, बलवान्, उत्तम शस्त्रधारी, शूर वीर, शत्रुनाशक ऐसा मनुष्योंका राजा हो। राजा और राजपुरुषोंमें ये गुण हों और ये गुण बढें। इन्द्रके वर्णनसे नृपति- राजा- का वर्णन यहां किया है।

२ शवसा आयाहि — बलके साथ अपने कर्तव्यके स्थानपर आओ।

३ अस्य रायः वृधे भव — इस राष्ट्रके ऐश्वर्यको बढाओ।

४ अस्य महे नृम्णाय भव — इस राष्ट्रके महान सामर्थ्यको बढाओ।

५ अस्य महि क्षत्राय पौंस्याय भव—इस राष्ट्रका क्षात्रबल और पौरुष बढाओ।

इन्द्रके वर्णनके ये वचन राष्ट्रीय शिक्षाका भाव बता रहे हैं। इनका इस तरह मननपूर्वक विचार करना चाहिये।

६ त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा २५९
७ महाँ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः । मम्नाते इन्द्र रोदसी २६०
८ तं त्वा मरुत्वती परि भुवद् वाणी सयावरी । नक्षमाणा सह द्युभिः २६१
९ ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन् दस्मनुप द्यावि । सं ते नमन्त कृष्टयः २६२
१० प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः २६३
११ उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः २६४
१२ इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् २६५

---

[६] (२५९) हे (वृत्रहन्) शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्र ! (त्वं वर्म असि) तुम हमारा कवच हो। (स प्रथः) तुम सर्वत्र संरक्षण करनेमें प्रसिद्ध हो। तुम (पुरो योधः च असि) सामनेसे युद्ध करनेवाले हो। (त्वया युजा प्रति ब्रुवे) तुम्हारी सहायतासे हम शत्रुको अच्छा उत्तर देंगे। उनका नाश कर सकेंगे।

राजा शत्रुका नाश करे। प्रजाका संरक्षण करे। प्रजाके लिये कवचके समान हो। शत्रुसे युद्ध करे और प्रजाका संरक्षण करे।

[७] (२६०) हे इन्द्र (महान् असि) तुम सबसे बडा हो, (यस्य ते सहः) तुम्हारे बलकी (स्वधावरी रोदसी अनु मम्नाते) अन्नवाली द्यावापृथिवी भी मान्यता करती है।

[८] (२६१) (तं त्वा स-यावरी) तुम्हारे साथ जानेवाली (द्युभिः सह नक्षमाणा) तेजोंके साथ फैलनेवाली (मरुत्वती वाणी) वीरों द्वारा की स्तुति (परिभुवत्) तुम्हारा स्वीकार करे। तुम्हारी स्तुति सर्वत्र होती रहे।

[९] (२६२) (उपद्यवि त्वा दस्म) द्युलोकके समीप तुझ दर्शनीय के लिये (ऊर्ध्वासः इन्दवः भुवन्) ऊपर ऊपर चढनेवाले सोम सिद्ध हो रहे हैं। (कृष्टयः ते सं नमन्ते) और प्रजाएं तुम्हें नमन करती हैं।

[१०] (२६३) (वः महीवृधे महे प्रभरध्वं) तुम धनका संवर्धन करनेवाले महान वीर इन्द्रके लिये सोमरस भर दो। (प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं) विशेष ज्ञानवान इंद्रके लिये उत्तम स्तुति करो। (चर्षणिप्राः पूर्वीः विशः प्र चर) प्रजाओंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले तुम प्रजाओंमें संचार कर।

१ महीवृधे महे प्रभरध्वं—धनका संवर्धन करनेवाले बडे वीरके लिये सोमरस दो और उसका सत्कार करो।

२ प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं—विशेष ज्ञानी वीरकी प्रशंसा करो।

३ चर्षणिप्राः पूर्वीः विशः प्रचर—प्रजाओंकी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेवाला तू प्रजाओंमें संचार करो। उनकी अवस्थाका विचार करो।

[११] (२६४) (उरुव्यचसे महिने इन्द्राय सुवृक्तिं) चारों ओर यशसे फैले और बडे इन्द्रके लिये स्तुति और (ब्रह्म विप्राः जनयन्त) हविष्यान्न ज्ञानी लोग तैयार करते हैं। (तस्य व्रतानि धीराः न मिनन्ति) उसके संरक्षणादि व्रतोंका निषेध धीर पुरुष भी नहीं कर सकते।

[१२] (२६५) (सत्रा राजानं अनुत्त-मन्युं) सब विश्वका राजा और जिसका उत्साह अप्रतिम है ऐसे (इन्द्रं वाणीः सहध्यै दधिरे) इन्द्रकी प्रशंसा अपना बल बढानेके लिये की जाती है। अतः (हर्यश्वाय आपीन् सं बर्हय) उत्तम घोडोंको जोतनेवाले इन्द्रकी स्तुति करनेके लिये अपने मित्रोंको उत्साहित कर।

(३२) २७ (१-२५) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, २६ पूर्वार्धर्चस्य शक्तिर्वासिष्ठो वा (शाट्यायने ब्राह्मणे),
२६-२७ शक्तिर्वासिष्ठो वा (ताण्डके ब्राह्मणे)। इन्द्रः। प्रगाथः- (बृहती,
सतोबृहती), ३ द्विपदा विराट्।

१ मो षु त्वा वाघतश्चनाऽऽरे अस्मन्नि रीरमन्।
आरात्ताच्चित् सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि २६६
२ इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः २६७
३ रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे २६८
४ इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ २६९

मानवधर्म- राजा सदा उत्साहयुक्त हो और कदापि दीन तथा निरुत्साही न हो। राजपुरुष भी ऐसे ही हों। इन्द्रकी स्तुतिका गान करो, इससे अपना बल बढानेके उपाय तुम्हें विदित होंगे। अपने मित्रों को भी इन्द्रकी स्तुति करने की प्रेरणा करो, वे भी इससे अपना बल बढावें।

१ अनुत्तमन्युः राजा--राजा तथा राजपुरुष उत्साहसे युक्त हों। निरुत्साह न हों।

२ सहध्यै इन्द्रं वाणीः दधिरे--अपना बल बढानेके लिये इन्द्रकी स्तुति करो। इन्द्रके स्तोत्र पढनेसे अपना बल बढता है। जिसको अपना बल बढाना हो वह इन्द्रके काव्योंका गायन करे।

३ हर्यश्वाय आपीन् संबर्हय--इन्द्रके स्तोत्र गानेके लिये अपने मित्रोंको उत्साहित करो। इन स्तोत्रोंके पाठसे उनमें भी अपना बल बढानेकी प्रेरणा हो।

[१] (२६६) (त्वा वाघतः चन अस्मत् आरे) तुम्हें स्तुति करनेवाले ये स्तोता हमसे दूर (मो सु नि रीरमन्) न रमते रहें। (आरात्तात् चित् नः सधमादं आ गहि) दूरसे भी तुम हमारे यज्ञगृहमें आओ। (इह वा सन् उप श्रुधि) यहां रह कर हमारा स्तोत्रका श्रवण करो।

[२] (२६७) (ते सुते इमे ब्रह्मकृतः हि) तुम्हारे लिये सोमरस निकालनेका कार्य चलनेके समय ये स्तोत्र पाठकर्ता गण (मधौ मक्ष न) शहदमें मधुमक्खियाँ बैठनेके समान (सचा आसते) साथ साथ बैठते हैं। (वसूयवो जरितारः) धन चाहनेवाले स्तोत्र-पाठी (रथे न पादं) रथमें पांव रखने के समान (इन्द्रे कामं आदधुः) इन्द्रमें अपनी इच्छाको रखते हैं।

अपनी धन प्राप्तिकी इच्छा इन्द्रसे पूर्ण होगी ऐसी इच्छा धारण करते हैं।

[३] (२६८) (पुत्रः पितरं न) पुत्र पिताको पूछता है उस तरह (रायस्कामः) धनकी कामना करनेवाला मैं (वज्रहस्तं सुदक्षिणं हुवे) वज्रधारी उत्तम दाता इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं।

इन्द्रसे धन चाहता हूं। पिताका धन पुत्रको प्राप्त होता है वैसा इन्द्रका धन मुझे मिलेगा। वह पिता है और मैं उसका पुत्र हूं।

[४] (२६९) हे (वज्रहस्त) वज्र हाथमें लेनेवाले इन्द्र! (दध्याशिरः इमे सोमासः) दहीसे मिश्रित ये सोमरस (इन्द्राय सुन्विरे) इन्द्रके लिये तैयार हो रहे हैं। तुम्हारे लिये ही हो रहे हैं। (तान् मदाय पीतये) आनन्दके लिये उनको पीनेके लिये (ओकः हरिभ्यां आ याहि) यज्ञ स्थानपर घोडोंसे आओ।

५ श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद् गिरः ।
सद्यश्चिद् यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् २७०
६ स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः ।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन् त्सुनोत्या च धावति २७१
७ भवा वरूथं मघवन् मघोनां यत् समजासि शर्धतः ।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् २७२
८ सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित् पृणन्नित् पृणते मयः २७३
९ मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे ।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे २७४

सोमरसमें दही मिलाते है और देवताको अर्पण करके पीते हैं। सोमपानसे आनन्द तथा उत्साह बढता है।

[५] (२७०] (श्रुत्कर्णः वसूनां ईयते) प्रार्थना सुननेके लिये तत्पर कर्णवाला इन्द्र है, उसके पास हम धनोंकी प्रार्थना करते हैं। (नः गिरः श्रवत्) वह हमारी प्रार्थना सुने। (नु चित् मर्धिषत्) कदापि हमें हिंसित न करे, हमारी प्रार्थना निष्फल न करे ! (सद्यः चित् यः शता सहस्राणि ददत्) तत्कालही वह सैकडों और हजारोंकी संख्यामें धनोंको देता है। (दित्सन्तं न किः आ मिनत्) देनेकी इच्छा करनेवाले उसको कोई रोक नहीं सकते।

[६] (२७१) हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (ते यः गभीरा सवनानि सुनोति) तुम्हारे लिये ये गम्भीर सोमके सवन जो करता है (आ धावति च) और तुम्हारे लिये शीघ्रता करता है (सः वीरः इन्द्रेण) वह वीर इन्द्रके द्वारा (अप्रतिष्कुतः) विरुद्ध भावसे प्रतिरोधित न होता हुआ (नृभिः शुशुवे) मानवोंके द्वारा संसेवित होता है। संमानित होता है।

[७] (२७२) हे (मघवन्) धनपते ! (मघानां वरूथं भव) धनवान् दाताओंका कवच जैसा संरक्षक बनो। (यत् शर्धतः समजासि) स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका निवारण करो। (त्वाहतस्य वेदनं विभजेमहि) तुम्हारे द्वारा मारे गये शत्रुके धनका हम सब बंटवारा करेंगे। (दुर्नशः गयं आभर) जिसका नाश नहीं होता ऐसा तुम हमें धन दो।

[८] (२७३) (वज्रिणे सोमपाव्ने इन्द्राय सोमं सुनाते) वज्रधारी सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिये सोमरस निकालो। (अवसे पक्तीः पचत) अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्रके प्रीतिके लिये पुरोडाशादि अन्न पकाओ (कृणुध्वं इत्) इन्द्रके लिये ये सब कर्म करो। (मयः पृणन् इत् पृणते) इन्द्र सुख देता हुआ इस यज्ञकर्मको पूर्ण संपन्न करता है।

[९] (२७४) (सोमिनः मा स्रेधत) सोमयागसे पीछे न हटो। (दक्षत) दक्षतासे कर्म करते रहो। (महे आतुजे) बडे तथा शत्रुके विनाशक इन्द्रके लिये तथा (राये कृणुध्वं) धन प्राप्तिके लिये यज्ञ करो। (तरणिः इत् जयति) त्वरासे कर्म करनेवाला निःसंदेह विजय करता है, (क्षेति पुष्यति) वह अपने घरमें निवास करता है, पुष्ट होता है, (कवत्नवे देवासः न) कुत्सित कर्म करनेवालेके सहायक देव नहीं होते।

१० नाकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् ।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत् स गोमति व्रजे २७५
११ गमद् वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम् २७६
१२ उदिन्न्वस्य रिच्यतेऽशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान् न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि २७७
१३ मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् २७८

---

१ **सोमिनः मा स्रेधत—** यज्ञकर्मसे पीछे न हटो तथा दूसरोंको भी पीछे न हटाओ ।

२ **महे आतुजे राये कृणुध्वं—** बडे शत्रुनाशक वीरकी प्रसन्नता करनेके लिये तथा अपनेको धन प्राप्त करनेके लिये कर्म करते रहो । अपने वीर प्रसन्न हों और अपने पास धन आजाय, इस हेतुसे कर्म करने चाहियें ।

३ **तरणिः इत् जयति—**जो त्वरासे परंतु उत्तम रीतिसे कर्म करता है वही जीतता है, वही विजय प्राप्त करता है। सुस्त मनुष्यके लिये यहां विजय नहीं है ।

४ **तरणिः इत् क्षेति—**त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला ही अपने घरमें निवास करता है । ऐसे कुशल कर्मकर्ताका ही अपना घर होता है ।

५ **तरणिः इत् पुष्यति—**त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला ही पुष्ट होता है, पुत्रपौत्र, इष्टमित्र, सेवक, धनधान्य, पशु आदिसे युक्त होता है ।

६ **कवत्नवे देवासः न—** (कव्-अत्नवे) कुत्सित कर्म करनेवालेकी सहायता देवता नहीं करते । देवोंसे सहाय्य उसको मिलता है कि जो शुभ कर्म उत्तम रीतिसे तथा शीघ्र करता है। सुस्त मनुष्यकी सहायता देवता नहीं करते ।

[१०] (२७१) (सुदासः रथं नकिः परि आस) उत्तम दाताके रथको कोई दूर नहीं रख सकता । (न रीरमत्) न उसको अन्यत्र रममाण कर सकता है । (यस्य रक्षिता इन्द्रः) जिसका रक्षक इन्द्र है और (यस्य मरुतः) जिसके रक्षक मरुत् हैं (सः गोमति व्रजे गमत्) वह गौओं-वाले वाडेमें जाता है, उसके पास गौओंके झुण्ड होते हैं ।

[११] (२७६) हे इन्द्र ! (त्वं यस्य अविता भुवः) तुम जिसके रक्षक होंगे, वह (मर्तः वाजयन् वाजं गमत्) मनुष्य तुम्हारा यश गाता हुआ अन्नको प्राप्त करता है । हे शूर ! (अस्माकं रथानां अविता बोधि) हमारे रथोंका रक्षक बनो । और (अस्माकं नृणां च) हमारे पुत्रपौत्रादिकोंका रक्षक होओ ।

[१२] (२७७) (यस्य अंशः रिच्यते) जिस इन्द्रका सोमरसका भाग अन्योंकी अपेक्षा अधिक होता है, (जिग्युषः धनं न) विजयी वीरके धनके समान (उत् इत् नु) निःसंदेह (यः हरिवान् इन्द्रः सोमिनि दक्षं दधाति) जो घोडोंवाला इन्द्र सोम याग करनेवालेमें बल धारण करता है (तं रिपः न दभन्ति) उसको शत्रु नहीं दबाते ।

सोमयागमें इन्द्रको सोमरसका भाग अधिक दिया जाता है, विजयी वीरको अधिक धन मिलता है, वैसा ही विजयी इन्द्रको सोमरस अधिक मिलता है । यह वीर इन्द्र सोमयाग कर्तामें बल धारण कराता है जिससे उसके सब शत्रु परास्त होते हैं ।

[१३] (२७८) (अखर्वं सुधितं सुपेशसं मंत्रं) बडा उत्तम बनाया सुन्दर मंत्रोंका स्तोत्र (यज्ञियेषु आदधात) यज्ञके योग्य देवोंमें इंद्रके लिये ही

१४ कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत् ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति २७९
१५ मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता २८०
१६ तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते २८१
१७ त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः ।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते २८२
१८ यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय २८३

अर्पण करो। (यः कर्मणा इंद्रे भुवत्) जो अपने स्तोत्रगानरूप कर्मसे इन्द्रके मनमें स्थान पाता है, (तं पूर्वीः प्रसितयः न तरंति चन) उसको कोई बंधन कष्ट नहीं देते।

[१४] (२७९) हे इन्द्र! (मर्त्यः) जो मनुष्य तुम्हारा प्रिय होता है (तं त्वा-वसुं कः आ दधर्षति) उस तुम्हारे भक्तको कौन भय दिखा सकता है? हे (मघवन्) धनपते! (त्वे इत् श्रद्धा) तुम्हारे ऊपर जो श्रद्धा रखता है वह (वाजी) बलवान् होता है, (पार्ये दिवि वाजं सिषासति) और पार होनेके दिनमें भी धन प्राप्त करता है।

[१५] (२८०) (मघोनः ते ये प्रिया वसु ददाति) तुम जैसे धनीको जो प्रिय धन अर्पण करते हैं, उनको (वृत्र हत्येषु चोदय) वृत्रवधके समय उत्साहित करो। हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंवाले इन्द्र! (तव प्रणीती) तुम्हारी नीतिके द्वारा (सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम) ज्ञानियोंके साथ रहकर सब पापोंसे हम पार हो जांयगे।

उत्तम धर्म नियमोंमें रहनेसे सब पाप दूर हो सकते हैं। ज्ञानीजनोंके साथ रहनेसे तो निःसंदेह पापसे बच सकते हैं।

[१६] (२८१) हे इंद्र! (अवमं वसु तव इत्) पृथिवीपरका धन तुम्हारा ही है, (त्वं मध्यमं पुष्यासि) तू मध्यम धनको पुष्ट करता है। (विश्वस्य परमस्य राजसि) सब श्रेष्ठ धनपर भी तुम्हारा राज्य है यह (सत्रा) सत्य है। (त्वा गोषु न किः वृण्वते) तुम्हें गौओंमें रहनेसे कोई रोक नहीं सकता।

[१७] (२८२) (त्वं विश्वस्य धनदा श्रुतः असि) तुम सब धनोंके दाता प्रसिद्ध हो। (ये आजयः ईं भवन्ति) जो युद्ध होते हैं उनमें भी तुम प्रसिद्ध हो। हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रशंसित वीर! (अयं विश्वः पार्थिवः) ये सब पृथ्वीपरके मनुष्य (अवस्युः नाम भिक्षते) अपनी सुरक्षाके लिये तुम्हारी ही प्रार्थना करते हैं।

[१८] (२८३) हे इन्द्र! (यत् यावतः त्वं) जितने धनका स्वामी तुम हैं (एतावत् अहं ईशीय) उतना सब धन मैं प्राप्त करना चाहता हूं। हे (रदावसो) धनके दाता! (स्तोतारं इत् दिधिषेय) स्तोताकी सुरक्षा हो ऐसी मेरी इच्छा है। (पापत्वाय न रासीय) पाप बढानेके लिये धनका दान मैं नहीं करूंगा।

१ **एतावत् अहं ईशीय**—यह सब धन मुझे प्राप्त हो।
२ **स्तोतारं दिधिषेय**—ज्ञानीकी मैं सुरक्षा करूंगा।
३ **पापत्वाय न रासीय**—पाप बढानेके लिये मैं धनका दान कदापि नहीं करूंगा।

१९ शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन २८४

२० तरणिरित् सिषासति वाजं पुरंध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् २८५

२१ न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत् पार्ये दिवि २८६

---

[१९] (२८४) (कुहचिद्विदे महयते) कहां भी रहनेवाले उपासना करनेवाले भक्तके लिये (दिवे दिवे रायः शिक्षेयं इत्) प्रतिदिन मैं धनका दान अवश्य करूंगा। हे (मघवन्) धनपते! (नः आप्यं त्वत् अन्यत् नहि) तुमसे भिन्न हमारा कोई बंधु नहीं है। (वस्यः पिता चन अस्ति) न प्रशंसनीय पिता ही दूसरा है।

इन्द्र कहता है— ' मैं प्रतिदिन उपासकको धन देता हूं। ' यह सुनकर ऋषि कहाता है— ' हे धनपते! तुमसे भिन्न हमारा कोई दूसरा बन्धु नहीं है और ना ही दूसरा कोई पिता है। तुमही हमारा बन्धु, मित्र और पिता हो।

[२०] (२८५) (तरणिः इत्) त्वरासे कर्म करनेवाला मनुष्य (पुरंध्या युजा वाजं सिषासति) बडी धारणावती बुद्धिके साथ युक्त होकर बल तथा अन्न प्राप्त करता है। (सुद्र्वं नेमिं त्वष्टा इव) उत्तम लकडीकी चक्रनेमिको तर्खाण नमाता है, उस तरह (गिरा वः पुरुहूतं इन्द्रं आ नमे) मैं अपनी स्तुतिसे आपके लिये बहुप्रशंसनीय इंद्रको मैं अपनी ओर आनेके लिये नवाता हूं।

१ तरणिः पुरंध्या युजा वाजं सिषासति—कुशलतासे सत्वर और उत्तम कार्य सिद्ध करनेवाला कारीगर बडी धारणावती बुद्धिसे युक्त होनेके कारण अन्न और बलको प्राप्त करता है। कुशल कारीगर अपनी कर्मकुशलता और अपनी बुद्धिके कारण पर्याप्त धन प्राप्त करता है।

२ त्वष्टा सु-द्रुं नेमिं—सुतार-लकडीका कार्य करनेवाला उत्तम लकडीसे रथका चक्र तथा उसकी नेमी बनाता है।

३ बहुस्तुतं गिरा आ नमे—बहुतों द्वारा बुलाया जानेपर भी मैं अपनी वाणीसे उस वीरको अपनी ओर ही आकृष्ट करता हूं। वाणीमें ऐसी शक्ति चाहिये जिससे दूसरोंपर प्रभाव पडे।

[२१] (२८६) (मर्त्यः दुष्टुती वसु न विन्दते) मनुष्य बुरे स्तोत्रसे धन नहीं प्राप्त कर सकता। (स्रेधन्तं रयिः न नशत्) हिंसकको धन नहीं प्राप्त हो सकता। हे (मघवन्) धनपते! (पार्ये दिवि) दुःखसे पार होनेके प्रयत्नसे युक्त दिनमें (मावते देष्णं) मेरे जैसे भक्तके लिये देनेयोग्य धन (तुभ्यं सुशक्तिः इत् विन्दते) तुमसे उत्तम शक्तिसे उत्तम कर्म करनेवाला ही प्राप्त करता है।

मानवधर्म- मनुष्य धन प्राप्त करनेके लिये दुष्टकी प्रशंसा न करे। तथा हिंसा करके भी धन न कमावे। कुशलतासे कर्म करनेकी शक्ति प्राप्त करे और उस कौशल्यपूर्ण कर्मसे मनुष्य धन प्राप्त करे।

१ दुः-स्तुती मर्त्यः वसुः न विन्दते—दुष्टकी प्रशंसा करनेसे धन प्राप्त नहीं होता। धन कमानेके लिये दुष्टकी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये।

२ स्रेधन्तं रयि न नशत्—हिंसक कर्म करनेवालेको धन नहीं घेरता, धन नहीं प्राप्त होता। धनके लिये हिंसा करना योग्य नहीं है।

३ पार्ये दिवि सुशक्तिः इत् देष्णं विन्दते—दुःखसे पार होनेके लिये जिस समय कार्य किया जाता है, उस समय उत्तम कर्म करनेकी शक्ति जिसमें होती है वही धन कमाता है। उत्तम रीतिसे कर्म करनेकी शक्तिसे धन कमाया जाता है। अतः यह कौशल्य मनुष्यको प्राप्त करना योग्य है।

२२ अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः २८७
२३ न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे २८८
२४ अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन् त्सनादसि भरेभरे च हव्यः २८९

[२२] (२८७) हे शूर इंद्र! (अस्य जगतः ईशानं) इस जंगम वस्तुजातके स्वामी तथा (तस्थुषः ईशानं) स्थावर विश्वके स्वामी ऐसे (स्वर्दृशं त्वा) दिव्यदृष्टिवाले तुमको (अदुग्धाः इव धेनवः) न दुही हुई गौवें जिस तरह दोहन होनेके लिये उत्सुक होती हैं उस तरह हम (अभि नो नुमः) स्तवन करते हैं।

मानवधर्म-जो स्थावर जंगमका एक मात्र प्रभु है उसी की उपासना करना मनुष्योंके लिये योग्य है। मनुष्य उतनी आतुरतासे ईश्वरस्तुति करे कि जितनी आतुर न दुही गौवें दोहन करानेके लिये उत्सुक रहती है।

१ अस्य जगतः तस्थुषः ईशानं स्वर्दृशं अभि नोनुमः—इस संपूर्ण स्थावर जंगमके ईश्वरका, जो दिव्यदृष्टीसे सबको देख रहा है उस प्रभुका विनम्रभावसे स्तवन करते है। इस प्रभुकी स्तुति करना ही योग्य है।

२ अदुग्धाः धेनवः इव अभि नोनुमः—न दोही हुई गौवें जैसे दुही जानेके लिये आतुर होती हैं, वैसे हम इस प्रभुकी स्तुति करनेके लिये अपने अन्तःकरणसे उत्सुक है।

[२३] (२८८) हे (मघवन् इंद्र) धनपते इंद्र! (दिव्यः त्वावान् अन्यः न) द्युलोकमें तुम्हारे सदृश दूसरा कोई नहीं है। (न पार्थिवः जातः न जनिष्यते) पृथिवीपर भी न कोई तुम्हारे सदृश हुआ है और ना ही होगा। (अश्वायन्तः गव्यन्तः वाजिनः) हम घोडों, गौओं और अन्नोंको चाहनेवाले (त्वा हवामहे) तुम्हारी प्रार्थना करते हैं।

१ दिव्यः पार्थिवः त्वावान् अन्यः न जातः न जनिष्यते—द्युलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा पृथिवीपर तुम्हारे समान समर्थ वीर कोई दूसरा भूतकालमें न हुआ था और न भविष्यमें होगा, न इस समय है। तीनों लोकोंमें और तीनों कालोंमें तुम्हारे जैसा दूसरा कोई नहीं है। अतः तुम ही अकेले हमारे लिये उपास्य हो।

२ अश्वायन्तः गव्यन्तः वाजिनः त्वा हवामहे—हम घोडे गौवें और अन्न आदि धन चाहते हैं इसलिये तुम्हारे पास ही आते हैं।

[२४] (२८९) हे (ज्यायः इंद्र) श्रेष्ठ इंद्र! (कनीयसः सतः तत् अभि आ भर) मैं तुम्हारा छोटा भाई हूं अतः मुझे वह धन तुम भरपूर दो। हे (मघवन्) धनपते! (सनात् पुरुवसुः हि असि) तुम सनातन कालसे बहुत धनवाला हो और (भरे भरे हव्यः च) प्रत्येक युद्धमें तथा यज्ञमें पूज्य हो।

मानवधर्म-बडा भाई छोटे भाईको धन देवे, सहायता करे, उसका भाग उसको योग्य समयमें दे डाले। बडे भाई के पास पैतृक धन पहिले आता है। छोटे भाईको वह बडा होनेपर धन प्राप्त होना है। इसलिये उसका धन उसको देना योग्य है। युद्धके कठिन समय में तथा यज्ञके पुण्य समयमें बडे भाई छोटे भाईकी सहायता करे।

१ ज्यायः कनीयसः तत् अभि आभर—बडा भाई अपने छोटे भाईके लिये धनकी सहायता करता है अथवा उसके हिस्सेका भाग उसको देता है।

२५ परा णुदस्व मघवन्नमित्रान् त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् २९०
२६ इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि २९१

यहां बडे भाईका कर्तव्य बताया है कि वह छोटे भाईके लिये धनादिकी सहायता करता है, विद्या पढवाता, बल बढाता, धन देता और उसको योग्य करता है । इस तरह भाई भाई आपसमें परस्पर सहायक हों । इस मंत्रभागसे यह भी सिद्ध होता है कि अपने पैत्रिक धनका भाग बडा भाई छोटे भाईको देता है, भाईयोंका अधिकार पैत्रिक धनपर समान होता है । इन्द्रके पास भक्त जो धन मांगते है वह इस भाईपनके अधिकारसे मांगते हैं । यह विशेष महत्त्वकी बात है ।

किसी अन्य धर्मग्रन्थमें ईश्वरको भाई कहकर उसके धनमें अपना हिस्सा है ऐसा मानकर उस भागको मांगना नहीं दिखाई देता है । वेद ही ऐसा अधिकार भक्तको देता है ।

२ सनात् पुरुवसुः असि— तू बडा भाई है और मेरे पहिलेसे ही तुम्हें धन प्राप्त हुआ है । इसलिये मैं अपना भाग मांगता हूं । यह याचना नहीं है पर अपने अधिकारकी ही बात मैं लेना चाहता हूं । मैं छोटा भाई हूं इसलिये पैत्रिक धन तुम्हारे पास है इस कारण तुमसे मैंने लेना है ।

३ भरे भरे हव्यः--युद्धके अवसर पर तथा यज्ञके समय धनकी आवश्यकता रहती है । इसलिये ऐसे अवसर पर अपना धन मैं लेना चाहता हूं । वह मेरे विभागका धन मुझे भरपूर दे दो ।

[२५] (२९०) हे (मघवन्) धनपते ! (अमित्रान् परा नुदस्व) शत्रुओंको दूर करो । (नः वसु सुवेदा कृधि) हमारे लिये धन सुखसे प्राप्त होने योग्य करो । (महाधने सखीनां अविता बोधि) युद्धके समय मित्रोंका संरक्षण करनेवाला हो, (वृधः भव) धनको बढानेवाला हो ।

मानवधर्म- शत्रुओंको दूर करो, धन प्राप्तिके व्यवहार सुखसे होते रहें ऐसा प्रबंध करो । युद्धके समय अपने मित्रोंकी सुरक्षा करो और अपने मित्रोंको बढाओ । मित्रोंकी संख्या बढाओ और मित्रोंकी शक्ति भी बढाओ ।

१ अमित्रान् परा नुदस्व—शत्रुओंको दूर भगा दो । मित्रोंको पास करो ।

१ नः वसु सुवेदा कृधि--हमें धन सुखसे प्राप्त हो ऐसा कर । धन प्राप्तिके व्यवहारमें हमें कष्ट न हों ।

३ महाधने सखीनां अविता बोधि--युद्धके समय अपने मित्रोंकी सुरक्षा करो, यह कार्य तुम्हारा कर्तव्य है ऐसा जानो । और वैसा करो ।

४ महाधने सखीनां वृधः भव—युद्धमें मित्रोंको बढाओ । मित्रोंकी सहायता करो ।

[२६] (२९१) हे इंद्र ! (नः क्रतुं आ भर) हमारे प्रज्ञानपूर्वक किये कर्मोंको पूर्ण करो । (यथा पिता पुत्रेभ्यः) जैसा पिता पुत्रोंको धन देता है वैसा तुम (नः शिक्ष) हमें दो । हे (पुरुहूत) बहुतोंद्वारा स्तविन हुए इंद्र ! (अस्मिन् यामनि) इस यज्ञमें (जीवाः ज्योतिः अशीमहि) हम जीवित रहकर तेजको प्राप्त करें ।

मानवधर्म- पिता अपने पुत्रोंको सुशिक्षा देवे, उनकी प्रज्ञा बढावे उनमें कर्मको कुशलतासे करनेकी शक्ति भी बढा देवे । पिताका यह कर्तव्य है । मनुष्य दीर्घ जीवी हो और उनका जीवन तेजस्वी हो । अल्पायु और तेजोहीन कोई न हो ।

१ यथा पिता पुत्रेभ्यः तथा त्वं नः क्रतुं शिक्ष, नः आ भर च--जैसा पिता अपने पुत्रोंको सुशिक्षा देता है, उनकी प्रज्ञा बनाता और कर्मशक्ति बढाता है, उस तरह तुम भी हमें सुशिक्षा दो, हमारी प्रजा बढाओ और कर्मशक्ति भी बढाओ।

२ अस्मिन् यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि—इस अवसर पर हम दीर्घ जीवन प्राप्त करना चाहते हैं और तेजस्वी जीवन चाहते हैं ।

२७ मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि २९२

(३३) १४ (१-९) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, १०-१४ वसिष्ठपुत्राः । १-९ वासिष्ठपुत्राः इन्द्रो वा; १०-१४ वसिष्ठः । त्रिष्टुप ।

१ श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन् वोचे परि बर्हिषो नॄन् न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः २९३

२ दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात् सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान् २९४

---

[२७] (२९२) (अज्ञाताः अशिवासः दुराध्यः वृजनाः नः मा मा अवक्रमुः) अज्ञात रीतिसे अशुभ दुष्ट घातक शत्रु हम पर आक्रमण न करें। हे शूर! (त्वया वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अति तरामसि) तुम्हारेसे हम स्वसंरक्षणमें समर्थ होकर सब कर्मोंसे हम पार हो जांयगे ।

मानवधर्म-कोई शत्रु अज्ञात मार्गसे हमपर आक्रमण न कर सके, हमारे कल्याण होनेके मार्गमें बाधा न डाल सके, हमारा घातपात न कर सके, हमारा नाश न कर सके, हम सामर्थ्यवान होकर सदा अपनी उन्नतिके सब ही शुभ कर्मोंको करते रहें, उसमें विघ्न न आवे ऐसा सामर्थ्य हमें प्राप्त हो । शासन प्रबंध ऐसा हो ।

१ अज्ञाताः अशिवासः दुराध्यः वृजनाः नः मा अवक्रमुः--अज्ञात मार्गसे अशुभ दुष्ट हिंसक क्रूरकर्मी शत्रुजन हमपर आक्रमण न कर सकें, इतना सामर्थ्य हमें प्राप्त हो ।

२ वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अतितराम--हम सब अपनी सुरक्षा करनेमें समर्थ हो कर सदा ही कर्मोंको निर्विघ्नतया कर सकें इतना सामर्थ्य हमें प्राप्त हो ।

[१] (२९३) इंद्र कहता है— (श्वित्यञ्चः धियंजिन्वासः) गौरवर्ण बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाले (दक्षिणतस्कपर्दाः) दक्षिणकी ओर शिखा रखनेवाले वसिष्ठ गोत्रके लोग (मा अभि प्रमन्दुः हि) मुझे अत्यन्त आनन्द देते रहे । (बर्हिषः परि उत्तिष्ठन् नॄन् वोचे) आसनसे ऊपर उठते हुए लोगोंसे मैंने कहा कि (मे दूरात् वसिष्ठाः अवितवे न) मुझसे दूर वसिष्ठके लोग न जांय ।

वसिष्ठ गोत्रियोंका वर्णन—(श्वित्यंचः श्वित्यं अञ्चति) श्वेतवर्ण जिनपर है ऐसे गौरवर्णके ये वसिष्ठ गोत्री पुरुष थे । (धियं-जिन्वासः)— बुद्धिपूर्वक, योजनापूर्वक, कर्म करनेवाले, पहिले विचारपूर्वक निर्णय करके उस योजनाके अनुसार कर्म करनेवाले, (दक्षिणतः-कपर्दाः)—दक्षिणकी ओर सिरके दक्षिण भागमें जिनकी शिखा होती है । वसिष्ठ ऋषि तथा उसके पुत्र गौरवर्ण तथा सिरमें दक्षिण विभागमें शिखा रखनेवाले थे । इन्द्र कहता है कि इन लोगोंने (मा अभि प्रमन्दुः) मुझे अत्यंत सन्तोष दिया है । यज्ञके आसनसे उठते समय इन्द्रने कहा कि (वसिष्ठाः मे दूरात् अवितवे न) वसिष्ठ गोत्री लोग मुझसे दूर न गमन करें ।

परमेश्वर भक्त पर संतुष्ट होकर कहता है कि भक्त मुझसे दूर न जाय ।

[२] (२९४) वसिष्ठ कहता है— (वैशन्तं पान्तं उग्रं इंद्रं) चमसमें स्थित सोमको पीनेवाले उग्र वीर इंद्रको (सुतेन अति तिरः) इस सोमरससे उस पानका तिरस्कार करवाले (दूरात् आनयन्) दूरसे भी ले आये थे। (इंद्रः वायतस्य पाशद्युम्नस्य सुतात् सोमात्) इंद्रने भी वयत् पुत्र पाशद्युम्नके तयार हुए सोमको छोडकर (वसिष्ठान् अवृणीत) वसिष्ठोंको ही वर लिया ।

वयत्पुत्र पाशद्युम्नके यज्ञमें इन्द्र सोमरसका पान कर रहा था । परंतु वसिष्ठोंने ऐसा सोमरस बनाया कि इन्द्रने उस सोमका

३ एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः २९५
४ जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ ।
यच्छक्करीषु बृहता रवेणेन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः २९६
५ उद् द्यामिवेत् तृष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् २९७

तिरस्कार करके वसिष्ठोंका सोमरस पीया । सोमरस तैयार करनेके कौशल्यका यह वर्णन है । वासिष्ठ लोग सोमरस तैयार करनेमें अत्यंत प्रवीण थे यह इसका भाव है । '**वसिष्ठ**' वह होता है कि जो निवास करानेमें प्रवीण होता है । इन्द्र प्रभु है । लोगोंको निवास करनेके लिये जो सहायता करते है उनपर प्रभुकी कृपा होती है यह इसका तात्पर्य है ।

[३] (२९५) (एव इत् नु एभिः सिन्धुं कं ततार) **इसी तरह इन्होंने सिन्धुको सुखसे पार किया। (एव इत् नु एभिः भेदं कं जघान) इसी तरह इन्होंने भेदका नाश सुखसे किया, आपसकी फूटको दूर किया। (एव इत् नु दाशराज्ञे सुदासं) इसी तरह दाशराज्ञ युद्धमें सुदासको हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठो! (वः ब्रह्मणा इन्द्रः प्रावत्) आपके स्तोत्रसे ही इन्द्रने सुरक्षित किया।**

सिन्धु नदीको पार किया, अपसकी फूटको दूर किया, आपसकी उत्तम संघटना की, दाशराज्ञ युद्धमें सुदासकी सुरक्षा की । यह इन्द्रने किया, पर यह वसिष्ठोंके स्तोत्रसे हुआ ।

मानवोंको नदीपार जानेके साधन निर्माण करने चाहिये । आपसके भेदका नाश करना चाहिये । युद्धमें स्वकीयोंका संरक्षण करना चाहिये ।

[४] (२९६) **हे (नरः) नेता लोगो! (वः ब्रह्मणा पितॄणां जुष्टी) आपके स्तोत्रसे पितरोंकी प्रीति होती है। (अक्षं अव्ययं) मैंने अपने रथके अक्षको चलाया है। मैं रथ अपने स्थानको जानेके लिये चलाता हूं। (न किल रिषाथ) तुम क्षीण न होओ। बलवान् बनो। हे (वासिष्ठाः) वसिष्ठ लोगो! (यत् शक्करीषु बृहता रवेण) शक्करी ऋचाओंमें बडे आलापोंके स्वरसे, सामगानसे— (इन्द्रे शुष्मं अदधात) इन्द्रमें बल धारण करो, बल बढाओ। इन्द्रका यश बढाओ।**

मानवधर्म— अपनी विद्वत्तासे अपने पितरोंको संतुष्ट करो । रथ चलाने आदिमें स्वाधीन रहो । कभी क्षीण न होओ । बडे स्वरसे वीरोंका काव्यगान करो और वीरोंकी उत्साह पूर्ण शक्ति बढाओ ।

१ वः ब्रह्मणा पितॄणां जुष्टी— पुत्रोंके किये काव्यसे पितरोंकी प्रसन्नता होती है । पितर समझते हैं कि अपने पुत्र भी ज्ञानसंपन्न हुए हैं, ऐसा समझ कर वे प्रसन्न होते हैं । पुत्रोंको उचित है कि वे अपने ज्ञानसे अपने कुलका यश बढावें ।

२ अक्षं अव्ययम्— रथके अक्षको मैं चलाता हूं । अपने स्वामीको उचित है कि वह स्वयं अपने रथको चलावे, रथके अक्ष आदिको ठीक करे । सेवक पर ही सदा अवलंबित न रहे । इन्द्र कहता है कि जैसा मैं रथ चलाता हूं वैसा तुम लोग भी किया करो । सेवक होने पर भी उनके अधीन होना उचित नहीं है । स्वामी स्वावलंबन करनेवाला हो ।

३ न रिषाथ— तुम क्षीण, निर्बल न बनो । अपनी शक्ति बढाओ । कोई आकर तुम्हारा नाश न कर सके इतने समर्थ बनो ।

४ शक्करीषु बृहता रवेण इन्द्रे शुष्मं अदधात— बडे स्वरसे सामगान द्वारा अपने इन्द्रका--प्रभुका--नेताका यश गा कर उसका उत्साह बढाओ । उसकी शक्ति बढाओ ।

[५] (२९७) (तृष्णजः वृतासः नाथितासः) **तृषित घेरे हुए उन्नति चाहनेवाले वसिष्ठोंने (द्यां इव दाशराज्ञे) द्युलोकके समान दाशराज्ञ युद्धमें (उत् अदीधयुः) इन्द्रकी प्रशंसा गायी। (स्तुवतः**

६ दण्डा इवेद् गोअजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त २९८
७ त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतास्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत् ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः २९९

वसिष्ठस्य इन्द्रः अश्रोत्) स्तुति करनेवाले वसिष्ठ का स्तोत्र इन्द्रने सुना। और उसने (तृत्सुभ्यः उरुं लोकं अकृणोत्) तृत्सुओंके लिये विस्तृत प्रदेश करके दिया।

मानवधर्म- भूखे प्यासे, शत्रुओंसे घिरे और अपनी उन्नति चाहनेवाले आतुर हुए भक्तोंने प्रार्थना की तो उसको प्रभु सुनते हैं। इसलिये भक्त अन्तःकरणसे प्रार्थना करे।

१ तृष्णजः वृतासः नाथितासः दाशराज्ञे उददीधयुः—तृषित प्यासे शत्रुसे घेरे हुए उन्नति चाहनेवाले लोगोंने दाशराज्ञ युद्धमें इन्द्रकी प्रशंसा की, अपनी सहायतार्थ इन्द्रको बुलाया।

२ स्तुवतः वासिष्ठस्य इन्द्रः अश्रृणोत्—वसिष्ठकी प्रार्थना इन्द्रने श्रवण की। और--

३ तृत्सुभ्यः उरुं लोकं अकृणोत्--तृत्सुओंके लिये विस्तृत प्रदेश उसने दिया।

[६] (२९८) (गो अजनासः दण्डा इव) गौओंको चलानेवाले डंडोंके समान (भरताः परिच्छिन्नाः अर्भकासः आसन्) भरत लोग छोटे और अल्प थे। (तृत्सूनां पुर एता वासिष्ठः अभवत्) उन तृत्सुओं—भरतों--का वसिष्ठ पुरोहित हुआ (आत् इत् तृत्सूनां विशः अप्रथन्त) तबसे भरतोंकी प्रजा बढने लगी।

१ 'गो-अजनासः दण्डाः '- गौओंको चलानेके लिये डंडे छोटेसे, बारीकसे, निर्बलसे होते हैं, गौओंको बडे लठसे मारना नहीं चाहिये यह वेदका आदेश यहां दीखता है। कोमल पल्लवयुक्त बारीकसी सोटीसे गौओंको चलानेके लिये इशारा करना चाहिये। बडे लठसे मारना उचित नहीं है। गौओंको कितने प्रेमसे वेदके समयमें पाला जाता था उसका अनुभव इस मंत्रभागसे हो सकता है।

२ भरताः परिच्छिन्नाः अर्भकासः आसन्—गौओंको चलानेकी काठी जैसी बारीकसी होती है वैसे ही भरत लोग परिछिन्न अल्पसे प्रदेशमें रहनेवाले और अर्भक बालक जैसे अप्रबुद्ध थे। निर्बल थे। अल्पशक्तिवाले या शक्ति हीन थे।

३ तृत्सूनां (भरतानां) पुर एता वसिष्ठः अभवत्—इन भरतोंने वसिष्ठको अपना पुरोहित बनाया, नेता बनाया।

४ आत् इत् तृत्सूनां विशः अप्रथन्त—तबसे भरत लोग बढने लगे, विजयी होने लगे, उनका राज्य बढने लगा।

'तृत्सु, भरत' ये नाम एकही के है। 'भरत' जो भरण-पोषण होकर बढना चाहते हैं वे भरत हैं। 'तृत्सु' जो (तृट् सु) तृषासे युक्त अर्थात् अपनी उन्नतिकी प्यास जिनको सदा लगी रहती है। अपनी उन्नतिके लिये जो सदा तृषितसे रहते है। ऐसे अपनी उन्नतिके लिये जो प्रयत्नशील होते हैं उनका अगुआ, नेता, पुरोहित जब 'वसिष्ठ' होता है (वासयति इति वसिष्ठः) जो उत्तम रीतिसे प्रजाओंका निवास कराता है। प्रजाकी उन्नति करनेके लिये जो करना आवश्यक है वह ज्ञान जिसके पास है वह वासिष्ठ है। ऐसा पुरोहित भरत लोगोंने किया, तबसे वे (विशः अप्रथन्त) प्रजाजन, वे भारतीय लोग बढने लगे। फैलने लगे। जिनको ऐसा कुशल नेता मिलता है उनकी उन्नति होती है। वे फैलते हैं, बढते हैं, समृद्ध होते हैं। यहां (तृत्सु) प्यासे (भरतः) भरण करनेवाले और (वसिष्ठः) निवासक इन शब्दोंके श्लेष अर्थको जाननेसे मुख्य उपदेशका ज्ञान हो सकता है।

[७] (२९९) (भुवनेषु त्रयः रेतः कृण्वन्ति) भुवनोंमें तीन देव वीर्य निर्माण करते हैं। (ज्योतिरग्राः आर्याः तिस्रः प्रजाः) ज्योति जिनके सामने रहती है ऐसे आर्य तीन प्रकारकी प्रजारूप होते हैं। (त्रयः घर्मासः उषसं सचन्ते) ये तीन उष्णताएं उषाका सेवन करती हैं। (वसिष्ठाः तान् सर्वान् इत् अनु विदुः) वसिष्ठ इन सबको उत्तम रीतिसे जानते हैं।

८ सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ३००
९ त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ३०१

---

१ **त्रयः भुवनेषु रेतः कृण्वन्ति**—अग्नि, वायु और सूर्य ये तीन देव त्रिभुवनोंमें वीर्य अर्थात् शक्तिका निर्माण करते हैं । 'रेतः'—जल, वीर्य, बल ।

२ **ज्योतिरग्राः आर्याः तिस्रः प्रजाः**—प्रकाशका मार्ग जिनके सामने हमेशा रहता है ऐसी तीन प्रकारकी प्रजाएँ आर्य कहलाती हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह तीन प्रकारकी आर्य प्रजा है, इनके सामने सदा प्रकाशका मार्ग रहता है । यही देवमार्ग है ।

३ **त्रयः घर्मासः उषसं वयन्ति**--तीन प्रकारकी अग्नि अर्थात् तीन यज्ञ उषः-कालमें शुरू होते है। उषः कालमें तीनों यज्ञोंके कलाप शुरू होते हैं ।

४ **वसिष्ठाः तान् सर्वान् अनुविदुः**--वसिष्ठ इन सबको यथावत् जानते हैं । अथवा जो इन यज्ञोंको यथावत् जानते हैं उनको वसिष्ठ कहा जाता है ।

विश्वका अखंड वस्त्र

[८] (३००) हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठ पुत्रों! (एषां महिमा) आपकी महिमा (सूर्यस्य ज्योतिः इव वक्षथः) सूर्यके प्रकाशके समान फैली है और (समुद्रस्य इव गम्भीरः) समुद्रके समान गंभीर है। (वातस्य प्रजवः इव) वायुके वेगके समान (वः स्तोमः) आपका स्तोम (अन्येन अनु-एतवे न) किसी अन्यके द्वारा अनुकरण करने योग्य नहीं है। आपकी हि वह विशेषता है ।

[९] (३०१) (ते वसिष्ठाः इत्) वे वासिष्ठगण (निण्यं शहस्रवल्शं) सहस्रों शाखोपशाखाओंसे युक्त इस जाननेके लिये कठिन विश्वमें (हृदयस्य प्रकेतैः अभि सं चरन्ति) अपने हृदयकी ज्ञानशक्तियोंसे चारों ओर संचार करते हैं। जानते तथा अनुभव लेते हैं। (यमेन ततं परिधिं वयन्तः वसिष्ठाः) नियामक प्रभुने फैलाये हुए इस वस्त्रको बुनते हुए ये वासिष्ठ गण (अप्सरसः उपसेदुः) अप्सराओंके पास जाकर बैठते हैं।

वसिष्ठ कौन हैं ।

पूर्व अष्टम मन्त्रमें वसिष्ठोंके स्तोमकी महिमा वर्णन की है और इस नवम मन्त्रमें विश्वरचनामें भाग लेनेवाले ये वसिष्ठ गण वर्णन किये गये हैं । (**यमेन ततं परिधिं वयन्तः वसिष्ठाः अप्सरसः उपसेदुः**) यमने वस्त्रका ताना फैलाया था, उस वस्त्रको बुननेवाले ये वसिष्ट अप्सराओंके पास बैठते हैं । यहां 'यम' शब्दसे सबका नियन्ता परमेश्वर ज्ञात होता है और उसका फैलाया हुआ (**ततं परिधिं**) ताना यह विश्वरूपी वस्त्र बुननेके लिये फैलाया हुआ है । यह संपूर्ण विश्व एक वस्त्र जैसा एक जीवनवाला है । ताने बानेके धागे अनेक होनेपर भी सब विश्व मिलकर एक ही वस्त्र है । यह निश्चित सिद्धान्त यहां है ।

विश्वरूप एक वस्त्र है ।

एक खुट्टी है, उसपर ताना फैलाया है । तानेके धागे यमने फैलाये हैं । कुछ वस्त्रका भाग बुना है और बाकी वस्त्र बुननेवाला है । यह बुननेका कार्य (**वयन्तः वसिष्ठाः**) करनेवाले, बुननेवाले ये वसिष्ठगण हैं। यमके द्वारा विश्वका वस्त्र बुननेकी जो आयोजना निश्चित हुई है उसमें वस्त्र बुननेका कार्य करनेवाले ये वसिष्ठगण है ।

जो जीव विश्वकर्तृत्वका कार्य करनेमें समर्थ हैं जो ईश्वरकी आयोजनामें रहकर विश्वनिर्माणमें अपना कार्य करते हैं वे वसिष्ठ यहां वर्णे गये हैं ।

ये वसिष्ठ (**अप्सरसः उपसेदुः**) अप्सराओंके पास आकर बैठे हैं ।

वसिष्ठकी उत्पत्ति अप्सरा उर्वशीमें हुई यह कथा इस (**वसिष्ठाः अप्सरसः उपसेदुः**) वचनसे बढती गयी

१० विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।
तत् ते जन्मोतैकं वसिष्ठाऽगस्त्यो यत् त्वा विश आजभार ३०२

११ उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ३०३

१२ स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान् त्सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ३०४

हैं। (अप्सरसः परिजज्ञे वसिष्ठः । मं० १२) अप्सरासे वसिष्ठ उत्पन्न हुआ ऐसा कहा है। इसका विवरण पाठक भूमिकामें स्वतंत्र प्रकरणमें देख सकते हैं।

[१०] (३०२) **हे वसिष्ठ! (यत् विद्युतः ज्योतिः परि संजिहानं त्वा) जब विद्युतके तेजका परित्याग करनेवाले तुझको (मित्रावरुणा अपश्यतां) मित्र और वरुणने देखा (तत् ते एकं जन्म) तब तुम्हारा वह एक जन्म हुआ था। (यत् त्वा अगस्त्यः विशः आजभार) तब तुझे अगस्त्यने प्रजाओंमेंसे बाहर लाया।**

अन्य देहका धारण

१ **विद्युतः ज्योतिः परिसंजिहानं वसिष्ठं मित्रावरुणौ अपश्यतां**--विद्युत्के समान अपने तेजकी ज्योतिका परित्याग करनेकी अवस्थामें वसिष्ठ हैं ऐसा मित्र और वरुणने देखा। यह प्रथम वारके देहका त्याग करनेकी अवस्थाका वर्णन है। जीवका स्वरूप विद्युत्की ज्योतिके समान है। योगी लोग उसको शरीरसे अपनी इच्छासे निकालते और अपनी इच्छासे दूसरे देहमें रखते हैं। इस रखनेका नाम ' काया-प्रवेश ' है। जीवात्मा अपना पहिला देह छोडता है और दूसरा देह धारण करता है इसका यह उत्तम तथा स्पष्ट वर्णन है।

२ **मित्रावरुणौ**— यहां प्राण तथा जीवनके वाचक हैं।

३ **अगस्त्यः विशः आजभार**—अगस्त्य विशः अर्थात् जीवके निवास स्थानसे, प्रजारूप मानवके पहिले देहसे वसिष्ठ अर्थात् जीवात्माको निकालता है। शरीरसे पृथक् करता है।

[११] (३०३) **हे वसिष्ठ! (मैत्रावरुणः असि) मित्र और वरुणका तू पुत्र है। (उत) और हे (ब्रह्मन्) ब्राह्मण! तू (उर्वश्याः मनसः अधि-जातः) उर्वशीके मनसे उत्पन्न हुआ है। (द्रप्सं स्कन्नं) इस समय रेतका पतन हुआ। (दैव्येन ब्रह्मणा) दिव्य मंत्रोंके साथ (विश्वे देवाः त्वा पुष्करे अददन्त) विश्वे देवोंने तुझे पुष्करमें धारण किया।**

' वसिष्ठ ' को ' मैत्रावरुणिः ' कहते हैं। मित्र व वरुणका यह पुत्र है। यह ' ब्राह्मण ' है। ' उर्वशी ' में जन्मा है। मित्रावरुणोंका रेत गिर गया, उर्वशीके दर्शनसे ऐसा हुआ। जिससे वसिष्ठकी उत्पत्ति हुई, ऐसी जो कथा है उसका मूल इस मंत्रमें है। इसका संपूर्ण विवरण भूमिकामें पाठक देख सकते हैं।

[१२] (३०४) **(सः वसिष्ठः उभयस्य प्रविद्वान्) वह वसिष्ठ द्युलोक और भूलोकके सब विषयोंका ज्ञाता (सहस्रदानः उत वा सदानः) हजारों दानोंको देनेवाला अथवा सर्वस्वका दान करनेवाला है। (यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्) नियमाक प्रभुने फैलाये वस्त्रको बुननेवाला यह वसिष्ठ (अप्सरसः परिजज्ञे) अप्सरासे उत्पन्न हुआ।**

सब विद्याओंका ज्ञाता, उदार, विश्वकल्याणके लिये सर्वस्वका प्रदान करनेवाला प्रभुके विश्वरचनाके कार्यको करनेके लिये यह जन्मा है।

१३ सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम् । ३११
ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ३०५
१४ उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत् प्र वदात्यग्रे ।
उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ३०६

---

[१३] (३०५) (सत्रे ह जातौ) यज्ञमें दीक्षा लिये (नमोभिः इषिता) मन्त्रोंद्वारा प्रेरित हुए (कुंभे रेतः समानं सिसिचतुः) मित्रावरुणोंने कुंभमें अपना रेत एक ही समय गिराया । (ततः मध्यात् ह मानः उत् इयाय) उसके बीचमेंसे माननीय अगस्त्य प्रकट हुआ तथा (ततः वसिष्ठं ऋषिं जातं आहुः) उसीसे वसिष्ठ ऋषिको जन्मा कहते हैं ।

मित्र और वरुण सत्र नामक बहुत दिन चलनेवाले यज्ञ करनेके लिये दीक्षित होकर यज्ञशालामें बैठे थे । अन्य ऋत्विज मंत्रगान कर रहे थे । इतनेमें इन दोनोंका रेत गिरा और वह कुंभमें इकठ्ठा हुआ । उससे अगस्त्य ऋषि हुए जिनकी ' कुंभ योनि, कुंभज ' ऐसे अनेक नामोंसे प्रशंसा करते है । उसीमे वासिष्ठ ऋषि भी उत्पन्न हुए ऐसा कहते हैं । बडा भाई अगस्त्य और छोटा वासिष्ठ है । इसका विवरण भूमिकामें देखिये वहां पूर्वापर संबंध बताकर सब बातोंका स्पष्टीकरण किया है ।

[१४] (३०६) हे (प्रतृदः) भरत लोगो ! (वः वसिष्ठः आगच्छाति) आपके पास वसिष्ठ आरहे हैं । (सुमनस्यमानाः एनं आध्वं) उत्तम मनोभावनासे इनका सत्कार करो । यह वसिष्ठ आनेपर वह (अग्रे उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति) पहिलेसे ही नेता होकर उक्थ और साम गायकोंको धारण करेंगे, तथा (ग्रावाणं बिभ्रत्) सोमरस निकालनेवाले अध्वर्युका भी धारण करेंगे और उन सबको (प्रवदाति) सूना भी देंगे ।

भरतके निवासियोंसे इन्द्रने यह वचन कहा है कि तुम ऐसे प्रभावी और बडे ज्ञानी वसिष्ठको अपना पुरोहित बनाओ । वह पुरोहित बनकर तुम्हारे सब अभ्युदयके कार्य वही करेंगे और तुम्हारी उन्नति होती रहेगी ।

अच्छा पुरोहित सब राज्यप्रबंध करता है और राष्ट्रकी सब प्रकारकी उन्नति करता है । पुरोहित इस सब राष्ट्रीय कर्तव्योंके ज्ञाता होने चाहिये । वेदके यथावत् ज्ञानसे यह सब प्रबंधशक्ति आती है । वैदिक पढाईकी पूर्णताका ज्ञान इससे हो सकता है ।

यहां इन्द्र प्रकरण समाप्त होता है । इस अन्तिम सूक्तों इन्द्रका विशेष वर्णन नहीं है तथापि जो थोडा है, उस कारण इस सूक्तका पाठ इस प्रकरणमें हुआ है । इस सूक्तके ११ वे मंत्रमें " विश्वे देवाः " पद है । इन्द्र वसिष्ठका विश्वे देवोंसे संबंध यहां दर्शाया है । अतः इसके आगे यही विश्वे देव प्रकरण है । ' विश्वे देवाः ' का अर्थ ' सब देव ' है । जो सब देव हैं उनका मनुष्यकी उन्नतिके साथ क्या संबंध है उसका वर्णन अगले प्रकरणमें पाठक देख सकते हैं ।

॥ यहां इन्द्र प्रकरण समाप्त ॥

अनुवाक तीसरा [अनुवाक ५३ वाँ]

[२] विश्वे-देव-प्रकरण

(३४) १५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। विश्वे देवाः, १६ अहिः, १७ अहिर्बुध्न्यः। द्विपदा विराट्, ११-२५ त्रिष्टुप्।

१ प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत् सुतष्टो रथो न वाजी ३०७
२ विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अध क्षरन्तीः ३०८
३ आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ३०९
४ आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ३१०

[१] (३०७) (शुक्रा मनीषा देवी) सामर्थ्य-वाली बुद्धिदेवी (सुतष्टः वाजी रथः न) उत्तम बनावटका घोडोंसे चलाया जानेवाला रथ जैसा शीघ्र आता है, वैसी (अस्मत् प्र एतु) हमारे पास आवे।

मानवधर्म – मनुष्योंको बलवती तेजस्विनी मननशक्ति अपने अन्दर बढानी चाहिये।

प्रभावी बुद्धि

हमें (**मनीषा**) बुद्धि चाहिये. जो (देवी) क्रीडा, विजयकी इच्छा, व्यवहार, तेजस्विता, स्तुति, आनन्द, हर्ष, प्रीति, स्वप्न (निद्रा), और प्रगतिके प्रयत्नोंमें हमारी सहायता करे और जो (शुक्रा) वीर्यवती हो, बलवती, सामर्थ्य-वती हो, प्रभावी हो। रथका चालक घोडा होता है, उस तरह यह मनीषा हमारे कार्योंका संचालन करे।

आप्-जल

[२] (३०८) (अध क्षरन्तीः आपः) बहनेवाले जलप्रवाह-जीवनप्रवाह- (दिवः पृथिव्याः जनित्रं विदुः) द्युलोक और पृथिवीकी उत्पत्तिको जानते हैं और (शृण्वन्ति) सुनते भी हैं।

जल जीवनका रस है। यह जल शान्ति देनेवाला है। जल जीवन ही है। '**ज**' =से '**ल**' य पर्यंत जो उपयोगी होता है वह '**ज-ल**' है। यही जीवन है। पृथ्वीसे लेकर आकाशतक जो पदार्थ हैं, उनकी विद्याको जानना चाहिये और इसी विद्याके व्याख्यान सुनने चाहिये। और इस ज्ञानसे अपना जविन युक्त करके अपने जीवनसे जलके समान शान्ति जगत्में स्थापन करनी चाहिये !

शूर वीर

[३] (३०९) (पृथ्वीः आपः चित्) पृथ्वीके ऊपर मिलनेवाला जल (अस्मै पिन्वन्त) इस इन्द्रकी पुष्टी करता है। (वृत्रेषु उग्राः शूराः मंसन्ते) शत्रुओंके उपद्रव होनेपर उग्र तथा शूर वीर इसी इन्द्रको बुलाते हैं।

[४] (३१०) (अस्मै धूर्षु अश्वान् आदधात) इस इन्द्रको यहां लानेके लिये रथकी धुरामें घोडोंको जोतो। (हिरण्यबाहुः वज्री इन्द्रः न) जिसके बाहूपर सुवर्णके आभूषण हैं ऐसा वज्रधारी इन्द्र जिस तरह घोडे जोतता है, वैसे ही तुम जोतो !

मानवधर्म – शत्रुओंका उपद्रव होनेपर शूर वीर योद्धा इकट्ठे हों और शत्रुको हटानेके लिये संघटित यत्न करें। अन्य लोग इनको जल आदि देकर सहायता करें। इन वीरोंके पोषणके लिये अन्न आदि देवें। इनको लानेके लिये रथके घोडे जोते जांय, रथ तैयार रहें। वीर शस्त्रास्त्र धारण करें, सुवर्ण-भूषणके गणवेश धारण करें। समय पर मुख्य सेनानी भी अपने घोडोंको जोते। वीर स्वावलंबी हों।

५	अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन् त्मना हिनोत	३११
६	त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम्	३१२
७	उदस्य शुष्माद् भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम	३१३
८	ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि	३१४

यज्ञमें जाओ

[५] (३११) (अह इव यज्ञं अभि प्र स्थात) यज्ञके प्रति अवश्य जाओ। (त्मना याता इव) स्वयं ही अपनी इच्छासे जानेवालेके समान (पत्मन् हिनोत) मार्गसे वेगसे चलो।

मानवधर्म – जहां यज्ञ चलता हो वहां अपनी इच्छासे ही शीघ्रतासे जाओ। अपने अन्तःकरणकी इच्छासे जानेके समान जाओ। मार्गसे सुस्तीसे न चलो। वेगसे जाओ।

१ **यज्ञं अभि प्र स्थात**-यज्ञ जहां चल रहा हो वहां अन्तःकरणकी प्रेरणासे जाओ। अवश्य जाओ और वहां जो कार्य हो सकता है वह अवश्य करो।

२ **त्मना याता इव**—अपनी स्फूर्तिसे जानेवाला जैसा वेगसे चलता है वैसा जलदीसे जाओ। चलना हो तो वेगसे चलो।

३ **पत्मन् हिनोत**—मार्गमें चलना हो तो वेगसे चलो। यहां चलना वेगसे होना चाहिये ऐसा कहा है। वह मननीय है। '**जंघयोर्जवः**' (अथर्व. १९।६०।१) जंघाओंमें वेग होना चाहिये ऐसा अथर्ववेदमें कहा है, वही इस मंत्रमें कहा है।

युद्धमें जाओ

[६] (३१२) (समत्सु त्मना हिनोत) युद्धोंमें स्वयं जाओ। (वीरं हिनोत) वीरको युद्धमें जानेके लिये प्रेरित करो। (जनाय केतुं यज्ञं दधात) लोगोंके कल्याणके लिये ज्ञान बढानेवाले यज्ञका धारण करो।

मानवधर्म – स्वयं प्रेरणासे युद्धोंमें जाओ। स्वयं प्रेरणासे युद्धोंमें लाभ लेनेके लिये दूसरे वीरोंका उत्साह बढाओ। तथा ज्ञानका प्रसार करो।

१ **समत्सु त्मना हिनोत**--युद्धोंमें स्वयंस्फूर्तिसे जाओ। युद्धके समय पीछे न रहो।

२ **समत्सु त्मना वीरं हिनोत**--युद्धोंमें स्वयं ही दूसरे वीरोंको जानेके लिये प्रेरित करो।

३ **जनाय केतुं यज्ञं दधात**—लोगोंके हितके लिये ज्ञान देनेका यत्न करते रहो। ज्ञानसे ही सबका हित होता है।

शक्तिसे सब होता है

[७] (३१३) (अस्य शुष्मात् भानुः उत् आर्त) इस बलसे सूर्य उदयको प्राप्त होता है। तथा (भूम पृथिवी न भारं बिभर्ति) सब भूत और पृथिवी भार उठाती है।

मानवधर्म – विश्वमें जो कार्य होता है वह बलसे होता है इसलिये बलको प्राप्त करना चाहिये।

१ **अस्य शुष्मात् भानुः उदार्त**—बलसे सूर्य उदय होता है, बलसे सूर्य प्रकाशता है।

२ **शुष्मात् पृथिवी भारं बिभर्ति**—बलसे ही पृथिवी सब भारको उठाती है।

३ **भूम शुष्मात् भारं बिभर्ति**—उत्पन्न हुए सब भूत अपना अपना कर्तव्यका भार इस बलसे ही धारण करते हैं। तात्पर्य बलसे सब कार्य सिद्ध होता है।

देव कुटिलता रहित हैं

[८] (३१४) हे अग्ने! (अयातुः ऋतेन) अहिंसक यज्ञसे (साधन् देवान् ह्वयामि) साधना करता हुआ सहायार्थ देवोंको बुलाता हूं, (धियं दधामि च) बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले कर्मका मैं धारण करता हूं।

मानवधर्म – शुद्ध बुद्धिसे कुटिलता रहित कर्मोंको करना चाहिये।

अनुवाक तीसरा [अनुवाक ५३ वाँ]

[२] विश्वे-देव-प्रकरण

(३४) २५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः, १६ अहिः, १७ अहिर्बुध्न्यः । द्विपदा विराट्, १२-२५ त्रिष्टुप् ।

१ प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत् सुतष्टो रथो न वाजी ३०७
२ विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अध क्षरन्तीः ३०८
३ आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ३०९
४ आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ३१०

[१] (३०७) (शुक्रा मनीषा देवी) सामर्थ्य-वाली बुद्धिदेवी (सुतष्टः वाजी रथः न) उत्तम बनावटका घोडोंसे चलाया जानेवाला रथ जैसा शीघ्र आता है, वैसी (अस्मत् प्र एतु) हमारे पास आवे ।

मानवधर्म – मनुष्योंको बलवती तेजस्विनी मननशक्ति अपने अन्दर बढानी चाहिये ।

प्रभावी बुद्धि

हमें (**मनीषा**) बुद्धि चाहिये. जो (देवी) क्रीडा, विजयकी इच्छा, व्यवहार, तेजस्विता, स्तुति, आनन्द, हर्ष, प्रीति, स्वप्न (निद्रा), और प्रगतिके प्रयत्नोंमें हमारी सहायता करे और जो (शुक्रा) वीर्यवती हो, बलवती, सामर्थ्य-वती हो, प्रभावी हो । रथका चालक घोडा होता है, उस तरह यह मनीषा हमारे कार्योंका संचालन करे ।

आप्-जल

[२] (३०८) (अध क्षरन्तीः आपः) बहनेवाले जलप्रवाह-जीवनप्रवाह- (दिवः पृथिव्याः जनित्रं विदुः) द्युलोक और पृथिवीकी उत्पत्तिको जानते हैं और (शृण्वन्ति) सुनते भी हैं।

जल जीवनका रस है । यह जल शान्ति देनेवाला है । जल जीवन ही है । ' **ज** ' न्मसे ' **ल** ' य पर्यंत जो उपयोगी होता है वह ' **ज-ल** ' है । यही जीवन है । पृथ्वीसे लेकर आकाशतक जो पदार्थ है, उनकी विद्याको जानना चाहिये और इसी विद्याके व्याख्यान सुनने चाहिये । और इस ज्ञानसे अपना जविन युक्त करके अपने जीवनसे जलके समान शान्ति जगत्में स्थापन करनी चाहिये ।

शूर वीर

[३] (३०९) (पृथ्वीः आपः चित्) पृथ्वीके ऊपर मिलनेवाला जल (अस्मै पिन्वन्त) इस इन्द्रकी पुष्टी करता है। (वृत्रेषु उग्राः शूराः मंसन्ते) शत्रुओंके उपद्रव होनेपर उग्र तथा शूर वीर इसी इन्द्रको बुलाते हैं।

[४] (३१०) (अस्मै धूर्षु अश्वान् आदधात) इस इन्द्रको यहां लानेके लिये रथकी धुरामें घोडोंको जोतो । (हिरण्यबाहुः वज्री इन्द्रः न) जिसके बाहूपर सुवर्णके आभूषण हैं ऐसा वज्रधारी इन्द्र जिस तरह घोडे जोतता है, वैसे ही तुम जोतो !

मानवधर्म – शत्रुओंका उपद्रव होनेपर शूर वीर योद्धा इकट्ठे हों और शत्रुको हटानेके लिये संघटित यत्न करें। अन्य लोग इनको जल आदि देकर सहायता करें। इन वीरोंके पोषणके लिये अन्न आदि देवें । इनको लानेके लिये रथके घोडे जोते जांय, रथ तैयार रहें । वीर शस्त्रास्त्र धारण करें, सुवर्ण-भूषणके गणवेश धारण करें । समय पर मुख्य सेनानी भी अपने घोडोंको जोते । वीर स्वावलंबी हों ।

५	अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन् त्मना हिनोत	३११
६	त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम्	३१२
७	उदस्य शुष्माद् भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम	३१३
८	ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि	३१४

यज्ञमें जाओ

[५] (३११) (अह इव यज्ञं अभि प्र स्थात) यज्ञके प्रति अवश्य जाओ। (त्मना याता इव) स्वयं ही अपनी इच्छासे जानेवालेके समान (पत्मन् हिनोत) मार्गसे वेगसे चलो।

मानवधर्म – जहां यज्ञ चलता हो वहां अपनी इच्छासे ही शीघ्रतासे जाओ। अपने अन्तःकरणकी इच्छासे जानेके समान जाओ। मार्गसे सुस्तीसे न चलो। वेगसे जाओ।

१ **यज्ञं अभि प्र स्थात**–यज्ञ जहां चल रहा हो वहां अन्तः-करणकी प्रेरणासे जाओ। अवश्य जाओ और वहां जो कार्य हो सकता है वह अवश्य करो।

२ **त्मना याता इव**—अपनी स्फूर्तिसे जानेवाला जैसा वेगसे चलता है वैसा जलदीसे जाओ। चलना हो तो वेगसे चलो।

३ **पत्मन् हिनोत**—मार्गमें चलना हो तो वेगसे चलो। यहां चलना वेगसे होना चाहिये ऐसा कहा है। वह मननीय है। '**जंघयोर्जवः**' (अथर्व. १९।६०।१) जंघाओंमें वेग होना चाहिये ऐसा अथर्ववेदमें कहा है, वही इस मंत्रमें कहा है।

युद्धमें जाओ

[६] (३१२) (समत्सु त्मना हिनोत) युद्धोंमें स्वयं जाओ। (वीरं हिनोत) वीरको युद्धमें जानेके लिये प्रेरित करो। (जनाय केतुं यज्ञं दधात) लोगोंके कल्याणके लिये ज्ञान बढानेवाले यज्ञका धारण करो।

मानवधर्म – स्वयं प्रेरणासे युद्धोंमें जाओ। स्वयं प्रेरणासे युद्धोंमें लाभ लेनेके लिये दूसरे वीरोंका उत्साह बढाओ। तथा ज्ञानका प्रसार करो।

१ **समत्सु त्मना हिनोत**—युद्धोंमें स्वयंस्फूर्तिसे जाओ। युद्धके समय पीछे न रहो।

२ **समत्सु त्मना वीरं हिनोत**—युद्धोंमें स्वयं ही दूसरे वीरोंको जानेके लिये प्रेरित करो।

३ **जनाय केतुं यज्ञं दधात**—लोगोंके हितके लिये ज्ञान देनेका यत्न करते रहो। ज्ञानसे ही सबका हित होता है।

शक्तिसे सब होता है

[७] (३१३) (अस्य शुष्मात् भानुः उत् आर्त) इस बलसे सूर्य उदयको प्राप्त होता है। तथा (भूम पृथिवी न भारं बिभर्ति) सब भूत और पृथिवी भार उठाती है।

मानवधर्म – विश्वमें जो कार्य होता है वह बलसे होता है इसलिये बलको प्राप्त करना चाहिये।

१ **अस्य शुष्मात् भानुः उदार्त**—बलसे सूर्य उदय होता है, बलसे सूर्य प्रकाशता है।

२ **शुष्मात् पृथिवी भारं बिभर्ति**—बलसे ही पृथिवी सब भारको उठाती है।

३ **भूम शुष्मात् भारं बिभर्ति**—उत्पन्न हुए सब भूत अपना अपना कर्तव्यका भार इस बलसे ही धारण करते हैं। तात्पर्य बलसे सब कार्य सिद्ध होता है।

देव कुटिलता रहित हैं

[८] (३१४) हे अग्ने! (अयातुः ऋतेन) अहिंसक यज्ञसे (साधन् देवान् ह्वयामि) साधना करता हुआ सहायार्थ देवोंको बुलाता हूं, (धियं दधामि च) बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले कर्मका मैं धारण करता हूं।

मानवधर्म – शुद्ध बुद्धिसे कुटिलता रहित कर्मोको करना चाहिये।

९	अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम्	३१५
१०	आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः	३१६
११	राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु	३१७
१२	अविष्टो अस्मान् विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः	३१८
१३	व्येतु दिद्युद् द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम्	३१९

दिव्य वाणी, बुद्धि और कर्म

[९] (३१५) (वः अभि देवीं धियं दधिध्वं) आप दिव्य बुद्धिका धारण करो। (वः देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं) आप दिव्य विबुधोंके संबंधमें भाषण करते रहो।

मानवधर्म - दिव्य गुणोंसे युक्त बुद्धिसे श्रेष्ठ कर्म करो और दिव्य भावसे परिपूर्ण भाषण करो।

१ देवीं धियं अभि दधिध्वं— दिव्य गुणोंसे युक्त बुद्धिका धारण करो। अपनी बुद्धिको दिव्य गुणोंसे युक्त करो।

२ देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं— दिव्यवाणी अर्थात् दिव्य भावोंको प्रकट करनेवाली वाणी बोलो। ऐसा भाषण करो कि जिससे दिव्य भाव प्रकट हों।

[१०] (३१६) (सहस्रचक्षाः उग्रः वरुणः) सहस्र नेत्रवाला उग्र वीर वरुण (आसां नदीनां पाथः आचष्टे) इन नदियोंके जलको देखता है।

उग्र वरुण देव हमारे जीवन प्रवाहोंको देखता है जिस तरह कोई जल प्रवाहोंको देखे। इसलिये दक्ष रहना चाहिये। शुद्ध आचरण रखना योग्य है।

[११] (३१७) (राष्ट्रानां राजा) यह वरुण राष्ट्रोंका शासक, (नदीनां पेशः) नदियोंका रूप (अस्मै अनुत्तं क्षत्रं) इसका क्षात्र बल उत्तम (विश्वायु) संपूर्ण आयुतक टिकनेवाला है।

राष्ट्रोंका वीर राजा

१ राष्ट्राणां राजा, अस्मै अनुत्तं विश्वायु क्षत्रं— राष्ट्रोंका जो राजा होता है, उसके लिये संपूर्ण आयुतक टिकनेवाला श्रेष्ठ क्षात्र बल चाहिये। ऐसा वीर राजा होना चाहिये।

२ नदीनां पेशः—नदीयोंकी सुंदरता राष्ट्रोंमें हो और राजा यह बढावे।

राजा वरुण यह कार्य करता है इसलिये उसका शासन सब पर हो रहा है।

[१२] (३१८) (अस्मान् विश्वासु विक्षु अविष्टः) हमें सब प्रजाजनोंमें सुरक्षित करो और (निनित्सोः शंसं अ-द्युं कृणोत) निंदा करनेवालेके भाषणको निस्तेज करो।

मानवधर्म - सब प्रजाजनोंका उत्तम संरक्षण हो, हमारा उत्तम संरक्षण हो, निंदकोंकी निंदा प्रभावरहित सिद्ध हो।

१ विश्वासु विक्षु अस्मान् अविष्टः--सब प्रजाजनोंमें हमारी सुरक्षा हो। सब प्रजा सुरक्षित रहे और उसके साथ हम भी सुरक्षित हों।

२ निनित्सोः शंसं अ-द्युं कृणोत—निदकोंकी निंदाको निस्तेज करो, प्रभावरहित करो, वह असत्य दखि ऐसा करो।

[१३] (३१९) (द्विषां दिद्युत् अशेवा विष्वक् व्येतु) शत्रुओंका शस्त्र अपरिणामी होकर चारों ओरसे दूर जावे। (तनूनां रपः विष्वक् युयोत) हमारे शारीरिक पाप हमसे दूर हो जांय।

मानवधर्म— शत्रुके अस्त्रशस्त्रोंसे अपने आपको सुरक्षित रखो, शत्रुके शस्त्र प्रभावी न बनें ऐसा रक्षाका प्रबंध करो। काया वाचा मन बुद्धिसे निष्पाप रहो।

१ द्विषां दिद्युत् अशेवा विष्वक् व्येतु—शत्रु वीरोंके तीक्ष्ण शस्त्र भी हमारे पर परिणाम न करनेवाले होकर चारों दिशाओंमें व्यर्थ होते रहें।

२ तनूनां रपः विष्वक् वि युयोत--हमारे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरोंसे जो भी पाप होनेवाले होंगे, उनको दूर करो। वे होने न पावें।

१४	अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः	३२०
१५	सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु	३२१
१६	अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन्	३२२
१७	मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः	३२३
१८	उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः	३२४
१९	तपन्ति शत्रुं स्व१र्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषाम्	३२५
२०	आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान्	३२६
२१	प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः	३२७

[१४] (३२०) (हव्यात् प्रेष्ठः अग्निः नमोभिः नः अवीत्) हव्य अन्नका भक्षण करनेवाला प्रिय अग्नि हमारे नमस्कारोंसे प्रसन्न होकर हमारी सुरक्षा करे। (अस्मै स्तोमः अधायि) इसका यह स्तोत्रपाठ हमने किया है।

[१५] (३२१) (अपां नपातं सखायं कृध्वं) जलोंको न गिरानेवाले अग्निको अपना मित्र बनाओ। वह (देवेभिः सजूः नः शिवः अस्तु) देवोंके साथ रहनेवाला अग्नि हमारे लिये कल्याण करनेवाला हो।

[१६] (३२२) (नदीनां बुध्ने) नदियोंके समीप भागमें (रजः सु सीदन्) पुलिनमें रहनेवाले (अब्-जां अहिं) जलको उत्पन्न करनेवाले शत्रु-हन्ता अग्निको (उक्थैः गृणीषे) स्तोत्रोंसे प्रशंसित करो।

[१७] (३२३) (बुध्न्यः अहिः नः रिषे मा धात्) अन्तरिक्षमें होनेवाला मेघनाशक विद्युत् अग्नि हमारा नाश न करे। (अस्य ऋतायोः यज्ञः मा स्रिधत्) इस सत्यके लिये जिसने अपनी आयु दी है इसका यज्ञ क्षीण न हो।

'ऋत-आयु'—सत्यके लिये, यज्ञके लिये जिसने अपनी आयु अर्पण की है।

[१८] (३२४) (उत एषु नृषु श्रवः धुः) इन हमारे लोगोंमें अन्न, धन या यश पर्याप्त रहे। इनको पर्याप्त धन प्राप्त हो। (राये शर्धन्तः अर्यः प्रयन्तु) धनप्राप्ति करनेके कार्यमें हमारे साथ जो स्पर्धा कर रहे हैं, वे हमारे शत्रु हमसे दूर चले जांय। यहां वे असमर्थ सिद्ध हो जांय।

[१९] (३२५) (महासेनासः एषां अमेभिः) बडी सेना साथ रखनेवाले राजा इनके बलोंसे बलवान् होकर, (स्वः न) सूर्यके समान (शत्रुं तपन्ति) शत्रुको ताप देते हैं।

बडी सेना रखनेवाले राजा लोग भी इन अग्नि, वायु आदि देवोंके बलोंसे बलिष्ठ होकर सूर्यके समान तेजस्वी होते हैं और अपने तेजसे शत्रुको तपाते हैं। भयभीत करते हैं।

[२०] (३२६) (यत् पत्नीः) जब पत्नियाँ (नः अच्छ आ गमन्ति) हमारे समीप आती हैं तब (सुपाणिः त्वष्टा) उस समय उत्तम हाथवाला विश्वका निर्माण कर्ता (वीरान् दधातु) वीरोंको धारण करे। हमारी स्त्रियोंको वीर पुत्र हों ऐसा करे। विश्वस्रष्टा प्रभुकी कृपासे हमारी स्त्रियोंमें वीर पुत्र उत्पन्न हों।

[२१] (३२७) (नः स्तोमं त्वष्टा प्रति जुषेत) हमारे यज्ञका स्वीकार विश्वरचयिता करे। (अरमतिः अस्मे वसूयुः स्यात्) उत्तम बुद्धिवाला विश्वरचयिता हमें बहुत धन देनेवाला होवे।

२२ ता नो रासन् रातिषाचो वसून्या रोदसी वरुणानी शृणोतु ।
वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः ३२८

२३ तन्नो रायः पर्वतास्तन्न आपस्तद् रातिषाच ओषधीरुत द्यौः ।
वनस्पतिभिः पृथिवी सजोषा उभे रोदसी परि पासतो नः ३२९

२४ अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इन्द्रसखा ।
अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै ३३०

२५ तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन् त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३३१

---

[२२] (३२८) (ता वसूनि) वे हमारे लिये अभीष्ट धन (रातिषाचः नः रासन्) दान देनेवाली देवपत्नियां हमें देवें। (रोदसी वरुणानी आशृणोतु) द्यावापृथिवी और वरुणकी पत्नी हमारा स्तोत्र सुने। (सुदत्रः त्वष्टा) उत्तम दान देनेवाला त्वष्टा— विश्वरचयिता— (वरूत्रीभिः नः सुशरणः) शत्रुनिवारक शक्तियोंके साथ हमारे लिये आश्रय करने योग्य (अस्तु) होकर (रायः वि दधातु) धन हमें देवें।

[२३] (३२९) (नः तत् रायः पर्वताः) हमारे इस धनका ये पर्वत संरक्षण करें। (नः तत् आपः) हमारे उस धनका जल संरक्षण करे, (रातिषाचः तत्) दान देनेवाली पत्नियां उस धनका संरक्षण करें। (ओषधीः उत द्यौः) औषधियां और द्यौ उसका रक्षण करें। (वनस्पतिभिः सजोषा पृथिवी) वनस्पतियोंके साथ यह पृथिवी उसका रक्षण करे। (उभे रोदसी नः तत् परि पासतः) आकाश और पृथिवी ये दो मिलकर हमारे उस धनका संरक्षण करें।

पर्वत, नदियां, जल प्रवाह, औषधियां, द्यौ, पृथिवी, ये सब हमारे सब प्रकारके धनका संरक्षण करें। पर्वतोंसे शत्रुकी गति रुकती है और राष्ट्रका संरक्षण होता है, नदियोंके जलप्रवाहोंसे अन्न उत्पन्न होकर संरक्षण होता है। औषधि वनस्पतियोंसे रोग दूर होकर संरक्षण होता है। पृथिवी और आकाश भी अपनी शक्तियोंसे सहायक होते है। इस तरह सब विश्व, सब जगत्, हमारी सहायता कर रहा है। इन शक्तियोंसे हम अपनी सुरक्षा करनी चाहिये।

[२४] (३३०) (उर्वी रोदसी तत् अनुजिहातां) ये विशाल द्यावापृथिवी इसका अनुमोदन करे। (द्युक्षः इन्द्रसखा वरुणः अनु) तेजस्वी इन्द्रका मित्र वरुण अनुमोदन करे। (ये सहासः विश्वे मरुतः अनु) जो शत्रुका पराभव करनेवाले मरुत् वीर हैं, वे अनुकूल हों। (धियध्यै रायः धरुणं स्याम) धारण करने योग्य धनके हम धारण करनेवाले बनें।

[२५] (३३१) (नः तत्) हमारा यह स्तोत्र इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, आप्, ओषधियाँ (वनिनः जुषंत) वनमें रहनेवाले वृक्ष ये सब सेवन करें। हम (मरुतां उपस्थे शर्मन् स्याम) मरुत् वीरोंके समीप कल्याण रूप स्थानमें रहें। (सदा नः यूयं स्वस्तिभिः पात) सदा हमें आप कल्याणके साधनोंसे सुरक्षित रखो।

ये सब देव हमारी प्रार्थना सुनें, हमारी सहायता करें, हम सुराक्षित हों, धनसे युक्त हों और सुराक्षित हों।

(३५) १२ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

१ शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ३३२
२ शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ३३३
३ शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ३३४

---

[१] (३३२) (**इन्द्राग्नी अवोभिः नः शं भवतां**) **इन्द्र और अग्नि अपने संरक्षणोंसे हमारे लिये शांति देनेवाले हों। (रातहव्या इन्द्रावरुणा नः शं) जिनको हवि दिया है उसे ये इन्द्र और वरुण हमें शांति देनेवाले हों। (इन्द्रासोमा नः शं शं सुविताय च) इन्द्र और सोम हमारे लिये शांति तथा कल्याण देनेवाले हों, और (इन्द्रापूषणा वाजसातौ नः शं योः) इन्द्र और पूषा युद्धमें हमारा कल्याण करनेवाले हों।**

वाजसाति—युद्ध, स्पर्धा, अन्नकी प्राप्तिकी स्पर्धा। बलसे होनेवाली स्पर्धा। '**शं**'—शान्ति, सुख। '**योः**'— योग, अप्राप्त वस्तुका लाभ।

'**इन्द्राग्नी, इन्द्रावरुणौ, इन्द्रासोमौ, इन्द्रापूषणौ**' इनमें प्रत्येकमें इन्द्र है। इन्द्र विद्युत् स्वरूप है, अग्नि उष्णता करनेवाला, वरुण जलदेव, सोम वनस्पति और पूषा अन्नाधिपति है। जल, वनस्पति, अन्नके साथ अग्नि पकाने आदिमें सहायक होता है। प्रत्येकके साथ इन्द्र है। विद्युत्-अग्नि, विद्युत्-जल, विद्युत्-वनस्पति और विद्युत्--अन्न ये हमारे अन्दर शान्ति स्थापन करें, विषमता दूर करें, हमारा कल्याण करें, स्पर्धामें हमारा रक्षण करें, हमारे पास जो धन है उसका उपभोग हम शान्तिसे ले सकें और जो धन हमारे पास नहीं है उसका हमें लाभ हो। यह सुख हमें मिलता रहे।

[२] (३३३) (**भगः न शं अस्तु**) **भग हमें शांति देनेवाला हो, (शंसः नः शं उ) मनुष्योंद्वारा प्रशंसित देव हमें शांति देनेवाला हो। (पुरंधिः नः शं) विशाल बुद्धि हमें शांति देवे और (रायः शं उ सन्तु) सब प्रकारके धन हमें** शांति देवें। (सुयमस्य सत्यस्य शंसः नः शं) उत्तम नियमपूर्वक बोला जानेवाला सत्य वचन हमें शांति देनेवाला हो। (पुरुजातः अर्यमा नः शं अस्तु) बहुत प्रसिद्ध अर्यमा हमें शांति देनेवाला हो।

(भग) ऐश्वर्य, (शंसः) प्रशंसा, (पुरंधिः) विशाल बुद्धि, (रायः) धन, (सत्यस्य शंसः) सत्य भाषण, (अर्यमा) श्रेष्ठत्वका निर्णय करनेवाला न्यायाधिपति ये सब हमारे अन्दर शान्ति स्थापन करनेवाले हों। यहां सर्वत्र ' नः ' पद है उसका अर्थ ' हम सबमें ' ऐसा है। हमारे समाजमें, हमारे राष्ट्रमें शान्ति और सुख सदा शाश्वत रहे।

[३] (३३४) (**धाता नः शं**) **आधार देनेवाला हमें शांति देनेवाला हो, (धर्ता नः शं उ अस्तु) धारणकर्ता हमें शांति देनेवाला हो। (उरूची स्वधाभिः नः शं भवतु) गति करनेवाली पृथिवी अन्नोंसे हमें शांति देनेवाली हो। (बृहती रोदसी नः शं) बडी द्यावापृथिवी हमें शांति देवे। (अद्रिः नः शं) पर्वत हमें शांति देवे। (देवानां सुहवानि नः शं सन्तु) देवोंकी स्तुतियां हमें शान्ति देनेवाली हों।**

सृष्टीकी रचना करनेवाला, सर्वाधार देव, यह पृथिवी, आकाश, पर्वत और उपासना ये सब हमें शान्ति देनेवाले हों।

अन्न देनेवाली पृथिवी शान्ति देनेवाली हो। उत्तम अन्न देनेवाली मातृभूमि पर शत्रु आक्रमण करते हैं और उस कारण अशान्ति उत्पन्न होती है। पर्वत भी इसी तरह शत्रुसे व्याप्त होते हैं। इनका निवारण करके ये सब शान्ति देनेवाले हों।

४ शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ३३५
५ शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ३३६
६ शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ३३७
७ शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ३३८

---

[४] (३३५) (ज्योतिरनीकः अग्निः नः शं अस्तु) तेज ही जिसकी सेना है ऐसा अग्नि हमारे लिये शांति देनेवाला हो। (मित्रावरुणा नः शं) मित्र और वरुण, सूर्य और चन्द्र हमारे लिये शांति देनेवाले हों। (अश्विना शं) अश्विदेव हमें शांति देनेवाले हों। (सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु) सत्कर्म करनेवालोंके सत्कर्म हमारी शांति बढानेवाले हों। (इषिरः वातः नः शं अभि वातु) गतिशील वायु हमारे लिये कल्याण करनेवाला होकर बहता रहे।

सुकृत शान्ति देनेवाले हों

इस मंत्रमें तेजस्वी अग्नि, मित्र (सूर्य), वरुण (चन्द्रमा) अश्विनौ वायु ये सब हमें शान्ति दें ऐसा कहा है, परंतु '**सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु**' अर्थात् पुण्य कर्म करनेवाले महा पुरुषोंके प्रशंसित कर्म हमारे लिये शान्ति बढानेवाले हों ऐसा जो कहा है वह बडा मननीय है। कभी कभी बडे बडे महात्माओंके उत्तम कृत्य भी घोर अनर्थ उत्पन्न करनेवाले सिद्ध होते हैं। इतिहासमें इसकी पर्याप्त साक्षी मिलती है। इसलिये यह सूचना बडी महत्त्व की। महात्मा पुण्य पुरुष भी इसका विचार अपने मनमें रखें और लोग भी इसका विचार करें। महात्माओंके विचार और कर्म अच्छे होंगे, पर वे शान्ति स्थापन करनेवाले होंगे ऐसा नहीं कहा जा सकता। कभी कभी महा पुरुषोंके शुभ कर्मसे भी राष्ट्रका राष्ट्र बडी विपत्तिमें पडनेकी संभावना हो सकती है। महा पुरुषकी सरलताका फायदा शत्रु उठाते हैं और उस कारण बडी आपत्ति राष्ट्रपर अथवा समाजपर आजाती है। इसलिये वेदकी यह सूचना बडी सावधानीकी है। वसिष्ठ ऋषिका यह वचन विशेष महत्त्वका है।

[५] (३३६) (पूर्वहूतौ द्यावापृथिवी नः शं) प्रथम प्रार्थना किये द्यावा-पृथिवी हमें शांति प्रदान करें। (अन्तरिक्षं नः दृशये शं अस्तु) अन्तरिक्ष हमारे दर्शनके लिये शांति देनेवाला हो। (वनिनः ओषधीः नः शं भवन्तु) वनमें उत्पन्न होनेवाले वृक्ष और औषधियाँ हमें शांति दें। (जिष्णुः रजसः पतिः नः शं अस्तु) विजयशाली लोकपति हमें शांति दें।

[६] (३३७) (देवः इन्द्रः वसुभिः नः शं अस्तु) इन्द्र देव अष्ट वसुओंके साथ हमें शांति दें। (सुशंसः वरुणः आदित्येभिः शं) प्रशंसनीय वरुण द्वादश आदित्योंके साथ हमें शांति दें। (जलाषः रुद्रः रुद्रेभिः नः शं) जल देनेवाला रुद्र एकादश रुद्रोंके साथ हमें शांति दें। (ग्नाभिः त्वष्टा इह नः शं शृणोतु) देवपत्नियोंके साथ त्वष्टा यहां शांतिसे हमारे स्तोत्र सुनें।

[७] (३३८) (सोमः नः शं भवतु) सोम हमें शांति दें। ब्रह्म नः शं) ब्रह्म हमें शांति दें। (ग्रावाणः नः शं) पत्थर हमें शांति दें। (यज्ञाः नः शं उ सन्तु) यज्ञ हमें शांति दें। (स्वरूणां मितयः नः शं भवन्तु) यूपोंके प्रमाण हमें शांति दें। (प्रस्वः नः शं) औषधियां हमें शान्ति दें। (वेदिः नः शं उ अस्तु) वेदि हमें शांति दे।

८ शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ३३९
९ शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ३४०
१० शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ३४१
११ शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ३४२
१२ शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ३४३

---

[८] (३३९) (उरुचक्षाः सूर्यः नः शं उदेतु) विशाल तेजवाला सूर्य हमारी शांतिके लिये उदित हो। (चतस्रः प्रदिशः नः शं भवन्तु) चारों दिशाएँ हमें शांति दें। (ध्रुवयः पर्वताः नः शं भवन्तु) स्थिर पर्वत हमें शांति दें। (सिन्धवः नः शं) समुद्र हमें शांति दें। (आपः नः शं उ सन्तु) जल हमें शांति दे।

[९] (३४०) (अदितिः व्रतेभिः नः शं भवतु) आदिति अपने व्रतोंसे हमें शांति दे। (स्वर्काः मरुतः नः शं भवन्तु) उत्तम तेजस्वी मरुत् वीर हमें शांति दें। (विष्णुः नः शं) विष्णु हमें शान्ति दें। (पूषा नः शं उ अस्तु) पूषा हमें शान्ति दें। (भवित्रं नः शं) भुवन हमें शान्ति दें। (वायुः शं उ अस्तु) वायु हमें शान्ति दें।

[१०] (३४१) (त्रायमाणः सविता देवः नः शं) संरक्षणकर्ता सविता देव हमें शान्ति दें। (विभातीः उषसः न शं भवन्तु) तेजस्वी उषाएं हमें शांति दें। (पर्जन्यः नः शं भवतु) पर्जन्य हमें शांति दें। (क्षेत्रस्य शंभुः पतिः नः प्रजाभ्यः शं अस्तु) देशका कल्याण करनेवाला अधिपति हमारी प्रजाके लिये शांति दें।

१ क्षेत्रस्य पतिः शंभुः--राष्ट्रका राजा कल्याण करनेवाला अर्थात् प्रजाका हित करनेवाला हो।

२ क्षेत्रस्य पतिः प्रजाभ्यः शं अस्तु—राष्ट्रका राजा प्रजाजनोंके लिये शान्ति देनेवाला हो। राजा प्रजाको शान्ति दे और प्रजाका कल्याण भी करे।

[११] (३४२) (विश्वदेवाः देवाः नः शं भवन्तु) सब प्रकाशमान देव हमें शांति दें। (सरस्वती धीभिः सह शं अस्तु) सरस्वती बुद्धियोंके साथ हमें शांति दें। (अभिषाचः शं) यज्ञकी सेवा करनेवाले हमें शांति दें। (रातिषाचः नः शं उ) दान देनेवाले हमें शांति दें। (दिव्याः प्रार्थिवाः अप्याः) द्युलोक, पृथिवी और जलमें उत्पन्न होनेवाले (नः शं) हमें शांति दें।

सरस्वती धीभिः नः शं अस्तु—सरस्वती विद्या देवी (धीभिः) अनेक प्रकारकी बुद्धियुक्त कर्म शक्तियोंके साथ हमें शान्ति दें। विद्यासे बुद्धियां संस्कार संपन्न होती है और उन बुद्धियोंसे नाना प्रकारके कर्म करनेकी शक्ति बढती है। यह सब विद्याक्षेत्र शान्ति स्थापन करनेवाला हो। विद्या तथा कर्म शक्तिके बढनेसे स्पर्धा बढकर अशान्ति ही न बढे, परंतु विद्या और कर्मशक्ति बढनेसे सर्वत्र शान्ति, सुख और आनन्द बढे। विद्यावृद्धिका परिणाम विपरीत न हो यह यहां सूचित किया है जो महत्त्वयुक्त है।

[१२] (३४३) (सत्यस्य पतयः नः शं भवन्तु) सत्यका पालन करनेवाले हमें शांति देनेवाले हों। (अर्वन्तः गावः नः शं सन्तु) घोडे और गौवें ह-

१३ शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ३४४
१४ आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ३४५
१५ ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३४६

(३६) ९ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।
वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ३४७

शांति दें। (सुकृतः सुहस्ताः ऋभवः नः शं) कुशलतासे कर्म करनेवाले उत्तम हाथवाले ऋभु हमें शांति दें। (हवेषु पितरः नः शं भवन्तु) यज्ञमें पितर हमें शांति देनेवाले हों।

सत्यस्य पतयः नः शं भवन्तु— सत्य पालनका व्रत लेनेवाले लोग हमें शान्ति देनेवाले हों। यह एक बडी सावधानीकी सूचना है। सत्य पालन करनेवाले अपने सत्य पालनका परिणाम क्या होगा इसका विचार नहीं करेंगे, तो उनके सत्य पालनके व्रतसे बडे कष्ट भी हो सकते हैं। इसलिये सावधानतासे ही सत्य पालन करना चाहिये।

[१३] (३४४) (अजः एकपात् देवः नः शं अस्तु) एक पाद् अज देव हमें कल्याण करनेवाला हो। (अहिः बुध्न्यः नः शं) अहिबुध्न्य हमें शांति दे। (समुद्रः शं) समुद्र शांति दे। (पेरुः अपां नपात् नः शं अस्तु) आपत्तियोंसे पार करनेवाला अपां नपात् देव हमें शांति दे। (देवगोपा पृश्निः नः शं भवतु) देवों द्वारा सुरक्षित गौ हमें शांति प्रदान करें।

' अजः एकपात् देवः '— उदय पानेवाले सूर्यका एक अंश ऊपर आता है, वह एकपात्— एक अंश उदित सूर्य अज एकपात् है। ' बुध्न्यः अहिः '— सबको आधार देनेवाला और कभी (अ-हि) नाशको प्राप्त न होनेवाला मूल आधार देव। ' अपां न-पात् '— जलोंको न गिरानेवाला मेघस्थ अग्नि। अथवा जलसे पृथिवी और पृथिवी पर अग्नि, इस तरह जलका पौत्र अग्नि। ' देवगोपा पृश्निः '— देव जिसकी सुरक्षा करते हैं वह माता गौ।

[१४] (३४५) (नवीयः क्रियमाणं इदं ब्रह्म) नवीन किया जानेवाला यह स्तोत्र है, इसका आदित्य, वसु और रुद्र स्वीकार करें। (दिव्याः) द्युलोकमें उत्पन्न (पार्थिवासः) पृथिवीपर उत्पन्न (गो जाताः) स्वर्गमें उत्पन्न अथवा गौके हित करनेके लिये उत्पन्न (उत ये यज्ञियासः) और जो यज्ञके योग्य हैं वे सब (नः शृण्वन्तु) हमारी प्रार्थना सुनें।

[१५] (३४६) (ये यज्ञियानां देवानां यज्ञियाः) जो पूजनीय देवोंके लिये भी पूजनीय हैं, जो (मनोः यजत्राः ते) मनुके लिये भी पूज्य हैं वे (ऋतज्ञाः अमृताः) ऋत जाननेवाले अमर देव (अद्य उरुगायं नः रासन्तां) आज हमें विस्तृत प्रशंसनीय यश दें। विस्तृत यश प्राप्त करनेवाला पुत्र प्रदान करें। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सदा हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित रखो।

हमें सुयश मिले और हमें पुत्र भी ऐसा मिले कि जो सुयश प्राप्त करनेवाला हो।

सूर्य, पृथिवी, अग्नि

[१] (३४७) (ऋतस्य सदनात् ब्रह्म प्र एतु) सत्यके स्थानसे ज्ञान फैले। (सूर्यः रश्मिभिः गाः विससृजे) सूर्य अपने किरणोंसे वृष्टिके उदक

२ इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।
इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ३४८
३ आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः ।
महो दिवः सदने जायमानोऽचिक्रदद् वृषभः सस्मिन्नूधन् ३४९
४ गिरा य एता युनजद्धरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू ।
प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम् ३५०

भेजता है। (उर्वी पृथिवी सानुना वि सस्रे) विशाल पृथिवी पर्वत शिखरोंसे युक्त बनी है। (अग्निः पृथु प्रतीकं अधि आ ईधे) अग्नि विस्तीर्ण पृथिवीके प्रतीक रूप वेदीपर प्रदीप्त होता है।

१ **ऋतस्य सदनात् ब्रह्म प्र एतु**—सत्यके केन्द्रसे सत्य ज्ञान फैलता है । यज्ञ स्थानसे ज्ञानके सूक्त प्रसृत हुए हैं ।

२ **सूर्यः रश्मिभिः गाः विससृजे**—सूर्य अपने किरणोंसे वृष्टिकी उत्पत्ति करता है । किरणोंसे बाष्प होता है, उससे मेघ और मेघोंसे वृष्टि होती है ।

३ **उर्वी पृथिवी सानुना विसस्रे**—यह विशाल पृथिवी पर्वत शिखरोंके साथ उस वृष्टिके जलको लेती है और धान्यकी उत्पत्ति करती है । इस अन्नका यज्ञ होता है ।

४ **अग्निः पृथु प्रतीकं अधि आ ईधे**—अग्नि वेदीपर प्रदीप्त होता है, उसमें उस धान्यका—अन्नका—हवन होता है और इस समय उक्त ज्ञानके सूक्त गाये जाते हैं ।

सत्य ज्ञानका प्रसार हो । वृष्टिसे धान्य उत्पन्न होकर उसका यज्ञ किया जाय और यज्ञ स्थान ज्ञान प्रसारका केन्द्र हो ।

मित्र-वरुण

[२] (३४८) हे (असुरा मित्रावरुणा) बलशाली मित्र और वरुण ! (वां इषं न) आप दोनोंके लिये अन्नके समान (नवीयः इमां सुवृक्तिं कृण्वे) इस नवीन स्तोत्रको करता हूं । (वां अन्यः इनः अदब्धः) आपमेंसे एक वरुण प्रभु है और न दबनेवाला है और (पद-वीः) धर्माधर्मका निर्णय करके योग्य स्थान देनेवाला है और (ब्रुवाणः मित्रः च जनं यतति) प्रशंसित हुआ मित्र लोगोंको धर्म मार्गमें प्रेरित करता है ।

मानवधर्म - मनुष्य प्रभावी सामर्थ्यसे युक्त बने । उत्तम शासक बनें, शत्रुसे न दबें, मानवोंकी योग्यताकी परीक्षा करके उनको योग्य स्थान दें । और मित्रवत् आचरण करके लोगोंको सत्कार्यमें प्रवृत्त करते जांय ।

१ **मित्रावरुणौ असुरौ**— मित्र तथा वरुण ये दो देव (असु-रौ) प्राणके बलसे युक्त हैं । बलवान् हैं । इस तरह मनुष्य बलवान बने, अपने अन्दर प्राणकी शक्ति बढावें ।

२ **अन्यः इनः अदब्धः पद-वीः**— एक शासक है, शत्रुसे न दबनेवाला अर्थात् विशेष प्रभावी है और योग्य मनुष्यकी धर्माधर्म विषयक परीक्षा करके उनको योग्य स्थान देनेवाला है । इसी तरह मनुष्य भी उत्तम शासक बने, शत्रुसे न दब जानेवाला हो और मनुष्योंकी योग्य परीक्षा करके योग्य स्थानपर योग्य मनुष्यको रखे ।

३ **मित्रः जनं यतति**—मित्र रूप रहकर दूसरा लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करता है ।

वायु-पर्जन्य

[३] (३४९) (ध्रजतः वातस्य इत्या आ रन्ते) चलनेवाले वायुकी गति चारों ओर सुशोभित होती है। (सूदाः धेनवः न अपीपयन्त) दूध देनेवाली गौवें बढती हैं। तथा (महः दिवः सदने जायमानः) इस विशाल द्युलोकके स्थानमें उत्पन्न होनेवाला (वृषभः) वृष्टि करनेवाला मेघ (सस्मिन् ऊधन्) उस अन्तरिक्षमें (अचिक्रदत्) गर्जना करता है ।

वायु बहता है, मेघ आते है, वृष्टि होती है, घांस बढता है, उसको खाकर गौवें पुष्ट होती हैं और बहुत दूध देती हैं ।

इन्द्र-अर्यमा

[४] (३५०) हे शूर इन्द्र ! (ते प्रिया सुरथा धायू हरी) तेरे प्रिय रथको जोते जानेवाले बलवान घोडे हैं, (यः गिरा एता युनजत्) जो उत्तम

५ यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन् ।
वि पृक्षो बाबधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम् ३५१
६ आ यत् साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः ३५२
७ उत त्ये नो मरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु ।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन् युज्यं ते रयिं नः ३५३
८ प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदथ्यं न वीरम् ।
भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरंधिम् ३५४

शब्दोंके साथ इनको रथके साथ जोतता है वहां तुम जाते हैं। (यः रिरिक्षतः मन्युं प्र मिनाति) जो हिंसक शत्रुके क्रोधको दूर करता है, निष्फल बनाता है, उस (सुक्रतुं अर्यमणं आ ववृत्यां) उत्तम कर्म करनेवाले अर्यमाको मैं अपनी और लाता हूं।

हिंसक शत्रुके क्रोधको अथवा उसके विनाशक प्रयोगको निष्फल बनाने योग्य अपना सामर्थ्य बढाना चाहिये ।

रुद्र

[५] (३५१) (नमस्विनः ऋतस्य स्वे धामन्) अन्नवाले यज्ञके अपने स्थानमें रहकर (वयः अस्य सख्यं यजन्ते) प्रगतिशील लोग इस रुद्रकी मित्रता करनेके लिये यज्ञ करते हैं। (नृभिः स्तवानः पृक्षः वि बाबधे) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित होकर रुद्र उपासकोंको अन्न देता है। (रुद्राय प्रेष्ठं इदं नमः) इस रुद्रके लिये बडा प्रियकर यह स्तोत्र है।

सिन्धु-सरस्वती-सात नदीयाँ

[६] (३५२) (सिन्धुमाता सप्तथी सरस्वती) माताके समान सिन्धु नदी और सातवीं सरस्वती नदी (सुधाराः सुदुघाः या सुष्वयन्त) उत्तम प्रवाहवाली और उत्तम दूध देनेवाली गौओंसे युक्त होकर वहती रहें। (स्वेन पयसा पीप्यानाः) अपने जलसे भरपूर होकर (याः यशसः वावशानाः) अन्न बढानेकी कामनासे (साकं अभि आ) साथ-साथ बहती रहें।

सात नदियां हैं। इनमें सिन्धु नदी माता हैं और सातवी सरस्वती नदी है। इनके तीर पर दुधारू गौवें रहती हैं। अपने जलसे ये नदियां भूमिका उपजाऊ गुण बढातीं हैं, पर्याप्त अन्न देती हैं। ये नदियां सदा बहती रहें और अन्न देती रहें।

वीर मरुत्, वाक्

[७] (३५३) (उत मन्दसानाः वाजिनः त्ये मरुतः) आनन्द बढानेवाले बलवान वे मरुत् वीर (नः तोकं धियं च अवन्तु) हमारे पुत्रोंको और बुद्धियुक्त कर्मोंको सुरक्षित रखें। (अक्षरा चरन्ती नः परि मा ख्यत्) अविनाशी चलनेवाली वाणी हमें छोडकर किसी अन्यको न देखे। हमारे पास ही रहे। (ते नः युज्यं रयिं अवीवृधन्) वे मरुद्वीर और वाणी हमारे योग्य धनको बढावें।

हमारे बालबच्चोंकी सुरक्षा हो। हमारी बुद्धि और कर्म शक्ति बढे। हमारी वाणी प्रशस्त हो। और इन सबकी सहायतासे हमारा धन योग्य मार्गसे बढे।

ते नः युज्यं रयिं अवीवृधन्—वे हमारे योग्य धनको सुयोग्य मार्गसे बढाते रहें। अयोग्य मार्गसे धन न बढे।

[८] (३५४) (वः महीं अरमतिं प्र कृणुध्वं) आप विशाल भूमिको मांगो। तथा (विदथ्यं पूषणं वीरं न) युद्धके योग्य वीर पूषाको मांगो। (नः अस्याः धियः अवितारं भगं) हमारे इस बुद्धियुक्त कर्मका संरक्षण करनेवाले भग देवके पास मांगो। तथा (पुरंधिं रातिषाचं वाजं सातौ) नगरकी धारणा करनेवाली जिसकी बुद्धि है और जो

९ अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः ।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३५५

(३७) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

१ आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः ।
अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पृणध्वम् ३५६

दानशील है उस बलवान् देवकी सहायता युद्धके समय मांगो।

१ महीं अरमतिं प्र कृणुधां — इस पृथिवीके ऊपर अपने लिये विशाल कार्यक्षेत्र बनाओ।

२ विदथ्यं पूषणं वीरं प्र कृणुध्वं — युद्धमें जाकर विजय प्राप्त करनेवाले पोषक वीर पुत्रको निर्माण करो। पुत्रको ऐसी शिक्षा दो कि जिससे युद्धके योग्य वे वीर हो सकेंगे।

३ धियः अवितारं भगं प्र कृणुध्वं — बुद्धि पूर्वक किये कर्मका संरक्षण करनेवाले भाग्यवान पुत्रको निर्माण करो।

४ सातौ पुरंधिं रातिषाचं वाजं प्र कृणुध्वं — युद्धके समय नगरका संरक्षण करनेवाले, दान देनेमें कुशल, बलवान् वीर पुत्रको निर्माण करो।

'वीर'= पुत्र, वीर, शूर संतान।

[९] (३५५) हे (**मरुतः**) **मरुद्वीरो! (वः अयं श्लोकः अच्छ एतु) आपका यह स्तोत्र आपके पास सीधा पहुंचे। (निषिक्तपां अवोभिः विष्णुं अच्छ) गर्भका संरक्षण अपनी संरक्षक शक्तियोंसे करनेवाले विष्णुके पास यह स्तोत्र पहुंचे। (उत प्रजायै गृणते वयः धुः) वे सन्तान और अन्न उपासकको दें। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप हमें कल्याणके साधनोंसे सदा सुरक्षित रखो।**

१ निषिक्तपां विष्णुं अवोभिः — अपने संरक्षणोंके साधनोंसे विष्णु गर्भका संरक्षण करता है। विष्णु जगत्का प्रशासन करनेवाला है। यहांका राजा भी राष्ट्रमें ऐसा प्रबंध करे कि जिससे गर्भोंका, बालकोंका उत्तम संरक्षण हो।

२ प्रजायै वयः धुः — प्रजाके लिये अन्न दिया जाये। राष्ट्रमें जो अन्न होगा उसका उपयोग संतानोंकी पालनाके लिये प्रथम होना चाहिये। सब देव अन्नका धारण प्रजाके लिये ही करते हैं। वैसा मनुष्य भी किया करें।

ऋभुः—कारीगर

[१] (३५६) (**ऋभुक्षणः वाजाः**) **हे तेजस्वी ऋभु देवो! (वः वाहिष्ठः स्तवध्यैः अमृक्तः रथः आ वहतु) आपको यह वाहक प्रशंसनीय और अहिंसित रथ यहां ले आवे। हे (सुशिप्राः) शोभन शिरस्त्राणवालो अथवा सुन्दर हनुवालो! (सवनेषु मदे त्रिपृष्ठैः महोभिः सोमैः) हमारे यज्ञोंमें आनन्द करनेके लिये दूध-दहि-सत्तु मिश्रित महान सोमरसोंसे (आ पृणध्वं) अपने पेट भर दो।**

१ ऋभुक्षणः वाजाः — विशेष तेजका निवास स्थान जैसे तथा अन्न बल और धन उत्पन्न करनेवाले ऋभु कारीगर हैं। प्रत्येक कुशल कारीगर अन्न, धन और बलका निर्माण करता है। ऐसे कारीगर राष्ट्रमें हों।

२ सुशिप्राः — उत्तम हनुवाले, उत्तम शिरस्त्राणवाले, उत्तम कवचवाले।

३ वाहिष्ठः अमृक्तः रथः — रथ उत्तम वहन करनेवाला हो, टूटनेवाला न हो, किसी शत्रुसे अभेद्य हो। ऐसा रथ हो।

४ त्रिपृष्ठैः महाभिः सोमैः आ पृणध्वं — दूध, दही और सत्तु सोमरसमें मिला कर पीया जाय। ये पदार्थ सोममें इतने मिलने चाहिये कि जो सोमरस (पृष्ठ) के पृष्ठपर दीखते रहे। इससे मिलानेका प्रमाण स्पष्ट हो जाता है।

२ यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम् ।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् ३५७
३ उवोचिथ हि मघवन् देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे ।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यमते वसव्या ३५८
४ त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा ।
वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ३५९

---

[२] (३५७) हे (ऋभुक्षणः) तेजस्वी ऋभुओ ! (स्वर्दृशः यूयं) आत्मदर्शी आप लोग (मघवत्सु अमृक्तं रत्नं धत्थ) धनवान हम दाताओंके लिये अहिंसित रत्नोंका प्रदान करो । (स्वधावन्तः यज्ञेषु सं पिबध्वं) बलवान् तुम लोग हमारे यज्ञोंमें सोमरसका पान करो । तथा (मतिभिः राधांसि नः दयध्वं) अपनी बुद्धियोंके साथ सिद्धि देनेवाले धनोंको हमें दे दो।

१ ऋभुक्षणः स्वर्दृशः- तेजस्वी कारीगर आत्मदर्शी हों। स्वर्गकी और दृष्टि रखकर कार्य करनेवाले हों। परम सत्य सुखकी ओर दृष्टि रखनेवाले हों ।

२ अमृक्तं रत्नं धत्थ — दुःष्टोंद्वारा चुराया न जानेवाला धन हमें दो । अर्थात् हमारे पास संरक्षणकी शक्ति रहे और वैसा धन हमें प्राप्त हो ।

३ मतिभिः राधांसि नः दयध्वं — उत्तम सिद्धितक पहुंचानेवाली बुद्धियोंके साथ रहनेवाले धन हमें मिलें। धन ऐसे हो कि जो सिद्धितक पहुंचानेवाले हो और उनके साथ शुभ बुद्धियां भी रहें । सुबुद्धको ही धन मिले, बुद्धिहीनको धन न मिले। धनके साथ बुद्धि मिले और बुद्धिके साथ धन भी रहे।

इन्द्र देवता

[३] (३५८) हे (मघवन्) धनपते ! तुम (महः अर्भस्य वसुनः विभागे) बडे और अल्प धनके विभाग करनेके समय (देष्णं उवोचिथ हि) देने योग्य धनको तुम लेते हैं। (ते उभा गभस्ती) तुम्हारे दोनों बाहु (वसुना पूर्णा) धनसे भरपूर भरे हैं। (सूनृता वसव्या न नियमते) तुम्हारी उत्तम वाणी धनका प्रदान करनेके समय बाधक नहीं होती।

१ महः अर्भस्य वसुनः विभागे देष्णं उवोचिथ - बडे या अल्प धनके दान करनेके समय तुम देने योग्य धन देते हो । धनदानमें तुम्हारी कंजूसी वा कृपणता नहीं होती ।

२ ते उभा गभस्ती वसुना पूर्णा — तुम्हारे दोनों हाथ धनसे परिपूर्ण भरपूर भरे हैं। दानके लिये हाथोंमें जितना रह सकता है उतना धन तुमने लिया है। तुम्हारे हाथ दान करनेके लिये तैयार हैं ।

३ सूनृता वसव्या न नियमते— तुम्हारी सत्य भाषण करनेवाली वाणी धनका दान करनेके समय किसीके द्वारा रोकी नहीं जाती अर्थात् तुम्हारी वाणी भी धनका दान करनेके ही वाक्य बोलती है ।

धनिक लोग उदार चित्तसे अपने धनका दान करते रहें ।

[४] (३५९) हे इन्द्र ! (स्वयशाः ऋभुक्षाः त्वं) अपने यशसे युक्त कारीगरोंका निवास करनेवाले तुम (साधुः वाजः न ऋका) उत्तम साधक अन्नकी तरह पूजा योग्य (अस्तं एषि) हमारे घरके समीप आते हैं। हे (हरिवः) उत्तम घोडोंसे युक्त वीर। (वयं वसिष्ठाः ते दाश्वांसः स्याम) तब हम वसिष्ठ तुम्हें हवि अर्पण करनेके लिये सिद्ध हैं तथा (ते ब्रह्म कृण्वन्तः) तेरा स्तोत्र भी करते हैं।

१ इन्द्रः स्वयशाः ऋभुक्षाः -- इन्द्र अपने प्रयत्नसे यश कमाता है और कारीगरोंको अपने पास रखता है। राजा तथा वीर अपने प्रयत्नसे अपना यश बढावे और अपने आश्रयमें अनेक कारीगरोंको रखे । राजा तथा धनी लोग कारीगरोंको आश्रय देकर कारीगरीकी उन्नति करें ।

२ साधुः वाजः -- अन्न तथा बल साधक हो अर्थात् सिद्धिको पहुंचानेवाला हो। साधन मार्गमें सहायक होनेवाला हो।

५ सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद् याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः ।
ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ३६०
६ वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः ।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ३६१
७ अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः ।
उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ३६२
८ आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ ।
सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३६३

---

[५] (३६०) हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंको पास रखनेवाले! तुम (याभिः धीभि विवेषः) जिन बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंसे सर्वत्र व्यापते हो। ऐसे तुम (दाशुषे चित् प्रवतः सनिता असि) दाताके लिये उत्तम धनके दाता होते हैं। हे इन्द्र! तुम (नः कदा रायः आ दशस्येः) हमें कब धनोंका प्रदान करोगे! (नु ते युज्याभिः ऊती ववन्म) आज तुम्हारी योग्य सुरक्षासे हम सुरक्षित होंगे।

१ धीभिः विवेषः — बुद्धियोंसे, बुद्धिपूर्वक किये अपने पुरुषार्थोंसे चारों ओर व्याप्त होओ। योजनापूर्वक किये कर्मोंसे चारों ओर पहुंचना चाहिये।

२ प्रवतः सनिता असि -- उत्तम रीतिसे सुरक्षा करनेवाले धनका प्रदान करो। उच्च धनका दान करो।

३ युज्याभिः ऊती ववन्म-- योग्य संरक्षणोंसे हम सुरक्षित रहेंगे। योग्य संरक्षण प्राप्त करेंगे और हम सुरक्षित रहेंगे।

[६] (३६१) हे इन्द्र! (नः वचसः कदा बुबोध) तुम हमारा वचन कब समझोगे? कब हमारी प्रार्थना सुनोगे? (त्वं नः वेधसः वासयसि इव) तुम हमारा निवास करनेवाले हो। (वाजी अर्वा) तुम्हारा बलवान घोडा (तात्या धिया) हमारी विस्तृत वाणीसे प्रेरित होकर (सुवीरं रयिं) उत्तम वीर पुत्र युक्त धनको (पृक्षः) तथा अन्नको (नः अस्तं नि उहीत) हमारे घरमें ले आवे।

१ वेधसः वासयासि — ज्ञानियोंका सुखसे निवास करनेवाला (राजा) हो। राजाका कर्तव्य है कि वह ऐसा सुप्रबंध करे कि जिससे उत्तम उत्तम ज्ञानी लोग आकर उसके राज्यमें रहें। इन्द्र ऐसा करता है; वह राजाके लिये आदर्श है।

२ नः अस्तं सुवीरं रयिं पृक्षः — हमारे घर उत्तम वीर संतान हों, उत्तम अन्न भरपूर हो।

[७] (३६२) (देवी निर्ऋतिः चित् यं ईशे) देवी भूमि ईशान के लिये (यं अभि नक्षन्ते) जिसकी ओर देखती है। (सुपृक्षः शरदः यं इन्द्रं) उत्तम अन्नसे युक्त वर्ष जिसको देखते है। (मर्ताः यं अस्ववेशं कृण्वन्तः) मनुष्य जिसको अपने घरमें ठहरने नहीं देते, (त्रिबन्धुः जरदष्टिं उप एति) वह तीनों लोकोंका भाई इन्द्र बहुत बडे बल से हमारे समीप आ जावे। हमें बडा बल देवे।

भूमि जिसको अपना अधिपति मानती है, संवत्सर काल अन्नसे युक्त होकर जिसके पास देखता है, मनुष्य प्रार्थना करते करते जिसको अपने स्थानमें बैठने नहीं देते, वह तीनों लोकोंका भाई प्रभु है वह हमें उत्तम बल प्रदान करे।

'जरदष्टिः' (जरत्-अष्टिः) (अष्टि) खाये अन्नका (जरत्) पाचन करनेका जो बल है वह अन्न पचानेका सामर्थ्य हमें मिले।

[८] (३६३) हे (सवितः) सबके प्रेरक देव! (स्तवध्यै राधांसि) प्रशंसनीय धन (नः आ यन्तु) हमारे पास आ जांय। (पर्वतस्य रातौ

(३८) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १-६ सविता, ६ उत्तरार्धस्य भगो वा, ७-८ वाजिनः । त्रिष्टुप् ।

१ उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरूवसुर्दधाति ३६४

२ उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्य१स्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।
व्यु१र्वीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः ३६५

३ अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद् विश्वे वसवो गृणन्ति ।
स नः स्तोमान् नमस्य१श्चनो धाद् विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ३६६

४ अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा ।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः ३६७

रायः आ) पर्वतके दानके समय धन हमारे पास आ जांय । (पायुः दिव्यः सदा नः सिषक्तु) पालन कर्ता देव सदा हमारी सुरक्षा करे । (यूयं सदा स्वस्तिभिः नः पात) आप सदा संरक्षणोंसे हमारी सुरक्षा कीजिये ।

१ स्तवध्ये राधांसि नः आ यन्तु -- प्रशंसनीय धन हमारे पास आ जाय। प्रशंसनीय मार्गसे प्राप्त हुआ तथा जिसकी प्रशंसा होती है ऐसा धन हमारे पास हो ।

२ पर्वतस्य रातौ रायः नः आ यन्तु -- पर्वतसे प्राप्त होनेवाले धन हमें प्राप्त हो ।

३ पायुः दिव्यः सदा नः सिषक्तु — संरक्षक दिव्य वीर सदा हमारी सुरक्षा करे । हमारे संरक्षक उत्तम हों। दिव्य हों । हीन न हों ।

सविता ।

[१] (३६४) (स्यः सविता देवः) वह सविता देव (हिरण्ययीं यां अमतिं) जिस सुवर्णमयी प्रभाका (अशिश्रेत्) आश्रय करता है, उसका (उत् ययाम) उदय होता है । (नूनं भगः मनुष्येभिः हव्यः) निश्चयहीसे यह भग देव मनुष्यों द्वारा स्तुति करने योग्य है । (यः पुरूवसुः रत्ना वि दधाति) जो यह बहुत धनसे युक्त देव है वह अनेक रत्न भक्तोंको देता है ।

[२] (३६५) हे (सवितः) सबके प्रेरक देव ! तुम (उत् तिष्ठ) ऊपर आओ । उदित हो जाओ । हे (हिरण्यपाणे) सुवर्णके आभूषणोंसे सुशोभित हाथवाले ! तुम (ऋतस्य प्रभृतौ अस्य श्रुधि) यज्ञके चलनेपर इस स्तोत्रका श्रवण करो । (उर्वीं पृथ्वीं अमतिं वि सृजानः) तुम विस्तीर्ण और प्रसिद्ध प्रभाको फैलाते और (नृभ्यः मर्तभोजनं आ सुवानः) मानवोंके लिये भोगके योग्य धन, अन्न देते हो ।

[३] (३६६) (अपि सविता देवः स्तुतः अस्तु) सविता देव हमारे द्वारा प्रशंसित हो । (विश्वे वसवः यं चित् आ गृणन्ति) सब ही निवासक देव जिसकी स्तुति गाते हैं । (सः नमस्यः नः स्तोमान् चनः धात्) वह नमस्कार करने योग्य देव हमारे स्तोमोंका तथा अन्नका धारण करें । वह (विश्वेभिः पायुभिः सूरीन् नि पातु) सब संरक्षणके साधनोंसे हमारे ज्ञानियोंकी सुरक्षा करे ।

[४] (३६७) (यं देवी अदितिः अभि गृणाति) जिस सविताकी अदिति देवी स्तुति करती है । (सवितुः देवस्य सवं जुषाणा) वह सविता देवकी प्रेरणाका पालन करती है । (सम्राजः वरुणः अभि गृणन्ति) सम्राट वरुण देव जिसकी प्रशंसा करते हैं । तथा (सजोषाः मित्रासः अर्यमा अभि) समान प्रीतिवाला अर्यमा और मित्रादि देव इसकी स्तुति करते हैं ।

५ अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः ।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ३६८
६ अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ३६९
७ शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद् युयवन्नमीवाः ३७०
८ वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ३७१

---

[५] (३६८) (ये रातिषाचः वनुषः मिथः) दानशील भक्त जन मिलकर (दिवः पृथिव्याः रातिं अभि सपन्ते) द्युलोक और पृथिवी लोकके मित्ररूप सविताकी उपासना करते हैं । (बुध्न्यः अहिः उत नः शृणोतु) मध्यस्थानमें रहनेवाला प्रगतिमान वह विद्युत् रूप अग्नि हमारा स्तोत्र सुने । (वरूत्री एकधेनुभिः नि पातु) वाग्देवी मुख्य गौओंके साथ हमारी सुरक्षा करें ।

[६] (३६९) (इयानः जास्पतिः) प्रार्थना करनेपर सब प्रजाओंका पालक (सवितुः देवस्य तत् रत्नं) सविता देव अपने रत्नोंको, धनोंको, (नः अनुमंसीष्ट) हमारे लिये दें, देनेकी अनुमति प्रदान करें । (उग्रः भगं अवसे जोहवीति) उग्र वीर भग देवकी अपनी सुरक्षाके लिये प्रार्थना करता है । (अध अनुग्रः भगं रत्नं याति) पर जो उग्र वीर नहीं है वह भगके पास केवल रत्नोंको ही मांगता है ।

उग्र वीर संरक्षणकी शक्तिके साथ भगके पास धन मांगता है, पर जो वीर नहीं है वह केवल धन ही मांगता है । संरक्षणकी शक्ति चाहना योग्य है क्योंकि विना शक्तिके प्राप्त धनका संरक्षण नहीं हो सकता । इसलिये संरक्षण करनेकी शक्ति प्राप्त करो, वह शक्ति रही तो धन भी प्राप्त किया जा सकेगा और प्राप्त होनेपर अपने पास रह सकेगा ।

[७] (३७०) (मित द्रवः स्वर्काः वाजिनः) अच्छी गतिवाले स्तुतिके योग्य ये बलवान देव (देवताता हवेषु) यज्ञमें प्रार्थनाके समय (नः शं भवन्तु) हमारे लिये सुख देनेवाले हों । ये (अहिं वृकं रक्षांसि जंभयन्तः) बढनेवाले क्रूर राक्षसोंका नाश करते हुए (सनेमि अमीवाः अस्मत् युयवन्) पुराने सब रोग हमसे दूर करें ।

(मित-द्रवः) जिनकी गति प्रमाणसे होती है (सु-अर्काः) उत्तम सूर्यके समान गुण धर्मवाले (वाजिनः) बल बढानेवाले ये सविताके किरण है । ये (नः शं भवन्तु) ये हमें सुख और शान्ति देते हैं । ये (सनेमि अमीवाः अस्मत् युयवन्) पुरानेसे पुराने आमाशयके रोगोंको हमसे दूर करें, आमाशयमें अन्नका पाचन ठीक न होनेसे जो रोग होते हैं वे सूर्य किरणोंके प्रयोगसे दूर हों । तथा (अहिं, अ-हिं) कम न होनेवाले, बढते जानेवाले (वृकं) क्रूर कर्म करनेवाले हिंसक भेडिये समान मारक तथा (रक्षांसि) रोग बीजोंको सूर्य किरण (जंभयन्तः) नाश करते हैं । रोग बीजोंका नाश हो और हमें सुख प्राप्त हो ।

'**अहि, वृक, रक्षांसि**' ये सब नाम रोगबीजोंके, रोग क्रिमियोंके है । (देखो-'**वेदमें रोग जन्तुशास्त्र**' पुस्तक जो प्रकाशित हुई है) ।

[८] (३७१) हे (वाजिनः) बल देनेवाले देवो ! (विप्राः अमृताः ऋतज्ञाः) ज्ञानी अमर और सत्य मार्गको जाननेवाले तुम सब (वाजे वाजे नः धनेषु अवत) प्रत्येक युद्धमें धनके लिये हमारा संरक्षण करो । (अस्य मध्वः पिबत) इस मधुर सोमरसका पान करो, (मादयध्वं) आनंद प्राप्त करो (तृप्ताः देवयानैः पथिभिः यात) तृप्त होकर देवयानके मार्गोंसे जाओ ।

(३९) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। विश्वे देवाः। त्रिष्टुप्।

१ ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत् प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ३७२

२ प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ३७३

३ ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः।
अर्वाक्पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ३७४

(वाजिन.) बलवान् बनना चाहिये, बलवान्, अन्नवान्, सामर्थ्यवान् होना चाहिये, (अ-मृताः) अकालमें मरना नहीं चाहिये तथा ऋत-ज्ञा उन्नतिके सत्य मार्गको जानना चाहिये। (धनेषु वाजे वाजे नः अवत) धन प्राप्तिके निमित्त युद्ध होते हैं उनमें हमारा संरक्षण होना चाहिये।

विश्वे देवाः

[१] (३७२) **(ऊर्ध्वः अग्निः वस्वः सुमतिं अश्रेत्) जिसकी गति ऊपरकी ओर होती है ऐसा ऊर्ध्वगामी अग्नि निवासकी इच्छा करनेवाले भक्तकी की हुई स्तुतिको सुने। (प्रतीची जूर्णिः देवतातिं एति) पूर्व दिशामें होनेवाली, सबको जीर्ण करनेवाली उषा यज्ञमें जाती है। (अद्री रथ्या इव पन्थां भेजाते) आदरणीय दोनों प्रकारके लोग रथ चलानेवाले मार्गका अवलंब करते हैं उस प्रकार यज्ञ मार्गका सेवन करते हैं। (इषितः नः होता ऋतं यजाति) प्रेरित हुआ होता यज्ञको करता है।**

१ **ऊर्ध्वः अग्निः** — अग्निका ज्वलन ऊपरकी ओर होता है। अग्निकी ज्वाला उच्च गतिवाली होती है। मनुष्यको भी अपनी प्रगति उच्च मार्गसे ही करनी चाहिये।

२ **वस्वः सुमतिं अश्रेत्** — जिससे यहांका निवास सुखसे होता है, इस निवासका साधन करनेवाली उत्तम बुद्धिको प्राप्त करना चाहिये। जिसके पास उत्तम बुद्धि होगी, उसका निवास यहां सुखसे होगा। इसलिये इस तरह सुबुद्धिको प्राप्त करना चाहिये।

३ **रथ्या पंथां भेजाते** — सब कोई रथके मार्गपरसे ही जाय। मार्गको छोड कर कोई न जाय। कोई अपने अच्छे मार्गको न छोडे।

४ **ऋतं यजाति** — सत्य सरलतासे होनेवाले प्रशस्त कर्मको करना चाहिये।

[२] (३७३) (एषां सुप्रयाः बर्हिः) इनका अन्नसे भरपूर भरा बर्हि यज्ञमें (प्र वावृजे) प्रयुक्त होता है। (विश्पती इव प्रजाओंके पालक दोनों (नियुत्वान्) वडवायुक्त (वायुः पूषा) वायु और पूषा ये देव (विशां स्वस्तये) सब प्रजाओंके कल्याणके लिये (अक्तोः उषसः) रात्री और उषाके समयके (पूर्व-हूतौ) प्रथम करनेकी प्रार्थनाके समय (बिरीटे आ इयाते) अन्तरिक्षमें आ जावें।

नियुत्वान् विश्पती इव विशां स्वस्तये बिरीटे आ इयाते— घोडे जोडकर, रथमें बैठकर, प्रजाका पालन करनेमें तत्पर राजा लोग जैसे प्रजाका कल्याण करनेके लिये ही गण-सभामें आकर बैठते हैं। और वहां प्रजाके कल्याणका विचार करते हैं।

यहां बताया है कि प्रजाका पालन करनेका ही विचार राजा और राजपुरुष मनमें धारण करें और अपना कर्तव्य करें।

[३] (३७४) (अत्र वसवः देवाः ज्मया रन्त) यहां वसुदेव भूमिके साथ रममाण हों। (उरौ अन्तरिक्षे शुभ्राः मर्जयन्त) विस्तीर्ण अन्तरिक्षमें तेजस्वी मरुद्वीर शुद्ध करते हैं। हे (उरु-ज्रयः) बहुत भ्रमण करनेवाले देवो! आपका (पथः अर्वाक् कृणुध्वं) मार्ग हमारी ओर करो, हमारी ओर आओ। (नः अस्य जग्मुषः दूतस्य श्रोत) हमारे इस तुम्हारे पास जानेवाले दूतका भाषण सुनो।

४ ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः ।
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिम् ३७५
५ आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम् ।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ३७६
६ ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत् कामं मर्त्यानामसिन्वन् ।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ३७७
७ नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३७८

[४] (३७५) (यज्ञेषु ते यज्ञियासः ऊमाः) यज्ञोंमें वे पूजायोग्य और रक्षक (विश्वे देवाः सधस्थं अभि सन्ति) सबके सब देव वीर साथ साथ आते हैं। हे अग्ने! (उशतः तान् अध्वरे याक्षि) इच्छा करनेवाले उन देवोंके लिये यज्ञमें यजन करो। तथा (श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिं) सत्वर भग, अश्विदेव और नगर रक्षक इन्द्रके लिये यजन करो।

१ ऊमाः यज्ञियासः — जो वीर संरक्षण करते हैं वे पूजाके योग्य हैं। उनका सत्कार करना चाहिये।

२ विश्वे देवाः सधस्थं अभि सन्ति — सब देव एक स्थानपर रहते है। एक स्थानपर संगठित होकर रहते है। वे बिखरे नहीं रहते। उनमें फूट नहीं होती।

[५] (३७६) हे अग्ने! (दिवः गिरः आ वह) द्युलोकसे स्तुति करने योग्य देवोंको ले आओ। (पृथिव्याः आ वह) पृथिवीके ऊपरसे भी ले आओ। मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि, अर्यमा, अदिति, विष्णुको ले आओ। (एषां सरस्वती मरुतः मादयध्वं) इनमें सरस्वती और मरुत् आनन्दित होकर यहां आवें।

[६] (३७७) (यज्ञियानां मतिभिः हव्यं ररे) पूजा योग्य देवोंके लिये हम अपनी बुद्धिपूर्वककी स्तुतियोंके साथ हव्य अन्न अर्पण करते हैं। (मर्त्यानां कामं असिन्वन् नक्षत्) मानवोंकी उन्नतिकी कामनाओंका प्रतिबंध न करता हुआ अग्नि यज्ञको करता है। (अविदस्यं सदासां रयिं धात) अक्षय और सदा स्थायी रहनेवाले धनको हमें दो और (युज्येभिः देवैः सक्षीमहि) साथी देवोंके साथ हम आज मिलेंगे।

१ यज्ञियानां हव्यं मतिभिः ररे— पूजनीय वीरोंको बुद्धिपूर्वक आदर सत्कारपूर्वक सुपूजित करो।

२ मर्त्यानां कामं अ-सिन्वन् नक्षत् – मानवोंकी अभ्युदयकी इच्छाको प्रतिबंध न करो। उनकी सहायता करो।

३ अविदस्यं सदासां रयिं धातं — अक्षय तथा सदा टिकनेवाले धनको हमें दो।

४ युज्येभिः देवैः सक्षीमहि — योग्य बन्धु तथा साथी दिव्य विबुधोंके साथ हम मिलकर रहेंगे। एक विचारके सज्जनोंके साथ हम अपना संगठन करेंगे।

[७] (३७८) (नू वसिष्ठैः रोदसी अभिष्टुते) निःसंदेह आज वसिष्ठोंने द्युलोक और पृथिवी की स्तुति की है। (ऋतावानः) यज्ञके योग्य वरुण, मित्र, अग्नि ये देव भी प्रशंसित हुए हैं। (चन्द्राः नः उपमं अर्कं यच्छन्तु) आनंद बढानेवाले ये देव हमें सर्वोत्कृष्ट पूजा योग्य अन्न तथा धन प्रदान करें। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पातं) आप सदा हमें कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित करो।

नः उपमं अर्कं यच्छन्तु – हमें उत्तमसे उत्तम धन मिले।

(४०) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

१ ओ श्रुष्टिर्विदथ्या३ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम् ।
यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे ३७९

२ मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु ।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ३८०

३ सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ ।
उतेमाग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति ३८१

४ अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः ।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ३८२

विश्वे देवाः

[१] (३७९) (विदथ्या श्रुष्टिः ओ सं एतु) संघटनसे प्राप्त होनेवाला सुख हमें प्राप्त हो। (तुराणां स्तोमं प्रति दधीमहि) हम त्वराशील देवोंके लिये स्तोत्र करते हैं। (अद्य देवः सविता यत् सुवाति) आज सविता देव जिस धनको देता है । हम (अस्य रत्निनः विभागे स्याम) इस रत्नोंको पास रखनेवाले सविता देवके धनदानके समय रहें। हमें वे धन मिलें।

विदथ्या श्रुष्टिः सं एतुः — सभामें, संगठनमें वेगसे मिलनेवाला धन हमें मिले। 'श्रुष्टि' = वेगसे मिलनेवाला। '**विदथ्या**' – सभा, यज्ञ, संघ या सगठनका स्थान। संगठित होनेसे जो धन सत्वर मिलता है वह हमें मिले। अर्थात् हम संगठित हों, बलवान हों और धन भी प्राप्त करें।

[२] (३८०) मित्र, वरुण, (रोदसी) द्यावापृथिवी (तत् नः ददातु) उस धनको हमें दें। इन्द्र और अर्यमा हमें (द्युभक्तं ददातु) तेजस्वियों द्वारा सेवन करनेयोग्य धन दें। (अदितिः देवी रेक्णः दिदेष्टु) अदिति देवी वह धन हमें दे (वायुः भगः च) वायु और भग ये देव (नियुवैते) हमारे लिये जिसको प्रेरित करते हैं वह धन हमें प्राप्त हो।

द्युभक्तं रेक्णः दिदेष्टु -- तेजस्वी वीरोंके लिये जो प्रिय है वह धन हमें प्राप्त हो। उत्तमसे उत्तम धन हमें मिले।

[३] (३८१) हे (पृषदश्वाः) उत्तम घोडोंवाले मरुत् वीरो ! (मर्त्यं यं अवाथ) जिस मनुष्यकी तुम सुरक्षा करते हो, (सः उग्रः, सः शुष्मी अस्तु) वह उग्र तथा बलवान् होता है । (अग्निः सरस्वती ईं उत जुनन्ति) अग्नि, सरस्वती आदि देव उसको सत्कर्ममें प्रवर्तित करते हैं । (तस्य रायः पर्येता न अस्ति) उसके धनका नाश करनेवाला कोई नहीं है।

१ **यं मर्त्यं अवाथ, सः उग्रः शुष्मी** – जिसका संरक्षण देव करते हैं वह शूर वीर तथा प्रभावी सामर्थ्यवान् होता है।

२ **सरस्वती ईं जुनति** — विद्या देवी उसको प्रशस्ततम कर्ममें प्रेरित करती है। विद्याके शुभ संस्कारोंसे वह संपन्न होता है जिससे उसकी प्रवृत्ती असत् कर्ममें नहीं होती।

३ **तस्य रायः पर्येता न अस्ति** — उसके धनको घेरनेवाला कोई नहीं होता, उसके धनको चुरानेवाला कोई नहीं होता। क्योंकि वह इतना बलवान होता है कि उससे उसका धन सुरक्षित होता है।

जो विद्यावान्, बलवान् उग्र शूर वीर होता है उसके धनका अपहरण कोई कर नहीं सकता। '**यः शुष्मी उग्रः तस्य रायः पर्येता न कः अस्ति**'—जो बलवान् और शूर वीर होता है उसके धनका अपहरण करनेवाला कोई नहीं होता। उग्र वीर बनोगे तो धन सुरक्षित रहेगा।

[४] (३८२) (अयं हि ऋतस्य नेता) यह सत्य मार्गका नेता है। मित्र, वरुण, अर्यमा, आदि (राजानः) राज्य शासक देव (अपः धुः)

५ अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः ।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ३८३
६ मात्र पूषन्नाघृण इरस्यो वरूत्री यद् रातिषाचश्च रासन् ।
मयोभुवो नो अर्वन्तो नि पान्तु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ३८४

हमारे प्रशस्त कर्मोंका धारण करते हैं । (अनर्वा अदितिः देवी सुहवा) किसीके द्वारा प्रतिबंधित न होनेवाली अदिति देवी स्तुति करने योग्य है । (ते अरिष्टान् नः अंहः अति पर्षत्) वे सब देव बाधारहित ऐसे हम सबको पापसे बचावें।

१ राजानः ऋतस्य नेतारः अपः धुः — राजा लोग और राजपुरुष सत्यके मार्गपरसे स्वयं चलकर जनताको चलानेवाले होकर लोगोंके उत्तम कर्मोका धारण करें । उनके कर्मोकी सुरक्षा करें । फल मिलनेतक किये कर्मोका नाश न होने दें । लोग कर्म करें, पर उनका फल उनको न मिले ऐसा कभी न होने दें । जो कर्म करेगा उसको उसका फल अवश्य मिले ऐसा प्रबंध करें ।

कर्म करनेवालेको उस कर्मके बदले फल अर्थात् वेतन या धन अवश्य मिलना चाहिये । कर्म करनेपर फल न मिले ऐसा कभी होना नहीं चाहिये । यह राज्य प्रबंध द्वारा सुरक्षिततता होनी चाहिये।

२ अदितिः अनर्वा सुहवा — 'अदिति' का एक अर्थ (अत्ति इति अदितिः अदनात्) जो भोजन देती है । दूसरा 'अदिति' का अर्थ (अ-दितिः) स्वतंत्रता, प्रतिबंधरहित अवस्था । अदितिके ये कार्य हैं। एक लोगोंके भोजनका उत्तम प्रबंध करना और जनताको प्रतिबंध रहित करना। अर्थात् अदिति देवी लोगोंको भोजन भरपूर देवे और स्वतंत्र करे।

३ नः अरिष्टान् — हम विनष्ट न हों । हमारा नाश घातपात या विनाश न हो ।

४ नः अंहः अतिपर्षत् — हमारी सब पापोंसे सुरक्षा हो । हमसे पाप कर्म न हों ऐसा राष्ट्रमें प्रबंध हो ।

एक विष्णु और उसके अंग अन्य देव

[५] (३८३) (प्रभृथे हविर्भिः एषस्य मीळ्हुषः विष्णोः अस्य देवस्य) यज्ञमें हविष्योंके द्वारा उपासनीय और इच्छाओंकी पूर्ति करनेवाले इस व्यापक विष्णु देवकी (वयाः) अन्य देव शाखाएं हैं । (रुद्रः रुद्रियं महित्वं विदे हि) रुद्रदेव अपना महत्त्व युक्त सामर्थ्य हमें प्रदान करे । हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (इरावत् वर्तिः यासिष्टं) हमारे अन्न युक्त घरके पास आओ । हमारे यज्ञमें आओ ।

१ विष्णो वयाः — व्यापक एक देव वृक्षके समान है और अन्य सब देव उसकी शाखाएं हैं । इस एक देवके आश्रयसे अन्य देव रहे है, वे पृथक् नहीं है, पर इसके ही अवयव हैं ।

जैसे शरीरमें हाथ, आदि अवयव, वृक्षमें शाखाएँ अथवा सूर्यके किरण उस तरह विष्णुके ये अवयव हैं । संपूर्ण विश्वका नायक सर्वव्यापक परमेश्वर एक है यह इस मंत्र द्वारा स्पष्ट रीतिसे कहा है । अन्य सब देव उसके अवयव है, अंश हैं ।

२ रुद्रः रुद्रियं महत्त्वं विदे — रुद्र देव अपनी शत्रुनाशक शक्ति हमें प्रदान करे। हम इस शक्तिसे युक्त होकर अपने शत्रुओंका विनाश करें ।

[६] (३८४) हे (आ घृणे पूषन्) तेजस्वी पूषा देव ! (अत्र मा इरस्यः) इस कार्यमें विघात न करो । (वरूत्री) सबके द्वारा उपास्य सरस्वती (रातिषाचः) दान देनेवाली अन्य देवियाँ (यत् रासन्) जो धन हमें देती हैं, उसमें किसीकी रुकावट न हो । (मयोभुवः अर्वन्तः नः निपान्तु) सुख देनेवाले प्रगतिशील रक्षक देव हमें सुरक्षित रखें । (परिज्मा वातः वृष्टिं ददातु) चारों ओर जानेवाला गतिशील वायु हमें वृष्टि देवे ।

१ वरूत्री — सरस्वती विद्या देवी सबके द्वारा उपास्य है, विद्याकी आराधना सबको करनी चाहिये ।

२ रातिषाचः-दान देनेवाले सब हों। कोई कंजूस न हो।

३ मयोभुवः अर्वन्तः निपान्तु — संरक्षण कार्यमें नियुक्त हुए सब लोग सुख देनेवाले और उत्तम रक्षा करनेवाले हों । जो संरक्षणके कार्यमें नियुक्त हुए हों वे कभी लोगोंके सुखका घात करनेवाले न हों ।

७ नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३८५

(४१) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १ अग्नीन्द्रमित्रावरुणाश्विभगपूषब्रह्मणस्पतिसोमरुद्राः, २-६ भगः, ७ उषसः । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

१ प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ३८६

२ प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ३८७

३ भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ३८८

[७] (३८५) देखो [७] ३७८ वहां इस मंत्रकी व्याख्या है ।

[१] (३८६) हम (प्रातः) प्रातःकालके समय अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विदेव, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम और रुद्रकी (हुवे) स्तुति गाते हैं ।

प्रातःसमयमें ईश्वरकी स्तुति करना उचित है ।

[२] (३८७) (यः विधर्ता) जो देव विश्वका धारण करता है, उस (आदितेः पुत्रं उग्रं प्रातर्जितं भगं) अदितिके पुत्र उग्र वीर और विजयशील भग देवकी (वयं हुवेम) हम प्रातः समयमें प्रार्थना करते हैं । (आध्रः चित्) दरिद्री भी (यं मन्यमानः) जिसकी स्तुति गा कर तथा (तुरः चित्, राजा चित्) सत्वर धन प्राप्त करनेवाला राजा भी (यं भगं भक्षि इति आह) जिस भग देवको ' मुझे धन दे ' ऐसा कहता है ।

दरिद्री मनुष्य तथा बडा धनवान् राजा जिस भग देवके पास ' मुझे धन दो ' ऐसी प्रार्थना करते हैं, उस प्रभुकी मैं प्रातः-कालः प्रार्थना करता हूं । दरिद्री और राजा जिसके सामने समान हैं ।

विधर्ता उग्रः जितः — वह वीर सबका धारण करता है, उग्र शूर वीर है और प्रत्येक युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाला है । वीर ऐसे होने चाहिये ।

[३] (३८८) हे (भग) भाग्यवान् देव ! तू (प्रणेतः) सबका नेता संचालक है, तथा हे भग ! तुम (सत्यराधः) सत्य धनसे युक्त हो, तुम्हारा धन शाश्वत टिकनेवाला है । हे भग देव ! (ददत् नः इमां धियं उदव) तुम हमें धन देकर इस हमारे बुद्धि युक्त कर्मको सुरक्षित करो । हे भग ! (नः गोभिः अश्वैः प्रजनय) हमें गौओं और घोडोंके साथ उन्नत करो । हे भग ! हम (नृभिः नृवंतः प्र स्याम) वीरोंके साथ रहकर मनुष्य युक्त बनेंगे ।

१ प्रणेतः सत्यराधः भगः — उत्तम नेता और शाश्वत धनवाला ऐसा हमारा भाग्य विधाता हो । हमारे वीर ऐसे हों ।

२ ददत् धियं उत् अव - स्वयं दान देते हुए अन्योंके बुद्धिपूर्वक किये शुभ कर्मोको सुरक्षित रखो । अर्थात् ऐसा प्रबंध करो कि किसीके किये कर्म विफल न हों । कर्म करनेवालोंको उनका फल अवश्य मिले ।

३ गोभिः अश्वैः नृभिः प्र जनय — गौवें, घोडे और नेता वीर हमारे साथ पर्याप्त हों । ऐसे वीरोंसे हम (**नृवंतः प्रस्याम**) हम परिवारवाले बनें । हमारे परिवारके सभी वीर नेता और उत्तम विजयी हों ।

४ उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन् त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम । ३८९
५ भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ३९०
६ समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ३९१
७ अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३९२

(४१) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु ।
प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ३९३

---

[४] (३८९) (उत इदानीं भगवन्तः स्याम) हम सब इस समय भाग्यवान् हों। (उत प्रपित्वे, उत अह्नां मध्ये) प्रातः काल और दिवसके मध्य समयमें हम भाग्यसे युक्त हों। (उत सूर्यस्य उदिता) और सूर्य के उदयके समय हम भाग्यवान् हों। हे भगवन् ! (वयं देवानां सुमतौ स्याम) हम सब देवोंकी उत्तम बुद्धिमें रहें अर्थात् हमारे विषयमें देवोंकी उत्तम बुद्धि रहे। हमारे विषयमें देवोंकी सद्भावना रहे।

[५] (३९०) हे (देवाः) देवो ! (भगः एव भगवान् अस्तु) भग देव ही धनवान् हों। (तेन वयं भगवन्तः स्याम) उससे हम सब धनवान हों। हे भग ! (तं त्वा सर्वः इत् जोहवीति) उस तुमको ही सब जनसमाज बुलाता है। हे भग देव ! (सः नः इह पुरएता भव) तुम इस यज्ञमें हमारे नेता बनो।

[६] (३९१) (शुचये पदाय) शुद्ध स्थानमें बैठनेके लिये (दधिक्रावा इव) श्वेत घोडेकी तरह (उषसः अध्वराय सं नमन्त) उषा देवताएं यज्ञके लिये आ जांय। (वाजिनः अश्वाः रथं इव) वेगवान घोडे रथको खींचते हैं उस तरह (वसुविदं भगं नः अर्वाचीनं) धनवान भगको हमारे समीप (आ वहन्तु) ले आवें।

[७] (३९२) (भद्राः उषसः) कल्याण करनेवाली उषाएँ (अश्वावतीः गोमतीः) अश्वों और गौओंसे युक्त (वीरवतीः) वीरोंसे युक्त तथा (घृतं दुहानाः) घीका दोहन करनेवाली और (विश्वतः प्रपीताः) सब गुणोंसे युक्त होकर (नः सदं उच्छन्तु) हमारे घरोंको प्रकाशित करती रहें। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याणोंके साथ सुरक्षित रखो।

उषःकालमें हमारे घोडे और गौवें हमारे घरके पास जमा हों, हमारे बालबच्चे वहां खेलें, दूध दुहा जाय, कलके दूधके दहीसे मक्खन निकाल कर उसका घी बनाया जाय, इसके सेवनसे सब हृष्टपुष्ट हों और ऐसे आनंदमें हमारे घर उषःकालके प्रकाशसे प्रकाशित होते रहें।

वैदिक आदर्श घर यह है।

[१] (३९३) (ब्रह्माणः अंगिरसः प्र नक्षन्त) अंगिरस ब्रह्मा सर्वत्र व्याप्त हों। (क्रन्दनुः नभन्यस्य प्र वेतु) पर्जन्य स्तोत्रकी इच्छा करे। (धेनवः उदप्रुतः प्र नवंत) नदियां पानीसे भरपूर होकर बहती रहें। (अद्री अध्वरस्य पेशः युज्यन्तां)

२ सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च ।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ३९४

३ समु वो यज्ञं महयन् नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके ।
यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ३९५

४ यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ३९६

५ इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ३९७

आदरणीय यजमान और पत्नी ये दोनों यज्ञकी सुंदरताको बढावें ।

आंगिरसोंके काव्य सब जगतमें फैलें । मेघोंपर उत्तम स्तोत्र गाये जांय । मेघसे पर्जन्य पडे और नदियां महापूरसे भरपूर होकर बहतीं रहें । पर्जन्यसे अन्न बढे और अन्नसे यज्ञ सफल हो जाय ।

[२] (३९४) हे अग्ने ! (ते सन-वित्तः अध्वा सुगः) तुम्हारा बहुत समयसे प्राप्त मार्ग जानेके लिये सुगम हो । (हरितः रोहितः च) श्याम वर्ण तथा लाल वर्णके घोडे और (ये च सद्मन्) जो यज्ञ गृहमें (वीरवाहाः अरुषः) वीरोंको ले जानेवाले तेजस्वी घोडे हैं (युक्ष्व) उनको तुम रथमें जोतो और इधर आओ । (सत्तः देवानां जनिमानि हुवे) मैं यज्ञमें बैठकर देवोंके जन्मोंके वृत्तान्तोंको स्तोत्ररूपमें गाता हूं ।

वीर घोडोंके शीघ्रगामी रथमें बैठें । मनुष्य वीरोंके काव्योंका गान करें और उनसे स्फूर्ति प्राप्त करें ।

[३] (३९५) वे (वः यज्ञं नमोभिः सं महयन्) आपके यज्ञकी महिमाको नमस्कारोंसे बढाते । (मन्द्रः उपाके होता प्र रिरिचे) प्रशंसनीय [illegible] भागमें स्थित होता सर्वोत्तम समझा जाता है । तू (देवान् सु यजस्व) देवोंका उत्तम यजन कर । हे (पुरु-अनीक) बहु तेजस्वी अग्ने ! तुम (यज्ञियां अरमतिं आ ववृत्यां) पूजा योग्य यज्ञ भूमिपर फैल जाओ । प्रदीप्त हो ।

यज्ञस्थानमें अग्नि प्रदीप्त हो । उसमें देवोंके निमित्त उत्तम याजक यज्ञ करे । और स्तोत्रों और नमस्कारोंसे यज्ञका महत्त्व बढाया जाय ।

[४] (३९६) (अतिथिः अग्निः यदा वीरस्य रेवतः) सबके आदरणीय अतिथिरूप अग्नि जिस समय वीर और धनीके (दुरोणे स्योनशीः अचिकेतत्) घरमें सुखसे प्रदीप्त रूपमें देखा जाता है । जिस समय वह (दमे सुधितः सुप्रीतः आ) यज्ञस्थानमें उत्तम रीतिसे स्थापित होकर प्रदीप्त होता है, तब (सः) वह अग्नि (इयत्यै विशे वार्यं दाति) समीपवर्तिनी प्रजाजनोंको श्रेष्ठ धन देता है ।

यज्ञमें प्रदीप्त अग्नि यजमानको धन देता है । यज्ञसे धन प्राप्त होता है जिससे यज्ञ किया जाता है ।

[५] (३९७) हे अग्ने ! (नः इमं अध्वरं जुषस्व) हमारे इस यज्ञका सेवन करो । (मरुत्सु इन्द्रे नः यशसं कृधि) मरुत् वीरोंमें तथा इन्द्रमें हमें यशस्वी करो । (नक्ता उषसा) रात्रीमें तथा उषःकालमें (बर्हिः आ सदतां) आसनों पर बैठो । (उशता मित्रावरुणा इह यज) तुम्हारे यज्ञ सिद्धिकी इच्छा करनेवाले मित्र तथा वरुणका यहां यजन करो ।

६ एवाग्निं सहस्यं१ वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद् वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३९८

(४२) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन् द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै ।
येषां ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्वग्वियन्ति वनिनो न शाखाः ३९९
२ प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिरुद्यच्छध्वं समनसो घृताचीः ।
स्तृणीत बर्हिरध्वराय साधूर्ध्वा शोचींषि देवयून्यस्थुः ४००
३ आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु ।
आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ४०१

---

[६] (३९८) (वासिष्ठः रायस्कामः एव) वसिष्ठ धनकी इच्छा करके (सहस्यं अग्निं) बलवान् अग्निकी (विश्वप्स्न्यस्य स्तौत्) सब प्रकारके धनकी प्राप्तिके लिये स्तुति करने लगा। (अस्मे इषं रयिं वाजं पप्रथत्) हमें वह अन्न, धन और बल देवे । ऐसी प्रार्थना उसने की। हे देवो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणोंके साथ सुरक्षित रखो ।

हमें अन्न, धन, बल, (सहस्यं) शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य और (स्वस्ति) कल्याण चाहिये ।

[१] (३९९) (देवयन्तः विप्राः यज्ञेषु) देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी यज्ञोंमें (नमोभिः वः इषध्यै प्र अर्चयन्) अन्नों तथा नमस्कारों द्वारा आपकी प्राप्तिकी इच्छासे स्तोत्र पाठ करते हैं । और (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोकका स्तोत्र गाते हैं। (येषां असमानि ब्रह्माणि) जिनके असीम स्तोत्र (वनिनः शाखा इव) वृक्षोंकी शाखाओंकी तरह (विष्वक् वियन्ति) चारों ओर फैलते हैं ।

देवत्वकी प्राप्तिका उपाय

देवयन्तः विप्राः — देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी जन देवोंकी स्तुति करते हैं । अर्थात् स्तुतीसे देवत्वके गुण स्तुती करनेवालोंमें आते हैं । इस तरह स्तोता लोग मनुष्योंके देव बनते हैं ।

ब्रह्माणि — देवताकी स्तुतिरूप स्तोत्रोंको भी 'ब्रह्म' कहते हैं । इसका कारण यह है, कि देवताओंमें ब्रह्मभाव है, ब्रह्मके ही रूप या अंश देवगण हैं । इसलिये उनके स्तोत्रोंसे देवत्व प्राप्ति – अर्थात् ब्रह्मरूपता – होती है ।

नरका नारायण होना यही है । इसका साधन भी यही है । 'ब्रह्म' – का अर्थ – पर ब्रह्म, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ज्ञान, स्तोत्र, स्तुति, कर्म आदि है ।

[२] (४००) (यज्ञः प्र एतु) हमारा यज्ञ देवोंकी ओर पहुंचे । (हेत्वः न सप्तिः) जैसे शीघ्रगामी घोडा दौडता है । (समनसः घृताचीः उत् यच्छध्वं) एक विचारसे घृतसे भरी स्रुचाको ऊपर उठाओ । (अध्वराय साधु बर्हिः स्तृणीत) यज्ञके लिये उत्तम आसन बिछाओ । (देवयूनि शोचींषि ऊर्ध्वा अस्थुः) देवोंकी ओर जानेवाली अग्निकी ज्वालाएं ऊर्ध्वगामी होकर फैलें ।

यज्ञशालामें देवताओंके लिये आसन बिछाओ । घीसे चमस भर कर आहुति दो। अग्निकी ज्वालाएं प्रदीप्त होकर ऊपर उठें । यह यज्ञ देवोंको प्राप्त हो ।

[३] (४०१) (विभृत्राः पुत्रासः मातरं न) जैसे भरण पोषण करनेयोग्य छोटे बालक माताकी गोदमें बैठते हैं, उस तरह (देवासः बर्हिषः सानौ आ सदन्तु) देव आसनोंके ऊपर बैठें । हे अग्ने ! (विदथ्यां विश्वाची आ अनक्तु) यज्ञमें चारों ओर घी सींचनेवाली जुहू तुम्हारे ऊपर सिंचा

४ ते सीषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः ।
ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन समनसो यति ष्ठ ४०२
५ एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः ।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४०३

(४४) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । दधिक्राः, १ दधिक्राश्व्युषोऽग्निभगेन्द्रविष्णुपूषब्रह्मणस्पत्यादित्य-द्यावापृथिव्यापः । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

१ दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे ।
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान् द्यावापृथिवी अपः स्वः ४०४
२ दधिक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
इळां देवीं बर्हिषि सादयन्तोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ४०५

करें । (देवताता नः मृधः मा कः) युद्धके समय हमारे हिंसक शत्रुओंकी सहायता न करना ।

देवताता नः मृधः मा कः — यज्ञमें तथा युद्धमें हमारे घातपात करनेवाले शत्रुओंकी सहायता न करो । कभी कोई ऐसा कार्य न करना कि जिससे शत्रुका बल बढे ।

[४] (४०२) (यजत्राः ते) यजनीय वे देव (घृतस्य सुदुघाः धाराः दुहानाः) जलकी दुहने योग्य जल धाराओंको बरसाते हुए (जोषं आ सीषपंत) हमारी सेवाका स्वीकार करें । (अद्य वसूनां ज्येष्ठं वः महः) आज धनोंमें जो श्रेष्ठ महत्त्व-पूर्ण धन है वह हमारे पास (आ गंतन) आवे तथा आप भी (समनसः यति स्थ) एक मत करके यहां यज्ञमें आओ ।

वसूनां ज्येष्ठं महः आ गन्तन — धनोंमें जो श्रेष्ठ तथा महत्त्वपूर्ण धन होगा वही हमें प्राप्त हो । निकृष्ट धन हमारे पास ही न आवे ।

समनसः यति स्थ — एक विचारसे यत्न करते रहो । संघटन करो और उन्नतिका यत्न करो ।

[५] (४०३) हे अग्ने ! (एव विक्षु नः आ दशस्य) इस तरह प्रजाजनोंमें हमें धनका प्रदान करो ! हे (सहसावन्) बलवान् अग्ने ! (त्वया आस्क्राः वयं) तुम्हारे द्वारा वियुक्त न हुए हम सब (राया युजा) धनसे युक्त होकर (सधमादः) संगठित रहकर आनंदित होते हुए (अरिष्टाः) विनष्ट न हों । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो ।

राया युजा — मनुष्य धनको प्राप्त करें ।

सधमादः — सब एक स्थानमें साथ रहकर आनन्द करें । संगठित होकर प्रसन्नता प्राप्त करें ।

अरिष्टाः — विनष्ट न हों ।

सहसावन् -- बलसे युक्त हों । बल प्राप्त करें । उपास्य देव जैसा बलवान् है वैसे बलवान बनें । ' सहः ' का अर्थ शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य ।

[१] (४०४) (वः ऊतये प्रथमं दधिक्रां हुवे) आप सबकी सुरक्षाके लिये मैं सबसे प्रथम दधिक्रा नामक घोडेकी प्रशंसा करता हूं । इसके पश्चात् अश्विदेव, उषा (समिद्धं अग्निं) प्रदीप्त अग्नि और भगकी प्रार्थना करता हूं । तथा इन्द्र, विष्णु, पूषा, (ब्रह्मणः पतिः) ब्रह्मणस्पति, आदित्य, द्यावा पृथिवी, (अपः) जल तथा (स्वः) सूर्यकी प्रार्थना करता हूं ।

[२] (४०५) (दधिक्रां उ नमसा बोधयन्तः) दधिक्रा देव को नमस्कारों द्वारा संबोधित करके (उदीराणाः यज्ञं उपप्रयन्तः) तथा प्रेरित करके

३ दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।
ब्रध्नं मंश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद् दुरिता यावयन्तु ४०६
४ दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वा ऽग्रे रथानां भवति प्रजानन् ।
संविदान उषसा सूर्येणाऽऽदित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ४०७
५ आ नो दधिक्राः पथ्यामनक्त्वृतस्य पन्थामन्वेतवा उ ।
शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूराः ४०८

(४१) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सविता । त्रिष्टुप् ।

१ आ देवो यातु सविता सुरत्नो ऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम ४०९

यज्ञके समीप जाते हैं। (बर्हिषि इळां देवीं सादयन्तः) यज्ञमें इळा देवीको स्थापन करके (सुहवा विप्रा अश्विना हुवेम) उत्तम प्रार्थना करने योग्य विशेष ज्ञानी दोनों अश्विदेवोंको बुलाते हैं।

[३] (४०६) (दधिक्रावाणं बुबुधानः) दधिक्रावाको संबोधित करता हुआ मैं (अग्निं उप ब्रुवे) अग्निकी स्तुति करता हूं। तथा उषा सूर्य और भूमि अथवा गौकी स्तुति करता हूं। (मंश्चतोः वरुणस्य ब्रध्नं बभ्रुं) घमंडी शत्रुओंके विनाश करनेवाले वरुणके बडे तथा भूरे वर्णके घोडेका स्तवन करता हूं। (ते अस्मत् विश्वा दुरिता यवयन्तु) ये सब हमसे सब पापोंको दूर करें।

[४] (४०७) (प्रथमः वाजी अर्वा दधिक्रावा) सबमें मुख्य वेगवान् शीघ्रगामी दधिक्रावा अश्व (प्रजानन् रथानां अग्रे भवति) जानता हुआ रथके अग्रभागमें स्वयं ही होता है। और यह उषा सूर्य आदित्य वसु और अंगिराओंके साथ (सं विदानः) सहमत रहता है।

उत्तम शिक्षित घोडा वेगवान् तथा चपल और शीघ्रतासे दौडनेवाला होता है। यह स्वयं कहां कैसा खडा रहना चाहिये यह जानता है और रथको जोडनेके समय रथके अग्रभागमें जहां खडा रहना चाहिये वहां स्वयं जाकर खडा होता है।

[५] (४०८) (दधिक्राः ऋतस्य पन्थां अनु एतवै) दधिक्रा अश्व यज्ञके मार्गसे जानेके लिये (नः पथ्यां आ अनक्तु) हमारे मार्गको जलसे सिंचित करे। (दैव्यं शर्धः अग्निः) दिव्य बल रूप यह अग्नि (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थनाका श्रवण करे तथा (विश्वे महिषाः अमूराः शृण्वन्तु) सब बलवान् ज्ञानी विबुध हमारी प्रार्थना सुनें।

सब लोग यज्ञ करें, सीधे मार्गसे जांय। दिव्य बल प्राप्त करें, ज्ञान प्राप्त करें, सामर्थ्य प्राप्त करें। देवताओंके गुण गाकर स्वयं देवता जैसे बनें।

सविता

[१] (४०९) (सुरत्नः अन्तरिक्षप्राः) उत्तम रत्नोंको धारण करनेवाला, अन्तरिक्षको अपने प्रकाशसे भर देनेवाला, (अश्वैः वहमानः) घोडों द्वारा जिसका रथ चलता है ऐसा (सविता देवः आ यातु) सविता देव आ जाये। (हस्ते पुरूणि नर्या दधानः) जिसके हाथमें मानवोंका हित करनेवाला धन बहुत है और जो (भूम निवेशयन् प्रसुवन् च) प्राणियोंका निवास करता और कर्ममें प्रेरित करता है।

१ **सविता**—सबको सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देनेवाला। नेता, राजा, वा राजपुरुष लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करें।

२ **सुरत्नः**—अपने पास धन भरपूर रखे। जिसका उपयोग लोगोंके हितार्थ वह करता रहे।

२ उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ ३ नष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् ४१०
३ स घा नो देवः सविता सहावा ऽऽ साविषद् वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ४११

३ **अन्तरिक्षप्राः**—(अन्तरि-क्ष-प्राः) अन्दरके निवास स्थानको अपने प्रकाशसे भरपूर भर देवे । जैसा सूर्य अपने प्रकाशसे सब विश्वको भर देता है वैसा राजा अपने राष्ट्रको प्रकाशमान करे । किसीको अन्धेरेमें रहने न दे। सबको ज्ञानका प्रकाश मिले ऐसा प्रबंध करे ।

४ **नर्या पुरूणि हस्ते दधानः**—मानवोंका हित करनेके लिये ही जो अपने हाथमें बहुतसे धन ले रखता है । धन भी ऐसे हों कि जो लोगोंका सच्चा हित करनेवाले हों । वे किसी स्थानपर बंद न रखे जांय, पर जनहित (नर्य) के लिये सदा प्राप्त होनेवाले हों । देर न लगते हुए जनहितके लिये वे लगाये जा सकें ऐसे धन हों ।

५ **भूम निवेशयन् प्रसुवन्**— यह नेता राजा मनुष्यादि प्राणियोंका उत्तम निवास करे, उनको (निवेशयन्) रहनेके लिये सुयोग्य स्थान प्राप्त हो, किसीके रहने सहनेका सुयोग्य प्रबंध नहीं हुआ है ऐसा न हो । (प्रसुवन्) सब लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करे । ऐश्वर्य प्राप्ति सबको हो ऐसे शुभ कर्म वे करें ऐसा प्रबंध हो ।

सूर्य आदर्श है मानवोंके लिये । राजा, राजपुरुष, वीर, नेता आदिका आदर्श सूर्य है ।

[२] (४१०) (शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया अस्य बाहू) प्रसारित बडे सुवर्णसे परिपूर्ण इस सविताके बाहू हैं (दिवः अन्तान् उत् अनष्टां) द्युलोकके अन्ततक वह व्यापता है । (नूनं अस्य सः महिमा पनिष्ट) निःसंदेह इसका वह महिमा गाया जाता है । (सूरः चित् अस्मै अपस्यां अनु दात्) यह सूर्य ही इस मनुष्यके लिये शुभ कर्मकी प्रेरणा अनुकूलतासे देवे ।

१ **हिरण्यया बृहन्ता शिथिरा बाहू**—सुवर्णसे भरे बडे विशाल और फैले बाहू । जिन हाथोंमें दान देनेके लिये पर्याप्त सुवर्ण लिया है ऐसे वीरके हाथ हों तथा ये हाथ दान देनेके उद्देश्यसे फैलाये हों । यहां का ' हिरण्य ' शब्द सुवर्णकी मुद्रा, जेवर अथवा क्रय विक्रयका साधनरूप धन ऐसा अर्थ बता रहा है । क्योंकि ' हिरण्य ' उसको कहते हैं कि जो एक हाथसे दूसरे हाथमें हर लिया जाता है । **' ह्रियते जनाज्जनमिति '** (निरुक्त० २।३।१०) व्यवहार करनेके समय जो एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्य तक जाता है, उसका नाम ' हिरण्य ' है । यह व्यवहारकी सुवर्ण मुद्रा है । अर्थात् ' हिरण्य ' का अर्थ केवल सुवर्ण नहीं, परंतु सुवर्ण मुद्रा, राजचिन्हांकित सुवर्ण मुद्रा । ऐसी सुवर्ण मुद्राएं हाथमें लेकर उनका दान करनेके लिये अपना हाथ यह देव फैला रहा है ।

२ **सूरः चित् अपस्यां अनुदात्**—सूर्यके समान कर्म की प्रेरणा करता है । सूर्य सबको जगाता और कर्म करनेके लिये मानवोंको प्रेरित करता है । दिन होते ही मनुष्य नाना प्रकारके कर्म करने लगते हैं । यहां कर्मके लिये ' अपस् ' अपस्या ' ये पद हैं । (व्याप्नोतीति अपः) जिस कर्मका परिणाम व्यापक होता है । राष्ट्रभरमें विश्वभरमें होता है, सार्वजनिक हितके जो कर्म होते हैं वे ही ' अपस् ' हैं । ऐसे शुभ कर्म करनेकी इच्छाका नाम ' अपस्या ' है । सूर्यके अस्त होते ही चोर, जार, डाकू, लुटेरे अपने कुकर्म करनेके लिये प्रवृत्त होते हैं । और सूर्यका उदय होते ही, संध्या, प्रार्थना, यज्ञ, याग, ईश्वर उपासना, ज्ञान यज्ञ आदि प्रशस्त कर्म शुरू होते हैं । चोरी जारी आदि कर्म ' अपस् ' नहीं कहे जाते, परंतु ' यज्ञ याग ही अपस् ' शब्दसे बोधित होते हैं । सूर्यका जैसा ऐसे हितकारी कर्मोंसे संबंध है वैसा ही राजा, नेता, वीर पुरुषका संबंध शुभ कर्मसे ही रहे ।

[३] (४११) (सहावा वसुपतिः सः सविता देवः) शक्तिमान और धनवान सविता देव (वसूनि नः आ साविषत्) हमें धन देवे । वह सविता देव (उरूचीं अमतिं विश्रयमाणः) विस्तृत तेजको धारण करके (अध नः मर्तभोजनं रासते) हमें मानवोंके लिये योग्य भोग्य धन दें ।

४ **इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम्।**
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४१२

(४६) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। रुद्रः। जगती, ४ त्रिष्टुप्।

१ **इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने।**
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ४१३

---

१ सहावा वसुपतिः वसूनि नः आ साविषत्— सामर्थ्यवान् और धनवान् जो होगा वही हमें धन देगा। वही किसीको धन दे सकता है जिसके पास धन होता है। अतः प्रथम धन प्राप्त करो और पश्चात् उसका दान करो। '**सहा-वा**' = शत्रुको पराजित करनेकी सामर्थ्य, शत्रुके कितने भी आक्रमण हुए तो भी उनको सहकर अपने स्थानमें रहनेका सामर्थ्य। यह सामर्थ्य धनवानको प्राप्त करना चाहिये।

२ वसुपतिः सहा-वा— धनका स्वामी ऐसा हो कि जो शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ हो और शत्रुके आक्रमण होनेपर भी वह स्वस्थानमें अचल रह सके। ऐसा वीर ही धनपति होनेका अधिकारी है।

३ वसुपतिः सहावा उरूचीं अमतिं शिश्रयमाणः- धनपति सामर्थ्यवान होकर विस्तृत प्रगति करनेके कार्योंको आश्रय दे। प्रगतिके कार्य करे। '**अमति**' (अमति गच्छति)= प्रगतिके कार्यको अमति कहते हैं। जो उन्नतिकी ओर ले जाते हैं, जो परिस्थितिका सुधार करते हैं। धनवान और सामर्थ्यवान् वीर प्रगति करनेवाले हों। संकुचित वृत्तीवाले न हों।

४ सहावा वसुपतिः मर्तभोजनं रासते— सामर्थ्यवान धनपति मनुष्योंके भोगोंके लिये योग्य धन देवे। जिससे मनुष्य गिर जायगे वैसे धन न दे। जिससे मनुष्य प्रगति करेंगे ऐसे धन देवे।

[४] (४१२) (**इमा गिरः**) ये वचन, ये स्तोत्र (**सुजिह्वं पूर्णगभस्तिं**) **उत्तम जिह्वावाले संपूर्ण धन हाथमें लिये हुए** (**सुपाणिं सवितारं**) **उत्तम हाथवाले सविता देवके गुणोंका वर्णन करते हैं। वह** (**चित्रं बृहत् वयः**) **श्रेष्ठ तथा विशाल धन** (**अस्मे दधात्**) **हमें देवे।** (**यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात**) **तुम सदा हमें कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित रखो।**

'**सुजिह्वं**'—उत्तम जिह्वावाला, उत्तम भाषण करनेवाला, '**पूर्ण-गभस्ति**'-पूर्ण फैलाये हस्तवाला, धनका दान करनेके लिये जिसने अपना हाथ फैलाया है। जो दान करनेके लिये सिद्ध है। '**सु-पाणिं**'—जो उत्तम हृष्टपुष्ट हाथवाला है। '**सवितारं**'-सत्कर्ममें प्रेरणा करनेवाला।

'**चित्रं**'-प्राप्त करने, इच्छा करनेयोग्य, '**बृहत्**'— बडा विशाल, विस्तीर्ण, '**वयः**'-अन्न, यश, धन। '**स्वस्तिभिः पात**'-कल्याण करनेके साधनोंसे ही हमारी सुरक्षा हो। अन्तमें जिससे हमारा अकल्याण होगा, ऐसे उपायोंसे किसीकी भी सुरक्षा न हो। अन्तमें कल्याण होना चाहिये। सुरक्षाका ध्येय कल्याण है न कि विनाश।

रुद्रः

[१] (४१३) (**इमाः गिरः**) ये स्तोत्र (**स्थिरधन्वने क्षिप्रेषवे**) **सुदृढ धनुष्यवाले, शीघ्रगामी बाण शत्रुपर छोडनेवाले** (**स्वधा-व्ने वेधसे**) **अपनी धारण शक्तिसे युक्त विधाता** (**अ-षाळ्हाय**) **जिसका आक्रमण असह्य है तथा** (**सहमानाय**) **शत्रुके आक्रमणको सहनेवाले** (**तिग्मायुधाय रुद्राय देवाय**) **तीक्ष्ण शस्त्र धारण करनेवाले रुद्र देव के लिये** (**भरत**) **भरो, करो, गाओ। वह** (**नः शृणोतु**) **हमारी प्रार्थना श्रवण करें।**

यह वीर, महावीरका वर्णन है, रुद्रका नाम महावीर है। '**स्थिर-धन्वा**'-जिसका धनुष्य बलवान है, स्थिर रहता है। टूटनेवाला नहीं है। '**क्षिप्र-इषुः**'- अपने धनुष्यपरसे अतिशीघ्रतासे यह शत्रुपर बाणोंको छोडता है '**तिग्म-आयुधः**'— तीक्ष्ण आयुधवाला, बाण, त्रिशूल, भाला, खड्ग, आदि जो जो शस्त्रास्त्र इसके पास हैं, वे सब अतितीक्ष्ण हैं। '**स्वधा-वान्**'-(स्व) अपनी (धा) धारक शक्तिसे (वान्) युक्त, अपनी निज शक्तिसे संपन्न, (स्वधा) अन्न

२ स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चराऽनमीवो रुद्र जासु नो भव ४१४
३ या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ४१५

अपने पास रखनेवाला, पर्याप्त अन्नसे युक्त, ' **वेधाः** '— विधाता, कुशलतासे कर्म करनेवाला, निर्माण करनेवाला, कुशल । ' **अ-साळ्हः** '–जिसके आक्रमणको शत्रु सहन नहीं कर सकता, जिसके आक्रमणसे शत्रु स्थानभ्रष्ट होता है, पूर्ण तथा पराभूत होता है, ' **सहमानः** '–शत्रुने इसपर आक्रमण किया तो यह अपने स्थानपर सुरक्षित रहता है, और अपने स्थानपर रहकर ही शत्रुसे लडता रहता है, अपना स्थान छोडता नहीं, इस कारण (रुद्रः) जो शत्रुको रुलाता है, जिसको शत्रु डरते हैं । (देवः) प्रकाशमान, तेजस्वी, व्यवहार चलानेवाला, प्रसन्नचित्त, विजयी जो है वह महावीर है । ऐसे वीरका यह काव्य है ।

मनुष्योंमें ऐसे वीर हों ।

[२] (४१४) **(सः हि क्षम्यस्य जन्मनः क्षयेण चेतति) वह रुद्र पृथिवीके ऊपर जन्मे मनुष्योंके निवास हेतुरूपी धनसे जाना जाता है। और (दिव्यस्य साम्राज्येन) दिव्य जीवनवाले मनुष्यके साम्राज्य ऐश्वर्यसे जाना जाता है। हे रुद्र ! (नः अवंतीः अवन्) तुम हमारी अपनी सुरक्षा करनेवाली प्रजाका संरक्षण करके (नः दुरः उप चर) हमारे घरोंके पास आओ और (नः जासु अनमीवः भव) हमारे प्रजाजनोंमें नीरोगिता करनेवाला हो ।**

मानवधर्म – पृथिवीपरके मानवोंका निवास सुखदायक होनेका प्रबंध किया जावे ! दिव्य जीवनके साम्राज्यको बढाया जावे । प्रजाका संरक्षण हो । द्वारोंपर पहारा रखा जाय । प्रजाजनोंमें नीरोगिताकी स्थापना हो । राष्ट्रमें रोग ही न हों ऐसा आरोग्यका सुप्रबंध हो ।

१ **क्षम्यस्य जन्मनः क्षयेण सः चेतति**—पृथिवीके ऊपर जन्मे मनुष्योंके निवास करनेके कारण उसका ज्ञान होता है । जिसने मनुष्योंका निवास सुखदायी किया है वह वीर यह है । वीर मनुष्योंका निवास सुखदायी करे ।

२ **दिव्यस्य जन्मनः साम्राज्येन सः चेतति**— दिव्य जीवनवाले मनुष्योंके साम्राज्यके ऐश्वर्यसे उसके सामर्थ्यका ज्ञान होता है । एक दिव्य जीवनवाले मनुष्योंका साम्राज्य होता है, और दूसरा आसुरी जीवनवाले लोगोंका साम्राज्य होता है । रुद्र दिव्य जीवनवाले भद्र पुरुषोंके साम्राज्यका सहाय्यक है और आसुरी साम्राज्यका विघातक है ।

३ **सः अवन्तीः अवन्**—जो प्रजा अपना रक्षण करनेका प्रयत्न करती है उस प्रजाकी सहायता यह महावीर करता है ।

४ **दुरः उपचर**—द्वारोंपर संचार कर, द्वारोंका संरक्षण कर । संरक्षक द्वारोंपर पहारा करते हैं ।

५ **जासु अनमीवः भव**– प्रजाजनोंमें नीरोगिता उत्पन्न करनेवाला हो । महावीर अपने सुप्रबंध द्वारा राष्ट्रमें रोग न हों ऐसा प्रबंध करे ।

वीरोंको अपने राष्ट्रमें किस तरहका प्रबंध करना चाहिये इसका वर्णन इस मन्त्रमें है ।

राष्ट्रकी शासन व्यवस्थासे राष्ट्रका शासन प्रबंध कैसा होना चाहिये वह इस मन्त्रमें कहा है ।

[३] (४१५) **(ते या दिद्युत् दिवस्परि अवसृष्टा) तुम्हारी जो विद्युत् आकाशसे छोडी हुई (क्ष्मया चरति) पृथिवीके साथ विचरण करती है (सा नः परि वृणक्तु) वह हमें छोड देवे, हम पर न गिरे । हे (स्वपिवात) उत्तम वायुके समान बलवान् वीर ! (ते सहस्रं भेषजा) तुम्हारे पास सहस्रों औषधियां हैं । (नः तनयेषु तोकेषु मा रीरिषः) हमारे बालबच्चों में क्षीणता न करो ।**

४ मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४१६

(४७) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आपः । त्रिष्टुप् ।

१ आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ४१७
२ तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य ४१८
३ शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ४१९

---

१ दिवश्परि अवसृष्टा दिद्युत् क्ष्मया चरति— द्युलोकसे चली हुई विद्युत् पृथिवीके साथ मिलती है। बिजली मेघोंसे चली पृथिवीमें जाती है, यह विज्ञानका तत्व यहां कहा है।

२ सहस्रं भिषजा—हजारों औषध हैं जो रोगोंको दूर करते हैं।

३ तनयेषु तोकेषु मा रीरिषः—बाल-बच्चोंमें क्षीणता न हो। बाल-बच्चोंका नाश न हो। बाल-बच्चे हृष्टपुष्ट हों।

[४] (४१६) हे रुद्र ! (नः मा वधीः) हमारा वध न कर। (मा परा दाः) हमारा त्याग न कर। (ते हीळितस्य प्रसितौ मा भूम) तुम्हारे क्रोधित होनेपर जो तुम बंधन करते हो वह हम पर न आवे। (जीवशंसे बर्हिषि) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित यज्ञमें (नः आ भज) हमें रख। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पातं) तुम सदा हमें कल्याणों द्वारा सुरक्षित रखो।

आपः।

[१] (४१७) (देवयन्तः आपः) हे देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले जलो ! (वः इन्द्रपानं) आपने इन्द्रके लिये पीने योग्य रसमें (इळः ऊर्मिं यं प्रथमं अकृण्वत) भूमिसे उत्पन्न प्रवाह रूप उदक मिलाकर जो पहिले सोमपान तैयार किया था, (वः) आपके (तं शुचिं अरिप्रं) उस शुद्ध पापरहित (घृत-प्रुषं मधुमन्तं) वृष्टिजलसे मिश्रित मधुर रससे युक्त सोमरसको (वयं अद्य वनेम) हम सब आज प्राप्त करें, उसका हम आज सेवन करें।

सोमरसमें शुद्ध जल, मधु (शहद) मिलाकर पीने योग्य बनाया जाता है। जल उसमें न मिलाया जाय तो वह पीने योग्य नहीं होता। इसलिये जलका महत्त्व है।

[२] (४१८) हे (आपः) जलो ! (वः मधुमत्तमं तं ऊर्मिं) आपका वह अत्यंत मीठा प्रवाह सोमरसमें मिला है उसको (आशु-हेमा अपां-न-पात्) शीघ्र गतिवाला जलोंको न गिरानेवाला अग्निदेव सुरक्षित करे। (यस्मिन् इन्द्रः वसुभिः मादयाते) जिस पानसे इन्द्र वसुओंके साथ आनंदित होते हैं (तं वः अद्य) उस आपके द्वारा सिद्ध हुए सोमपानको आज (देवयन्तः अश्याम) देवत्वकी इच्छा करनेवाले हम प्राप्त करेंगे, उसका पान करेंगे।

[३] (४१९) (शतपवित्राः स्वधया मदन्तीः) सैंकडों प्रकारोंसे पवित्रता करनेवाले और अन्नके साथ आनंद देनेवाले (देवीः देवानां पाथः अपि यन्ति) दिव्य जल देवोंके यज्ञस्थानको प्राप्त होते हैं। (ताः इन्द्रस्य व्रतानि न मिनन्ति) वे जल प्रवाह इन्द्रके कार्योंका नाश नहीं करते हैं। प्रत्युत सहायक होते हैं। इसलिये आप (सिन्धुभ्यः घृतवत् हव्यं जुहोत) नदियोंके लिये घृत मिश्रित हव्यका हवन करो।

४ याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद् गातुमूर्मिम् ।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४२०

(४८) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । ऋभवः, ४ विश्वे देवा वा । त्रिष्टुप् ।

१ ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ४२१

२ ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ४२२

जलसे (शत पवित्राः) सैंकडों रीतिसे पवित्रता होती है, मल दूर होते है । (स्वधया मदन्तीः) जल अन्नसे युक्त होकर आनंद देता है ।

[४] (४२०) (सूर्यः याः रश्मिभिः आततान) सूर्य जिनको अपने किरणोंसे फैलाता है । (याभ्यः इन्द्रः ऊर्मिं गातुं अरदत्) जिन जलोंके लिये इन्द्र- ने प्रवाहित होनेका मार्ग खोदकर कर दिया है । हे (सिन्धवः) नदियोंके जल प्रवाहो ! (ते वरिवः नः धातन) वे जलप्रवाह श्रेष्ठ अन्न, धन आदि हमें दें । (यूयं नः सदा स्वस्तिभि पात) आप हमें सदा कल्याणोंसे सुरक्षित रखिये ।

ऋभवः ।

[१] (४२१) हे (ऋभुक्षणः वाजाः मघवानः नरः) कर्ममें कुशल पुरुषोंके निवासक, अन्नवान्, धनवान् नेताओ ! (अस्मे सुतस्य मादयध्वं) हमने बनाये इस सोमरससे आनन्दित हो जाओ । (यातां वः क्रतवः विभ्वः) जानेके लिये उत्सुक हुए तुम्हारे कर्मकर्ता समर्थ अश्व (अर्वाचः नर्यं रथं आवर्तयन्तु) हमारे समीप तुम्हारे मनुष्योंका हित करनेवाले रथको ले आवें । तुमको हमारे पास ले आवें ।

' नरः ' —नेता लोग कैसे हों ? उत्तरमें कहते हैं कि वे नेता लोग (ऋभुक्षणः) कारीगरोंको बसानेवाले हों, (वाजाः) बलवान हों, अन्नोंको अपने पास रखनेवाले हों, (मघवानः) धनवान हों, ऐसे पुरुष नेतृत्व करें । (क्रतवः विभ्वः) कर्म उत्तम रीतिसे करनेवाले हों, वैभवसंपन्न हों । उनका (नर्यं रथं) रथ मनुष्योंका हित करनेवाला हो अर्थात् वे मानवोंका हित करनेवाले हों ।

[२] (४२२) (वः ऋभुभिः ऋभुः अभि स्याम) आपके कुशल कारीगरोंके साथ रहकर हम कर्म- में कुशल हों । तथा (विभुभिः विभ्वः) तुम वैभव युक्तोंके साथ रहनेसे हम वैभव युक्त होंगे । (शवसा शवांसि) बलसे बल प्राप्त करेंगे । (वाजसातौ अस्मान् वाजः अवतु) युद्धके समय हमें अपना सामर्थ्य संरक्षण करे । (इन्द्रेण युजा वृत्रं तरुषेम) इन्द्रके साथ रहकर वृत्रका नाश करेंगे ।

१ ऋभुभिः ऋभुः स्याम—कारीगरोंके साथ रहकर हम कारीगर बनेंगे । कुशल पुरुषोंके साथ रहकर हम कुशल बनें ।

२ विभुभिः विभ्वः स्याम—वैभव युक्त पुरुषोंके साथ रहकर हम वैभव युक्त बनें ।

३ शवसा शवांसि-समर्थोंके साथ रहकर हम अनेक प्रकारके सामर्थ्य प्राप्त करेंगे ।

४ वाजसातौ वाजः अस्मान् अवतु—युद्धके समय इस तरह प्राप्त किया सामर्थ्य हमारा संरक्षण करे ।

५ इन्द्रेण युजा वृत्रं तरुषेम—वीरके साथ रहकर हम शत्रुका नाश करेंगे ।

कर्मकी कुशलता, धन, बल, युद्ध निपुणता आदि गुण प्राप्त करके हम शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धमें शत्रुका प्रत्येक युद्ध क्षेत्रमें सामना करके, शत्रुका पराभव करके हम विजयी होंगे । हमारा पराभव होनेकी अवस्था कदापि नहीं होगी ।

३ ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन् ।
इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन् वि नृम्णम् ४२३
४ नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः ।
समस्मे इषं वसवो ददीरन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४२४

(४९) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आपः । त्रिष्टुप् ।

१ समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४२५

---

[३] (४२३) (ते हि पूर्वीः शासा अभिसन्ति) वे शूर शत्रुकी बहुतसी सेनाको उत्तम शस्त्रसे पराभूत करते हैं । (उपरताति विश्वान् अर्यः वन्वन्) युद्धमें सब शत्रुओंको मारते हैं । (विभ्वा ऋभुक्षाः वाजः अर्यः) वैभव युक्त, कारीगरोंके निवासक बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाले वीर (इन्द्रः) इन्द्र और ऋभु ये सब (शत्रोः नृम्णं मिथत्या विकृण्वन) शत्रुके बलको विनष्ट करते हैं ।

१ पूर्वीः शासा ते अभिसन्ति- बहुतसी शत्रुसेना होनेपर भी अपने उत्तम शस्त्रसे वह पराभूत हो सकती है । शत्रुसे (शासा) अपने शस्त्र अधिक तीक्ष्ण हों । कदापि कम न हों ।

२ उपरताति विश्वान् अर्यः वन्वन्- अपने पास उत्तम शस्त्र रहे तो ही युद्धमें सब शत्रुओंका पराभव हो सकता है । ' उपर-ताति '-(उपर, उपल) पत्थरोंसे (ताति) मार-पीट जिसमें होती है । शस्त्रोंसे जिसमें काटना होता है उसका नाम युद्ध है ।

३ विभ्वाः ऋभुक्षाः वाजः अर्यः— (विभ्वाः) वैभव संपन्न, (ऋभुक्षाः) कारीगरोंको वसानेवाले, (वाजः) शक्तिमान (अर्यः) श्रेष्ठ आर्य वीर ये शत्रुका पराभव करते है ।

इस एक ही मंत्रमें ' अर्यः ' पद विभिन्न अर्थोंमें आया है । ' अरि '-शत्रु, उसका बहुवचनी आर्ष प्रयोग ' अर्यः ' अनेक शत्रु इस अर्थमें प्रयुक्त होता है । दूसरा ' अर्य '-स्वामी, आर्य, श्रेष्ठ वीर अर्थका अर्य पद है । ये दोनों पद इसी एक मंत्रमें प्रयुक्त हुए हैं ।

४ शत्रोः नृम्णं मिथत्या विकृण्वन्— शत्रुके बलका नाश करते हैं । नृमणं बल, मानवी संघटनासे प्राप्त होनेवाला बल । ' मिथत्या '—हिंसा, नाश ।

[४] (४२४) हे (देवासः) देवो ! (नू नः वरिवः कर्तन) हमारे लिये धनका प्रदान करो । (विश्वे सजोषाः नः अवसे भूत) सब एक विचारसे रहनेवाले तुम वीर हमारी सुरक्षा करनेके लिये रहो । (वसवः अस्मे इषं सं ददीरन्) वसुदेव हमें अन्नका प्रदान करें । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा सुरक्षाके कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो ।

हमें धन मिले, हम उत्तम प्रकारसे सुरक्षित रहें, हमें उत्तम अन्न मिले । अन्न, धन और संरक्षण चाहिये । जिससे मनुष्योंकी उन्नति हो सकती है ।

आपः ।

[१] (४२५) (समुद्र ज्येष्ठाः) जिनमें समुद्र श्रेष्ठ है ऐसे जल (सलिलस्य मध्यात् यन्ति) जलके मध्य स्थानसे चलते हैं जो (पुनानाः अनिविशमानाः) पवित्र करते हैं और कहीं भी ठहरते नहीं हैं । (वज्री वृषभः इन्द्रः या रराद) वज्रधारी बलवान् इन्द्रने जिनके लिये मार्ग बना दिया था (ता देवीः आप इह मां अवन्तु) वे दिव्य जल यहां मेरी सुरक्षा करें ।

❀

२ या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः ।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४२६
३ यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४२७
४ यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४२८

(५०) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १ मित्रावरुणौ, २ अग्निः, ३ विश्वे देवाः, ४ नद्यः । जगती, ४ अतिजगती शक्वरी वा ।

१ आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद् विश्वयन्मा न आ गन् ।
अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ४२९

---

[२] (४२६) (याः आपः दिव्याः) जो जल आकाशसे प्राप्त होते हैं, और (उत वा स्रवन्ति) जो नदियोंमें बहते हैं, जो (खनित्रिमाः) खोद कर कूवेसे प्राप्त होते हैं, (उत वा याः स्वयंजाः) और जो स्वयं उत्पन्न होते हैं। (याः शुचयः पावकाः) जो शुद्धता और पवित्रता करनेवाले हैं, ये सब (समुद्रार्थाः) समुद्रकी ओर जानेवाले हैं (ताः देवीः आपः मां इह अवन्तु) वे दिव्य जल मेरी यहां सुरक्षा करें।

जल चार प्रकारके है— (१) दिव्याः आपः—वृष्टिसे आकाशसे जो प्राप्त होते हैं, (२) स्रवन्ति—जो झरनोंसे स्रवते है। नदियोंमें बहते हैं, (३) खनित्रिमाः— खोदकर कूवेमेंसे प्राप्त होते हैं, (४) स्वयंजाः—स्वयं जो ऊपर आते हैं। ये सब जलप्रवाह किसी न किसी तरह समुद्र तक पहुंचते हैं। ये जल पवित्रता करनेवाले हैं, शुचिता और निर्दोषता करते हैं। इसलिये आरोग्य बढानेवाले हैं।

[३] (४२७) (यासां वरुणः राजा मध्ये याति) जिनका राजा वरुण मध्य लोकमें जाता है और (जनानां सत्य-अनृते अवपश्यन्) लोगोंके सत्य और अनृतका निरीक्षण करता है। (याः आपः मधुश्चुतः) जो जल प्रवाह मधुररस देते हैं (याः शुचयः पावकाः) जो पवित्र और शुद्ध हैं (ताः आपः देवीः मां इह अवन्तु) वे दिव्य जल यहां हमारी सुरक्षा करें।

[४] (४२८) (राजा वरुणः यासु) वरुण राजा जिन जलोंमें रहता है, (सोमः यासु) सोम जिनमें रहता है, (विश्वे देवाः यासु ऊर्जं मदन्ति) सब देव जिनमें अन्न प्राप्त करके आनंदित होते हैं। (वैश्वानरः अग्निः यासु प्रविष्टः) विश्व संचालक अग्नि जिनमें प्रविष्ट हुआ है। (ताः देवीः आपः इह मां अवन्तु) वे दिव्य जल यहां मुझे सुरक्षित रखें।

मित्रावरुणौ। विषबाधाको दूर करना।

[१] (४२९) हे मित्र और वरुण! (इह मां आरक्षतां, यहां मेरी सुरक्षा करो! (कुलायत् विश्वयत् नः मा आगन्) स्थानमें रहनेवाला अथवा फैलनेवाला विष हमारे पास न आवे। (अजकायं दुर्दृशीकं तिरः दधे) रोग और दृष्टि हीनता हमसे दूर हो। (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) सर्प पांवके शब्दसे मुझे न जाने। सांप मुझसे दूर रहे।

'कुलाय'—स्थान, शरीर। 'कुलायत्'—स्थानमें रहनेवाला। जहां का वहां रहकर बाधा करनेवाला। 'विश्वयत्'—विशेष फैलनेवाला। ये सब विविध प्रकारके विष-

२ यद् विजामन् परुषि वन्दनं भुवदष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत् ।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ४३०

३ यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम् ।
विश्वे देवा निरितस्तत् सुवन्तु मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ४३१

४ याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु
सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ४३२

है। 'अजकः'—यह एक रोग है। 'अजका'—यह नेत्र रोगका नाम है जो विशेष रक्त वहां इकट्ठा होनेसे होता है। 'दुः ईशीकः'—यह भी नेत्र रोग है जिसमें दृष्टि कम होती है।

त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्—सांप पांवके शब्दसे मुझे न पहचाने। यहां शब्दसे सांप पहचानता है यह भाव है। कष्ट देनेवालेका शब्द सुनकर सर्प—नाग पहचानता और उसको काटता है। ऐसा लोगोंमें जो प्रवाद है वही यहां इस मन्त्र-भागमें है।

अग्नि। विष दूरीकरण

[१] (४३०) (वंदनं यत् विजामन्) वंदन नामक विष जो जन्मभर रहता है, (परुषि भुवत्) जो पर्वस्थानमें रहता है, जो (अष्ठीवन्तौ कुल्फौ परि च देहत्) जांघों और गुल्मग्रंथियोंमें फुलाता है। (अग्निः शोचन् इतः तत् अपबाधतां) अग्नि प्रकाशित होकर यहांसे उसे दूर करे। (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) पांवके शब्दसे सांप मुझे न पहचाने।

अग्निकी ज्योतिसे जलाना अथवा लोहेकी शलाका अग्निवत् तपाकर दाग देना यह उपाय संधिके रोग तथा ग्रन्थिरोगको हटानेके लिये यहां बताया है।

विश्वेदेवाः। विषनाश।

[२] (४३१) (यत् शल्मलौ भवति) जो शाल्मली वृक्ष पर होता है। (यत् नदीषु) जो नदियोंके जलोंमें होता है, (यत् विषं ओषधिभ्यः परिजायते) जो विष औषधियोंसे उत्पन्न होता है। (विश्वे देवाः तत् इतः निः सुवन्तु) सब देव उस विषको यहांसे दूर करें। (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) सांप पांवके शब्दसे मुझे न पहचाने।

वृक्षों, वनस्पतियों और नदी जलोंमें होनेवाला विष नाना प्रकारके दिव्य पदार्थों अर्थात् जल, अग्नि, वायु, औषधि, सूर्य प्रकाश आदिसे दूर किया जाय।

नदियां। शिपद रोग दूरीकरण

[४] (४३२) (याः प्रवतः) जो नदियां प्रवण देशमें चलती हैं (याः निवतः उद्वतः) जो निम्न प्रदेशमें और जो उच्च प्रदेशमें चलती हैं, (याः उदन्वतीः अनुदकाः) जो उदकसे भरी रहती हैं और जिनमें थोडा जल रहता है, (ता पयसा पिन्वमाना) वे नदियां जलसे तृप्ति करती हुई (अस्मभ्यं शिवाः) हमारे लिये कल्याण करनेवाली होकर वे (देवीः अशिपदाः) दिव्य नदियां शिपद रोगको दूर करनेवाली हों। (सर्वा नद्यः अशिमिदाः भवन्तु) सब नदियां कल्याण करनेवाली हों।

'शि-पद'—यह रोग पांवका रोग है जो पांवको बढाता है। 'श्लिपद' भी इसीका नाम होगा।

(५१) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः । त्रिष्टुप् ।

१ आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ४३३
२ आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ४३४
३ आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्व ऋभवश्च विश्वे ।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४३५

(५२) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः । त्रिष्टुप् ।

१ आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ४३६
२ मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत् कर्म वसवो यच्चयध्वे ४३७

आदित्यः ।

[१] (४३३) (आदित्यानां नूतनेन अवसा) आदित्योंके नवीन संरक्षणसे (शंतमेन शर्मणा सक्षीमहि) अत्यन्त सुखदायी कल्याणसे हम युक्त हों । (तुरासः श्रोषमाणाः) त्वरासे कर्म करनेवाले और प्रार्थना सुननेवाले आदित्य (इमं यज्ञं) इस यज्ञको तथा इस याजकको (अनागास्त्वे अदितित्वे दधतु) निष्पाप और अदीन करें ।

' आदित्याः '—वर्षके बारह महिने, अर्थात् उन महिनोंका सूर्य प्रकाश । प्रत्येक महिनेके सूर्य प्रकाशका गुण भिन्न भिन्न रहता है । और उसका मानवी शरीरपर परिणाम विभिन्न होता है । ' शर्म '—सुख, घर, संरक्षण, कवच । ' तुरासः '- त्वरा करनेवाले । ' अनागास्त्वे '–निष्पापपन, निर्दोषता । ' अदितित्वे '–अदीनता, अहीनता, अदरिद्रता, धनवान् होना ।

[२] (४३४) आदित्य, अदिति, मित्र, अर्यमा, वरुण ये (रजिष्ठाः) वेगवान देव (मादयन्तां) हर्षित हों । आनन्दित हों । (भुवनस्य गोपाः अस्माकं सन्तु) ये विश्वके संरक्षक देव हमारा हित करनेवाले हों । (अद्य नः अवसे सोमं पिबन्तु) आज हमारे संरक्षण करनेके लिये ये सोमरस पीवें ।

[३] (४३५) (विश्वे आदित्याः) सब ही बारह आदित्य (विश्वे मरुतः) सब ४९ मरुत् देव (विश्वे देवाः च) सब देव (विश्वे ऋभवः) सब ऋभुदेव और इन्द्र, अग्नि तथा अश्विदेव (तुष्टुवानाः) इन सबकी स्तुति की है । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सब सदा हमारी सुरक्षा कल्याणके साधनोंसे करो ।

[१] (४३६) हे (आदित्यासः) आदित्यो ! हम (अदितयः स्याम) अदीन हों । हे (वसवः) वसुदेवो ! (देवत्रा पूः) देवोंमें जो संरक्षक शक्ति है वह (मर्त्यत्रा) हम मानवोंकी सुरक्षाके लिये प्राप्त हो । हे मित्र और वरुण ! (सनन्तः सनेम) तुम्हारी सेवा करने पर हम धनको प्राप्त करेंगे। हे द्यावा-पृथिवी ! हम (भवन्तः भवेम) भाग्यवान् हों ।

हम दरिद्री अथवा दीन न हों । हमारा संरक्षण हो, हम धनवान और भाग्यवान हों ।

[२] (४३७) (मित्रः वरुणः तत् शर्म नः मामहन्त) मित्र और वरुण उस हमारे उत्तम सुखको

३ तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।
पिता च तन्नो महान् यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ४३८

(५३) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप् ।

१ प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे ।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ४३९
२ प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ४४०
३ उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे ।
अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४४१

बढावें। (गोपाः तोकाय तनयाय) विश्वरक्षक देव हमारे बाल-बच्चोंके लिये उत्तम सुख दें। (वः अन्यजातं एनः मा भुजेम) आपके आत्मीय बने हम अन्यके किये पापका फल न भोगें। अन्यके पापका फल हमें भोगना न पडे। हे (वसवः) वसुदेवो! (यत् चयध्वे) जिस कारण आप नाश करते हैं (तत् कर्म मा) उस कर्मको हम न करें।

हमारा सुख बढे, बाल-बच्चे आनंद प्रसन्न हों, दूसरेका किया पाप हमपर न आ जाय। जिससे विनाश होता है ऐसा कर्म हमसे न हो।

अन्यजातं एनः मा भुजेम—दूसरेका किया पाप हमपर न आ जाय। समाजमें ऐसा होता है। एक मनुष्य पाप करता है और देशका देश परतंत्र बनता है। एक कुपथ्य करके बीमारी लाता है जो फैलती और ग्रामोंको उध्वस्त करती है। इसलिये दूसरेके किये पापोंको भोगना न पडे ऐसा यहां कहा है।

[३] (४३८) (तुरण्यवः अंगिरसः) त्वरासे कार्य करनेवाले अंगिरस (इयानाः) प्रार्थना करके (सवितुः देवस्य रत्नं नक्षन्त) सविता देवसे जिस रमणीय धनको प्राप्त करते रहे, (यजत्रः नः महान् पिता) यजन करनेवाला हमारा महान पिता तथा (विश्वे देवाः) सब देव (समनसः जुषन्त) एक मतसे (तत्) उस धनको हमारे लिये दे दें।

द्यावा पृथिवी

[१] (४३९) (यजत्ये बृहती द्यावा पृथिवी) पूजनीय बडे विशाल द्यावा पृथिवीकी (यज्ञैः नमोभिः) यज्ञों और अन्नोंके द्वारा (सबाधः ईळे) कष्टको दूर करनेके लिये प्रार्थना करता हूं। (ते चित् हि देवपुत्रे मही) वे द्यावा-पृथिवी जिनके पुत्र देव हैं तथा जो विशाल हैं उनको (पूर्वे गृणन्तः कवयः पुरः दधिरे) प्राचीन ज्ञानी स्तोता आगे रखते थे और स्तुति गाते थे।

[२] (४४०) (नव्यसीभि गीर्भिः) नवीन स्तोत्रोंसे (ऋतस्य सदने) यज्ञके स्थानमें (पूर्वजे पितरा द्यावा पृथिवी) पूर्व जन्ममें पितर द्यावा-पृथिवीको (प्र कृणुध्वं) सुपूजित करो। हे द्यावा-पृथिवी! तुम (दैव्येन जनेन नः आ यातं) दिव्य जनोंके साथ हमारे पास आओ। (वां वरूथं महि) आपका धन बहुत है।

[३] (४४१) हे द्यावा पृथिवी! (वां) आपके (सुदासे पुरूणि रत्न-धेयानि सन्ति) पास उत्तम दाताको देनेके लिये अनेक प्रकार के धन हैं। (यत् अ-स्कृधोयु असत्) जो बहुतसा धन होगा वह (अस्मे धत्तं) हमें प्रदान करो। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पातं) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारा पालन करो।

(५४) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वास्तोष्पतिः । त्रिष्टुप् ।

१ वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ४४२
२ वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ४४३
३ वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४४४

वास्तोष्पति ।

[१] (४४२) हे वास्तोष्पते ! (अस्मान् प्रति जानीहि) तुम हमें अपने समझो । (नः स्वावेशः अनमीवः भव) हमारे घरको नीरोग करनेवाला हो । (यत् त्वा ईमहे तत् नः प्रति जुषस्व) जो धन हम तुम्हारे पास मागेंगे वह हमें दे दो । (नः द्विपदे चतुष्पदे शं भव) हमारे द्विपाद और चतुष्पादके लिये कल्याणकारी हो ।

वास्तोष्पतिः—वास्तुका पति । घरका स्वामी । घर और उसके चारों ओरका उद्यान मिलकर वास्तु कहलाती है । इसका विस्तार नगर, प्रांत, राष्ट्र तथा विश्वतक माना जा सकता है । इसका पालक, संरक्षक, स्वामी वास्तोष्पति कहलाता है ।

१ अस्मान् प्रतिजानीहि—वास्तुपति वास्तुमें रहनेवालोंको अपने आत्मीय समझे । राष्ट्रपति राष्ट्रमें रहनेवालोंको अपने समझे । यह एकात्मता निर्माण करना अत्यावश्यक है ।

घर नीरोग हों

२ स्वावेशः अनमीवः भवतु— (सु-आवेशः अन्-अमीवः) अपना रहनेका घर उत्तम हो तथा नीरोग हो । ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे अपने रहनेका स्थान उत्तम हो और रोग बीजोंसे सर्वथा मुक्त हो ।

३ द्विपदे चतुष्पदे शं– घरके द्विपाद और चतुष्पादोंका कल्याण हो, वे सब रोगरहित हों । हृष्टपुष्ट हों ।

४ यत् ईमहे, तत् नः प्रति जुषस्व—जो जिस समय हमें चाहिये वह उस समय प्राप्त हो । कोई वस्तु न मिली इस कारण हमें कष्ट न हो ।

[२] (४४३) हे (वास्तोष्पते) गृहके स्वामिन् ! (नः प्रतरणः एधि) तुम हमारे तारक हो और (गय-स्फानः) धनके विस्तारकर्ता हो । हे (इन्दो) सोम ! (गोभिः अश्वेभिः) गौओं और घोडोंसे युक्त होकर (अजरासः स्याम) हम जरारहित हों । (ते सख्ये स्याम) तेरी मित्रतामें हम रहें । (पिता पुत्रान् इव) पिता जैसा पुत्रोंका पालन करता है उस तरह (नः जुषस्व) हमारा पालन कर ।

आदर्श घर

घर घरवालोंका संरक्षण करनेवाला हो, धनका विस्तार होता रहे, घरके साथ गौवें और घोडे रहें । घरमें रहनेवाले क्षीण, जीर्ण, निर्बल न हों, बलवान् नीरोग और हृष्टपुष्ट हों । पिता जैसा पुत्रोंका पालन करता है वैसा सब घरवालोंका उत्तम पालन हो । घरवाले प्रभुके मित्र हों, ईश्वर भक्त हों ।

[३] (४४४) हे (वास्तोष्पते) वास्तुके स्वामिन् ! (शग्मया रण्वया) सुखदायक और रमणीय (गातुमत्या ते संसदा सक्षीमहि) प्रगतिशील ऐसी तुम्हारी सभाको हम प्राप्त हों । ऐसा स्थान हमें मिले । हम ऐसे सभास्थानके सदस्य बनें । (क्षेमे उत योगे नः वरं पाहि) प्राप्त धनको तथा अप्राप्त धनकी प्राप्तिमें हमारे श्रेष्ठ धनको सुरक्षित रखो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण साधनोंसे सुरक्षित रखो ।

आदर्श घर

१ शग्मया, रण्वया गातुमत्या संसदा सक्षीमहि–

(५५) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः वास्तोष्पतिः, २-८ इन्द्रः २ ८ प्रस्वापिनी उपनिषद्)।
१ गायत्री, -४ उपरिष्टाद्बृहती, ५ ८ अनुष्टुप्।

१ अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्। सखा सुशेव एधि नः ४४५
२ यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्केषु बप्सतो नि षु स्वप ४४६
३ स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप ४४७

सुखदायक, रमणीय, प्रगतिसाधक और जहां मिलकर अनेक मनुष्य बैठ सकते हैं ऐसा घर हमारा हो। 'संसद्' अनेक मनुष्य जहां मिल जुलकर रह सकते हैं, ऐसा घर हो। घर छोटा न हो, जहां संसद (सभा) हो सकती है ऐसा बडा घर हो।

१ क्षेमे उत योगे नः वरं पाहि—जो धन है उसका संरक्षण करना चाहिये। इसका नाम 'क्षेम' है। जो धन इस समय प्राप्त नहीं है उसको प्राप्त करनेका नाम 'योग' है। प्राप्त धनका संरक्षण और अप्राप्त धनकी प्राप्ति इस विषयका उद्योग करना चाहिये। और जो धन हो वह 'वरं' श्रेष्ठ चाहिये। श्रेष्ठ साधनसे प्राप्त किया श्रेष्ठ धन हो। हीन रीतिसे, हीन मार्गसे धन प्राप्त न किया जावे।

वास्तोष्पति

[१] (४४५) हे वास्तोष्पते! तुम (अमीव-हा) **रोगोंका नाश करो। (विश्वा रूपाणि आविशन्) अनेक रूपोंमें प्रविष्ट होकर (नः सुशेवः सखा एधि) हमारा सुखकर मित्र हो।**

घरका स्वामी घरके अन्दरसे तथा घरके बाहरके रोगबीज दूर करे और अपने घरमें आरामसे रहे। उसका स्वभाव सुखदायी मित्र जैसा हो और वह अनेक रूपोंको धारण करे। धर्मपत्नीके साथ पति, पुत्रोंके साथ पिता, भाईयों और बहिनोंके साथ बन्धु, मित्रोंके साथ मित्र, श्वशुरके साथ जामात, नगरमें नागरिक, युद्धके समय महावीर, ज्ञानियोंमें महाज्ञानी, शासनके समयमें शासन करनेमें चतुर, इस तरह एक ही मनुष्य विविध क्षेत्रोंमें विविध रूप धारण करके रहे। परमेश्वर भी सब रूप धारण करके तद्रूप होता है, उसी तरह घरके स्वामीको व्यवहारमें नाना रूप धारण करके बर्तना चाहिये। जिस समय जो रूप लिया जाय उस समय उत्तमसे उत्तम उस रूपका कार्य वह करे। उसमें कोई न्यूनता न रहे।

'**विश्वा रूपाणि धारयन्**'—यह बडे महत्त्वका उपदेश है। यदि कोई गृहपति अपने किसी रूपमें असमर्थ सिद्ध हो जाय, तो वह उतना निर्बल सिद्ध होगा और उतना उसका राष्ट्र भी निर्बल होगा। इस तरह विचार करके जान सकते हैं कि विविध रूपोंमें एक ही मनुष्य किस तरह कार्य कर सकता है। और इस कार्यकी राष्ट्र रक्षामें आवश्यकता भी होती है।

घरका रक्षक कुत्ता

[२] (४४६) हे (अर्जुन सारमेय पिशंग) **श्वेत सरमाके पुत्र पिंगल वर्णवाले कुत्ते! (यत् दतः यच्छसे) जब तू दांत दिखाता है, तब (ऋष्टयः इव वि भ्राजन्ते) शस्त्रोंके समान वे चमकते हैं। तथा (स्रक्केषु उप बप्सतः) होटोंमें तेरे दांत खानेके समय भी विशेष चमकते हैं। ऐसा तू अब (सु नि स्वप) अच्छी तरह सोजा।**

घरका संरक्षण करनेके लिये अपने घरमें कुत्ता रखना योग्य है। उसको प्रेमसे घरके परिवारके समान रखा जाय। (उप बप्सतः) अपने सामने उसको खिलाया जाय। उसके रहने और सोनेके लिये उत्तम प्रबंध हो। घरमें गायें, घोडे तथा कुत्ता भी हो। यह उत्तम संरक्षक है।

[३] (४४७) हे (पुनःसर सारमेय) **जिस स्थानमें एक वार जाते हैं, उसी स्थानमें पुनः पुनः जानेवाले सरमाके पुत्र! (तस्करं स्तेनं वा राय) तू चोर वा डाकू पर दौड। (इन्द्रस्य स्तोतॄन् किं**

४ त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप ४४८
५ सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ४४९
६ य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ४५०
७ सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान् त्स्वापयामसि ४५१

रायसि) इन्द्रके भक्तोंपर क्यों दौडता है ? इनको छोड दो । (अस्मान् किं दुच्छुनायसे) हमें क्यों बाधा करता है ? (सु नि स्वप) अब तुम अच्छी-तरह सोजा ।

पालित कुत्तेको सिखाना चाहिये। वह चोर और डाकूको ही काटे और सज्जनको न पकडे । इस तरहकी उत्तम शिक्षा उसको देनी चाहिये ।

[४] (४४८) (त्वं सूकरस्य दर्दृहि) तू सूवर का विदारण कर। कदाचित् (सूकरः तव दर्दर्तु) सूवर तुझे भी विदारित करेगा। तुम्हें फाडेगा, सावध रह। प्रभुके भक्तोंपर तू क्यों दौडता है ? हमें क्यों बाधा करता है, अब तुम अच्छी तरह सोजा ।

कुत्तेको सिखाना चाहिये कि सूवर पर आक्रमण कैसा करना चाहिये । सूवरको तो कुत्ता फाडे, पर सूवर कुत्तेको न फाड सके।

सुरक्षित नगर

[५] (४४९) (सस्तु माता, सस्तु पिता) माता पिता सो जांय । (सस्तु श्वा, सस्तु विश्पतिः) कुत्ता सोवे और प्रजा पालक भी सो जावे । (सर्वे ज्ञातयः ससन्तु) सब बन्धुबांधव सो जांय। (अभितः अयं जनः सस्तु) चारों ओरके ये सब लोग सो जांय ।

नगर पालनकी व्यवस्था इतनी उत्तम हो कि सब लोग आरामसे सो जांय। रक्षक (विश्पतिः) और (श्वा) कुत्ते भी आरामसे सो जांय । रातभर जागनेकी आवश्यकता न रहे। सुसंरक्षित नगरमें ही सब आरामसे सो सकते हैं । जहां चोर डाकू घातपाती लोगोंके उपद्रवकी संभावना बिलकुल नहीं होती वहां सब लोग और रक्षक तथा कुत्ते भी आरामसे सो सकते हैं ।

[६] (४५०) (यः आस्ते, यः च चरति) जो यहां ठहरता है और जो चलता है, (यः जनः नः पश्यति) जो मनुष्य हमें देखता है, (तेषां अक्षाणि सं हन्मः) उनके आंखोंको हम एक केंद्रमें लाते हैं, (यथा इदं हर्म्यं तथा) जैसा यह राज प्रासाद स्थिर है वैसे उनके आंख एक केन्द्रमें स्थिर हों ।

' संहन् '—का अर्थ ' संघ करना ' एक केन्द्रमें लाना, एकाग्र करना, मिलाना । जैसा (हर्म्यं) यह राज प्रासाद एक स्थानपर स्थिर है वैसे सबका लक्ष्य एक ही अपनी सुरक्षाके कार्यमें लगा रहे । जो बैठा है, जो चलता है, जो देखता है , वे अनेक कार्य करते रहनेपर भी अपनी सुरक्षा करनेमें सब एक हों । ऐसे संघटित प्रयत्नसे सबकी सुरक्षा होगी ।

[७] (४५१) (सहस्रशृंगः यः वृषभः) सहस्रों किरणोंवाला जो बलवान् तथा वृष्टि करनेवाला सूर्य है वह (समुद्रात् उत्-आचरत्) समुद्रसे ऊपर आया है । (तेन सहस्येन) उस शत्रुका पराभव करनेवाले सूर्यके बलसे (वयं जनान् नि स्वापयामसि) हम सब लोगोंको सुला देते हैं ।

८ प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ४५१

सूर्य बलवान् तथा वृष्टि करनेवाला है। वह सहस्रों किरणोंसे उदयको प्राप्त होता है, समुद्रसे ऊपर उठता है। जब वह सूर्य उदयको प्राप्त होकर प्रकाशता है तब सब लोगोंको वह प्रशस्त कर्मकी प्रेरणा करता है और सबको कर्ममें लगाता है। ऐसा यह सूर्य अस्त होनेके पश्चात् सब लोग विश्राम लेते हैं और सोते हैं।

[८] (४५१) (याः प्रोष्ठे-शयाः) जो अंगनमें सोती हैं, (याः नारीः वह्ये-शयाः) जो स्त्रियां वाहनोंमें सोती हैं, (याः तल्प-शीवरीः) जो स्त्रियां बिस्तरों पर सोती हैं (याः पुण्यगन्धा स्त्रियः) जो उत्तम गन्धवाली स्त्रियां हैं, (ताः सर्वाः स्वापयामसि) उन सब स्त्रियोंको हम सुला देते हैं।

राष्ट्रमें स्त्रियां निर्भय हों

(**प्रोष्ठे शयाः**) स्त्रियां अंगनमें सोती हैं, यह प्रदेश उष्णदेश ही होगा। और सुरक्षित देश होगा जहां अंगनमें सोनेसे उनको किसी तरह धोखा होनेकी संभावना नहीं है। (**वह्ये-शयाः**) जो स्त्रियां वाहनोंमें सोती हैं। रात्रीके समय रास्तेसे वाहन चलते हैं और उनमें स्त्रियां आरामसे सोती हैं। देशकी सुरक्षाका प्रबंध कितना अच्छा होगा, इसकी कल्पना इससे हो सकती है। वाहन मार्गपर है, चल रहा है और उसमें स्त्रियां निर्भय होकर सो रही हैं। धन्य है वह देश कि जिसमें स्त्रियां ऐसी सो सकती हों। (**याः तल्प-शीवरीः**) घरमें बिस्तरोंपर अपने कमरोंमें जो स्त्रियां सोतीं हैं। ये स्त्रियां भी निर्भय हैं अतः शान्तिसे सोती हैं।

स्त्रियोंका आरोग्य

(**पुण्य-गन्धाः स्त्रियः**) जिन स्त्रियोंके शरीरमें तथा मुखमें उत्तम सुगंध आता है। शरीरमें पसीनेकी दुर्गन्धि जिनके शरीरमें नहीं है, परंतु पुण्यगन्ध जिनके शरीरसे आता है। जो स्त्रियां आरोग्य पूर्ण होती हैं उनके शरीरसे ही उत्तम गन्ध आता है, पुण्यगन्ध, सुगन्ध और सुवास यह परिपूर्ण आरोग्यसे ही होनेवाली बात है।

ये सब प्रकारकी स्त्रियां आरामसे निर्भय होकर गाढ निद्राका सुख प्राप्त करें। नगरमें, राष्ट्रमें इन स्त्रियोंपर अत्याचार होनेकी संभावना न होगी, तभी स्त्रियां आरामसे सो सकती हैं। इतनी सुरक्षा राष्ट्रमें तथा राष्ट्रके प्रत्येक नगरमें हो। यह आदर्श राष्ट्र है।

॥ यहां विश्वेदेव प्रकरण समाप्त हुआ ॥

अनुवाक चौथा [अनुवाक ५४ वाँ]

[२] मरुत्-प्रकरण

(५६) २५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप्, १-११ द्विपदा विराट्।

१ क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ४५३

२ नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ४५४

३ अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन् ४५५

४ एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ४५६

५ सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात् सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ४५७

६ यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः ४५८

---

[१] (४५३) (अध रुद्रस्य सनीळाः मर्याः) महावीरके एक घरमें रहनेवाले (सु-अश्वाः व्यक्ताः नरः) जिनके पास उत्तम घोडे हैं वे सबको परि-चित नेता वीर (ईं के) भला कौन हैं ?

'रुद्र'—शत्रुको रुलानेवाला महावीर, दिग्विजयी वीर। 'मर्याः'—मर्त्य, मरनेके लिये सिद्ध, मरनेतक लडनेवाले, मरणधर्मवाले। 'स—नीळाः, स-नीडाः'— एक घरमें रहनेवाले, जिनका निवास पृथक् पृथक् घरों नहीं होता, परंतु जो सब एक ही घरमें रहते हैं, रहना, सहना, खान, पान, सोना आदि जिनका एक घरमें रहता है । 'व्यक्ताः'- प्रकट, व्यक्त, परिचित, जिनकी खेल कूद खुले स्थानमें होती है।

[२] (४५४) (एषां जनूंषि न किः वेद) इन वीरोंके जन्मके वृत्तान्तको कोई नहीं जानता। (ते मिथः जनित्रं अंग विद्रे) वे वीर परस्परके जन्मके वृत्तान्तको सचमुच जानते हैं।

[३] (४५५) वे वीर जब (स्व-पूभिः मिथः अभिवपन्त) अपने पवित्र साधनोंके साथ जब पर-स्पर मिलते हैं, तब (वातस्वनसः श्येनाः अस्पृध्रन्) पवनके तुल्य बडा शब्द करनेवाले बाज पक्षियोंकी तरह वेगमें स्पर्धा करते हैं।

[४] (४५६) (धीरः एतानि निण्या चिकेत) बुद्धिमान पुरुष इन वीरोंके ये कार्यकलाप जानता है। (यत्) जिन वीरोंके लिये (मही पृश्निः ऊधः जभार) बडी गौने दुग्धाशयमें दूधका भार उठाया था।

वीर गौका दूध पीयें। वीरोंको दूध पिलानेके लिये गौवें रखीं जाय।

[५] (४५७) (सा विट्) वह प्रजा (मरुद्भिः सुवीरा) वीर मरुतोंके कारण अच्छे वीरोंसे युक्त होकर (सनात् सहन्ती) सदा शत्रुका पराभव करनेवाली तथा (नृम्णं पुष्यन्ती अस्तु) मनुष्योंके बलोंको बढानेवाली बने।

जिस राष्ट्रकी प्रजामें अच्छे वीर होते हैं वही सदा विजयी होती है और उसका ही बल बढता है। अतः वीरोंका निर्माण करना चाहिये।

[६] (४५८) वे वीर शत्रुपर (यामं येष्ठाः) आक्रमण करनेका यत्न करनेवाले, (शुभाः शोभिष्ठाः) अलंकारोंसे सुहानेवाले (श्रिया संमिश्लाः) शोभासे संयुक्त हुए तथा (ओजोभिः उग्राः) सामर्थ्यसे उग्र वीर प्रतीत होते हैं।

७ उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ४५९
८ शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ४६०
९ सनेम्यस्मद् युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ्नः ४६१
१० प्रिया वो नाम हुवे तुराणामायत् तृपन्मरुतो वावशानाः ४६२
११ स्वायुधासः इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ४६३
१२ शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ४६४

वीर राष्ट्रके शत्रुपर आक्रमण करके उनको भगा देवें, स्वयं सुशोभित रहें, तेजस्वी रहें और अपना सामर्थ्य बढाते रहें, कभी अपना सामर्थ्य कम न होने दें।

[७] (४५९) (वः ओजः उग्रं) आपका सामर्थ्य उग्र है, वीरता युक्त है, (शवांसि स्थिरा) आपके बल स्थिर अर्थात् स्थायी रहनेवाले हैं। (अध) और (मरुद्भिः गणः तुविष्मान्) मरुद्वीरोंके कारण तुम्हारा संघ बलवान् हुआ है ।

वीरोंमें प्रभावी सामर्थ्य और सदा टिकनेवाला बल चाहिये और उनमें संघशक्ति भी उत्तम चाहिये ।

[८] (४६०) (वः शुष्मः शुभ्रः) आपका सामर्थ्य निष्कलंक है, तुम्हारे (मनांसि क्रुध्मी) मन क्रोधसे भरे हैं, तुम शत्रुपर क्रोध करनेवाले हो, परंतु (धृष्णोः शर्धस्य) शत्रुका धर्षण करनेके तुम्हारे सांघिक सामर्थ्यका (धुनिः) वेग (मुनिः इव) मुनिकी तरह मनन पूर्वक कार्य करनेवाला है ।

वीरोंका सामर्थ्य चारित्र्य युक्त निर्दोष होना चाहिये । वे शत्रुपर क्रोध करें, पर उनका शत्रुपर होनेवाला आक्रमण मनन-पूर्वक हो, अविचारसे न हो ।

[९] (४६१) वह तुम्हारा (सनेमि दिद्युं) तीक्ष्ण धारावाला तेजस्वी शस्त्र (अस्मत् युयोत) हमसे दूर रहे, हमपर उसका आघात न हो । (वः दुर्मतिः इह नः मा प्रणक्) आपकी शत्रुनाश करनेकी बुद्धि हमारा नाश न करे ।

वीरोंके शत्रुसे तथा उनके वीरता युक्त क्रोधसे अपने ही लोगोंका नाश न हो ।

[१०] (४६२) हे (मरुतः) मरुद्वीरो ! (तुराणां वः) त्वरासे कार्य करनेवाले तुम्हारे (प्रिया नाम आहुवे) प्यारे नामोंसे मैं तुम्हें बुलाता हूं । (यत् वावशानाः) जिस कार्यकी इच्छा करनेवाले तुम (आतृपत्) तृप्त होते हैं वही हम करें ।

वीरोंको लोग अच्छे प्रेमभरे शब्दोंसे बुलावें, उनका आदर करें और उनको अच्छे लगनेवाले ही कार्य करें । अर्थात् जनतामें वीरोंका आदर रहे ।

[११] (४६३) वे वीर (सु आयुधाः) अच्छे शस्त्र अपने पास रखनेवाले (इष्मिणः सुनिष्काः) वेगवान् और सुन्दर आभूषण धारण करनेवाले और (स्वयं तन्वः शुम्भमानाः) वे अपने ही शरीरोंको सुशोभित करनेवाले हैं ।

वीरोंके पास उत्तम आयुध हों, वीर वेगसे शत्रुपर आक्रमण करनेवाले हों, वे अपने शरीरोंको सुशोभित करके प्रभावी बनावें।

[१२] (४६४) हे (मरुतः) मरुद्वीरो ! (शुचीनां वः हव्या शुची) आप शुद्ध हैं अतः आपके अन्न भी पवित्र हैं। (शुचिभ्यः शुचिं अध्वरं हिनोमि) इन शुद्ध वीरोंके लिये मैं हिंसारहित ही यज्ञको करता हूँ। (ऋत--सापः) सत्यकी उपासना करनेवाले ये (शुचि--जन्मानः) शुद्ध कुलमें जन्मे कुलीन वीर (शुचयः पावकाः) शुद्ध और पवित्रता करनेवाले (ऋतेन सत्यं आयन्) सरलतासे सत्यको प्राप्त करते हैं ।

१३ अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ४६५
१४ प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ४६६
१५ यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद् यमन्य आदभदरावा ४६७
१६ अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः ४६८

वीर शुद्धाचार करनेवाले हों, पवित्र अन्नका सेवन करें। सत्यका सेवन करें, स्वयं शुद्ध पवित्र और निष्पाप बनें । सत्यमय जीवनसे सत्यका व्यवहार करें, कभी तेढे व्यवहारमें न जांय ।

[१३] (४६५) हे (मरुतः) मरुद्वीरो ! (वः अंसेषु खादयः आ) आपके कंधोंपर आभूषण हैं, (वक्षःसु रुक्माः) छातीयोंपर सुवर्ण मुद्राओंके हार (उप शिश्रियाणाः) लटक रहे हैं । (विद्युतः न रुचानाः) बिजलियोंकी तरह चमकनेवाले तुम (वृष्टिभिः आयुधैः) शत्रुपर आघातोंकी वर्षा करनेवाले अपने आयुधोंसे (स्वधां अनु यच्छमानाः) अपनी धारणा शक्तिको प्रकट करते हो।

वीरोंके शरीरोंपर आभूषण रहें और वे उनकी शोभाको बढावें । उनके शस्त्र बिजलीकी तरह चमकनेवाले तीक्ष्ण हों, वे उन शस्त्रोंसे शत्रुपर आघातोंकी वृष्टि करें और अपनी शक्तिको प्रभावित रीतिसे दिखावें ।

[१४] (४६६) हे (प्रयज्यवः मरुतः) पूजनीय वीर मरुतो ! (वः बुध्न्या महांसि) तुम्हारे मौलिक अपने सामर्थ्य (प्र ईरते) प्रकट हो रहे हैं । तुम अपने (नामानि प्रतिरध्वं) यशोंके साथ परले तट तक जाओ । शत्रुतक पहुंचो । (एनं सहस्रियं दम्यं) इस सहस्र गुणोंसे युक्त होनेके कारण हितकारी घरके (गृहमेधिनं भागं जुषध्वं) यज्ञके भागका स्वीकार करो ।

वीरोंके सामर्थ्य बढते रहें, उनके यश भी बढते जांय । उनके घर सहस्रगुणित हित करनेवाले हों और वे यज्ञका भाग यज्ञमें आकर स्वीकारें ।

[१५] (४६७) हे वीर मरुतो ! (वाजिनः विप्रस्य हवीमन्) बलशाली ज्ञानी पुरुषके यज्ञ करनेके समय की हुई (स्तुतस्य) स्तुतिको (यदि इत्था अधीथ) यदि इस तरह तुम जानते हो, तो (सुवीर्यस्य रायः मक्षु दात) उत्तम वीरतासे युक्त धनका दान तुरन्त ही करो। अन्यथा (अन्यः अरावा) दूसरा कोई कंजूस शत्रु (नु चित् यं आदभत्) उसको दबा देगा, विनष्ट कर देगा।

वीरता युक्त धनका दान यज्ञ करनेवालोंको कर दो, धन ऐसा हो कि जिसके साथ वीरता रहे । वीरता धनके साथ न रहीं, तो शत्रु उसको दबा देगा, लूट ले जायगा । इसलिये धनके साथ वीरता अवश्य चाहिये ।

[१६] (४६८) हे वीर मरुतो ! (अत्यासः न) घुडदौडके घोडे की तरह (सु अश्वः यक्ष-दृशः) उत्तम वेगवान् और यज्ञका दर्शन करनेके लिये आये (मर्याः न) मनुष्योंकी तरह जो (शुभयन्त) अपने आपको सुशोभित करते हैं (ते हर्म्येष्ठाः शिशवः न) वे राज प्रासादमें रहनेवाले बालकोंकी तरह (शुभ्राः) सुहानेवाले (पयोधाः वत्सासः न) दूध पीनेवाले बालकके समान (प्रक्रीडन्तः) खेलते रहते हैं ।

१ यक्ष-दृशः मर्याः शुभयन्त— यज्ञ देखनेके लिये जानेवाले लोग सुशोभित होकर जाते हैं । यज्ञका दर्शन करनेके

१७ दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् ४६९
१८ आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः ४७०
१९ इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ४७१
२० इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद् यथा वसवो जुषन्त ।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ४७२

लिये जाना हो तो न्हा धोकर अच्छे वस्त्र पहनकर जाना चाहिये ।

२ हर्म्ये-ष्ठाः शिशवः शुभ्राः—राजप्रासादमें रहनेवाले बालक गौर वर्ण, स्वच्छ अथवा सुन्दर होते हैं। गरीबकी झोपडीमें रहनेवाले बालक गरीब होनेके कारण अस्वच्छ रहते होंगे। यहां वीरोंके लिये जो उपमा दी है वह प्रासादमें रहनेवाले बालकोंकी दी है ।

[१७] (४६९) शत्रुओंका (दशस्यन्तः) नाश करनेवाले तथा (सुमेके रोदसी वरिवस्यन्तः) सुस्थिर द्यावा पृथिवीको आश्रय देनेवाले (मरुतः नः मृळयन्तु) वीर मरुत् हमें सुखी बना देवें। हे (वसवः) बसानेवाले वीरो ! (गोहा नृहा वः वधः) गौका घातक और मनुष्योंका घातक शस्त्र हमसे (आरे अस्तु) दूर रहे। तुम (सुम्नेभिः अस्मे नमध्वं) अपने अनेक सुखके साधनोंके साथ हमारे पास आनेके लिये चल पडो ।

वीर शत्रुका नाश करें और लोगोंको सुखी करें। गौका नाशकर्ता और मनुष्योंका वध करनेवाला समाजसे दूर किया जावे। और सुखसाधन अपने समीप रखे जांय ।

[१८] (४७०) हे (वृषणः मरुतः) बलवान् वीर मरुतो ! (सत्तः सत्राचीं रातिं गृणानः) यज्ञस्थानमें बैठकर तुम्हारे सर्वत्र फैलनेवाले दानकी स्तुति करनेवाला (होता) याजक (वः आ जोहवीति) तुम्हें बुला रहा है। (यः ईवतः गोपाः अस्ति) जो प्रगतिशील संरक्षक वीर है, (सः अद्वयावी) वह अनन्यभावसे युक्त होकर (उक्थैः वः हवते) स्तोत्रोंसे तुम्हारी प्रार्थना करता है ।

१ वीर (वृषणः) बलवान्, वीर्यवान् पराक्रमी हों ।

२ वे (सत्रा-अर्ची रातिं) ऐसा दान दें कि जिसका परिणाम या लाभ सब लोगोंतक पहुंचे ।

३ ईवतः गोपाः—संरक्षण करनेवाला प्रगतिशीलोंका संरक्षण करे ।

[१९] (४७१) (इमे मरुतः तुरं रमयन्ति) ये वीर मरुत् त्वरासे कार्य करनेवालोंको आनन्द देते हैं। (इमे सहः सहसः आनमन्ति) ये वीर अपनी प्रभावी शक्तिके सहारे बलवान् शत्रुको विनम्र करते हैं। (इमे शंसं वनुष्यतः निपान्ति) ये वीर स्तोत्रोंका आदरसे पाठ करनेवालोंका संरक्षण करते हैं और (अररुषे गुरु द्वेषः दधन्ति) शत्रुओंपर बडाभारी द्वेष धारण करते हैं ।

१ तुरं रमयन्ति—त्वरासे कार्य करनेवाले उद्यमशीलको सुख देना चाहिये ।

२ सहः सहसः आनमन्ति—अपनी शक्तिसे साहसी शत्रुको भी विनम्र करना चाहिये ।

३ शंसं वनुष्यतः निपान्ति—प्रशंसनीय कार्य करनेवालोंका संरक्षण होना चाहिये।

४ अररुषे गुरु द्वेषः दधन्ति—शत्रुओंका द्वेष करना उचित है। द्वेष रखना हो तो शत्रुपर ही रखना जाय ।

[२०] (४७२) (इमे वसवः मरुतः) ये बसानेवाले वीर मरुत् (यथा रध्रं चित् जुनन्ति) जैसे समृद्धिवाले मनुष्यके पास जाते हैं, वैसे ही

२१ मा वो दात्रान्मरुतो निरराम मा पश्चाद् दघ्म रथ्यो विभागे ।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति ४७३
२२ सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ४७४
२३ भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित्
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित् सनिता वाजमर्वा ४७५
२४ अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता ।
अपो येन सुक्षितये तरेमाऽध स्वमोको अभि वः स्याम ४७६

(भूमिं चित् जुषन्त) भीख मांगनेके लिये भटकनेवालेके पास भी जाते हैं। हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (तमांसि अप बाधध्वं) अन्धेरेको दूर हटा दो और (अस्मे विश्वं तनयं तोकं धत्त) हमारे पास बाल बच्चोंको सब प्रकारसे सुखमें रखो।

वीर जैसा धनिकोंका संरक्षण करें वैसा गरीबोंका भी संरक्षण करें। वीर जहां जांय वहां अज्ञानान्धकार दूर करें और सब बाल बच्चोंको सुरक्षित रखें।

[२१] (४७३) हे (रथ्यः मरुतः) रथपर बैठनेवाले वीर मरुतो ! (वः दात्रात् मा निः अराम) आपके दानसे हम दूर न रहें। (विभागे पश्चात् मा दध्म) धनको वांटनेके समय हम सबसे पीछे न रहें। हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (वः सुजातं यत् ईं अस्ति) आपका उच्च कोटीका जो भी धन है उस (स्पार्हे वसव्ये) उस स्पृहणीय धनमें (नः आभजतन) हमें अंशभागी करो।

हमें धन मिले और धनमें हम अंशभागी हों।

[२२] (४७४) हे (रुद्रियासः अर्यः मरुतः) महावीरके श्रेष्ठ वीरो ! (यत् शूराः जनासः) जब शूर लोग (यह्वीषु ओषधीषु विक्षु) नदियोंमें, अरण्यमें, प्रजाओंमें (मन्युभिः संहनन्त) उत्साहके साथ मिलकर शत्रुपर हमला करते हैं, (अध पृतनासु) तब ऐसे युद्धोंमें (नः त्रातारः भूतस) हमारे संरक्षक बनो।

[२३] (४७५) हे वीर मरुतो ! तुम (पित्र्याणि भूरि उक्थानि चक्र) पितरोंके संबंधमें बहुतसे स्तोत्र श्रवण कर चुके हो, (वः या पुरा चित् शस्यन्ते) तुम्हारे इन स्तोत्रोंकी पहिलेसे प्रशंसा होती आयी है। (उग्रः मरुद्भिः पृतनासु साळ्हा) उग्र शूर वीर मरुतोंकी सहायतासे युद्धोंमें शत्रुका पराभव करता है, (मरुद्भिः अर्वा वाजं सनिता) मरुतोंकी सहायतासे घोडा भी बलके कार्य करता है।

[२४] (४७६) हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यः असु-रः जनानां विधर्ता) जो अपना जीवन देकर लोगोंका विशेष रीतिसे धारण करता है वह (अस्मे वीरः शुष्मी अस्तु) हमारा वीर बलवान् बने। (येन सुक्षितये अपः तरेम) जिसकी सहायतासे हम उत्तम सुखपूर्वक निवास करनेके लिये दुःखके समुद्रको भी हम तैरकर पार हो जांयगे। और (वः स्वं ओकः अभिस्याम) तुम्हारे मित्र बनकर हम अपने स्वकीय घरमें आनन्दसे प्रसन्न रहेंगे।

१ असु-रः जनानां विधर्ता- जो अपना जीवन देकर सब लोगोंका संरक्षण करता है वह महावीर है।

२ वीरः शुष्मी अस्तु-- वह वीर बलवान हो। जो बलवान होगा वही सब लोगोंका संरक्षण करेगा।

३ सुक्षितये अपः तरेम-- हमारा सुखपूर्ण निवास करनेके लिये हम दुःखके महासागरको भी तैरकर पार हो जांयगे। प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा करके हम सुख प्राप्त करेंगे।

४ स्वं ओकः अभि स्याम-- अपने घरमें हम आनंद प्रसन्न होकर रहें।

२५ तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन् त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४७७

(५७) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् ।

१ मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः ४७८

२ निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः ४७९

३ नैतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ४८०

---

[२५] (४७७) इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, आप, औषधी, वनके वृक्ष, (नः तत् जुषन्त) हमें वह सुख दें कि जिससे हम (मरुतां उपस्थे शर्मन् स्याम) वीरोंके समीप आनंदसे रहें। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणके साधनोंसे सुरक्षित रखो।

[१] (४७८) हे (यजत्राः) पूज्य वीरो! (वः मारुतं नाम मध्वः) आप वीर मरुतोंका नाम मीठासका द्योतक है। ये वीर (युद्धेषु शवसा प्र मदन्ति) युद्धोंमें अपने बलके कारण आनन्दसे लडते हैं। (यत् उग्राः अयासुः) जब ये उग्र वीर शत्रुपर हमला करते हैं, तब (ये उर्वी चित् रोदसी रेजयन्ति) वे विस्तृत द्यावापृथिवीको कंपाते हैं ऐसा प्रतीत होता है। और वे (उत्सं पिन्वन्ति) जलप्रवाहको भरपूर बहा देते हैं। भर देते हैं।

१ **युद्धेषु शवसा मदन्ति**--युद्धोंमें वीर अपने बलसे ही आनन्दित होकर लडते हैं। वीरोंको युद्धसे आनंद होना चाहिये।

२ **उग्राः अयासुः उर्वी रोदसी रेजयन्ति**-उग्रवीर जब शत्रुपर आक्रमण करते हैं तब ये विस्तीर्ण द्यावापृथिवीको वे कंपाते हैं। ऐसा भयंकर आक्रमण करते हैं।

[२] (४७९) हे वीर मरुतो! तुम (गृणन्तं निचेतारः हि) काव्यका गान करनेवालोंको उत्साहित करने हो और (यजमानस्य मन्म प्र-नेतारः) यजमानके स्तोत्रके नेता बनते हो। (पिप्रियाणाः अद्य अस्माकं विदथेषु) प्रसन्न होकर आज हमारे यज्ञोंमें अथवा युद्धोंमें (वीतये बर्हिः आ सदत) अन्न सेवन करनेके लिये आसनोंपर आकर बैठो।

पिप्रियाणाः विदथेषु वीतये बर्हि आसदत-प्रसन्नतासे युद्धोंमें लडनेवाले वीर अन्नसेवन करनेके समय इकट्ठे आकर आसनोंपर बैठते है।

[३] (४८०) (इमे मरुतः) ये वीर मरुत् (रुक्मैः आयुधैः तनूभिः यथा भ्राजन्ते) सुवर्ण मुद्राओंसे, आयुधोंसे और अपने उत्तम शरीरोंसे जैसे प्रकाशते हैं वैसे (न एतावत् अन्ये) दूसरे कोई नहीं। (विश्वपिशः रोदसी पिशानाः) सबको तेजस्वी बनानेवाले ये वीर द्यावा-पृथिवीको भी तेजस्वी बनाते हैं। ये अपनी (शुभे) शोभाके लिये (समानं अञ्जि) समान गणवेशको (कं आ अञ्जते) सुखसे पहनते हैं। अपने शरीरोंको प्रकाशमान करते हैं।

१ **इमे रुक्मैः आयुधैः तनूभिः भ्राजन्ते**- ये वीर भूषणों और आयुधोंसे सजे अपने शरीरोंसे चमकते हैं।

२ **न एतावत् अन्ये**-ऐसे दूसरे कोई तेजस्वी नहीं दिखाई देते हैं।

४ ऋधक् सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद् व आगः पुरुषता कराम ।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ४८१

५ कृते चिदत्र मरुतो रणन्ताऽनवद्यासः शुचयः पावकाः ।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ४८२

६ उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि ४८३

३ विश्वापिशः रोदसी पिशानाः- ये अपने तेजसे मानो सब विश्वको ही तेजस्वी बनाते हैं।

४ शुभे समानं अञ्जि कं आ अञ्जते-अपनी शोभाके लिये सब एक जैसा गणवेश धारण करते हैं इसलिये सभी एक जैसे प्रकाशते हैं।

वीर एक जैसा गणवेश पहने, एक जैसे रहें, सब एक जैसे चमकदार आयुध धारण करें तो वह समता बडा प्रभाव उत्पन्न करती है।

[४] (४८१) हे (यजत्राः) पूजनीय वीरो ! (यत् वः आगः) जो आपके विषयमें पाप हमसे (पुरुषता कराम) पौरुष कर्म करनेके समय हुआ हो, (सा वः दिद्युत् ऋधक् अस्तु) तो भी वह आपकी तेजस्वी तलवार हमसे दूर ही रहे। (वः तस्यां अपि मा भूम) आपके उस शस्त्रके पास भी हम न रहें। (अस्मे वः चनिष्ठा सुमतिः अस्तु) हमारे पास आपकी अन्नदान करनेवाली बुद्धि रहे।

हमसे कुच्छ पाप पौरुषके कर्म करनेके समय भी हुआ हो, तो भी उस अपराधके लिये वीरोंका शस्त्र हमपर न आ जाय। हमारे पास भी उनका शस्त्र कभी न आवे। हमारे पास उनकी अन्नदानकी सुमति ही आ जाये।

[५] (४८२) (अनवद्यासः शुचयः पावकाः) अनिंदनीय शुद्ध और पवित्र (मरुतः) वीर मरुत् (अत्र कृते चित् रणन्त) यहां पर हमारे चलाये इस यज्ञकर्ममें आकर प्रसन्न हों। हे (यजत्राः) पूजनीय वीरो ! (नः सुमतिभिः प्र अवत) हमारी सुरक्षा अपनी उत्तम बुद्धियोंसे करो। (नः वाजेभिः पुष्यसे प्र तिरत) हमें अन्नोंसे पुष्ट होनेके लिये संकटोंसे पार करो।

१ अनवद्यासः शुचयः पावकाः— वीर प्रशंसनीय शुद्ध और पवित्र आचरण करनेवाले हों।

२ कृते रणन्त--धर्मके कर्ममें वे आनन्दित हों। यज्ञादिक कर्मको देखकर वीर प्रसन्न होते रहे।

३ सुमतिभिः प्र अवत—सबका कल्याण करनेकी उत्तम भावनासे सबको सुरक्षित रखो।

४ वाजेभिः पुष्यसे प्र तिरत—अन्नोंसे पुष्ट करनेके लिये लोगोंको सुरक्षित रखो। लोग सुरक्षित होंगे तो वे अन्नका सेवन करके हृष्टपुष्ट हो जायंगे।

वीरोंके आचरण निर्दोष और पवित्र हों। वे दूसरे लोगोंके आचरण पवित्र करें। धर्म कर्मसे उनको आनन्द हो। सद्भावनासे वे लोगोंका संरक्षण करें और लोग अन्न सेवन करके हृष्टपुष्ट हों, इसलिये उनके संकटोंका निवारण भी ये वीर करें।

[६] (४८३) (उत विश्वेभिः नामभिः स्तुतासः) और अनेक नामोंसे प्रशंसित हुए ये (नरः मरुतः) नेता वीर मरुत् (हवींषि व्यन्तु) अन्नोंको सेवन करें। हे वीरो ! (नः प्रजायै अमृतस्य ददात) हमारी प्रजाको अमरपन दो और (सूनृता रायः मघानि जिगृत) सत्य मार्गसे प्राप्त होनेवाले विशाल धन दे दो।

१ नः प्रजायै अमृतस्य ददात-- हमारी प्रजाको अपमृत्युसे दूर रखो, हमारी प्रजा दीर्घजीवी बने ऐसा करो।

२ सूनृता रायः मघानि जिगृत-- सत्यभाषण, धन और वैभव हमें मिले। सत्यमार्गसे प्राप्त होनेवाले धन और वैभव हमें प्राप्त हो।

७ आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन् त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४८४

(५८) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात् ४८५

२ जनूश्चिद् वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः ।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन् भयते स्वर्दृक् ४८६

---

[७] (४८४) हे (स्तुतासः मरुतः) प्रशंसनीय वीर मरुतो ! तुम (विश्वे) सभी वीर (सर्वताता सूरीन् अच्छ ऊती) सर्वत्र फैलनेवाले यज्ञमें ज्ञानियोंकी ओर अपने संरक्षणके साथ (आ जिगात) आओ। ज्ञानियोंको सुरक्षित रखो। (ये त्मना शतिनः नः वर्धयन्ति) ये वीर स्वयं ही हम जैसे सेकडों मानवोंको बढाते हैं। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित करो ।

१ सर्वताता सूरीन् ऊती आजिगात-- सर्वहितकारी कर्ममें ज्ञानियोंके पास जाकर उनका संरक्षण अच्छी तरह करना वीरोंको योग्य है ।

२ ये त्मना शतिनः वर्धयन्ति-- जो स्वयं अकेला अकेला सेकडों मानवोंको बढानेमें सहायता करता है । वह वीर है। ऐसे वीर हमारे सहायक हों ।

[१] (४८५) (यः दैव्यस्य धाम्नः तुविष्मान्) वह वीर दिव्य स्थानको अपने बलसे प्राप्त करता है। (साकं-उक्षे गणाय प्र अर्चत) साथ साथ कार्य करनेवाले वीरोंके संघका सत्कार करो। (उत अवंशात् निर्ऋतेः क्षोदन्ति) और वे वीर वंशविनाश रूप आपत्तिका नाश करते हैं। और (महित्वा रोदसी नाकं नक्षन्ते) अपने महत्त्वसे द्यावापृथिवी को तथा सुखमय स्वर्गको प्राप्त करते हैं।

१ तुविष्मान् दैव्यस्य धाम्नः--जो शक्तिमान है वह दिव्य धामको अपने सामर्थ्यसे प्राप्त करता है ।

२ साकं उक्षे गणाय प्र अर्चत-साथ साथ रहकर अपनी उन्नति करनेवाले वीरोंके संघका सत्कार करो ।

३ अवंशात् निर्ऋतेः क्षोदन्ति-वंशका नाश करनेवाली आपत्तिका वीर ही नाश करते हैं ।

४ महित्वा नाकं नक्षन्ते--वे वीर अपने निज महत्त्वसे स्वर्गधामको प्राप्त करते हैं ।

[२] (४८६) हे (भीमासः तुविमन्यवः) भीषण रूपवाले अत्यन्त उत्साहसे पूर्ण (अयासः मरुतः) शत्रुपर आक्रमण करनेवाले वीर मरुतो ! (वः जनूः त्वेष्येण चित्) तुम्हारा जन्म तेजस्वितासे युक्त है। (उत ये महोभिः ओजसा प्रसन्ति) और जो अपने महत्त्वोंसे और बलसे प्रसिद्ध होते हैं, ऐसे (वः यामन्) तुम वीरोंके शत्रुपर आक्रमण करनेके समय (स्वर्दृक् विश्वः भयते) आकाशकी ओर दृष्टी रखकर सभी लोग भयभीत होते हैं।

१ भीमासः तुविमन्यवः अयासः—वीर भीषण शरीरवाले, अत्यंत उत्साहसे कार्य करनेवाले और शत्रुपर वेगसे आक्रमण करनेवाले हों ।

२ जनूः त्वेष्येण महोभिः ओजसा प्रसन्ति—वीरोंके जन्म तेजस्विता, महत्ता और सामर्थ्यके लिये प्रसिद्ध होते हैं। इन गुणोंसे उनकी प्रसिद्धि होती है। जन्मस्वभावसे ये गुण उनमें होते हैं ।

३ यामन् विश्वः भयते—इन वीरोंके आक्रमणको देखकर सभी भयभीत होते हैं और (स्वः-दृक्) वे आकाशकी ओर देखते ही रहते हैं ।

*

३ बृहद् वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ४८७
४ युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।
युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद् वो अस्तु धूतयो देष्णम् ४८८
५ ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः ।
यत् सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम् ४८९
६ प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४९०

---

[३] (४८७) हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मघवद्भ्यः बृहत् वयः दधात) धनी लोगोंके लिये बडी आयु दो । (नः सुष्टुतिं जुजोषन् इत्) हमारी स्तुतिका सेवन तुम करो । (गतः अध्वा जन्तुं न तिराति) जिस मार्गसे तुम जाते हो वह मार्ग प्राणिमात्रको विनष्ट करनेवाला नहीं होता है । उसी तरह (नः स्पार्हाभिः ऊतिभिः प्रतिरेत) हमारा संवर्धन स्पृहणीय संरक्षणके साधनोंसे तुम करते रहो ।

१ मघवद्भ्यः बृहत् वयः दधात--धनी लोगोंको बडी आयु दो। धनी लोग अल्प आयुमें मरते हैं, इसलिये उनको ऐसे मार्गसे चलाओ कि जिससे उनकी आयु अतिदीर्घ हो जाय । धनी लोगोंके पास उत्तम (वयः) अन्न होता है, उसके सेवनसे उनको (बृहत् वयः) बडी आयु प्राप्त होनी चाहिये । परंतु वे अल्पायु होते हैं, इसलिये वह दोष उनसे दूर हो ।

२ गतः अध्वा जन्तुं न तिराति— वीर जिस मार्गसे जाते हैं उस मार्गसे जानेसे किसीका भी नाश नहीं होता है ।

३ स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः तिरेत—स्पृहणीय संरक्षक साधनोंसे हमारी- सबकी- सुरक्षा करो । किसीका नाश न हो, हानि न हो, रोगादि न बढें और सब लोग आनन्द प्रसन्न हों ।

[४] (४८८) हे मरुत वीरो ! (युष्मा-ऊतः) तुम्हारेसे संरक्षित हुआ (विप्रः शतस्वी सहस्री) ज्ञानी सैंकडों और सहस्रों धनोंसे युक्त होता है । (युष्मा-ऊतः अर्वा सहुरिः) तुम्हारे द्वारा संरक्षित हुआ घोडा भी शत्रुका पराजय करनेमें समर्थ होता है । (युष्मा-ऊतः सम्राट् वृत्रं हन्ति) तुम्हारेसे संरक्षित हुआ सम्राट् घेरनेवाले शत्रुका भी नाश करता है । हे (धूतयः) शत्रुको हिलानेवाले वीरो ! (वः तत् देष्णं प्र अस्तु) तुम्हारा वह दान हमारे लिये पर्याप्त हो ।

जिसको वीरोंका संरक्षण प्राप्त होता है वह सुरक्षित होता है और प्रभावी भी होता है ।

[५] (४८९) (मीळ्हुषः रुद्रस्य तान् आ विवासे) बलवान रुद्रके उन वीरोंकी मैं सेवा करता हूं । (मरुतः नः कुवित् पुनः नंसन्ते) वीर मरुत हमें अनेक प्रकारसे और बार बार सहायता देते हैं । हमारे साथ मिलकर कार्य करते हैं । (यत् सस्वर्ता) जिन गुप्त अथवा (यत् आविः) जिन प्रकट पापोंके कारण वे वीर (जिहीळिरे) हमपर क्रोध प्रकट करते आये हैं उन (तुराणां एनः अव ईमहे) शीघ्रता करनेवालोंसे हुआ पाप हम अपनेसे दूर करते हैं ।

जो भी पाप गुप्तरीतिसे अथवा प्रकटरीतिसे होता हो, उसको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये ।

[६] (४९०) (मघोनां सुस्तुतिः) धनाढ्य वीरोंकी यह सुन्दर स्तुति है । (सा वाचि प्र) वह हमारे मुखमें सदा रहे । (मरुतः इदं सूक्तं जुषन्त) वीर मरुत् इस सूक्तका सेवन करें । सुनें हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! हमारे (द्वेषः आरात् चित्) द्वेष्टाओंको हमसे दूर करो । और (युयोत)

(५९) १२ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। १-११ मरुतः; १२ रुद्रः (मृत्युविमोचनी ऋक्)। प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ७-८ त्रिष्टुप्, ९-११ गायत्री, १२ अनुष्टुप्।

१ यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन् मरुतः शर्म यच्छत ४९१
२ युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ४९२
३ नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ४९३
४ नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः।
अभि व आवर्त सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ४९४

उनको पृथक करो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो।

वीर बलवान् बनें और वे जनसमाजके द्वेष्टा और शत्रुओंको दूर करें। समाजको सुरक्षित रखें।

[१] (४९१) हे (देवासः) देवो! (यं इदं इदं त्रायध्वे) जिसे तुम इस तरह सुरक्षित रखते हो। और (यं च नयथ) जिसे तुम अच्छे मार्गसे ले जाते हो, हे अग्ने! हे वरुण! हे मित्र! हे अर्यमन्! तथा हे (मरुतः) वीर मरुतो! (शर्म यच्छत) उसे सुख दे दो।

मनुष्यको संरक्षण चाहिये और सुख चाहिये।

[२] (४९२) हे देवो! (युष्माकं अवसा) तुम्हारे संरक्षणसे सुरक्षित होकर (प्रिये अहनि ईजानः) शुभ दिवसमें यज्ञ करनेवाला (द्विषः तरति) शत्रुओंको लांघ जाता है। शत्रुओंका पराभव करता है। (यः वः वराय) जो तुम्हारे श्रेष्ठ वीरके लिये (महीः इषः विदाशति) बहुतसा अन्न देता है, (सः क्षयं प्र तिरते) वह विनाशको लांघता है, वह सुरक्षित होता है।

जो वीरोंके द्वारा सुरक्षित होता है, उसके शत्रु दूर होते हैं और वह अपने घरबारको संरक्षित पाता है।

[३] (४९३) हे (मरुतः) वीर मरुतो! (वसिष्ठः वः चरमं चन) यह वसिष्ठ तुम्हारे अन्तिम वीरका भी (नहि परि मंसते) तिरस्कार नहीं करता। तुम सबका संमान करता है। (अद्य अस्माकं सुते) आज हमारे सोमयागमें सोमरस निकालनेपर तुम (कामिनः विश्वे सचा पिबत) अपनी इच्छाके अनुसार सब एक स्थानपर बैठकर उस रसका पान करो।

कोई भी किसी वीरका अपमान न करे। सबका समान रीतिसे संमान करे और सबको समान रीतिसे खानपान देवे।

[४] (४९४) हे (नरः) नेता वीरो! तुम (यस्मै अराध्वं) जिसको संरक्षण देते हैं, वह (वः ऊतिः पृतनासु नहि मर्धति) तुम्हारी संरक्षण करनेकी शक्तिको युद्धोंमें कम नहीं करता। वह उसके लिये पर्याप्त होती है। (वः नवीयसी सुमतिः) तुम्हारी नवीन सुमति (अभि अर्वत) हमारी ओर आवे। (पिपीषवः तूयं आयात), सोमपान करनेकी इच्छासे तुम हमारे पास आ जाओ। और यथेच्छ रसपान करो।

वीरोंकी शक्ति युद्धोंमें बढती है। युद्धोंके समय वीर लोगोंका उत्तम संरक्षण करते हैं।

५ ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये ।
इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मो ष्व१न्यत्र गन्तन ४९५

६ आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु ।
अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै ४९६

७ सस्वश्चिद्धि तन्व१ः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ४९७

८ यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान् प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ४९८

९ सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ४९९

[५] (४९५) हे (घृष्वि-राधसः मरुतः) संघर्षमें सिद्धि पानेवाले वीरो ! (अन्धांसि पीतये सु ओ यातन) अन्नरसका सेवन करनेके लिये तुम मिलकर यहां आओ। (हि वः इमा हव्या ररे) क्योंकि तुम्हें ये अन्न मैं देता हूं । अतः तुम अन्यत्र (मो सु गन्तन) कहीं भी न जाओ ।

संघर्षमें सिद्धि पानेवाले वीर हों। युद्धोंमें वीर विजयी होनेवाले हों ।

[६] (४९६) (स्पार्हाणि वसु दातवे) स्पृहणीय धन देनेके लिये (नः अवित) हमारे पास आओ। (नः बर्हिः आ सीदत च) हमारे आसनों पर आकर बैठो। हे (अस्रेधन्तः मरुतः) अहिंसक वीरो ! (इह मधौ सोम्ये) यहां इस मधुर सोमरस पानमें (स्वाहा) अपना भाग स्वीकार करो और (मादयाध्वे) आनन्दित हो जाओ ।

वीर लोगोंको धनका दान करें और अन्नरसोंका स्वीकार करें। उनका पान करके आनंदित हो जांय ।

[७] (४९७) (सस्वः चित् हि) गुप्त स्थानपर बैठकर भी अपने (तन्वः शुम्भमानाः) शरीरोंको सुशोभित करनेवाले ये वीर (नील पृष्ठाः हंसासः) नील पीठवाले हंसोंके समान (सवने मदन्तः) सवनमें सोमपान करके आनंदित होते हैं। (रण्वाः नरः न) रमणीय नेताओंकी तरह (आ अपप्तन्) हमारे पास ये आ जांय और आपका (विश्वं शर्धः) सब बल (मा अभितः नि सेद) मेरी चारों ओर रहे।

वीर गणवेश धारण करके सुशोभित हो जांय। और वे सब लोगोंका संरक्षण करें। उनका बल इसी कार्यके लिये है। लोग उनको आदरसे उत्तम खानपान देकर उनका संमान करें। उसके सेवनसे वे आनंदित होते रहें।

[८] (४९८) हे (वसवः मरुतः) बसानेवाले वीर मरुतो ! (दुर्हृणायुः तिरः) अतीव क्रोधी तथा तिरस्कारके योग्य (यः नः चित्तानि) जो हमारे चित्तोंका (अभि जिघांसति) चारों ओरसे नाश करना चाहता है, (सः द्रुहः पाशान्) उस द्रोहकारीके पाशोंसे (प्रति मुचीष्ट) हमें तुम मुक्त करो और द्रोहकारीको (तं तपिष्ठेन हन्मना) अति तप्त आयुधसे (हन्तन) मार डालो।

जो शत्रु हमारे अन्तःकरणोंका नाश करना चाहता है, उसके पाशोंसे छूटना चाहिये, वे पाश शत्रुपर (प्रतिमुञ्च) उलटा देने चाहिये और उसी शत्रुका नाश करना चाहिये।

[९] (४९९) हे (सान्तपनाः) शत्रुओंको ताप देनेवाले तथा (रिशादसः मरुतः) शत्रुका नाश करनेवाले वीर मरुतो ! तुम (इदं तद् हविः जुजुष्टन) इस हविष्यान्नका सेवन करो और (युष्माकं ऊती) तुम्हारी संरक्षणकी शक्ति बढाओ।

१०	गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः	५००
११	इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे	५०१
१२	त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।	
	उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्	५०२

वीर शत्रुको ताप देनेवाले तथा उनका नाश करनेवाले होने चाहिये । उनको अपनी शक्ति बढानी चाहिये ।

[१०] (५००) हे (गृहमेधासः) गृहस्थधर्मका पालन करनेवाले (सु-दानवः मरुतः) उत्तम दानी मरुत् वीरो! तुम (युष्माकं ऊती आगत) अपनी संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे पास आओ और हमसे (मा अप भूतन) दूर न चले जाओ ।

वीरोंको गृहस्थधर्मका पालन करना चाहिये और दान भी देना चाहिये । इसी तरह अपने संरक्षणके सामर्थ्यसे सबकी सुरक्षा भी करनी चाहिये ।

[११] (५०१) (स्वतवसः) अपने स्वकीय बलसे युक्त (कवयः) ज्ञानी (सूर्यत्वचः) सूर्यके समान तेजस्वी (मरुतः) वीर मरुत् (इह इह यज्ञं वः) यहां यज्ञ करके तुम्हें मैं (आवृणे) वरण करता हूं, पास लाता हूं, सन्तुष्ट करता हूं ।

वीर अपने बलसे बढें, ज्ञानी हों, अनाडी न रहें, देश-काल-परिस्थितिका ज्ञान प्राप्त करें, सूर्यके समान तेजस्वी हों ।

[१२] (५०२) (सुगन्धिं) उत्तम यशस्वी (पुष्टिवर्धनं) पोषण साधनोंका संवर्धन करनेवाले (त्र्यंबकं) तीन प्रकारसे संरक्षण करनेवाले देवकी (यजामहे) हम उपासना करते हैं । यह देव (ऊर्वारुकं इव) ककडीको मुक्त करते हैं उस तरह (मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय) मृत्युके बंधनसे हमें मुक्त करे, परंतु (अमृतात् मा) अमरत्वसे कभी न छुडावे, परंतु हमें अमरत्वसे संयुक्त करे ।

(त्रि-अंबकः) तीन प्रकारके भयोंसे संरक्षण होना चाहिये, अपने ही प्रमादोंका भय, राष्ट्रके दोषोंका भय और जागतिक नैसर्गिक विपत्तियोंका भय । इन तीन भयोंसे संरक्षण होना चाहिये ।

(पुष्टि-वर्धनः) जिनसे शरीरादिका पोषण होता है उन अन्नादि साधनोंका राष्ट्रमें संरक्षण करना चाहिये और संवर्धन भी करना चाहिये । ये पुष्टिके साधन सबको मिले ऐसा करना चाहिये ।

(सु-गन्धिः) अपना सुवास-अपने सत्कर्मका यश चारों ओर फैलना चाहिये । शत्रुका (गन्धनं) नाश करना चाहिये ।

मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय—मृत्युके बंधनसे मुक्त होना चाहिये । अपमृत्युका भय दूर करना चाहिये । राष्ट्रके लोगोंकी औसद आयु बढानी चाहिये ।

मा अमृतात्—अमरपनसे अपने आपको कभी पृथक् नहीं करना चाहिये । ईश्वरभाव, ब्रह्मभाव प्राप्त करना चाहिये ।

उर्वारुकं इव—फल परिपक्व होनेके पश्चात् स्वयं छुट जाता है, बन्धनमें नहीं रहता, उस तरह स्वयं परिपक्व होकर बंधनसे छुटना चाहिये ।

व्यक्ति और राष्ट्रकी उन्नतिके उपदेश ये हैं । इनको आचरणमें ढालना चाहिये ।

यह मंत्र मृत्यु भय दूर करनेवाला है । इसलिये अपमृत्युका भय दूर करनेके लिये इसका पाठ या जप करते हैं ।

॥ यहां मरुत् प्रकरण समाप्त हुआ ॥

[४] मित्रावरुण-प्रकरण

(६०) १२ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। १ सूर्यः, २-१२ मित्रावरुणौ। त्रिष्टुप्।

१ यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन् मित्राय वरुणाय सत्यम्।
वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्तः ५०३

२ एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन्।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ५०४

---

[१] (५०३) हे सूर्य ! (उद्यन् अद्य यत्) **उदय होते ही तुम आज हमें (अनागाः ब्रवः) निष्पाप करके घोषित करो। हे (अदिते) अदीन देव ! (वयं देवत्रा) हम देवोंके बीचमें (मित्राय वरुणाय सत्यं) मित्र और वरुणके लिये सच्चे रूपसे प्रिय (स्याम) हों। हे (अर्यमन्) आर्य मनवाले देव! हम (गृणन्तः) स्तुति गाते हुए (तव प्रियासः स्याम) तुम्हारे लिये प्रिय हों।**

१ '**सूर्यः**' सूर्य देव सबको प्रेरणा देता है, कर्म करनेका उत्साह बढाता है। सूर्यका उदय होनेके पूर्व चोर ,डाकू आदि कुकर्म-कारी लोग उपद्रव मचाते हैं, और सूर्यका उदय होते ही यज्ञ आदि सत्कर्म शुरू होते हैं। अतः सूर्य सत्कर्मका प्रेरक है।

२ **सूर्य ! उद्यन् अद्य अन्-आगाः ब्रवः**—सूर्य ! तुम उदय होते ही हमें निष्पाप करके घोषित करो। हम निष्पाप हों, हम पाप कर्म कभी न करें।

३ **वयं देवत्रा सत्यं**-देवोंमें हम सत्य करके प्रसिद्ध हों। हम सत्यनिष्ठ हैं ऐसी सर्वत्र प्रसिद्धि हो, हम सचमुच सत्यका पालन करें।

४ **हे अर्यमन् ! तव प्रियासः स्याम**-आर्य मन-वालोंको हम प्रिय हों। जो श्रेष्ठ मनवाले हैं उनको हम प्रिय हों, ऐसे हम श्रेष्ठ बन जांय।

हम आज ही निष्पाप बने। अच्छा कार्य करना हो तो हम आज ही शुरू करें। मनुष्योंको निष्पाप होना चाहिये। दीनता छोडनी चाहिये। '**सूर्य**' सबको सत्कर्ममें प्रेरित करता है, '**अ-दितिः**' अदीन है, श्रेष्ठ है, सबका '**मित्र**' है, सबमें '**वरुणः**' वरिष्ठ है, श्रेष्ठ है, '**अर्य-मा**' आर्य मनवाला है, श्रेष्ठ मनवाला है, स्वामीभावसे युक्त मनवाला है, दासभावसे सदा दूर है। इस तरहके देवको हम प्रिय हों। यह तब हो सकता है कि जब हम " सत्कर्म प्रेरक, अदीन, मित्र, वरिष्ठ, आर्य मनवाले " होंगे। इसलिये उपासक इन गुणोंको अपने अन्दर धारण करें।

[२] (५०४) हे **मित्र और वरुण ! (एषः स्यः) यह है वह (नृचक्षाः सूर्यः) मानवोंके आचरणोंको देखनेवाला सूर्य (उभे अभि ज्मन् उदेति) दोनों द्यावापृथिवीके बीचके अन्तरिक्ष मार्गसे जानेवाला उदयको प्राप्त होता है। यह (विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः) सब स्थावर जंगम जगत्का संरक्षण करनेवाला है। यह (मर्त्येषु ऋतु वृजिना च पश्यन्) मानवोंके सुकृतों और दुष्कृतोंको देखता है।**

मानव धर्म- मनुष्योंके व्यवहारोंका निरीक्षण किया जाय, सब लोगोंका संरक्षण करनेका प्रबंध उत्तम प्रकारसे हो और अच्छे और बुरेकी परीक्षा करनेका प्रबंध हो। इस तरह व्यवस्था करनेसे मनुष्योंका कल्याण होगा।

जगत्में परमेश्वरद्वारा बनी हुई व्यवस्था कैसी वै वह देखिये—

१ **एषः नृ-चक्षाः सूर्यः उभे ज्मन् उदेति**—यह मनुष्योंके सत्य असत्य व्यवहारका निरीक्षण करनेवाला सूर्य है, वह द्यु और पृथिवीके बीचके मार्गसे चलता है और सबके

३ अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद् या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ५०५

व्यवहार देखता है । मानवोंके व्यवहारोंका निरीक्षण करनेवाला एक अधिकारी यहां विश्वमें नियुक्त किया गया है । राज्यशासनमें ऐसा एक अधिकारी रहे कि जो लोगोंके व्यवहारोंका निरीक्षण करे ।

२ विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः—यह सूर्य सब स्थावर जंगमका संरक्षक है । स्थावर जंगम, सत् असत् आदि सबका वह संरक्षण करता है । राज्यमें एक अधिकारी ऐसा रहे कि जो राष्ट्रके सब स्थावर जंगम पदार्थोंका तथा सब प्रजाजनोंका संरक्षण करे ।

३ मर्त्येषु ऋजु वृजिना च पश्यन्—मनुष्योंमें सरल कौन हैं और कुटिल कौन हैं, इसका निरीक्षण करनेवाला यह अधिकारी है । राष्ट्रके राज्यशासनमें ऐसा एक अधिकारी हो जो सरल व्यवहार करनेवाले और कुटिल व्यवहार करनेवाले लोगोंका निरीक्षण करे, और निश्चय करे कि ये लोग ऐसे सरल हैं और ये कुटिल, ठग या डाकू हैं । कई स्थान पर सत्य असत्य, ऋजु वृजिन, सुर असुर, देव राक्षस ऐसे शब्दोंद्वारा यही भाव बताया है । उन स्थानोंके मन्त्रोंका अनुसंधान करना यहां आवश्यक है ।

यहां राष्ट्रशासनके व्यवहारके लिये तीन अधिकारियोंकी नियुक्ति करनेके विषयमें कहा है, (१) सर्व साधारण निरीक्षक, (२) सबका संरक्षक, (३) लोगोंके सरल और कपटी व्यवहारोंकी जांच करनेवाला । राष्ट्रका शासन व्यवहार करनेके लिये जो अनेक अधिकारी आवश्यक होते हैं, उनमें इन तीन अधिकारियोंकी नियुक्तिकी सूचना इस मंत्रने दी है ।

विश्वशासनमें ईश्वरने क्या प्रबंध किया है, यह वर्णन मन्त्रमें है । उसको देखकर मनुष्य अपने राष्ट्रप्रबंधमें वैसी व्यवस्था करे। मन्त्रके अर्थसे यही प्रेरणा मनुष्यको मिलती है ।

[३] (५०५) हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण देवो ! (सधस्थात् सप्त हरितः अयुक्त) साथ साथ देवोंके रहनेके स्थानसे-अन्तरिक्षसे आनेके लिये-सात घोडियोंको सूर्यने अपने रथको जोता है। (याः घृताची ईं सूर्यं वहन्ति) जो जलको देती हुई सूर्यको ले चलती हैं । (यः युवाकुः धामानि जनिमानि) जो तुम दोनोंको संतुष्ट करनेकी इच्छा करनेवाला सब स्थानों और जन्मोंको (यूथा इव) गोपालकके समान (संचष्टे) सम्यक् रीतिसे देखता है ।

'**सध-स्थं**' (सह-स्थानं)—सब देवोंका मिलकर एक स्थान है, जहां वे रहते हैं । यह देवसभाका स्थान है । इसी तरह मनुष्योंका भी एक स्थान होना चाहिये, जहां सब लोग आकर मिलें, बातें करें, उन्नतिका विचार करें । प्रत्येकका रहनेका स्थान पृथक् पृथक् हो, परंतु सबका सभास्थान एक हो, वहां वे लोग समान अधिकारसे आयें, बैठें और विचार करें ।

१ 'सप्त हरितः अयुक्त'-सूर्यके रथको सात घोडे जोते जाते हैं । सूर्य किरणमें सात रंग हैं, वर्षके छः ऋतु और अधिक मासका सातवाँ ऋतु मिलकर वर्षके सात ऋतु हैं, ये भी सात घोडे माने हैं । आत्मा सूर्य है, उसका रथ शरीर है । इसको इन्द्रियोंके घोडे जोते हैं । दो आंखें, दो नाक, एक वाक् ये सात इंद्रियाँ ज्ञान रथके ज्ञानी घोडे हैं । दो हाथ, दो पांव, गुदा, शिश्न और भक्षण करनेका मुख ये सात कर्म रथके सात घोडे हैं । इस तरह सप्त अश्वकी कल्पना करते हैं ।

२ घृताचीः हरितः—जल देनेवाले घोडे । सूर्यके किरण ये घोडे हैं । किरणोंसे बाष्प, बाष्पके मेघ, मेघोंसे वृष्टी । इस तरह ये घोडे-किरण वृष्टी करते हैं । '**घृत—अचीः हरितः**' का अर्थ पसीनेसे तर हुए घोडे, ऐसा भी होता है । रथको जोते घोडे पसीना आनेसे तर हुए हैं और रथको खींच रहे हैं । वीरके रथके घोडे ऐसे वेगसे जांय, कि वे पसीनेसे तर हों ।

३ युवा—कुः— यह आपके साथ मित्रता करनेवाला वीर है । एक मित्रके साथ स्नेह संबंध रखता है और दूसरा वरुण-वरिष्ठके साथ स्नेह रखता है । मनुष्य भी अपना मित्रताका संबंध बढावे और श्रेष्ठोंके साथ संबंध जोडे ।

४ धामानि जनिमानि वेद—स्थानों और जन्मोंको जानता है । '**धाम**' — स्थान, घर, देश । इनको जानना चाहिये । '**जनिमानि**'-जन्म, उत्पत्ति, जीवन कैसा है

४ उद् वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ५०६
५ इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ५०७
६ इमे मित्रो वरुणो दूळभासो ऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः ।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ५०८

यह भी जानना चाहिये । किस देशका और किस कुलका जन्म है यह भी विदित होना चाहिये ! अपना जिनसे संबंध है उनके धाम और जन्म जानने चाहिये ।

५ **यूथा इव धामानि जानिमानि वेद**— गौओंके झुण्डका पालक जिस तरह गौके धाम और जन्म जानता है। यह गौ किस देशकी और किस वंशकी है यह गौका पालक जानता है और इस कारण प्रत्येक गौका वांशिक मूल्य जानता है। उस तरह राष्ट्रका शासक अथवा नेता अपने देशके वीरोंके धामों और स्थानोंको जाने । ' गौ ' भी ' **घृताची** ' (घृत-अची) है । अधिक प्रमाणमें घी देनेवाली । जो अधिक दूध देती है और जिसके दूधमें अधिक मात्रामें घी रहता है ।)

[४] (५०६) **(वां पृक्षासः मधुमन्तः उत् अस्थुः) आपके लिये पुरोडाश आदि अन्न मीठे बनाये हैं । (सूर्यः शुक्रं अर्णः अरुहत्) सूर्य शुभ्र प्रकाशके साथ आकाशमें चढा है । (यस्मै आदित्याः अध्वनः रदन्ति) जिस सूर्यके लिये आदित्य मार्गको बनाते हैं । मित्र, वरुण, अर्यमा ये वे परस्पर प्रीति करनेवाले आदित्य हैं ।**

आदित्य बारह महिने हैं जिनके नाम मित्र, वरुण, अर्यमा आदि हैं । इन महिनोंमें दक्षिणायन उत्तरायणके अनुसार सूर्यका मार्ग बदलता रहता है, इसीलिये कहा है कि ये आदित्य सूर्यका मार्ग बनाते हैं ।

[५] (५०७) **(इमे भूरेः अनृतस्य चेतारः सन्ति) ये आदित्य असत्य मार्गके विनाशक हैं । (इमे मित्रः वरुणः अर्यमा ऋतस्य दुरोणे वावृधुः) ये मित्र वरुण अर्यमा आदि आदित्य सत्यके स्थानमें बढनेवाले हैं । ये (आदितेः पुत्राः अदब्धाः शग्मासः) अदितिके पुत्र किसीसे न दब जानेवाले और सुख बढानेवाले हैं ।**

१ **भूरेः अनृतस्य चेतारः**- असन्मार्गके विनाशक वीर हों ।

२ **ऋतस्य दुरोणे ववृधुः**— सत्यके स्थानको बढानेवाले वीर हों । सत्यका पक्ष ले और असत्यके पक्षका त्याग करें ।

३ **अदितेः पुत्राः शग्मासः अदब्धाः**— अदीन वीर माताके वीर पुत्र सुख बढानेवाले और न दब जानेवाले हों । शत्रुके दबावसे न दबें और सुख बढानेके व्यवसाय करनेवाले तरुण वीर हों ।

[६] (५०८) **(इमे मित्रः वरुणः) ये मित्र वरुण, अर्यमा आदि आदित्य स्वयं (दूळभासः) किसीसे दबाये जानेवाले नहीं हैं । (अचेतसं दक्षैः चित् चितयन्ति) अज्ञानीको भी अपने सामर्थ्योंसे ज्ञानी बनाते हैं । और (सुचेतसं क्रतुं अपि वतन्तः) उत्तम बुद्धिमान और महान पुरुषार्थ करनेवाले उद्यमी पुरुषको प्रगति संपन्न करते हैं, (अंहः चित् तिरः) पापीको पीछे गिराते और सुकर्म कर्ताको (सुपथा नयन्ति) उत्तम मार्गसे उन्नतिको पहुंचाते हैं ।**

मानवधर्म- **वीरोंको उचित है कि वे कदापि किसी शत्रुके दबावसे न दबें । अज्ञानियोंको अनेक उपायोंसे ज्ञान संपन्न बना दें और सुस्तोंको पुरुषार्थी और प्रयत्नशील बना दें । पापियोंको पीछे ढकेल दें और पुण्य कर्म कर्ताको उत्तम मार्गसे उन्नतिके शिखरपर पहुंचावें ।**

१ **इमे दूळभा** (दुः-दभाः)- ये वीर माताके वीर पुत्र स्वयं किसी भी शत्रुसे न दबनेवाले हैं । किसी भी शत्रुके कैसे भी दबावसे न दबनेवाले वीर हों ।

२ **अ-चेतसं दक्षैः चितयन्ति**- ये वीर अज्ञानीको अपने बलोंसे ज्ञानवान बना देते हैं । अज्ञानीको अनेक प्रकारके ज्ञान देनेके साधन इनके पास हैं । वीर अपनी शक्तिका उपयोग करके अज्ञानियोंको ज्ञानी बना दें ।

७ इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति ।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ५०९

३ सु—चेतसं क्रतुं वतन्तः—उत्तम ज्ञानी कुशल कर्मकर्ताको प्रगति पथपर ले जाते हैं। उन्नति युक्त करते हैं। वीर ज्ञानी बनें और उत्तम कर्म करके अपनी प्रगति करें।

४ अंहः चित् तिरः नयन्ति—पापियोंको पीछे ढकेल देते हैं। उनको प्रतिष्ठाके स्थानपर नहीं रखते। पापी लोगोंका तिरस्कार करते हैं।

५ सुक्रतुं सुपथा नयन्ति—उत्तम पुण्य कर्म करनेवालेको उत्तम मार्गसे ले जाते हैं। उन्नतिको पहुंचाते हैं।

राष्ट्र शासनसे इस तरहका प्रबंध होता रहे। राष्ट्र शत्रुके दबावसे न दबे। ज्ञान प्रसार द्वारा सब लोगोंको ज्ञान संपन्न तथा कर्म कुशल बना देवें। पापीको दण्ड मिले, पुण्यवानोंका प्रगतिका मार्ग खुला रहे। राष्ट्र शासनका प्रबंध इस तरह हो।

[७] (५०९) (इमे दिवः पृथिव्याः) ये द्युलोक और पृथिवीको जाननेवाले वीर (अनि-मिषा अचेतसं चिकित्वांसः) विलंब न करते हुए अज्ञानीको ज्ञानवान बनाते हैं और (नयंति) शुभ मार्गसे ले जाते हैं। शुभ कर्ममें प्रवृत्त करते हैं। (प्रव्राजे चित् नद्यः गाधं अस्ति) निम्न प्रदेशमें भी नदियां गहरी होती हैं। संकटके समयमें भी अधिक कष्ट होते हैं। अतः वे वीर (अस्य विष्पि-तस्य नः पारं पर्षन्) इस व्यापक कर्मके पार हमें ले जांय। इसकी उत्तम समाप्ति करनेमें हमारे सहायक हों।

१ इमे दिवः पृथिव्याः अचेतसं अनिमिषा चिकित्वांसः नयन्ति—ये ज्ञानी वीर द्युलोक और पृथिवीको जाननेवाले अज्ञानीको अविलंबसे ज्ञानी बनाते हैं, और उन्नतिके मार्गसे चलाते हैं। अज्ञानीको ज्ञानसंपन्न बनाना चाहिये और उसको शुभ कर्म करनेमें प्रवृत्त करना चाहिये।

जिससे द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवीके पदार्थोंकी विद्या जानी जाती है वह विद्या है। अध्यात्म, आधिभूत और अधि-दैवत संबंधके जो कर्म करने होते हैं वह कर्म मार्ग है। ज्ञानसे इस कर्म मार्गमें मनुष्यकी प्रवृत्ती होती है। मनुष्यके ज्ञानमें इस त्रिलोकीके पदार्थोंकी विद्या समाविष्ट होती है। और कर्ममें व्यक्ति और समष्टिके संबंधके कर्तव्योंका समावेश होता है।

अज्ञानी (**अ-चेतः**) वे हैं कि जो इस विद्याको नहीं जानते और '**चिकित्वान्**' वे हैं कि जो इस विद्याको जानते हैं। जो जानते हैं वे इस विद्याको जाननेवालोंको सिखा देवें और ज्ञान तथा कर्म मार्गोंमें प्रवीण बना देवें।

२ अचेतसं चिकित्वांसः नयन्ति—अज्ञानीको ज्ञानी बनाकर शुभ मार्गसे ले जाते हैं। यह है जनताकी उन्नतिका क्रम। जो ज्ञान जिसके पास है वह दूसरोंको सिखाकर उनको ज्ञानी तथा कर्ममें कुशल बनाना उसका कर्तव्य है। राष्ट्रके शासन प्रबंधसे यह सब सुव्यवस्थित होना चाहिये।

३ प्रव्राजे चित् नद्यः गाधं अस्ति—निम्न प्रदेशमें भी नदियां अधिक गहरी होती हैं। उनसे पार होना वहां भी कठिन होता है। संकटके समयमें भी अधिक कष्टोंके समय उपस्थित होते हैं। उनको डरना योग्य नहीं है। उनसे पार होनेका उपाय ढूंढना चाहिये।

४ अस्य विष्पितस्य पारं नः पर्षन्—इस विशेष गहरी नदीके पार हमें ये वीर ले चलें। '**वि-स्पित**' विशेष गहरी अथवा विशेष विस्तीर्ण। इसके पार पहुंचना चाहिये। ज्ञानी वीर इसके पार स्वयं जाते हैं और दूसरोंको भी पहुंचाते हैं। संकटोंके पार पहुंचना चाहिये।

विस्तीर्ण और गहरी नदीके पार होना कठिन है। परंतु प्रयत्नसे वीर पुरुष नदीके पार होते ही हैं। इसी तरह दुःखके पार मनुष्य जाते हैं। यह सब प्रयत्नसे साध्य होनेवाला है।

दिवः पृथिव्याः चिकित्वांसः—द्युलोकमें सूर्य, सूर्य-किरण, प्रकाश, तारागण आदि पदार्थ हैं, अन्तरिक्षमें वायु, विद्युत्, मेघ, वर्षा आदि पदार्थ हैं, पृथिवीपर भूमि, जल, औषधि, अन्न आदि पदार्थ हैं। इनके गुणधर्मोंके ज्ञानका नाम विद्या है। यह ज्ञान दुःख दूर करनेवाला है। त्रिलोकीमें सहस्रों पदार्थ हैं और इनके ज्ञानसे नाना प्रकारकी विद्याएँ सिद्ध होती हैं जो मानवोंकी उन्नति करनेवाली हैं। राष्ट्रके शिक्षा विभागके द्वारा इस ज्ञानका प्रसार राष्ट्रमें होना चाहिये।

८ यद् गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे ।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ५१०
९ अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद् वरुणध्रुतः सः ।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम् ५११
१० सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते ।
युष्मद् भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ५१२

[८] (५१०) (यत् गोपावत् भद्रं शर्म) जो संरक्षण करनेवाला कल्याणपूर्ण सुख (अदितिः मित्रः वरुणः) अदीन मित्र, वरुण, आर्यमा आदि देव (सुदासे यच्छन्ति) उत्तम दान करनेवाले के लिये देते हैं, (तस्मिन्) उस कर्ममें (तोकं तनयं आदधानाः) बालबच्चोंको हम धारण करते हैं, हम उस कर्ममें पुत्रोंको प्रेरित करते हैं। हम (तुरासः) त्वरासे काम करनेके समय (देव-हेळनं मा कर्म) देवोंको क्रोध आने योग्य कर्म हम कभी न करें।

मानवधर्म- मनुष्य ऐसा सुख प्राप्त करनेका यत्न करे कि जिससे अपनी सुरक्षा हो, कल्याण हो, उन्नति हो। परंतु कभी विपरीत परिणाम न हो । ऐसे शुभ कर्मोंमें अपने बालबच्चोंको प्रवीण बना दें । शीघ्रतासे कार्य करनेसे ऐसा कोई कुकर्म अपने हाथसे होने न दें कि, जिससे ज्ञानियोंको बुरा लगे ।

१ गोपावत् भद्रं शर्म सुदासे यच्छन्ति—संरक्षण करनेवाला, कल्याण करनेवाला और अधिक उच्च अवस्था देनेवाला सुख उसको प्राप्त होता है कि जो उत्तम दान सुपात्रमें देता है । जिससे अपना नाश होनेवाला हो, जो हानि करनेवाला हो, जिससे हीन अवस्था होती हो वैसा सुख मिलता हो तो भी उसको लेना योग्य नहीं है ।

२ तस्मिन् तोकं तनयं आदधानाः--उक्त प्रकारके श्रेष्ठ सुखदायक कर्ममें हम अपने बालबच्चोंको प्रवीण बनायेंगे । हम सुशिक्षा द्वारा अपने बालबच्चोंको उत्तम कर्मोंमें ही प्रवृत्त करेंगे।

३ तुरासः देव-हेळनं कर्म मा— हम सत्वर कर्म करनेकी गडबडमें देवोंको बुरा लगने योग्य कुकर्म कभी न करें । प्रत्युत् देवोंको संतोष होने योग्य कर्म ही करते रहें ।

[९] (५११) (होत्राभिः वेदिं अव यजेत) जो वाणीसे वेदीपर बैठकर भी स्तुति न करे, यजन न करे, (सः) वह (वरुणध्रुतः काः रिपः चित्) वरुण देवसे हिंसित होकर किनकिन दुर्गतियोंको प्राप्त होता है ? अर्थात् उसकी बुरी अवस्था हो जाती है । (अर्यमा द्वेषोभिः परि वृणक्तु) अर्यमा शत्रुओंसे हमें दूर रखे । हे (वृषणौ) बलवान् मित्रा-वरुणो ! (सुदासे उरुं लोकं) उत्तम दान करने-वालेके लिये उत्तम स्थान दो । उसकी योग्यता उच्च कर दो ।

१ यः वेदिं अवयजेत सः रिपः चित्— जो यज्ञ नहीं करता, हवन या स्तुति प्रार्थना नहीं करता उसकी दुर्गति होती है । अतः मनुष्य ईश्वरकी उपासना अवश्य करे ।

२ अर्यमा द्वेषोभिः परि वृणक्तु— अर्यमा शत्रुओंको हमसे दूर रखे अथवा हमें शत्रुओंसे दूर रखे । शत्रुका आक्रमण हमपर न हो ।

३ सुदासे उरुं लोकं— उत्तम दान देनेवालेके लिये विस्तृत श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हो ।

[१०] (५१२) (एषां समृतिः सस्वर् चित् हि त्वेषी) इन वीरोंकी संगति गुप्त रहती है और तेजस्वी भी होती है । ये (अपीच्येन सहसा सहन्ते) गुप्त बलसे शत्रुको पराभूत करते हैं । हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (युष्मत् भिया रेजमानाः) तुम्हारे भयसे शत्रु कांपने लगते हैं। (दक्षस्य महिना चित् नः मृळत) अपने बलकी महिमासे हमें सुखी करो ।

११ यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ५१३
१२ इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५१४

(६१) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ उद् वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ५१५

---

१ एषां सम्नृतिः सस्व त्वेषी च— इन वीरोंके साथ होनेवाली मित्रता गुप्त रहती है, स्थायी होती है और तेजस्वी भी होती है। मित्रता, संगति, स्थायी, परस्परका संरक्षण करनेवाली और तेजस्वी होनी चाहिये।

२ अपीच्येन सहसा सहन्ते— सुरक्षित बलसे वीर शत्रुका पराभव करते हैं। ऐसा बल चाहिये कि जिससे शत्रुका पराभव करना सहज हो जाय।

३ युष्मत् भिया रेजमानाः— वीरोंके भयसे शत्रु कांपते रहे। भयभीत हो जांय।

४ दक्षस्य महिना नः मृळत— अपने बलकी महिमासे वीर हम सबको सुखी करें। शक्तिका उपयोग अच्छी तरह किया तो उससे जो सुरक्षा होती है उससे सुख होता है।

[११] (५१३) (वाजस्य सातौ) अन्नके दानके समय तथा (परमस्य रायः) श्रेष्ठ धनका दान करनेके समय (यः ब्रह्मणे सुमतिं आ यजाते) जो स्तोत्रपाठमें अपनी बुद्धिको लगाता है। उस (मन्युं) मननीय स्तोत्रका (अर्यः मघवानः) कर्म प्रेरक धनवान मित्रादि देवगण (सीक्षन्त) सेवन करते, श्रवण करते हैं। और उनके (उरु क्षयाय सुधातु चक्रिरे) विशाल निवासके लिये उत्तम स्थान बनाते हैं।

जो लोग प्रभुकी उपासना करते हैं, उनकी बुद्धि शुभ कर्ममें प्रेरित होती है और उससे उसका निवास सुखमय होता है।

[१२] (५१४) हे (देवा) मित्रावरुण देवो! (इयं पुरोहितिः) यह उपासना (यज्ञेषु युवभ्यां अकारि) यज्ञोंमें आप दोनोंके लिये की है। (विश्वानि दुर्गा नः तिरः पिपृतं) सब आपत्तियोंको हमसे दूर करो। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) और तुम कल्याण साधनोंसे सदा हमें सुरक्षित करो।

विश्वानि दुर्गा नः तिरः पिपृतं— सब विपत्तियोंको दूर करना चाहिये। **दुर्ग**— दुःखमय जीवन। यही दूर करने योग्य है।

[१] (५१५) हे (वरुणा) मित्र और वरुण! (देवयोः वां चक्षुः) आप दोनों देवोंकी आंख जैसा यह (सूर्यः सुप्रतीकं ततन्वान्) सूर्य उत्तम प्रकाशको फैलाता हुआ (उत् एति) उदयको प्राप्त होता है। (यः विश्वा भुवनानि अभि चष्टे) जो सब भुवनोंको देखता है। (सः मर्त्येषु मन्युं आ चिकेत) वह मनुष्योंमें रहे मनके भावको जानता है।

१ यहां ' वरुणा ' यह एक ही देवका नाम सामान्य अर्थमें दोनोंके उद्देश्यसे प्रयुक्त किया गया है।

२ मित्र और वरुणका आंख सूर्य है ऐसा यहां (**देवयोः वां चक्षुः सूर्यः**) कहा है। अर्थात् मित्र तथा वरुणसे यहां सूर्यको छोटा बताया है। मित्रावरुणोंकी आंख-एक इंद्रिय-सूर्य है।

३ सूर्यः विश्वा भुवनानि अभिचष्टे— वह सूर्य सब भुवनोंका निरीक्षण करता है। यह विश्वका निरीक्षण करनेका अधिकारी है।

४ सः मर्त्येषु मन्युं आ चिकेत— वह सूर्य मनुष्योंके अन्तःकरणमें जो भाव होता है उसको जानता है। '**मन्युः**'- (मनसि भवः) मनका भाव, अन्तःकरणके विचार, उत्साह, स्तोत्र, मननीय विचार।

२ प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत् क्रत्वा न शरदः पृणैथे ५१६
३ प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू ।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ५१७
४ शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।
अयन् मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ५१८

---

[२] (५१६) हे मित्रावरुणो ! (वां मन्मानि) आपके मननीय स्तोत्र (सः ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः) वह सत्यनिष्ठ अति विद्वान् बहुश्रुत ज्ञानी (प्र इयर्ति) बोलता है। प्रेरित करता है। फैलाता है। (यस्य ब्रह्माणि) जिसके ज्ञानस्तोत्रोंकी (सुक्रतू अवाथः) उत्तम कर्म करनेवाले तुम दोनों सुरक्षा करते हो। तथा (यत्) जिन कर्मोंको (क्रत्वा) करके (शरदः आ पृणैथे) अनेक संवत्सरोंतक परिपूर्णता प्राप्त करते रहते हैं।

मानवधर्म- मनुष्य सत्यनिष्ठ, बहुश्रुत और विशेष ज्ञानसंपन्न बनें। उत्तम कर्म करें और अपने राष्ट्रीय महाकाव्योंका संरक्षण करें। इन काव्योंके अनुसार शुभ कर्म करके मनुष्य सेंकडों वर्षोंतक अपने आपको पूर्ण बनाते जांय।

१ ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः— सत्यनिष्ठ, बहुश्रुत ज्ञानी '**मन्मानि प्र इयर्ति**'-मननीय काव्योंका प्रसार करता है। काव्य करके जगत्में उनको फैलाता है। लोग वे पढें और अपने आचरण सुधारें और श्रेष्ठ बनें।

२ सुक्रतू ब्रह्माणि अवाथः— उत्तम कर्म करनेवाले वीर इन स्तोत्रों-देव काव्यों-का संरक्षण करते हैं। इन वीरोंसे सुरक्षित हुए ये वीर काव्य राष्ट्रका तारण करते हैं।

३ यत् क्रत्वा शरदः आ पृणैथे— जिसके अनुसार कर्म करके अनेक वर्षोंतक मनुष्य पूर्णता प्राप्त करते रहते हैं।

[३] (५१७) हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! तुम दोनों (उरोः पृथिव्याः) इस अति विस्तीर्ण पृथिवीके चारों ओर पहुंचे हो और (ऋष्वात् बृहतः दिवः प्र) अपनी गतिसे बडे द्युलोकतक भी पहुंचे हो, इनसे तुम बडे हो। हे (सु-दानू) उत्तम दान देनेवाले वीर ! तुम (ओषधीषु विक्षु स्पशः दधाते) औषधियों और प्रजाओंमें रूपका धारण करते हो, उनमें सौंदर्य रखते हो। और (ऋधक् यतः अनिमिषं रक्षमाणा) सत्य मार्गसे जानेवालोंकी आंखे बंद न करते हुए अर्थात् अविश्रांत रीतिसे सतत संरक्षण करते हो।

मित्र और वरुण इस विस्तीर्ण पृथिवीसे और बडे द्युलोकसे भी विशाल हैं, बडे हैं, सर्वत्र पहुंचे हैं।

'**सु-दानू**'-ये उत्तम दाता हैं, उदार हैं, विशाल अन्तः-करणवाले हैं।

ऋधक् यतः अनिमिषं रक्षमाणा— सत्यमार्गसे जो जाते हैं उनका सतत संरक्षण करते हैं। सदाचारियोंका संरक्षण करना चाहिये। राष्ट्रमें सदाचारियोंकी संख्या बढानी चाहिये और उनको संरक्षण मिलना चाहिये।

[४] (५१८) (मित्रस्य वरुणस्य धाम शंस) मित्र और वरुणके तेजस्वी स्थानका वर्णन करो। इनका (शुष्मः) बल (महित्वा रोदसी बद्बधे) अपने महत्त्वसे द्युलोक और पृथिवीको बांधता है, अपने स्थानमें रख देता है। (अयज्वनां मासाः अवीराः आयन्) यज्ञ न करनेवालोंके महिने पुत्र-रहित होकर चले जांय। (यज्ञ-मन्मा वृजनं प्र तिराते) यज्ञ करनेमें जिनका मन लगा होता है वे अपने बलको विशेष बढाते रहते हैं।

१ मित्रस्य वरुणस्य धाम शंस— मित्र और वरुणके तेजस्वी धामका वर्णन करो। मित्रवत् व्यवहार करनेवाले और वरिष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ व्यवहार करनेवालोंकी स्तुति गाओ। इनके काव्योंका गान करो।

५ अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम् ।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ५१९
६ समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः ।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ५२०

१ शुष्मः महित्वा रोदसी बद्वधे— इनका बल अपने महत्त्वसे आकाशसे पृथिवीतक फैलता है । इस विश्वमें उनका यश फैलता है कि जो मित्रभाव तथा वरिष्ठताका भाव बढाते है ।

३ अयज्वनां मासाः अवीराः आयन्— यज्ञ न करनेवालोंके महिने अथवा वर्ष वीरता हीन अवस्थामें जांय । उनका संरक्षण करनेके लिये कोई वीर नहीं मिलेंगे । क्योंकि यज्ञसे वीर पूजा और संगठन होता है । इसलिये यज्ञकर्ताके पास वीर पूजे जाते हैं और संगठन भी अच्छा बढता है। इसलिये यज्ञकर्ताका संरक्षण करनेके लिये उनके पास वीर बढते हैं। वे सुरक्षित होते हैं और उनको वीर पुत्र भी होते हैं । पर जो यज्ञ नहीं करते, जो स्वार्थी हैं उनकी अधोगति होती है ।

४ यज्ञमन्मा वृजनं प्र तिराते— यज्ञ करनेमें जिनका मन लगा रहता है वे अपना बल बढाते हैं । उनके पास वीर होते हैं, वे सुरक्षित होकर उनको उत्तम वीर संतान भी होती है।

' वृजनं '—बल, जो शत्रुओंका वर्जन करता है, शत्रुओंको दूर रखता है । बल, धन, सामर्थ्य ।

[५] (५१९) **हे (अमूरा विश्वा वृषणौ) विशेष ज्ञानी व्यापक और बलवान देवो ! (त्वां इमा) आपके ये स्तोत्र हैं, (यासु चित्रं न ददृशे) जिनमें आश्चर्य नहीं दीखता और (न यक्षं) न इनमें तुम्हारा सत्कार दीखता है । क्योंकि यह वर्णन यथार्थसे भी कम हो रहा है, तुम्हारी महिमा इससे बहुत अधिक है । (जनानां द्रुहः अनृता सचन्ते) जनोंके द्रोही शत्रुही असत्य प्रशंसा करते हैं । (त्वां निण्यानि अचिते न अभूवन्) आपके गुप्त पराक्रम भी अज्ञान बढानेवाले नहीं होते । वे भी ज्ञान बढाते हैं ।**

मानवधर्म- मनुष्य अपना ज्ञान बढावें, बल बढावें और सर्वत्र जाकर निरीक्षण करें, सुरक्षा करें और वहां ज्ञानका प्रचार करें । लोगोंने कितनी भी प्रशंसा और पूजा की तो वह इनके महत्त्वकी दृष्टीसे कम ही हुई है ऐसा प्रतीत होने योग्य अपना महत्त्व बढावें । इतने श्रेष्ठ बनें । जनताके वे शत्रु हैं कि जो असत्यकी प्रशंसा करते हैं। इसलिये कोई असत्य स्तुति न करे। असत्य प्रशंसा यह द्रोह है ऐसा मानें। कोई कार्य अज्ञान बढानेवाला न हो, प्रत्येक प्रयत्नसे ज्ञानकी वृद्धि होती रहे ।

१ अमूरा विश्वा वृषणौ— ये मित्र और वरुण अमूढ हैं, सब स्थानमें जानेवाले हैं और सामर्थ्यवान हैं । इस तरह मनुष्योंको ज्ञानसंपन्न, सर्वत्र प्रवेश करनेवाले और बलवान होना चाहिये ।

२ वां इमा यासु चित्रं न ददृशे न यक्षं— इनकी इस स्तुतिमें न विलक्षणता है और न इनकी विशेष पूजा ही है । क्योंकि इनका सामर्थ्य इतना महान है कि कितनी भी हम इनकी प्रशंसा करें वह न्यून ही होगी और हमसे इनका सत्कार कम ही होगा । मनुष्योंको उचित है कि वे अपना सामर्थ्य इतना बढावें कि लोगोंने की हुई प्रशंसा तथा पूजा कम ही प्रतीत हो ।

३ जनानां द्रुहः अनृता सचन्ते— जनताके द्रोही जो होते हैं, वे ही असत्य स्तुति करते हैं । अपने लाभके लिये अयोग्यकी भी प्रशंसा करते हैं वे समाजके शत्रु हैं ।

४ वां निण्यानि अचिते न अभूवन्— तुम्हारे किये गुप्त या छोटे कृत्य भी अज्ञान बढानेवाले नहीं होते, अर्थात् ज्ञान बढानेवाले होते हैं । यही आदेश है कि मनुष्य प्रयत्न करे और अपने प्रत्येक कृत्यसे, प्रत्येक कर्मसे ज्ञानकी वृद्धी हो ऐसा करे ।

[६] (५२०) **हे (मित्रावरुण) मित्र और वरुण ! (त्वां यज्ञं नमोभिः सं महयं उ) आपके यज्ञका नमस्कारोंसे हम महत्त्व बढाते हैं। इसलिये (सबाधः वां हुवे) बाधित होकर आपको मैं**

७ इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५२१

(६२) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १-३ सूर्यः; ४-६ मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ उत् सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत् पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ५२२

बुलाता हूँ । बाधा दूर करनेके लिये बुलाता हूं । (वां ऋचसे) अपनी प्रशंसा करनेके लिये (इमानि नवानि मन्मानि कृतानि) ये नवीन मननीय स्तोत्र किये हैं । ये (ब्रह्म जुजुषन्) स्तोत्र आपको प्रसन्न करें ।

मित्र और वरुण जो इस विश्व रचना और धारणाका महान यज्ञ कर रहे हैं, उसको जानना और लोगोंमें प्रकट करना चाहिये । और लोगोंको प्रेरित करना चाहिये कि वे उस तरहके यज्ञ करें और महत्त्वको प्राप्त करें जैसा महत्त्व इनको प्राप्त हुआ है ।

अपनी बाधा दूर करनेके लिये प्रभुकी उपासना करनी चाहिये । इस उपासनासे ही प्रभुकी प्रसन्नता होती है और लोगोंकी-उपासकोंकी भी उन्नति होती है ।

[७] (५२१) यह मंत्र ५१४ के स्थानपर है । वहीं पाठक इसका अर्थ देखें ।

[१] (५२२) (सूर्यः बृहत् पुरु अर्चींषि उत् अश्रेत्) यह सूर्य बडे विशाल तेजोंका, ऊपर होता हुआ, आश्रय करता है । (मानुषाणां विश्वा जनिम) मनुष्योंके सब जीवनोंको वह देखता है, । (दिवा रोचमानः समः ददृशे) दिनके समय प्रकाशता हुआ एक जैसा सबको दीखता है । वह सूर्य (क्रत्वा) सबका निर्माता (कृतः) परमात्माने स्वयं निर्माण किया है, वह (कर्तृभिः सुकृतः भूत्) यज्ञ कर्ताओंद्वारा सत्कारित हुआ है ।

मानवधर्म- मनुष्यका उदय होनेके बाद उसका तेज बढता रहे, उसको श्रेष्ठ, कनिष्ठ मनुष्योंकी परीक्षा करनेकी शक्ति हो, उसका बर्ताव सबके साथ समान हो, तथा वह बडे बडे पुरुषार्थ करनेवाला बने और अनेक कुशल पुरुषोंके साथ रहकर बडे विशाल कर्म उत्तम प्रकार निभानेवाला बने।

१ सूर्यः बृहत् पुरु अर्चींषि उत् अश्रेत्— सूर्य उदय होकर जैसा जैसा ऊपर चढता है, वैसा वैसा उसका तेज बढता जाता है । इसी तरह मनुष्य भी विद्या समाप्त करके जब जगत्के व्यवहारमें उदयको प्राप्त होता है, तब उसका भी प्रकाश बढता है। इस तरह मनुष्य ऊपर चढे और अधिक तेजस्वी होता जाय।

२ सूर्यः मानुषाणां विश्वा जनिम-- सूर्य मनुष्योंके सब प्रकारके जीवनोंको देखता है । इसी तरह राष्ट्रका निरीक्षण करनेवाला अधिकारी लोगोंके जीवन चारित्र्यका निरीक्षण करे ।

३ दिवा रोचमानः समः ददृशे— दिनके समय प्रकाशनेवाला सूर्य सबको समान रूपसे तेजस्वी दिखाई देता है । इसी तरह मनुष्य अधिकारपर चढा हुआ सबके साथ समान रूपसे बर्ते, पक्षपात न करे ।

४ क्रत्वा कृतः कर्तृभिः सुकृतः भूत्— यह सूर्य सबका निर्माण करनेवाला है, संस्कारोंसे प्रभुने इसको बनाया है, पश्चात् यह अनेक कर्ताओंको अपने साथ रखता है और उत्तम कर्म करनेवाला बनता है । इसी तरह मनुष्य भी अच्छे (क्रत्वा) कर्म करनेवाला हो, (कृतः) विद्याके तथा सदाचारके संस्कारोंसे सुसंस्कृत हुआ हो, पश्चात् (कर्तृभिः सुकृतः) अनेक कार्य-निपुण कर्ताओंके साथ शुभ कर्मोंको करनेवाला बने । इस तरह मनुष्यकी श्रेष्ठ अवस्था होती है ।

इस मन्त्रमें सूर्यका वर्णन है, उस वर्णनको मनुष्यके जीवनमें घटानेसे मनुष्यकी उन्नति किस तरह होती है इसका ज्ञान होता है ।

मनुष्य (क्रत्वा = कृतिवान्) कुशलतासे कर्म करनेमें समर्थ होना चाहिये । वह (कृतः) बनाया जाना चाहिये, राष्ट्रकी शिक्षा प्रणालीमें उत्तम संस्कारोंसे वह संपन्न होना चाहिये । और इसके पश्चात् उसने अपने साथ (कर्तृभिः सुकृतः) अनेक कर्म कुशल लोगोंको इकट्ठा करके अनेकानेक बडे बडे विशाल क्षेत्रके

२ स सूर्य प्रति पुरो न उद् गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च ५२३
३ वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ५२४
४ द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ५२५
५ प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ५२६

कार्य करने चाहिये । जैसा जैसा उसका उदय होता जायगा वैसा वैसा उसका तेज बढता जाना चाहिये । उसको मनुष्योंकी परीक्षा करनेकी शक्ति चाहिये । उसका व्यवहार सबके साथ समान चाहिये । छल, कपट, पक्षपात आदिसे वह दूर रहना चाहिये ।

[१] (५२३) हे सूर्य ! (सः नः प्रति पुरः) वह तुम हमारे सामने (एभिः स्तोमेभिः) इन स्तोत्रोंसे तथा (एतशेभिः एवैः) गमनशील अश्वोंसे (उत् गाः) ऊपर चढ और (नः) हमारे संबन्धमें मित्र, वरुण, अर्यमा तथा अग्निके पास (अनागसः प्र वोचः) निष्पाप भावकी घोषणा करो ।

सूर्य उदय होकर देखे कि हम निष्पाप हैं, ऐसा देखकर हम निष्पाप हैं ऐसी घोषणा करे ।

[२] (५२४) (शु-रुधः ऋतावानः) शोकके दुःखको दूर करनेवाले सत्यनिष्ठ वरुण मित्र और अग्नि ये देव (नः सहस्रं विरदन्तु) हमें सहस्रों प्रकारका धन दें । तथा (चन्द्राः नः उपमं अर्क आयच्छन्तु) वे आल्हाददायक देव हमें स्तुत्य और प्रशंसनीय धन दें । तथा (स्तवानाः नः कामं पूपुरन्तु) स्तुति करनेपर हमारी कामनाओंको पूर्ण करें ।

१ '**शु-रुधः**' —शोकके कारणको दूर करनेवाले, दुःखको दूर करनेवाले तथा '**ऋतावानः**' —सत्यनिष्ठ, सत्य मार्गसे जानेवाले ये देव हैं । मनुष्य उनके सदृश बनें अर्थात् वे शोक दुःख दूर करनेका कार्य करें और सत्यमार्गसे जांय । '**नः सहस्रं वि रदन्तु**' —हमें सहस्रों प्रकारका धन दें । जगत्में धन अनेक प्रकारका है, घर, पुत्र, मित्र, पैसा, सुख-साधन, शक्ति, संस्कारसंपन्न मन आदि अनेक प्रकारका धन है । वह हमें मिले ।

२ **चन्द्राः उपमं अर्कं नः आयच्छन्तु**— आनन्द देनेवाले हमें उत्तम पूजनीय धन दें । हमें धन चाहिये वह ऐसा हो कि जो प्रशंसनीय हो और सत्कार करने योग्य हो ।

३ **नः कामं पूपुरन्तु**—हमारी कामनाको पूर्ण करें । हमारी इच्छानुसार हमें सुख प्राप्त हों ।

[४] (५२५) हे (अदिते ऋष्वे द्यावाभूमी) अखंडनीय और विशाल द्यु और भूलोको ! (नः त्रासीथां) हमारा संरक्षण करो । (ये सुजनिमानः वां जज्ञुः) जो उत्तम कुलीन हम हैं वे तुम्हें जानते हैं । हम (वरुणस्य हेळे मा भूम) वरुणके क्रोधमें न जांय तथा (वायोः मा) वायुके क्रोधमें न जांय और (नृणां) मनुष्योंके क्रोधमें भी हम न जांय, (प्रियतमस्य मित्रस्य मा) प्रिय मित्रके क्रोधमें न जांय । अर्थात् इनका क्रोध होनेयोग्य बुरा आचरण हमसे न हो ।

[५] (५२६) हे मित्रवरुणो ! आप अपने (बाहवा प्र सिसृतं) बाहुओंको फैलाओ । (नः जीवसे) हमारे दीर्घ जीवन के लिये (नः गव्यूतिं घृतेन आ उक्षतं) हमारी गायें जानेके मार्गको जलसे सिंचन करो । (नः जने आ श्रवयतं) हमें लोगोंमें कीर्तिमान बनाओ । हे (युवाना) तरुणो ! (मे इमा हवा श्रुतं) मेरे इन स्तोत्रोंको सुनो ।

६ नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५२७

(६३) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १-४ सूर्यः, ५ सूर्य-मित्रावरुणाः, ६ मित्रावरुणौ अर्यमा च । त्रिष्टुप् ।

१ उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक् तमांसि ५२८

२ उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य ।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन् यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ५२९

भावार्थ- बहुत दान देते रहो। अपने दीर्घ जीवनके लिये गौओंको उत्तम जल और हरा घास दो, गौकी पालना करके गोदुग्ध और घृतका सेवन करो और ऐसा उत्तम आचरण करो कि जिससे जगत्में यश फैले ।

१ बाहवा प्र सिस्रृतं— तुम अपने बाहुओंको फैलाओ और बहुत दान दो ।

२ जीवसे गव्यूतिं घृतेन आ उक्षतं— दीर्घ जविनके लिये गायोंके आनेजानेके मार्गोंको जलसे सिंचन करो । गौओंको भरपूर शुद्ध जल तथा हरा घास मिले ऐसा करो। गौके दूध और घीके भरपूर मिलनेसे मनुष्यकी आयु बढती है । दही और छाछके पीनेसे भी आयु बढ जाती है ।

३ जने नः आश्रवयतं— लोगोंमें हमारी कीर्ति फैले ।

[६] (५२७) मित्र वरुण और अर्यमा ये तीनों देव (नु नः त्मने तोकाय वरिवः दधन्तु) हमारे पुत्र-पौत्रोंके लिये योग्य श्रेष्ठ धन दें। (नः विश्वा सुपथानि सुगा सन्तु) हमारे सब जानेके मार्ग हमारे लिये सुगम हों । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित रखो।

१ त्मने तोकाय वरिवः दधन्तु— अपने पुत्र-पौत्रोंके लिये श्रेष्ठ धन रखो । स्वयं अपने धनका विनाश न करो, अपने बाल-बच्चोंकी पालनाके लिये भी उसे रखो। '**वरिवः**' - श्रेष्ठ धन, उत्तमोत्तम धन ।

२ नः विश्वा सुपथानि सुगा सन्तु— हमारे सब प्रगति करनेके मार्ग सुगम हों । हम सहजहीसे प्रगति कर सकें ऐसे वे मार्ग हमारे लिये सुगम हों ।

[१] (५२८) (सूर्यः सुभगः) यह सूर्य उत्तम भाग्यसे संपन्न है (विश्वचक्षाः) सबका निरीक्षण करनेवाला (मानुषाणां साधारणः) सब मनुष्योंके लिये समान (मित्रस्य वरुणस्य चक्षुः देवः) मित्र और वरुणकी आंख जैसा यह देव (यः चर्म इव तमांसि समविव्यक्) जो चमडोंकी तरह अन्धकारोंको समेटता है वह (उत् उ एति) उदय हो रहा है।

सूर्य भाग्यवान्, ऐश्वर्यवान है, सब विश्वका निरीक्षक है, सब मनुष्योंके साथ समान रीतिसे बर्तनेवाला है, मित्र वरुणोंकी आंख जैसा है । यह सूर्य देव जैसे बिछानेके चमडे लपेट कर अलग रखते हैं, उस तरह सब अन्धकारको यह समेट लेता, हटा देता है । बिस्तरा लपेटनेकी, चमडे लपेटनेकी काव्यमय उपमा यहां अन्धकारका आवरण दूर करनेके लिये दी है ।

[२] (५२९) (जनानां प्रसविता) सब लोगोंका प्रेरक (महान् केतुः) बडे ध्वजके समान सबको ज्ञान देनेवाला (अर्णवः) जीवन दाता (सूर्यस्य) यह सूर्य (उत् उ एति) उदयको प्राप्त होता है । (समानं चक्रं परि आविवृत्सन्) सबके लिये एकही कालचक्रको घुमाता हुआ, (यत् धूर्षु युक्तः एतशः वहति) जिस चक्रको धुरामें जाता हुआ अश्व चलाता है ।

सूर्य (जनानां प्रसविता) सब लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करता है । दिनका प्रकाश होते ही ईश्वरस्तुति, प्रार्थना, उपासना, यज्ञ, याग आदि अनेक विध सत्कर्म शुरू होते हैं । अन्यान्य विद्याध्ययन आदि भी सत्कर्म सूर्योदय होते ही शुरू होते हैं । जबतक रात्री रहती है तबतक निशाचर, चोर, डाकू आदि दुष्टोंके बुरे

३ विभ्राजमान उषसामुपस्थाद् रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।
एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम ५३०
४ दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।
नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ५३१
५ यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः ।
प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ५३२

कर्म चलते है। सूर्य उदय होते ही वे बंद होते और अच्छे कर्म शुरू होते हैं।

महान् भगवा ध्वज

इसलिये कहा है कि यह सत्कर्मका सूचक (महान् केतुः) बडा भारी ध्वज है। यह सूर्योदयके समयका सूर्य यदि ध्वज है तो यह निःसंदेह ही भगवा ध्वज है। सूर्योदयके सूर्यका रंग भगवा होता है।

यह '**अर्णवः**' जलनिधि है। जीवनका निधि ही यह सूर्य है। सब स्थिरचर जगत्का यह आत्मा है। यही सबका जीवन दाता है। यह '**उदेति**' उदयको प्राप्त होता है।

१ '**समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्**' — एक ही कालचक्र सबके लिये समान रूपसे वह चलाता है। इसलिये उसको 'एक चक्र रथ' कहते हैं। सूर्यका कालचक्र सबके लिये एक जैसा है। इसका सूचक यह एक चक्र रथ है।

२ '**धूर्षु युक्तः एतशः वहति**' — धुरामें जोडा घोडा इसको ढोता है। यहां '**धूर्षु**' अनेक धुराओंमें '**एतशः**' एक घोडा जोता है ऐसा लिखा है। पर यह असंभव है। इसलिये अनेक घोडे जोते हैं ऐसा मानना युक्त है। '**सप्ताश्व**' इसका नाम है। सात घोडे सूर्यके रथको जोते है ऐसा वर्णन अन्यत्र है। कई स्थानोंपर एक घोडा जोता है ऐसा भी है।

सूर्यका आदर्श मनुष्यके सामने है। मनुष्य अन्य जनोंमें सत्कर्मकी प्रेरणा करे, शुभ कर्मका सूचक ध्वज जैसा उनके प्रमुख स्थानमें रहे, सबके लिये एक ही रूपसे रहे, छल, कपट न करे, पक्षपात न करे।

[३] (५३०) यह (विभ्राजमानः उषसां उपस्थात्) विशेष प्रकाशता हुआ सूर्य उषाओंके सामने (रेभैः अनुमद्यमानः उत् एति) स्तोत्र-पाठकोंके स्तोत्रोंसे आनन्द प्रसन्न होता हुआ उदयको प्राप्त होता है। (एषः देवः सविता मे चच्छन्द) यह सविता देव मेरी कामनाकी पूर्ति करता है। (यः **समानं धाम न प्रमिनाति**) जो अपने समान **तेजस्वी स्थानको** संकुचित नहीं करता।

सूर्य उदय होनेके समय उपासक लोग वैदिक स्तोत्र गाते हैं। उसके पश्चात् सूर्यका उदय होता है। इस उदयके समय गानेका यह स्तोत्र है। यह सविता देव सबको आनन्द प्रसन्न करता है। इसका (धाम समानं) स्थान सब मानवोंके लिये समान है। इस सूर्यमें किसीका पक्षपात नहीं है। यह अपना प्रकाश किसीके लिये अधिक और किसीके लिये कम नहीं करता, सब पर समानतया समान प्रकाश डालता है।

[४] (५३१) **यह सूर्य (दिवः रुक्मः उरुचक्षाः) द्युलोकको शोभा देनेवाला, विशेष तेजस्वी (दूरे अर्थः) दूर विराजमान, (तरणिः भ्राजमानः) तारणकर्ता और तेजस्वी (उत् एति) उदित होता है। (नूनं) यह निःसंदेह है कि (सूर्येण प्रसूताः जनाः) सूर्यसे प्रेरित हुए लोग अपने प्राप्तव्य (अर्थानि अयन् अपांसि कृण्वन्) अर्थोंको प्राप्त करके उनसे कर्मोंको करते हैं।**

सूर्य जैसा द्युलोकका अलंकार है वैसा ही मनुष्य अपने समाजका अलंकार बने। यह दूर रहकर भी अर्थ सिद्ध करता है, तारण करता तेजस्वी होता है, इसी तरह मनुष्य योग्य मार्गसे अपने अर्थकी सिद्धि करे, अपने राष्ट्रका तारण करे और सबको प्रकाश देता रहे, मनुष्य सूर्यको देखकर उनके गुण अपने अन्दर ढाले और अर्थोंको प्राप्त करके ऐसे कर्म करे कि जिनका परिणाम सब लोगोंपर हो सकता है।

[५] (५३२) **(यत्र अमृताः अस्मै गातुं चक्रुः) जिस स्थानमें देवोंने इस सूर्यके लिये मार्ग बनाया**

६ नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५३३

(६४) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त ५३४
२ आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ५३५

है। वह (पाथः) मार्ग (श्येनः न दीयन्) शीघ्रगामी श्येनकी तरह अन्तरिक्षमेंसे (अनु एति) जाता है। हे मित्र और वरुण ! (सूरे उदिते सति) सूर्यका उदय होनेपर (वां) तुम्हारी (नमोभिः उत हव्यैः) नमस्कारों और हवन द्रव्योंसे (प्रति विधेम) हम परिचर्या करेंगे।

[६] (५३३) यह मंत्र ५२७ के स्थानपर है। पाठक इसे वहां देखें और अर्थ जानें।

[१] (५३४) (दिवि रजसः पृथिव्यां क्षयन्ता) तुम दोनों द्युलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा पृथिवीमें रहते हो, (वां घृतस्य निर्णिजः प्र दीदरन्) तुम दोनों जलके रूपको बनाते हो। जल तुमने बनाया है। (नः हव्यं) हमारे हव्यका (मित्रः) मित्र (सुजातः अर्यमा) उत्तम कुलमें जन्मा अर्यमा और (सुक्षत्रः राजा वरुणः जुषन्त) उत्तम क्षात्र बलसे युक्त राजा वरुण सेवन करें।

ये मित्र तथा वरुण द्युलोक अन्तरिक्ष तथा पृथिवीपर रहते हैं, तीनो लोकोंमें व्यापते हैं। ये दोनों (**घृतस्य निर्णिजः प्रदीदरन्**) जलको रूपवान बनाते हैं। जल नेत्रसे दिखाई देता है यह इनके कारण है। जल पहिले वायु रूप था। मित्र और वरुण ये दो वायु हैं, वे अग्निके समक्ष मिलते हैं और जलको प्रकट करते हैं। वेदमें अन्यत्र भी कहा है—

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसं ।
धियं घृताचीं साधन्ता ॥ (ऋ० १।२।७)

" बलवान मित्र वायु और शत्रुनाशक वरुण वायुको (हुवे) मैं लेता हूं, परस्परका मेल करता हूं, ऐसा करनेसे ये दोनों (घृत-अचीं धियं साधन्ता) जल उत्पन्न करनेका कर्म सिद्ध करते हैं। "

इस तरह मित्र और वरुणोंका कर्म जल निर्माण करना है। विज्ञान शास्त्री इनको दो वायु कहते हैं। वरुण प्राण वायु और मित्र जलज वायु है। वैज्ञानिक इसका अधिक विचार करके निर्णय करें।

१ सुजातः अर्यमा— यहां अर्यमाको ' सुजात ' अर्थात् उत्तम कुलमें उत्पन्न कहा है। श्रेष्ठ कौन है और कनिष्ठ कौन है इसका निर्णय अर्यमा करता है। (अर्यं मिमीते इति अर्यमा) यह न्यायाधीशका कार्य है। न्यायाधीश होनेके लिये विद्या ज्ञानके साथ कुलीन होना भी आवश्यक है। ' सुजात ' ही न्यायाधीश बनें, कोई ' बद् जात ' न बने यह इसका आशय है।

२ सुक्षत्र राजा वरुणः—वरुण राजा उत्तम क्षात्र बलसे युक्त चाहिये। जो उत्तम क्षात्रबलशाली न होगा वह राजाके कर्तव्य ठीक तरह नही निभा सकेगा।

[२] (५३५) हे (महः ऋतस्य गोपा राजाना) बडे सत्यके पालक राजा (सिन्धुपती क्षत्रिया) नदियोंके पालनकर्ता और क्षत्रियो ! (अर्वाक् आयातं) हमारे समीप आओ। हे (जीरदानू मित्रावरुणा) शीघ्र दान देनेवाले मित्र वरुणो ! तुम (नः इळां) हमें अन्न दो (उत वृष्टिं) और वृष्टिको भी (दिवः अव इन्वतं) द्युलोकसे नीचे प्रेरित करो।

राजाके गुण इस मंत्रमें वर्णन किये हैं— (राजा ऋतस्य गोपा) राजा सत्यका रक्षक होना चाहिये, शुभ कर्मोंका संरक्षक राजा हो। (सिन्धुपती) नदियोंका पालक राजा हो। नदियोंके जलका वह संरक्षण करे और उस जलका उपयोग प्रजाजनोंको

३ मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु ।
ब्रवद् यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ५३६

४ यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद् धारयच्च ।
उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ५३७

५ एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५३८

होता रहे ऐसा प्रबंध वह करे। (क्षत्रियः) क्षत्रिय हो, क्षात्र बलसे युक्त हो, शूर वीर हो, (क्षतात् त्रायते) प्रजाका दुःखसे संरक्षण करे। प्रजाको (इळां) पर्याप्त अन्न देवे। ये गुण राजाके हैं। उत्तम राजा इन गुणोंसे युक्त होना चाहिये।

[३] (५३६) **मित्र वरुण और (अर्यः) अर्यमा ये तीनों देव (नः तत्) हमें वहां सुखके स्थानमें (साधिष्ठेभिः पथिभिः प्र नयन्तु) उत्तम साधनोंसे युक्त मार्गोंसे पहुंचा दें। तथा (नः सुदासे) हमारा उत्तम दाताके पास (तथा ब्रवत्) वैसा वर्णन करें कि (यथा आत् अरिः) जैसा श्रेष्ठ पुरुष करता है। (देव-गोपाः इषा सह मदेम) देवोंसे सुरक्षित हुए हम अन्नके द्वारा हम सब साथ साथ रहकर आनंदित होते रहेंगे।**

१ साधिष्ठेभिः पथिभिः प्र नयन्तु— उत्तम साधन मार्ग हों, उन्नतिको पहुंचानेवाले मार्ग शुद्ध हों।

२ देवगोपाः इषा सह मदेम— देवोंसे सुरक्षित होकर अन्नसे हम सब साथ साथ रहकर आनंदित हों।

[४] (५३७) **हे मित्र और वरुण ! (यः वां एतं गर्तं मनसा तक्षत्) जो आपके इस रथको मनसे निर्माण करता है, वह (ऊर्ध्वां धृतिं कृणवत्) उच्च धारण शक्ति निर्माण करता और (धारयत् च) उसका धारण भी करता है। हे (राजाना) राजाओ ! (घृतेन उक्षेथां) जलसे सिंचन करो (ता) वे आप दोनों (सुक्षितीः तर्पयेथां) सुन्दर रहनेके स्थान देकर सबको प्रसन्न करो।**

१ मनसा गर्तं तक्षत्— पहिले मनसे रथ आदिकी निर्मितिका विचार करना होता है। मनमें उसका ढांचा कल्पनासे बनाया जाता है, पश्चात् वह कागजपर दर्शाया जाता है। पश्चात् वह लकडोंसे बनाया जाता है।

२ ऊर्ध्वां धृतिं कृणवत् धारयत्— उच्च धैर्यकी स्थिति करना और उसका धारण करना। **धृति—** धैर्य, शौर्य, वीर्यकी कृति।

३ ता राजाना सुक्षितीः तर्पयेथां— राजाओंको प्रजाका निवास प्रथम उत्तम होनेयोग्य प्रबंध करना चाहिये और उनकी तृप्ति होनेयोग्य अन्न व्यवस्था भी करनी चाहिये।

[५] (५३८) **हे मित्र वरुण ! हे वायो ! (तुभ्यं) आपके लिये (एषः शुक्रः सोमः न स्तोमः) यह बलवर्धक सोमरसके समान आनन्द बढानेवाला यह स्तोत्र (अयामि) किया है। (धियः अविष्टं) हमारी बुद्धियों तथा हमारे कर्मोंका संरक्षण करो, (पुरंधीः जिगृतं) नगर रक्षण करनेकी बुद्धिकी जागृति करो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो।**

यहां ' वायु ' पद ' अर्यमा ' का बोध करता है। इस समय तक मित्र वरुणके साथ अर्यमा आया है। इस कारण यहां का वायु भी अर्यमाका बोधक होगा।

१ धियः अविष्टं— बुद्धियोंकी सुरक्षा करनी चाहिये। प्रजाओंकी बुद्धि सुरक्षित रहे, तथा उनके शुभ कर्म भी सुरक्षित रहें।

२ पुरंधीः जिगृतं— (पुरं धारयति) नगरका धारण करनेकी बुद्धिकी प्रशंसा गाओ। जिनके अन्दर नगरका धारण

(६५) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।
ययोरसुर्य१मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ५३९
२ ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः ।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ५४०
३ ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय ।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम ५४१
४ आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः ।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ५४२

संरक्षण और उन्नयन करनेकी बुद्धि हो उनका वर्णन करना चाहिये ।

[१] (५३९) (सूरे उदिते) सूर्यका उदय होनेके समय (मित्रं पूतदक्षं वरुणं) मित्र तथा पवित्र बलवाले वरुणकी (वां सूक्तैः प्रति हुवे) आपके सूक्तोंसे उपासना करता हूं। (ययोः अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं) जिनका अक्षय और श्रेष्ठ बल (आचिता यामन्) प्राप्त होनेपर वह (विश्वस्य जिगत्नु) सबका विजय करनेवाला होता है।

१ 'अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं विश्वस्य जिगत्नु'— अक्षय और श्रेष्ठ बल विश्वका विजय करता है । जिसके पास ऐसा बल होगा वह विश्व विजयी होगा ।

२ 'पूत दक्षं'—पवित्र बल प्राप्त करना चाहिये । जिस बलसे पवित्र कर्म किये जाते हैं वह बल पवित्र होता है ।

[२] (५४०) (ता हि देवानां असुरा) वे दोनों देवोंमें अधिक बलवाले हैं। (तौ अर्या) वे दोनों श्रेष्ठ हैं। (ता नः क्षिती ऊर्जयन्तीः करतं) वे दोनों हमारी प्रजाको बढाते हैं। हे मित्र और वरुण! (वयं वां अश्याम) हम आप दोनोंको प्राप्त करते हैं। (यत्र द्यावा च) जिससे द्यु और पृथिवी (अहा च) दिन रात (पीपयन्) हमारी वृद्धि करते रहें।

देवानां असुरा अर्या क्षितिः ऊर्जयन्ती करतं— देवोंमें अधिक बलवान् श्रेष्ठ वीर संतानोंको बलशाली निर्माण करते हैं। देव विजयी होते हैं, उनमें अधिक बलवान् वीर हों और स्वामी अधिकारी बनें तथा वे अपनी प्रजाको अधिक बलवान् बना दें।

[३] (५४१) (तौ भूरिपाशौ) वे दोनों वीर बहुत पाशोंसे शत्रुको बांधनेवाले हैं। (अनृतस्य सेतू) सेतु जैसे असत्यके पार करनेवाले हैं। वे (मर्त्याय रिपवे दुरत्येतू) मर्त्य शत्रुके लिये आक्रमण करनेके लिये अशक्य हैं। हे मित्रा वरुणो! हम (वां ऋतस्य पथा) आपके सत्य मार्गसे, (नावा अपः न) नौकासे नदियोंके पार होनेके समान (दुरिता तरेम) दुःखोंको पार करेंगे।

१ भूरि पाशाः— बहुत पाशोंसे शत्रुको बांधनेकी विद्या प्राप्त करनी चाहिये । अपने पास बहुत पाश रखने चाहिये ।

२ अनृतस्य सेतुः— असत्यसे पार करनेवाला सेतु जैसा बनना उचित है । असत्यमें फंसना उचित नहीं है ।

३ मर्त्याय रिपवे दुरत्येतुः— मरनेवाले शत्रुका आक्रमण रोकनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये । शत्रुका आक्रमण ही न हो इतनी शक्ति अपने अन्दर बढानी चाहिये ।

४ ऋतस्य पथा दुरिता तरेम— सत्यके मार्गसे हम पापोंसे बचें । सत्य मार्गसे जांय और पापोंसे बचें ।

५ नावा अपः न— नौकासे जिस तरह नदियोंके प्रवाहोंके पार होते हैं उस तरह हम दुःखोंके पार हों ।

[४] (५४२) हे मित्र और वरुण! (नः हव्यजुष्टिं आ) हमारे हवनके स्थानमें आओ। (इळाभिः

५ एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५४३

(६६) १९ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ, ४-१३ आदित्याः, १४-१६ सूर्यः ।
गायत्री, १०-१५ प्रगाथः = (समा बृहती, विषमा सतोबृहती)
१६ पुर उष्णिक् ।

१ प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः । नमस्वान् तुविजातयोः ५४४
२ या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा । असुर्याय प्रमहसा ५४५
३ ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणाम् । मित्र साधयतं धियः ५४६
४ यदद्य सूर उदिते ऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ५४७
५ सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन् त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ५४८

घृतैः गव्यूतिं उक्षतं) अन्नों और जलोंसे हमारी गौ चरनेवाली भूमिका सिंचन करो । (वां अन्न वरं प्रति आ) आपको यहीं श्रेष्ठ हवि मिलेगा । (दिव्यस्य चारोः उद्नः जनाय पृणीतं) स्वर्गीय रमणीय जल लोगोंके लिये भरपूर दो ।

[५] (५४३) यह मंत्र क्रमाङ्क ५३८ में है । वहीं पाठक इसका अर्थ देखें ।

[१] (५४४) **(मित्रयोः वरुणयोः) मित्र और वरुण जो कि (तुवि-जातयोः) अनेक वार प्रकट होते हैं उनका (नमस्वान् शूष्यः स्तोमः) अन्नसे युक्त बल बढानेवाला स्तोत्र (नः प्र एतु) हमारे पास आ जावे ।**

मित्र और वरुणका स्तोत्र बल बढानेवाला है और अन्न देनेवाला है । वह हमें मिले । हमारे कण्ठमें वह रहे जिससे हम अपना अन्न और बल बढावें ।

[२] (५४५) **(देवाः) देव (सुदक्षा दक्ष-पितरा) उत्तम बलवान्, बलके संरक्षक (प्रमहसा) विशेष शक्तिवाले (असुर्याय धारयन्त) बल प्राप्त करनेके लिये धारण करते हैं । मित्र और वरुणका धारण करते हैं ।**

१ सुदक्षा— उत्तम बल धारण करना चाहिये,

२ दक्षपितरा— अपने बलका संरक्षण करना चाहिये,

३ प्रमहसा – विशेष महत्त्व प्राप्त करना चाहिये,

४ असुर्याय धारयन्त— अपना बल बढानेका प्रयत्न करना चाहिये । (असुर्य) बल प्राप्त करनेके लिये देवत्वकी धारणा करनी चाहिये ।

[३] (५४६) **(ता स्तिपाः तनूपाः) वे तुम दोनों घरोंके शरीरोंके रक्षक हो । हे मित्र और वरुण ! (नः जरितॄणां धियः साधयतं) हम सब स्तोताओंकी इच्छाओंको सफल बनाओ ।**

शरीरों, घरों, नगरों तथा राष्ट्रका संरक्षण करना चाहिये । इस मंत्रमें शरीरों और घरोंका संरक्षण मित्र तथा वरुण करते हैं ऐसा कहा है । यह उपलक्षण है । इससे विशाल घर और विशाल शरीरकी पालना करनेकी सूचना मिलती है ।

' धियः ' (धी) बुद्धि, योजना । बुद्धिपूर्वक किये कर्म सफल हों । कैसे भी किये कर्म सफल होंगे ऐसा नहीं है । योजनापूर्वक किये कर्म ही सफल होंगे ।

[४] (५४७) **(यत् अद्य सूरे उदिते) जो धन आज सूर्यका उदय होनेके समय हमें अपेक्षित है वह (अनागाः) निष्पाप मित्र, अर्यमा, सविता, भग (सुवाति) हमें देवे ।**

[५] (५४८) **(सः क्षयः सुप्रावीः अस्तु) वह हमारा निवास स्थान उत्तम प्रकारसे सुरक्षित हो । हे (सुदानवः) उत्तम दान देनेवालो ! (नु यामन् प्र) आपका आगमन हमारा रक्षण करे । (ये नः अंहः अति पिप्रति) वे तुम हमें पापसे बचाओ ।**

६ उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ५४९
७ प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ५५०
८ राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ५५१
९ ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ५५२
१० बहवः सूरचक्षसो ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः ५५३

१ क्षयः सुप्रावीः अस्तु— हमारा निवास स्थान अत्यंत सुरक्षित हो। निवास स्थान, अपना घर, नगर, देश, राष्ट्र है। यह सब सुरक्षित होना चाहिये।

२ यामन् प्र आवीः अस्तु— आप वीरोंका आना ही हमारा संरक्षण करनेवाला है। जहां वीर होंगे वहां संरक्षण होगा।

३ नः अंहः अतिपिप्रति— आप वीरोंका आगमन हमारे पापोंको दूर करता है।

[६] (५४९) (ये अदितिः) जो मित्र आदि आदित्य और अदिति ये सब (अदब्धस्य व्रतस्य स्वराजः) न दबे व्रतके अधिष्ठाता हैं, वे (राजानः महः ईशते) अधिपति बडे धनके भी स्वामी हैं।

ये वीर ऐसे व्रतके प्रवर्तक हैं कि जो किसी शत्रुके द्वारा दबाया नहीं जा सकता। ये ही बडे धनके अधिपति हैं। जिन वीरोंके कर्म शत्रुसे मिटाये नहीं जाते वे ही वीर बडे ऐश्वर्यके स्वामी होते हैं। पर जिनके कर्म उनके शत्रु विनष्ट कर सकते हैं; उनको इस जगत्में ऐश्वर्य प्राप्त होना असंभव है।

[७] (५५०) (सूरे उदिते) सूर्यका उदय होनेके समय मित्र वरुण और (रिश-अदसं अर्यमणं वां) शत्रु नाशक अर्यमाकी (प्रति गृणीषे) प्रत्येककी स्तुति गाऊंगा।

[८] (५५१) (हिरण्यया राया) सुवर्णमय धनसे युक्त (इयं मतिः) यह मेरी बुद्धि (अवृकाय शवसे) अहिंसक बलके लिये हो। हे (विप्राः) ज्ञानियो! (इयं मेधसातये) यह मेरी बुद्धि यज्ञको सिद्ध करनेवाली हो।

१ हिरण्यया राया इयं मतिः अवृकाय शवसे— सुवर्ण आदि धन जिसके साथ पर्याप्त है, ऐसी यह हमारी बुद्धि हिंसारहित बलके कर्म करनेवाली हो। धन प्राप्त होनेपर कोई भी मनुष्य क्रूर कर्म न करे। घमंड करता हुआ दूसरोंका घात न करे।

२ इयं मतिः हिरण्यया राया मेधसातये— सुवर्ण आदि धनसे युक्त हुई हमारी बुद्धि यज्ञ करनेवाली बने, बुद्धि ज्ञानसे युक्त हुई, धन मिला, तो वह धन यज्ञके लिये अर्पण करना चाहिये।

[९] (५५२) हे देव मित्र तथा वरुण! (सूरिभिः सह ते स्याम) विद्वानोंके साथ हम आपके गुणगान करनेवाले हों। (इषं स्वः च धीमहि) हम अन्न और जल भी प्राप्त करेंगे।

मनुष्योंको उचित है कि वे सदा ज्ञानी विद्वानोंके साथ रहें, श्रेष्ठ वीरोंके काव्य गायें और खानपान प्राप्त करनेके कार्य करें।

[१०] (५५३) (बहवः सूरचक्षसः) बहुत सूर्यके सदृश तेजस्वी (अग्नि जिह्वाः ऋतावृधः) अग्नि जिनकी जिह्वा है ऐसे सत्य मार्गको बढाने-वाले मित्रादिक देव वीर (ये) जो (विश्वानि त्रीणि विदथानि) सब तीनों स्थानोंपर (परिभूतिभिः धीतिभिः येमुः) शत्रुका पराभव करनेके सामर्थ्यों-से नियमन करते हैं।

१ परिभूतिभिः धीतिभिः विश्वानि विदथानि येमुः— शत्रुका पराभव करनेके अनेक सामर्थ्योंसे वीर सब युद्ध स्थानोंपर नियमन करते हैं। वीर अपने शत्रुका पराभव करनेके सामर्थ्योंको बढाते हैं। और उनके द्वारा सब युद्धके स्थानोंपर अपना प्रभाव दिखाते हैं। जो वीर अपने अन्दर शत्रुका

११ वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम् ।
अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ५५४

१२ तद् वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते ।
यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः ५५५

१३ ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः ।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः ५५६

१४ उदु त्यद् दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।
यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् ५५७

पराभव करनेका सामर्थ्य बढायेगा वही युद्धमें विजयी हो सकता है ।

१ **सूरचक्षसः अग्निजिह्वा ऋतावृधः**-- वीर सूर्यके समान तेजस्वी, अग्निज्वालाके समान जिव्हावाले उत्तम वक्ता और सत्यका संवर्धन करनेवाले हों, ऐसे वीर ही विजयी होंगे ।

[११] (५५४) (ये) जो (शरदं मासं) वर्ष, महिना, (आत् अहः) पश्चात् दिन (आत् अक्तुं यज्ञं च ऋचं) पश्चात् रात्रीको, यज्ञ और मन्त्रको (वि दधुः) धारण करते हैं । वे मित्र वरुण अर्यमा आदि वीर (राजानः) प्रकाशित होकर (अनाप्यं क्षत्रं आशत) अन्योंके लिये अप्राप्य बलको बढाते रहे ।

१ **' अनाप्यं क्षत्रं राजानः आशत '**--शत्रुके लिये प्राप्त होना कठीन ऐसा क्षात्र बल वीरोंको अपने अन्दर बढाना चाहिये ।

२ **शरदः, मासं, अहः, अक्तुं, ऋचं, यज्ञं विदधुः**-- वर्ष महिना, दिन, रात्री, मंत्र और यज्ञ इनका धारण वीरोंको करना चाहिये । वीर समयानुसार कर्म करें, समयका पालन करें, मन्त्रोंको जानें और यज्ञ करें । ऐसे वीर बलवान होते हैं ।

[१२] (५५५) (सूरे उदिते सूक्तैः) सूर्यका उदय होनेके समय सूक्तोंसे (तत् अद्य मनामहे) उस धनकी आज हम प्रार्थना करेंगे (यत्) जिसको मित्र वरुण अर्यमा आदि (ऋतस्य रथ्यः यूयं) सत्यके पथ प्रदर्शक वीर (ओहते) धारण करते हैं ।

ऋतस्य रथ्यः यत् ओहते, तत् मनामहे- सत्यके पथ प्रदर्शक वीर जिसको धारण करते हैं उस धनको ही हम चाहेंगे ।

[१३] (५५६) (ऋतावानः ऋतजाताः) सत्यनिष्ठ सत्यके लिये प्रसिद्ध (ऋतावृधः अनृतद्विषः) सत्यको बढानेवाले और असत्यका द्वेष करनेवाले (घोरासः) बडे प्रभावी वीर आप हैं (तेषां वः) वैसे आपके (सुच्छर्दिष्टमे सुम्ने) उत्तम घरसे युक्त धनके अन्दर हम (सूरयः नरः स्याम) जो विद्वान तथा नेता हैं वे हों, वे हम रहें ।

सत्यनिष्ठ, सत्यके लिये जीवन देनेवाले, सत्यको बढानेवाले, असत्यका द्वेष करनेवाले, और शरीरसे घोर भयंकर ऐसे वीर हों । उनके द्वारा सुरक्षित घरमें हम रहें और उनके द्वारा सुरक्षित धन हमें मिले । हम भी ज्ञानी और नेता बनें । उत्तम वीर नेताके ये विशेषण हैं ।

[१४] (५५७) (त्यत् दर्शतं वपुः) वह दर्शनीय शरीर-सूर्यमंडल (दिवः प्रतिह्वरे) द्युलोकके समीपके भागमें (उत् उ एति) उदित हो रहा है । (विश्वस्मै चक्षसे अरं) संपूर्ण विश्वके दर्शनके लिये समर्थ ऐसे इस सूर्यको (यत् ईं एतशः देवः आशु वहति) शीघ्रगामी अश्व चलाता है ।

१५ शीर्ष्णःशीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः ।
सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे ५५८
१६ तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ५५९
१७ काव्येभिरदाभ्या ऽऽ यातं वरुण द्युमत् । मित्रश्च सोमपीतये ५६०
१८ दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा । पिबतं सोममातुजी ५६१
१९ आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा । पातं सोममृतावृधा ५६२

---

[१५] (५५८) (शीर्ष्णः शीर्ष्णः) सबके मुख्य शिर स्थानीय (तस्थुषः जगतः पतिं) स्थावर जंगमके स्वामी (रथे सूर्यं) रथमें बैठे सूर्यको (सुविताय) विश्व कल्याणके लिये (विश्वं रजः समया) सब लोकोंके समीपसे (स्वसारः सप्त हरितः आ वहन्ति) बहिनें जैसी सात घोडियां चलाती हैं।

यहां सात घोडियां सूर्यके रथको चलातीं हैं ऐसा कहा है। इससे पूर्व एक ही घोडा सूर्यके एक चक्र रथको चलाता है ऐसा कहा था (६३ सु. २ मं)।

[१६] (५५९) (तत् देवहितं शुक्रं चक्षुः) वह देवहित करनेवाला बलवान विश्वका आंख जैसा यह सूर्य (पुरस्तात् उत् चरत्) हमारे सामने उदित हो रहा है। (पश्येम शरदः शतं) उसे हम सौ वर्षतक देखते रहें, (शरदः शतं जीवेम) हम सौ वर्ष जीये।

सौ वर्ष जीयें और सौ वर्षतक हमारे आंख आदि इन्द्रिय कर्म करनेमें समर्थ रहें। यह सूर्य (देव-हितं) इन्द्रियोंका हित करनेवाला है। सूर्य प्रकाशसे सब इंद्रियाँ उत्तम अवस्थामें रहती हैं। इसी तरह पृथिवी, जल, वनस्पती, प्राणी, वायु आदि भी सूर्यके कारण उत्तम अवस्थामें रहते हैं। इसलिये सूर्यको देव हित कहते हैं।

[१७] (५६०) हे (अदाभ्या) न दबनेवाले मित्र और वरुण देवो! तुम (द्युमत्) तेजस्वी देव (सोमपीतये आयातं) सोमपान करनेके लिये आओ।

(अदाभ्या) शत्रुसे न दबनेवाला और (द्युमत्) तेजस्वी ऐसे हमारे वीर हों।

[१८] (५६१) हे (अद्रुहा) द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण! और (ऋता वृधा) सत्यको बढानेवाले वीरो! (दिवः धामभिः) द्युलोकके अपने स्थानोंसे (आ यातं) आओ और (आतुजी) शत्रुका नाश करते हुए (सोमं पिबतं) सोमरसका पान करो।

वीर (अद्रुहः) द्रोह न करनेवाले हों। (ऋता वृधा) सत्यको बढानेवाले हो और (आतुजी) शत्रुका नाश करनेवाले हों।

[१९] [५६२] हे (ऋतावृधा) सत्यको बढाने-वाले (मित्रा वरुणा) मित्र और वरुणो! हे (नरा) नेताओ! (आहुतिं जुषाणो) आहुतिका स्वीकार करते हुए (आ यातं) आओ और (सोमं पातं) सोमरसका पान करो।

वीर सत्यका पालन करें, (नरा) नेता हों, लोगोंको सन्मार्गसे ले जांय। ऐसे वीरोंका सत्कार करना योग्य है।

॥ यहां मित्रावरुण प्रकरण समाप्त ॥



[६] आश्विनौ-प्रकरण

(६७) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि ५६३

२ अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन् तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ५६४

३ अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक् स्वर्विदा वसुमता रथेन ५६५

---

[१] (५६३) हे नृपती! जनताके पालक (धिष्ण्यो) एवं बुद्धिमान अश्विदेवो! (यज्ञियेन हविष्मता मनसा) पवित्र तथा अन्न दानमें रत ऐसे अपने मनसे (वां रथं प्रति जरध्यै) तुम्हारे रथका वर्णन मैं करूंगा। (यः वां दूतः न अजीगः) जो तुम्हें दूतके समान जगा चुका है, बुला चुका है (सूनुः पितरा न) पुत्र पिताके सामने जैसा बोलता है, उसी प्रकार (अच्छ विवक्मि) तुम्हारे सन्मुख वह मैं विशेष स्पष्ट रीतिसे अपना भाव बोलता हूं। अपना मनोगत प्रकट करता हूं।

१ नृपती धिष्ण्यौ—मनुष्योंका पालन करनेवाले अत्यंत (धी-सनौ) बुद्धिमान होने चाहिये। बुद्धिहीनोंसे राष्ट्रका पालन अच्छी तरह नहीं हो सकता।

२ यज्ञियेन हविष्मता मनसा अच्छ विवक्मि—पवित्र सत्कार करने योग्य तथा अन्न दानमें तत्पर मनसे, अर्थात शुद्ध मनसे मैं बोलता हूं। शुद्ध मनसे मनुष्योंको वार्तालाप करना चाहिये।

३ सूनुः पितरा न विवक्मि-पुत्र पिताके सन्मुख जैसा बोलता है, वैसा ही मैं प्रभुके, राजाके या अधिकारियोंके सामने बोलता हूं। क्यों कि मेरा मन पवित्र है।

४ दूतः अजीगः—दूत जगाता है। दूतका कर्तव्य है कि वह स्वामीको योग्य कर्तव्यकी सूचना समय पर दे।

[२] (५६४) (अस्मे समिधानः अग्निः अशोचि) हमारे लिये प्रज्वलित हुआ अग्नि जगमगा रहा है। (तमसः अन्ताः चित् उप अदृश्रन्) अन्धकारका अन्तिम भाग दिखाई दे रहा है। अन्धकार समाप्त हो रहा है। (दिवः दुहितुः उषसः पुरस्तात्) द्युलोककी पुत्री उषाके सामने (जायमानः केतुः) प्रकट होनेवाला यह ध्वजरूपी सूर्य (श्रिये अचेति) शोभारूप प्रकाशके लिये प्रकट हो रहा है।

भगवा ध्वज

इस समय उदय कालका यह सूर्य आरक्त वर्ण होता है, इसको ' केतु ' (ध्वज) कहा है। इससे ध्वज भगवा है यह सिद्ध होता है। यह ध्वज आकाशमें फहराया जा रहा है, इससे शत्रुरूप अन्धकार दूर होता है। भगवे ध्वजका यह प्रभाव है कि वह ऊपर फहरने लगते ही शत्रु दूर भागते हैं।

[३] (५६५) हे (नासत्या अश्विना) हे असत्यका कभी आश्रय न करनेवाले अश्विदेवो! (विवक्वान् सुहोता) उत्तम रीतिसे बोलनेवाला उत्तम बुलानेवाला होता (वां अभि) आपके सामने (नूनं स्तोमैः सिषक्ति) निश्चयपूर्वक स्तोत्रोंसे आपकी सेवा करता है। (वसुमता स्वर्विदा रथेन) धनवाले प्रकाशमान रथसे (पूर्वीभिः पथ्याभिः यातं) प्रथम निश्चित हुए मार्गोंसे ही आगे बढो।

४ अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद् वां सुते माध्वी वसूयुः ।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि ५६६
५ प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम् ।
विश्वा अविष्टं वाज आ पुरंधीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः ५६७

१ **नासत्या**— (न अ-सत्यौ) —असत्यका आश्रय कभी न करनेवाले । उन्नति चाहनेवाला असत्यका आश्रय कभी न करे।

२ **विवक्वान् सु होता**—जो विशेष उत्तम वक्ता होगा वह बुलानेका कार्य करे । बडे लोगोंको बुलानेके कार्यके लिये उत्तम वक्ता नियुक्त किया जावे ।

३ **वसुमता स्वर्विदा रथेन पूर्वीभिः पथ्याभिः यातं**- रथमें धन हो, सुखके सब साधन हों, रथ चालकको मार्गका उत्तम पता हो, तथा सारथी उस मार्गसे रथ ले जावे कि जिसमें पहिले वह गया हो, अथवा अन्य रीतिसे उसको मार्गका पता हो । मार्गकी कठिनताका ठीक तरह ज्ञान न होनेकी अवस्थामें साहससे रथ न चलावे ।

[४] (५६६) हे (माध्वी अश्विना) **मधुरभाषी अश्विदेवो ! (नूनं अवोः वां युवाकुः) निश्चय ही तुम रक्षण कर्ताओंके साथ सम्बन्ध रखनेवाला मैं (यत् वसूयुः) जब धनकी कामना करता हुआ (सुते वां हुवे) इस सोमयागमें तुम्हें बुलाता हूँ; तुम्हारे (स्थविरासः अश्वाः) वृद्ध घोडे (वां आवहन्तु) तुमको यहां ले आवें, और यहां आकर (अस्मे हमारे बनाये (सुसुताः मधूनि पिबाथः) भली भान्ति निचोडे हुए मीठे सोमरसका पान करें ।**

[५] (५६७) हे **शचीपती देवा अश्विना) शक्तिके अधिपति अश्विदेवो ! (मे वसूयुं) मेरी धनकी कामना करनेहारी (अ मृध्रां प्राचीं धियं) अहिंसित सरल बुद्धिको (सातये कृतं) धन प्राप्तिके लिये योग्य बना दो । (वाजे) युद्धमें (विश्वाः पुरन्धीः आविष्टं) सब प्रकारकी बुद्धियोंका पूर्णतया रक्षण करो, (ता) तुम दोनों (शचीभिः नः शक्तं) अपनी शक्तियोंसे हमें सामर्थ्यवान् बना दो।**

१ **अश्विनौ**—अश्व जिनके पास होते हैं। जिनके पास अच्छे घोडे होते हैं। अश्वारूढ । ये दो देव हैं । इनका मुख्य कार्य रोग दूर करना और आरोग्य प्राप्त करा देना है। इनमें एक औषधि प्रयोग करनेवाला और दूसरा शस्त्र क्रिया करनेवाला है। ये दोनों चिकित्सा करते हैं। ये '**शची पती**' शक्तिके अधिपति है । रोग दूर करके आरोग्य और बल देनेकी शक्ति इनके पास सदा सिद्ध रहती है ।

२ **वसूयुं अ-मृध्रां प्राचीं धियं सातये कृतं**— धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली हिंसा रहित सरल बुद्धिको धन प्राप्त करने योग्य बनाओ । '**वसु-यु**' -धनके साथ संयुक्त होना हरएक चाहता है । हरएक धनी बनना चाहता है। उसके साथ दो मार्ग आते हैं। एक दूसरेकी (मृध्रा) हिंसा करके, लुटमार करके दूसरोंको कष्ट देकर धन प्राप्त करनेका हिंसाका मार्ग । दूसरा मार्ग अहिंसाका है । सन्मार्ग तथा सद्व्यवहारसे धन प्राप्त करना । धनेच्छु मनुष्यके पास ये दो मार्ग आते हैं। हिंसाका मार्ग प्रलोभनीय है, जो उससे जाते हैं वे फंसते हैं । यह मंत्र कहता है कि (अ-मृध्रां प्राचीं धियं) हिंसा रहित सरलताके व्यवहारका सन्मार्ग आचरण करना चाहिये । अपनी बुद्धि और कर्मशक्तिको इस अहिंसामय सन्मार्गपरसे जानेके लिये प्रवृत्त करना चाहिये । इस मार्गसे जाकर (सातये कृतं) धन प्राप्ति करनेके लिये मनुष्यको प्रवृत्त करना चाहिये ।

३ **वाजे विश्वाः पुरन्धीः आविष्टं**—युद्धमें सब प्रकारकी नगर संरक्षण करनेकी बुद्धिका संरक्षण करो । '**पुरं धीः**'- नगरका संरक्षण करनेकी बुद्धि और तदनुकूल कर्म । आत्मसंरक्षक बुद्धिपूर्वक कर्म; इस बुद्धिका संरक्षण होना चाहिये ।

४ **शचीभिः नः शक्तं**— अपनी शक्तियोंसे हमें सामर्थ्यवान् बनाओ । हमारे अन्दर जो शक्तियां हैं वे बढें और उनसे हम महा सामर्थ्यवान बनें । क्योंकि सामर्थ्यवान् बननेसे ही धन आदिकी प्राप्ति हो सकती है ।

६ अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद् रेतो अह्रयं नो अस्तु ।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ५६८
७ एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।
अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ५६९
८ एकस्मिन् योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ५७०

---

[६] (५६८) हे अश्वि देवो! (आसु धीषु नः अविष्टं) इन बुद्धियों और कर्मोंमें हमें सुरक्षित रखो। (नः प्रजावत् रेतः अ-ह्रयं अस्तु) हमारा सुसन्तान उत्पन्न करनेवाला वीर्य क्षीण न हो। (वां तोके तनये तूतुजानाः) तुम्हें पुत्र पौत्रोंके सुख संवर्धनके लिये प्रवृत्त करते हुए (सुरत्नासः) उत्तम रत्नोंको धारण करके हम (देव वीतिं आ गमेम) देवोंकी पवित्रताको हम प्राप्त करें।

१ धीषु नः अविष्टं—हम बुद्धियुक्त कर्म, बुद्धिपूर्वक कर्म, बुद्धिसे नियोजनापूर्वक कर्म कर रहे है। इन कर्मोंको करनेके समय हमारी सुरक्षा होनी चाहिये। कर्म करनेके समय ही हमारा नाश नहीं होना चाहिये। कर्मोका फल प्राप्त होना चाहिये। इसलिये हमारी सुरक्षा होनी चाहिये।

२ नः प्रजावत् रेतः अह्रयं अस्तु—हमारा सुप्रजा उत्पन्न करनेमें समर्थ, संस्कारोंसे शुभ संस्कार संपन्न, वीर्य कभी व्यर्थ विनष्ट न हो, कभी क्षीण न हो। वह सदा सुरक्षित रह कर सुप्रजा उत्पन्न करे।

३ तोके तनये तूतुजानाः—पुत्र पौत्रोंके सुख संवर्धनके लिये तुम्हें त्वराके साथ प्रवृत्त हम कर रहे हैं। यह कार्य राष्ट्रमें त्वरासे होना चाहिये इसलिये सबको प्रयत्नवान् होना चाहिये।

५ सु-रत्नासः—उत्तम रत्नोंको हम स्वयं धारण करेंगे और अन्योंको भी धारण करायेंगे।

५ देववीतिं आगमेम—देवोंकी पवित्रताको हम प्राप्त करेंगे, देवोंका सत्कार जहां होता है वहां हम जायंगे। देवत्वकी प्राप्ति करेंगे।

[७] (५६९) हे (माध्वीः) मधुर भाषण कर्ता अश्विदेवो! (अस्मे रातः एषः स्यः निधिः) हमने दिया हुआ यह वह भण्डार (वां सख्ये) तुम्हारी मित्रताके लिये (पूर्व-गत्वा इव हितः) अग्रगामी वीरके समान तुम्हारे आगे रखा है। (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाओंमें (हव्यं अश्नन्ता) अन्नभागका सेवन करते हुए तुम (अहेळता मनसा) क्रोध रहित मनसे (अर्वाक् आ यातं) हमारे समीप आ जाओ।

[८] (५७०) हे (भुरणा) भरणपोषण करनेवाले अश्विदेवो! (एकस्मिन् समाने योगे) एक समान अवसरपर (वां रथः) तुम्हारा रथ (सप्त स्रवतः) सात बहनेवाले स्रोतोंके भी आगे (परि गात्) बढ जाता है। (ये तरणयः वां धूर्षु वहन्ति) जो तारण करनेवाले घोडे हैं वे (धुराओंमें तुम्हें ढोते हैं। वे (सुभ्वः देवयुक्ताः) उत्कृष्ट ढंगसे उत्पन्न देवोंके द्वारा जोते होनेके कारण (न वायन्ति) नहीं थकते हैं।

अश्विदेवोंका रथ चिकित्साका कार्य करनेके लिये सप्त नदियोंके भी पार जाता है। यहां 'तरणयः' पद है। इसका अर्थ घोडे ऐसा नहीं है। जलमें तैरनेवाले कोई प्राणी होंगे जो जलमें चलनेवाली नौकाको जोडते होंगे, अथवा ये प्राणी भी नहीं होंगे। कदाचित् ये दूसरे कोई साधन होंगे। अश्विदेवोंके रथको (रासभ) गधे जोते जाते हैं ऐसा अन्यत्र मंत्रमें कहा है। खच्चर भी जलमें तैरनेवाला नहीं है। इसलिये 'तरणयः' पदसे घोडे और खच्चरसे विभिन्न कोई साधन लेने चाहिये। 'तरणयः' का अर्थ 'तैरनेके साधन' ऐसा है। ये (न वायन्ति) थकते नहीं ऐसा भी कहा है। न थकना तो यन्त्रके लिये ही हो सकता है। प्राणी कितना भी बलवान हुआ तो भी वह अधिक परिश्रमसे अवश्य थकेगा ही। (तरणयः सु-भ्वः

९ असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति ।
प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि ५७१
१० नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५७२

(६८) ९ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आश्विनौ । विराट्; ८-९त्रिष्टुप् ।

१ आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः ।
हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ५७३
२ प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे ।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ५७४

देवयुक्ताः न बायन्ति) तैरनेके साधन अच्छे बने उत्तम कारीगरोंसे जोडे हैं इस लिये वे थकते नहीं । ये यंत्रके साधन ही होंगे, ऐसी हमारी संमति है ।

[९] (५७१) (ये गव्याः अश्व्याः) जो गायों और घोडोंसे परिपूर्ण (मघानि पृञ्चन्तः) ऐश्वर्यों-का दान करते हुए— (बन्धुं सूनृताभिः प्रतिरन्ते) बन्धुको मधुर वाणीसे दान देते हैं, और (राया मघदेयं जुनन्ति) धनसे युक्त होकर धनका दान करनेके लिये प्रेरित करते हैं, ऐसे उन (मघवद्भ्यः) वैभवशाली लोगोंके लिये (असश्चता हि भूतं) दूसरी जगह न जानेवाले बनो । अर्थात् उनके घर जाओ ।

१ गव्याः अश्व्याः मघानि पृञ्चन्तः)—गायों, घोडों और धनोंका बहुत दान करो ।

१ बन्धुं सूनृताभिः प्रतिरन्ते— अपने बान्धवोंके साथ मधुर भाषण करते जाओ । कटु भाषण न करो ।

३ राया मघदेयं जुनन्ति मघवद्भ्यः असश्चता भूतं—जो धनसे युक्त हो कर धनका दान करते हैं, उन दानियोंको छोड कर दूसरी जगह न जाओ । उनके पास ही जाओ ।

[१०] (५७२ हे) (युवाना अश्विनौ) तरुण अश्विदेवो ! (मे हवं आ शृणुतं) मेरी प्रार्थना सुनो । (इरावत् वर्तिः यासिष्टं) जिसमें अन्न है उसी घरमें जाओ । (रत्नानि धत्तं) रत्नोंको धारण करो । (सूरीन् जरतं) विद्वानोंकी सराहना करो । (स्वस्तिभिः यूयं सदा नः पातं) कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो ।

जहां पर्याप्त अन्न है और जहां दाता है वहीं जाओ । स्वयं रत्नोंका धारण करो । और दूसरोंको दे दो । सच्चे ज्ञानियोंकी प्रशंसा करो । कल्याण करनेके साधनोंसे अपनी सुरक्षा करो ।

[१] (५७३) हे (शुभ्रा स्वश्वा दस्रा) श्वेत-वर्णवाले अच्छे घोडोंवाले शत्रुनाशक अश्विदेवो ! (युवाकोः गिरः जुजुषाणा) तुम्हारी सेवा करने-वालेके भाषणोंको आदर पूर्वक सुनते हुए (आयातं) यहां आओ ((नः प्रतिभृता) हमारे इकट्ठे किये हुए (हव्यानि वीतं) हविर्भागका सेवन करो ।

[२] (५७४) (वां मद्यानि अन्धांसि प्र अस्थुः) तुम्हारे लिये आनन्द वर्धक अन्न रखे गये हैं । (मे हविषः वीतये) मेरे हविष्यान्नके आस्वाद लेनेके लिये (अरं गन्त) सीधे यहां आओ । (अर्यः तिरः) शत्रुओंको दूर हटा दो (नः हवनानि श्रुतं) हमारे बुलावोंको सुन लो ।

हर्षवर्धक अन्नका सेवन करो, उससे अपना बल बढाओ और शत्रुओंको दूर हटादो । शत्रुको दूर करना यह मुख्य कर्तव्य है, इसके लिये उद्यत रहना हरएकका आवश्यक कर्तव्य है ।

३ प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ५७५
४ अयं ह यद् वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद् युवभ्याम् ।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ५७६
५ चित्रं ह यद् वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ५७७
६ उत त्यद् वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।
अधि यद् वर्प इतऊति धत्थः ५७८
७ उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ५७९

---

[३] (५७५) हे (सूर्यावसू) सूर्यको बसानेवाले अश्विदेवो! (वां मनोजवाः रथः शतोतिः) आपका मनके समान वेगवान् रथ सैकडों संरक्षण-के साधनोंसे युक्त है। वह (अस्मभ्यं इयानः) हमारे पास आता है और (रजांसि तिरः प्र इयर्ति) धूलीके प्रदेशोंको दूर रखकर आता है।

रथका वेग अच्छा हो, शीघ्र गतिसे दौडे और उसमें सैकडों संरक्षणके साधन भरपूर रहें।

[४] (५७६) (अयं सोमसुत् अद्रिः ह) यह सोमका रस निचोडनेवाला पत्थर (यत् ऊर्ध्वः देवया) जब ऊंचे पदपर-सोमपर-आरूढ होकर देवोंकी ओर प्रवृत्त होता है तब (वां उ युवभ्यां विवक्ति) आप दोनोंकी ओर लक्ष्य देकर विशेष प्रकारका शब्द करता है, तब (विप्रः वल्गू) ज्ञानी याजक सुन्दर रूपवाले तुम्हें (हव्यैः आ वृतीत) हवनीय अन्नोंसे अपनी ओर आकर्षित करता है।

यज्ञमें सोम कूटनेका पत्थर जब सोम कूटने लगता है तब उसका एक प्रकारका शब्द होता है। वह शब्द मानो देवोंको बुलानेके लिये ही होता है।

[५] (५७७) (यत् वां चित्रं भोजनं अस्ति) जो तुम दोनोंका विलक्षण अन्न रूप दान है, जो (अत्रये महिष्वन्तं, नियुयोतं) अत्रिकी शक्ति बढानेके लिये तुमने दिया था। (यः प्रियः सन्) वह तुम्हारा प्रिय था इस लिये (वां ओमानं दधते) तुम्हारे सुखदायक आश्रयसे रहता है।

अत्रि ऋषि असुरोंके कारावासमें रहनेके कारण बहुत कृश हुआ था, उसको बलवान और पुष्ट बनानेके लिये अश्विदेवोंने एक प्रकारका विलक्षण पुष्टिकारक अन्न दिया था, जिससे अत्रि ऋषि फिरसे बलवान् बने और कार्य करनेमें समर्थ हुए। वैद्योंको ऐसे पौष्टिक अन्न बनाने चाहिये।

[६] (५७८) (उत अश्विना) और हे अश्विदेवो! (हविर्दे जुरते च्यवनाय) हवि देनेवाले वृद्ध च्यवन ऋषिके लिये (वां त्यत् प्रतीत्यं भूत) तुम्हारा वह उसके पास जाना हितकारक सिद्ध हुआ, (यत्) जो कि (इत ऊती वर्पः) इस मृत्युसे संरक्षण देनेवाला रूप तुमने उसे (अधि धत्थः) दे दिया।

च्यवन ऋषि अति वृद्ध हुआ था, उसके पास अश्विदेव गये, और उनको पौष्टिक अन्न, जो च्यवनप्राश नामसे आयुर्वेदमें प्रसिद्ध है, दिया और उसको पुनः तारुण्य दिया।

[७] (५७९) (उत अश्विना) और हे अश्विदेवो! (त्यं भुज्युं) उस भुज्युको (दुरेवासः सखायः) बुरी चालवाले उसके मित्र उसे (समुद्रे मध्ये जहुः) समुद्रके मध्यमें छोड चुके थे (यः युवाकुः अरावा) जो तुम्हारे पास सहायार्थ आते

८ वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ५८०
९ एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५८१

(६९) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ५८२

लगा था, इतनेमें (ईं निः पर्षत्) उसे तुम पूर्णतया पार ले चलो और सुरक्षित स्थानपर तुमने उसे पहुंचा दिया था ।

राज पुत्र भुज्यु समुद्रमें डूब रहा था, उसको अश्विदेवोंने समुद्रसे उठाया और उसे समुद्रके पार उसके घर पहुंचा दिया ।

[८] (५८०) हे अश्विदेवो ! (जसमानाय वृकाय चित्) क्षीण होनेवाले वृकके हितके लिये तुम शक्तिका दान देनेमें (शक्तं) समर्थ हुए, (उत) और (हूयमाना शयवे श्रुतं) बुलानेपर शयुका हित करनेके लिये उसकी प्रार्थना तुमने सुनी थी । (यौ शचीभिः शक्ती) जो तुम दोनों अपनी शक्तियोंसे समर्थ होनेके कारण (स्तर्यं अघ्न्यां) वन्ध्या गायको भी (अपः न) जलके समान (अपिन्वतं) दूध देनेवाली दुधारू बना चुके ।

अश्विदेवोंने वृकको सहायता की, शयुकी प्रार्थना सुनी और वन्ध्या गौको दुधारू बना दिया ।

[९] (५८१) (स्यः एषः सुमन्मा कारूः) वह यह उत्तम मननशील कारीगर (उषसां अग्रे बुधानः) उषः कालके पहिले जागृत होकर (सूक्तैः जरते) सूक्तोंसे प्रार्थना करता है । (अघ्न्या पयोभिः इषा तं वर्धत्) गौ दूधसे और अन्नसे उसको बढाती है । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें कल्याणकारक साधनोंसे सदा सुरक्षित रखो ।

कारीगर उषः कालके पूर्व उठे और अपने इष्ट देवकी उपासना करे । जो क्षीण होते हैं उनको गौ अपने दूधसे पुष्ट करती है । इसलिये मनुष्य गौका दूध पीये ।

[१] (५८२) (वां हिरण्ययः) तुम्हारा सुवर्णमय (घृतवर्तनिः) घृतको मार्गमें देनेवाला, (पविभिः रुचानः) आरोंसे जगमगाता हुआ (इषां वोळ्हा) अन्नोंको पहुंचानेवाला, (वाजिनीवान् नृपतिः) सेनासे युक्त नरेश जैसा (रोदसी बद्बधानः) आकाश और पृथिवीको अपने शब्दसे निनादित करता हुआ (वृषभिः अश्वैः आ यातु) बलिष्ठ घोडोंसे चलाया जानेवाला इधर आ जाय ।

चिकित्सकका रथ सुवर्णसे सुशोभित हो, उत्तम वर्णवाला हो, घी तथा पौष्टिक अन्न उसमें भरपूर हो, जो रोगियोंको देनेसे उनकी पुष्टी हो सकती हो, ऐसा रथ शीघ्रगतिसे हमारे पास आजाय और हमें नीरोग करे ।

इस वर्णनसे ऐसा प्रतीत होता है कि अश्विदेवोंका रथ नाना प्रकारके औषधियोंसे मिश्रित घृत, तथा पौष्टिक अन्नोंसे तथा चिकित्साके साधनोंसे भरपूर भरा था । अश्विदेव इस रथमें बैठकर स्थान स्थानपर जाते थे और उनकी चिकित्सा करते थे और उनको पौष्टिक अन्न देते थे । रोगियोंको उनके दवाखानेमें आनेकी आवश्यकता नहीं थी । इनका रथ ही रोगीके स्थानपर जाता था । और रोगीकी चिकित्सा करता था । यह सुविधा थी । अश्विदेवोंका कार्यालय किसी स्थानपर होगा, पर उनके रथ जगतमें घूमते थे और रोगियोंको आरोग्य देते थे ।

(रोदसी बद्बधानः) उनका रथ बडा शब्द करता हुआ आकाशको भर देता था । यह शब्द इसलिये किया जाता था कि रोगियोंको मालूम हो कि चिकित्सकका रथ आरहा है । रोगी तैयार रहे और लाभ उठावे ।

२ स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद् याममश्विना दधाना ५८३
३ स्वश्वा यशसा यातमर्वाग् दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।
वि वां रथो वध्वा यादमानो ऽन्तान् दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ५८४
४ युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।
यद् देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ५८५
५ यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ५८६
६ नरा गौरेव विद्युतं तृषाणा ऽस्माकमद्य सवनोप यातम् ।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः ५८७

[२] (५८३) हे अश्विदेवो! (कुत्रचित् यामं दधाना) कहीं भी यात्राका आरंभ करते हुए (येन देवयन्तीः विशः गच्छथ) जिसपरसे तुम देवोंकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली प्रजाओंके समीप जाते हो, (सः त्रिवन्धुरः) वह तीन सुन्दर लट्ठोंसे युक्त (पञ्च भूमा पप्रथानः) पांचोंको विस्तृत स्थान देनेवाला (मनसा युक्तः अभि यातु) मनके इशारेसे चलनेवाला तुम्हारा रथ तुम्हें लेकर यहां आ जावे।

यह रथ पांच बैठनेवालोंको विस्तृत स्थान देता है। इसमें तीन बैठकें हैं, और मनके संकेतसे जहां चाहे वहां जाता है।

[३] (५८४) हे (दस्रा) शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो! (स्वश्वा यशसा अर्वाक् आ यातं) उत्तम घोडोंको जोत कर यशके साथ हमारे समीप आओ। यहां आकर (मधुमन्तं निधिं पिबाथः) मीठा सोमरस पीओ। (वां रथः वध्वा यादमानः) आपका रथ वधुके साथ आगे बढता है और (वर्तनिभ्यां दिवः अन्तान् विबाधते) पहियोंसे आकाशके अन्तिम विभागोंको विशेष रूपसे आन्दोलित करता है।

[४] (५८५) (सूरः दुहिता योषा) सूर्यकी पुत्री तरुणी उषा (परि तक्म्यायां) रात्रीके समय (युवोः श्रियं परि अवृणीत) तुम्हारी शोभाको बढानेवाले रथपर बैठ गयी। (यत् देवयन्तं शचीभिः अवथः) देवोंको चाहनेवालेको अपनी शक्तियोंसे तुम सुरक्षित रखते हैं।

सूर्यकी पुत्री अश्विदेवोंके रथपर बैठती है ऐसा वर्णन वेदमें अन्यत्र भी है। विशेष कर विवाह सूक्तमें है। (ऋ. १०।८५)। 'देवयन्' स्वयं देव बननेकी इच्छावाला। देवके गुणोंको अपने अन्दर धारण करनेवाला। नरका नारायण बननेकी इच्छावाला। इस तरह अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषकी अश्विदेव (शचीभिः अवथः) अपनी अनेक शक्तियोंसे सुरक्षा करते हैं। अर्थात् उन्नतिका प्रयत्न करनेवालेकी सुरक्षा होती है, वैसी उन्नत्यर्थ प्रयत्न न करनेवालेकी सुरक्षा नहीं होती।

[५] (५८६) हे (रथिरा) रथमें बैठनेवाले वीरो! (यः वां स्यः रथः) जो तुम्हारा वह रथ (युजानः वर्तिः परियाति) घोडोंके साथ जोतनेपर मार्गसे घरको पहुंचता है, (तेन) उस रथसे, हे अश्विदेवो! (उषसः व्युष्टौ) उषाके प्रकट होनेपर (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (नः शं योः नि वहतं) हमारे लिये शान्तिकी प्राप्ति और दुःख वियोग कराओ।

हमें शान्ति सुख चाहिये और हमारे दुःख दूर होने चाहिये।

[६] (५८७) हे (नरा) नेता अश्विदेवो! (अद्य अस्माकं सवना उपयातं) आज हमारे यज्ञके पास आ जाओ। (तृषाणा विद्युतं गौरा इव) और

७ युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः ।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ५८८

८ नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५८९

(७०) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत् स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।
अश्वो न वाजी शुनः पृष्ठो अस्थादा यत् सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम् ५९०

२ सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठा ऽतापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।
यो वां समुद्रान् त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः ५९१

प्यासे तुम दोनों चमकनेवाले सोमरसको गौर मृगके तुल्य जल्दी जल्दी पी जाओ। (वां पुरुत्रा हि) तुम दोनोंको सचमुच अनेक स्थानोंपर (मतिभिः हवन्ते) बुद्धिपूर्वक बुलाते हैं। (अन्ये देवयन्तः) दूसरे देव बननेकी इच्छा करनेवाले लोग (वां मा नियमन्) आपको वहीं न रोक रखें।

[७] (५८८) हे अश्विदेवो! (समुद्रे अवविद्धं भुज्युं) समुद्रमें गिरे हुए भुज्युको (युवं) तुम दोनों (अस्रिधानैः अश्रमैः अव्यथिभिः) क्षीण न होनेवाले, जिनमें श्रम नहीं होते और जिनमें बैठनेसे कष्ट नहीं होते ऐसे (पतत्रिभिः) पक्षीके समान उडनेवाले विमानोंसे और (दंसनाभिः पारयन्ता) क्रियाओंसे पार करनेवाले (अर्णसः उत् ऊहथुः) समुद्रके जलसे ऊपर उठाकर पहुंचा चुके।

भुज्यु समुद्रमें गिरा था, अश्विदेवोंने उसे समुद्रसे ऊपर उठाया, अपने पक्षी सदृश विमानोंमें उसे बिठलाया और समुद्रके पार उसके घर पहुंचाया ।

[८] (५८९) यह मंत्र ५७२ इस क्रमांकमें है वहीं उसका अर्थ पाठक देखें ।

[१] (५९०) हे (विश्ववारा अश्विना) सबसे श्रेष्ठ अश्विदेवो! (पृथिव्यां वां तत् स्थानं) पृथिवीपर तुम दोनोंका वह स्थान (प्र अवाचि) बडा प्रशंसित हुआ है। वहांसे (नः आगतं) हमारे पास आओ, और (यत् ध्रुवसे योनिं न आ सेदथुः) इस आसनपर स्थिर बैठनेके लिये, अपने निज स्थानपर बैठनेके समान, तुम बैठो, वह स्थान (शुनः पृष्ठः वाजी अश्वः न) जिसकी पीठपर बैठना सुखदायी हो ऐसे बलिष्ठ घोडेके समान यहां (अस्थात्) रखा है। यहां बिछाया है।

[२] (५९१) (सा चनिष्ठा सुमतिः) वह वर्णनीय अच्छी बुद्धि (वां सिषक्ति) आपकी सेवा करती है। (मनुषः दुरोणे) मानवके घरमें (घर्मः अतापि) अग्नि प्रदीप्त हुआ है। (यः सुयुजा युजानः) जो उत्तम जोते जानेवाले (एतग्वा चित्) घोडेके समान (वां) तुम्हारे समीप जाता है और (समुद्रान् सरितः पिपर्ति) समुद्रों और नदियोंको पूर्ण करता है।

याजकोंकी उत्तम बुद्धि स्तोत्र पाठसे अश्विदेवोंकी सेवा कर रही है। अग्नि प्रदीप्त हुआ है, यज्ञ शुरू हुआ है। वह यज्ञ अश्विदेवोंके पास हवि पहुंचता है और वे संतुष्ट हुए देव वृष्टी द्वारा नदियोंको भर देते हैं जो नदियां समुद्रको मिलती हैं।

३ यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता ५९२

४ चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद् योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् ।
पुरूणि रत्ना दधतौ न्य१स्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ५९३

५ शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनायाऽस्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ५९४

६ यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान् कृतब्रह्मा समर्यो३ भवाति ।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम् ५९५

---

[३] (५९२) हे अश्विदेवो! (दाशुषे जनाय) दानी पुरुषके लिये तुम (इषं वहन्ता) अन्न पहुंचाते हैं। और (पर्वतस्य मूर्धनि) पहाडके शिखर पर (नि सदन्ता) बैठते हैं। (दिवः यह्वीषु ओषधीषु) द्युलोककी बडी सोम आदि औषधियोंमें तथा (विक्षु) प्रजाजनोंमें (यानि स्थानानि दधाथे) यह स्थानोंका धारण करते हैं।

पर्वत शिखरपर सोम आदि औषधियां होती हैं, उनको लाकर उनका यजन करते हैं, अश्विदेव पर्वत शिखर पर जाते, उन औषधियोंको लाते और लोगोंको सुख पहुंचाते हैं।

[४] (५९३) हे (देवा) अश्विदेवो! (यत् ऋषिणां योग्याः) जो ऋषियोंके योग्य अन्न (अश्नवैथे) तुम प्राप्त करते हो, वह (ओषधीषु अप्सु चनिष्टं) औषधियोंमें जलमें सेवनीय अन्न (अस्मे) हमें दो। और (पुरूणि रत्नानि नि दधतौ) अनेक रत्न भी हमें दो, तथा (पूर्वाणि युगानि) पूर्व युगोंके समान इन युगोंको (अनुचख्यथुः) अनुकूल दीखने योग्य बना दो।

इस मंत्रमें वर्णन किया अन्न औषधियों और जलसे बननेवाला है। अर्थात् शाक भोजन ही है। मांस नहीं है। यहां ' पूर्व युग ' कहे हैं, उससे ' उत्तर युग ' अथवा ' नये युग ' सूचित होते हैं।

[५ (५९४) हे अश्विदेवो! (ऋषीणां पुरूणि ब्रह्माणि) ऋषियोंके बहुतसे स्तोत्र (शुश्रुवांसः चित्) सुनते हुए (अभि चक्षाते) तुम सबका निरीक्षण करते हो। तथा (वरं प्रति आ प्रयातं) श्रेष्ठ मनुष्य के प्रति आते हो। (अस्मे जनाय) इस मनुष्यके लिये (वां सुमतिः) तुम्हारी बुद्धि (चनिष्ठा अस्तु) अन्न देनेवाली हो जाय।

जो मनुष्य श्रेष्ठ होता है उसको अश्विदेवोंकी सहायता मिलती है।

[६] (५९५) हे (नासत्या) सत्यपालक अश्विदेवो! (वां यः यज्ञः हविष्मान्) तुम्हारा जो यज्ञ हविष्यान्नसे युक्त है, (कृतब्रह्मः समर्यः भवाति) स्तोत्र निर्माण करके जिसने मनुष्योंको इकट्ठा किया है। उस (वरं वसिष्ठं) श्रेष्ठ जनोंको वसानेवाले यज्ञ कार्यके (उप प्र आ यातं) समीप तुम जाते हैं क्यों कि (युवभ्यां इमा ब्रह्माणि ऋच्यन्ते) तुम्हारे वर्णन करनेके लिये ही ये स्तोत्र होते हैं।

यज्ञमें अश्विदेवोंका वर्णन किया जाता है, उन स्तोत्रोंको पढकर यज्ञ होते हैं, यज्ञसे मानवोंकी संघटना होती है। श्रेष्ठ पुरुषोंको वसाया जाता है, ग्रामोंका निर्माण होता है, मानवोंका परस्पर व्यवहार होता है। इस तरह यज्ञ उन्नति करते हैं।

७ इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५९६

अनुवाक पाँचवाँ [अनुवाक ५५ वाँ]

(७१) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद् युयोतम् ५९७
२ उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ५९८
३ आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ५९९

[७] (५९६) (वृषणा) बलवान् अश्विदेवो ! (इयं मनीषा) यह हमारी इच्छा है, (इयं गीः) यह हमारी वाणी है, (इमां सुवृक्तिं जुषेथां) इस सुन्दर स्तुतिका तुम स्वीकार करो। क्योंकि (युवयूनि) तुम्हारी कामना पूर्ण करनेवाले (इमा ब्रह्माणि अग्मन्) ये स्तोत्र प्रचलित हुवे हैं। (नः सदा यूयं स्वस्तिभिः पातं) हमारा सदा तुम कल्याण करनेके साधनोंसे संरक्षण करो।

[१] (५९७) (नक्) रात्री (स्वसुः उषसः अपाजिहीते) अपनी बहन उषासे दूर हटती हैं। (अरुषाय) लाल रंगवाले सूर्यके लिये (कृष्णीः पन्थां रिणक्ति) काली रात्री मार्ग खुला कर देती है। (अश्वामघा गोमघा वां हुवेम) घोडों और गौओंके रूपमें वैभवको देनेवाले (वां हुवेम) आपको हम बुलाते हैं। (दिवा नक्तं शरुं अस्मत् युयोतं) दिन रात घातक शत्रुको हमसे दूर कर दो।

उषासे रात्री पृथक् होती है, रात्रीसे सूर्यके लिये मार्ग खुला किया जाता है और वह अन्धकारको दूर करके दिनको प्रवृत्त करता है, गौवों और घोडोंके रूपमें वैभव प्राप्त होकर निर्धनता दूर होती है, उस तरह हमारे शत्रु हमसे दूर हों और हम निर्भय होकर उन्नत होते रहें।

[२] (५९८) हे (माध्वी) मीठे स्वभाववाले अश्विदेवो ! (रथेन वामं वहन्ता) रथसे सुन्दर धन या अन्न लेकर (दाशुषे मर्त्याय उप आयातं) दानी मनुष्यके समीप आओ, (अस्मत् अनिरां- अन्+ इरां) हमसे अन्नके अभावको और (अमीवां युयुतं) रोगोंको दूर करो। (नः दिवा नक्तं त्रासीथां) हमारा दिन रात रक्षण करो।

अश्विदेव अपने रथपर उत्तम अन्न और धनको रख कर हमारे पास आजायं और हमारे अन्नके अकालको दूर करें और हमसे सब रोगोंको दूर करें। और हमारा संरक्षण करें।

[३] (५९९) (अवमस्यां व्युष्टौ) समीपकी उषाका उदय होनेपर (वृषणः सुम्नायवः) बलवान और सुखसे चलनेवाले घोडे (वां रथं) तुम्हारे रथको हमारे समीप (आवर्तयन्तु) ले आवें। हे अश्विदेवो ! (ऋत-युग्भिः अश्वैः) सरलतापूर्वक जोते जानेवाले घोडोंसे (स्यूमगभस्तिं वसुमन्तं) तेजस्वी तथा धनवाले रथको (आ वहेथां) इधर ले आओ।

उषःकालमें उठो, बलवान् और उत्तम घोडे रथको जोतो, और उस रथमें बैठकर जनताके स्थानपर आओ और धन, अन्न आदि उनको देकर उनको सुखी करो।

४ यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा ।
आ न एना नासत्योप यातमभि यद् वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ६००
५ युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ६०१
६ इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६०२

(७१) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ आ गोमता नासत्या रथेनाऽश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ६०३
२ आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक् सजोषसा नासत्या रथेन ।
युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम् ६०४

---

[४] (६००) हे (नृपती नासत्या) मानवोंके रक्षक और पालक अश्विदेवो! (वां यः रथः वसुमान्) तुम्हारा जो रथ धन युक्त और (उस्रयामा) प्रातः कालमें जानेवाला है तथा (त्रिबन्धुरः वोळ्हा अस्ति) तीन बन्धनोंवाला और स्थानपर शीघ्र पहुंचनेवाला है, (एना नः उपयातं) इससे हमारे पास तुम आओ, (यत् विश्वप्स्न्यः) जो सर्वत्र जानेवाला रथ (वां जिगाति) तुम्हें शीघ्र यहां लाता है।

अश्विदेव मनुष्योंके रक्षक है और सत्यके पालक हैं। उनके रथपर धन रहता है। सवेरे उनका तीन बैठकों वाला रथ चलता है, वह हमारे पास आजाय और हमारा संरक्षण करे।

[५] (६०१) तुमने (जरसः च्यवानं अमुमुक्तं) बुढापेसे च्यवन ऋषिको मुक्त किया, (युवं आशुं अश्वं) तुमने शीघ्रगामी घोडेको (पेदवे निरुहथुः) पेदु नरेशके पास पहुंचा दिया। (अत्रिं तमसः अंहसः निष्पर्त) अत्रिको अन्धेरेसे और कष्टके स्थानसे दूर किया, और (जाहुषं शिथिरे अन्तः) जाहुष नरेशको भ्रष्ट हुए उसके राज्यपर पुनः (नि धातं) तुमने बिठला दिया।

वृद्ध च्यवन ऋषिको तरुण बना दिया, उत्तम घोडा पेदुको दिया, अत्रि ऋषिको अन्धकारपूर्ण तथा कष्टदायक कारावाससे मुक्त किया, जाहुषको उसके शिथिल हुए राज्यपर पुनः बिठला दिया। ये कार्य अश्विदेवोंने किये हैं।

[६] (६०२) यह मंत्र ५९६ क्रमांकपर है, वहां इसको पाठक देखें।

[१] (६०३) हे (नासत्या) सत्य पालक अश्विदेवो! (गोमता अश्वावता) गायों और घोडोंसे युक्त (पुरुश्चन्द्रेण रथेन) तेजस्वी शोभासे युक्त रथसे (आ यातं) यहां आओ। (स्पार्हया श्रिया) स्पृहणीय शोभासे तथा (तन्वा शुभाना) उत्तम शरीरसे शोभायमान होते हुए (वां अभि) तुम्हारी (विश्वाः नियुतः सचन्ते) सब घोडे सेवा करते हैं।

अश्विदेव सत्यपक्षका रक्षण करते है। उनके पास बहुत गौवें और घोडे हैं। वे तेजस्वी रथसे आते हैं। उनका शरीर सुन्दर है और उत्तम धन उनके पास है। वे हमारा संरक्षण करें।

[२] (६०४) हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो! (देवेभिः सजोषसः) देवोंके साथ रहकर (नः अर्वाक्) हमारे पास (रथेन उप आयातं) रथसे आओ। (नः युवोः हि) हमारी तुम्हारे साथ (पित्र्याणि सख्या) पितृपरंपरासे

३ उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः ।
अविवासन् रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ६०५
४ वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ६०६
५ आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६०७

(७३) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजाऽमर्त्या हवते अश्विना गीः ६०८

मित्रता है। (उत बन्धुः समानः) और तुम्हारा बन्धुभाव भी समान है, (तस्य वित्तं) उसको तुम जानते हैं।

'पित्र्याणि सख्यानि'—कुल परंपरासे सख्य होना उपकारक होता है। 'समानः बन्धुः'—भाईचारा भी समान होना चाहिये। ये संबंध मानवताकी ऊंचाई बढानेवाले हैं।

[३] (६०५) (आश्विनोः स्तोमासः) अश्विदेवोंके स्तोत्र (देवीः उषसः) तेजस्वी उषाओंके (जामि ब्रह्माणि च) बन्धुवत् स्तोत्रोंको भी (उत अबुध्रन्) जाग्रत कर चुके हैं। (इमे धिष्ण्ये रोदसी) ये बुद्धिमान द्यु और पृथिवि लोगोंकी (आविवासन् विप्रः) परिचर्या करता हुआ ज्ञानी ऋषि (नासत्या अच्छ विवक्ति) सत्यपालक अश्विदेवोंका उत्तम वर्णन करता है।

अश्विदेवोंके स्तोत्र उषःकालमें गाये जाते हैं, जिससे बन्धु बांधव जाग्रत होते हैं और पश्चात् यज्ञका प्रारंभ होता है।

[४] (६०६) हे आश्विदेवो! (उषासः वि उच्छन्ति चेत्) उषाएँ अन्धेरा हटा दें तब (वां ब्रह्माणि कारवः प्रभरन्ते) आपके स्तोत्र स्तुतिकर्ता भर देते हैं, गाते हैं। (देवः सविता ऊर्ध्वं भानुं अश्रेत्) सविता देव ऊंचे स्थानमें जाता हुआ प्रकाशका आश्रय करता है। तब (समिधा अग्नयः बृहत् जरन्ते) समिधासे अग्नि बहुत प्रशंसित—प्रदीप्त होते हैं।

सूर्य उदय होते ही अग्नि प्रज्वलित करते हैं और समिधा आदिका हवन शुरू हो जाता है।

[५] (६०७) हे (नासत्या) सत्यपालक अश्विदेवो! (अधरात् उदक्तात्) नीचेसे, ऊपरसे, (पश्चात् पुरस्तात्) पीछेसे अथवा आगेसे (आयातं) आओ। (पाञ्चन्येन राया) पञ्चजनोंका हित करनेवाले धनके साथ (विश्वतः आयातं) सब ओरसे आओ। (यूयं नः स्वतिभिः सदा पात) तुम हमारा कल्याणकारक साधनोंसे सदा संरक्षण करो।

[१] (६०८) (देवयन्तः स्तोमं प्रतिदधानाः) देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करते हुए स्तोत्रका धारण करते हैं, (अस्य तमसः पारं अतारिष्म) इस अन्धेरेके पार हम चले गये हैं। (गीः) हमारी वाणी (पुरु-दंसरा पुरु-तमा) बहुत कार्य करनेवाले और बडे (पुरा- जा अमर्त्या आश्विना) पूर्वकालसे प्रसिद्ध अमर अश्विदेवोंको (हवते) बुलाती है। इनका वर्णन हमारी वाणी करती है।

हम देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, इस तरह अन्धेरी रात्र समाप्त हुई है, अब उषःकाल हुआ है और इस समय अश्विदेवोंकी स्तुति होती है।

२ न्यु प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च ।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान ६०९

३ अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथात् ।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ६१०

४ उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा संभृता वीळुपाणी ।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ६११

५ आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६१२

(७४) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

१ इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ६१३

---

[२] (६०९) हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (यः यजते वन्दते च) जो यज्ञ करता है और प्रणाम करता है । ऐसा वह (होता मनुषः प्रियः नि सादि) होता मनुष्योंमें प्रिय होकर यज्ञ स्थानमें बैठ गया है । तुम दोनों (उपाके मध्वः अश्नीत) समीप जाकर मधुर सोम रस पीओ (विदथेषु प्रयस्वान्) यज्ञोंमें अन्न साथ लेकर मैं (वां आवोचे) आप दोनोंकी स्तुति करता हूं ।

यज्ञ शुरू हुआ । मानवोंका हितकर्ता याजक यज्ञमें प्रवृत्त हुआ है । अश्विदेवोंको सोमरस दिया है और हविष्यान्न लेकर स्तोता लोग स्तोत्रपाठ पूर्वक यज्ञ करते हैं ।

[३] (६१०) हे (वृषणा) बलवान् अश्विदेवो ! (इमां सुवृक्तिं जुषेथां) इस स्तुतिका सेवन करो । (त्वां प्रति प्रेषितः) तुम्हारी ओर भेजा हुआ (जरमानः वासिष्ठः) स्तुति करनेवाला वासिष्ठ ऋषि (श्रुष्टीवा इव) शीघ्रगामी दूतकी तरह तुम्हें (स्तोमैः अबोधि) स्तोत्रपाठोंसे जगा चुका है । (पथां उराणाः यज्ञं अहेम) मार्गोंका अनुसरण करनेवाले हम अब यज्ञको संपन्न करते हैं ।

एकाग्र मनसे स्तुति करनेवाला ऋषि स्तोत्र पाठ करता है । यज्ञकी क्रियाको साथ साथ करता है ।

[४] (६११) (त्या वह्नी वीळुपाणी) वे ढोनेवाले सुदृढ हाथोंसे युक्त (रक्षो-हणा संभृता) राक्षसोंका वध करनेवाले और धनको लानेवाले अश्विदेव (नः विशं उपगमतः) हमारी प्रजाकी ओर आते हैं । और अब (मत्सराणि अन्धांसि सं अग्मत) आनंद देनेवाले सोमरस मिलाये गये हैं इसलिये तुम (नः मा मर्धिष्टं) हमारा कष्ट न बढाओ और शीघ्र (शिवेन आ गतं) हितकारक ढंगसे इधर आओ । और सोमरस पीओ ।

[५] (६१२) यह मंत्र क्रमांक ६०७ के स्थानपर आया है । पाठ इसका अर्थ वहां देखें ।

[१] (६१३) हे (वाजिनी-वसू उस्रा) शक्तिरूप धनसे युक्त और प्रकाशमान अश्वि देवो ! (इमाः दिविष्टयः) ये द्युलोकमें रहनेकी इच्छा करनेवाले भक्त (वां हवन्ते) तुम्हें बुलाते हैं । (अवसे अयं वां अह्वे) अपनी सुरक्षाके लिये यह मैं तुम्हें बुलाता हूं । क्योंकि (विशं विशं हि गच्छथः) तुम दोनों प्रत्येक प्रजाजनके पास जाते हो ।

शक्तिसे संपन्न बनो, शक्ति ही धन है । द्युलोकके योग्य बनो और सुरक्षाका प्रबंध करो । प्रत्येक प्रजाजनके पास जाकर उनका संरक्षण करो ।

२ महे नो अद्य सुवितायं बोध्युषो महे सौभगाय प्र यन्धि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ६२०
३ एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ६२१

यह मन्त्र मनुष्योंको सर्व साधारणतया उपदेश देता है कि वे मनुष्य दिव्य गुण कर्म स्वभावके द्वारा अपनी महिमाको प्रकट करें, समाजमें कुव्यवहार करनेवाले समाज-द्रोहियोंको दूर करें, समाजसे अज्ञानान्धकारको दूर करें और ज्ञानको चारों ओर फैलावें। सबको ज्ञानवान् बनानेमें अपने कर्तव्यका भाग स्वयं करें और सबको अपना योग्य मार्ग दखि ऐसा करें। ज्ञानसे परि-शुद्ध हुए मार्गसे ही सब मनुष्य जांय। अज्ञानसे द्रोहियोंके मार्गसे कोई न जावे।

यहां उषाके वर्णनके मिषसे स्त्रियों और पुरुषोंके कर्तव्योंका उपदेश किया है।

[२] (६२०) (अद्य नः महे सुविताय बोधि) **आज हमारे बडे सुखके लिये जागो। हे (उषः) उषा देवी! हमें (महे सौभगाय प्र यंधि) बडे सौभाग्यका प्रदान कर। तथा (चित्रं यशसं रयिं अस्मे धेहि) विशेष श्रेष्ठ यशसे युक्त धन हमें दे। हे (मानुषि देवि) मनुष्योंका हित करनेवाली देवी! (मर्तेषु श्रवस्युं) मनुष्योंको अन्न तथा यशवाले पुत्रको दो।**

१ **महे सुविताय बोधि**— विशेष सुविधा, सुखमयी अवस्था उत्पन्न करनेके लिये जागती रहो, जागो और प्रयत्न करो। विशेष सुख प्राप्त करनेके लिये जागना और यत्न करना योग्य है।

२ **महे सौभगाय प्र यन्धि**—विशेष सौभाग्य प्राप्त करनेके लिये यत्नवान होना चाहिये। विशेष भाग्य प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये।

चित्रं यशसं रयिं धेहि—विलक्षण श्रेष्ठ यशस्वी धन प्राप्त होना चाहिये। जिससे यशकी हानि होती हो वह धन नहीं चाहिये।

४ **हे मानुषि देवि ! मर्तेषु श्रवस्युं धेहि**—हे मानवोंका हित करनेवाली देवी! तू मनुष्योंको ऐसा पुत्र दे कि जो यशस्वी तथा अन्नवान् हो। अन्न प्राप्त करनेवाला हो।

ऐसा यत्न करना चाहिये कि जिससे मनुष्योंको हरएक प्रकारकी सुविधा होती जाय, सौभाग्य प्राप्त होता रहे, उनको यश और धन मिले तथा ऐसा पुत्र हो कि जो यश, धन और अन्न कमानेवाला हो। अयशस्वी निर्धन और अन्नहीन न हो।

स्त्रियोंकी योग्यता

'**मानुषि देवि**' (मानुषी देवी) ये पद यहां स्त्रियोंके विशेष कर्तव्यका बोध कराते हैं। स्त्रियां मानवोंका हित करने-वाली हों। स्त्रियोंमें इतनी योग्यता हो कि जिससे वे मानवोंका हित करनेमें समर्थ हों। वे ऐसा सुपुत्र निर्माण करें कि जो यशस्वी धनवान् और अन्न कमानेवाला हो।

[३] (६२१) (दर्शतायाः उषसः) **दर्शनीय ऐसी इस उषाके (त्ये एते) वे ये (चित्राः अमृतासः भानवः) विलक्षण अमर प्रकाश किरणें (आ अगुः) फैल रहीं हैं। वे (दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः) दिव्य व्रतोंका निर्माण कर रही हैं और (अन्तरिक्षा आपृणन्तः वि अस्थुः) अन्तरिक्षको भरपूर भर देती हैं और विशेष रीतिसे वहां रहती हैं।**

१ **उषासः दर्शतायाः भानवः आ अगुः**—सुन्दर उषाके सुंदर किरण फैल रहे हैं। इसी तरह स्त्रियां सुन्दर हों, दर्शनीय हों, सुन्दर लाल, पीले वर्णोंवाले कपडे पहनें और अधिक सुन्दर बनकर अपने सौंदर्यका प्रकाश फैलाएँ। उषाके समान स्त्रियाँ आकर्षक तथा रमणीय हों।

२ **अमृतासः चित्राः भानवः आ अगुः**—गतिमान चित्र विचित्र रंगोंवाले किरण उषःकालमें फैल रहे हैं। उषाके समान स्त्रियां चित्रविचित्र रंगोंवाले वस्त्र पहनें, आभूषण धारण करें और त्वरासे तथा स्फूर्तिसे अपने कार्यमें लगें। अपना तेज फैलाएं।

३ **दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः**— दिव्य व्रतोंका पालन

४ एषा स्या युजाना पराकात् पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ६३२
५ वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ६३३

करें । उत्तम व्रतोंका आचरण करें । दिव्यभाव प्रकट करनेवाले कर्म करें । स्त्रियोंको दिव्य व्रतों नियमों और कर्मोंको पालन करना चाहिये । यह उपदेश स्त्रीपुरुषोंको समान है । दिव्य श्रेष्ठ भाव प्रकट होनेके लिये इसकी आवश्यकता है ।

४ **अन्तरिक्षा आ पृणन्तः वि तस्थुः**--अन्तरिक्षमें अपने तेजको भरपूर भर देती हैं ऐसी उषाएं है । स्त्रियोंको भी उचित है कि वे लोगोंके अन्तःकरणोंमें अपने विषयका पूज्य भाव स्थापन करें और विशेष नियमोंसे विशेष रीतिसे स्थिर रहें, (वि तस्थुः) विशेष स्थान प्राप्त करें और उसी स्थानमें स्थिर रहें, चञ्चल न हों । इधर उधर अयोग्य मार्गसे कदापि न जांय । दिव्य व्रतोंका धारण इसीलिये करना चाहिये कि जिससे उनमें श्रेष्ठता स्थिर रूपसे रहे और चञ्चलता दूर हो । सब लोगोंके अन्तःकरणोंमें अपनी श्रेष्ठताका प्रभाव भरपूर भर दें ताकि कोई उनका अपमान कदापि न कर सके ।

[४] (६३२) (एषा स्या) यह वह उषा (पराकात्) दूरसे भी ' पञ्च क्षितीः युजाना सद्यः परि जिगाति ' पांचो मानवोंको उद्यममें लगाती हुई उनके पास पहुंचती है। (जनानां वयुना अभिपश्यन्ती) लोगोंके कर्मोंको देखती हुई यह (दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी) द्युलोककी पुत्री भुवनोंकी पालना करती है ।

१ **पञ्च क्षितिः युजाना**—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद् इनको कार्यमें लगाती है । स्वयं (पराकात्) दूर रहती है, परंतु सब मानवोंको दूरसे ही कार्यमें प्रवृत्त करती है। इसी तरह स्वयं पृथक् द्रष्टारूप रहकर सब जनोंको सत्कर्ममें लगाना चाहिये ।

२ **सद्यः पञ्च क्षितीः परि जिगाति**—तत्काल वह स्वयं सब प्रकारके पांचों मानवोंके पास पहुंचती है और उनको सत्कर्मकी प्रेरणा देती है ।

*

३ **जनानां वयुना अभिपश्यन्ती**- लोगोंके सब कार्मोंको देखती है, सबोंके कर्मोंका निरीक्षण करती है । कौन अच्छा करता है और कौन बुरा करता है इसका निरीक्षण करती है ।

४ **दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी**—यह दिव्य लोककी पुत्री है और त्रिभुवनका पालन करनेवाली है । यहां भुवनका पालन करनेवाली उषा है ऐसा कहा है । यह उषा द्युलोककी दुहिता है । यह सबकी पालना करती है । पिता द्युलोकके समान तेजस्वी हो यह यहां सूचित होता है । तेजस्वी पिताकी यह पुत्री सुशिक्षासे संपन्न होकर त्रिभुवनके राज्यका पालन करती है ।

पुत्रीकी शिक्षा

पुत्रीकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये, इसका उत्तर इस मंत्रमें दिया है । प्रथम पुत्रीका पिता द्युलोकके समान तेजस्वी चाहिये। यह आनुवंशिक संस्कार है । पश्चात् वह पुत्री भी स्वयं उषाके समान तेजस्विनी चाहिये, नाना वस्त्रालंकारोंसे सुशोभित होकर, विद्यासे संपन्न होकर जनताको नाना कार्योंमें प्रवृत्त करे, उनके कर्मोंका निरीक्षण करे और सब राष्ट्रका पालन करे । इतनी चतुर तथा कर्तव्यदक्ष पुत्री होनी चाहिये । इस सूक्तका प्रत्येक शब्द और वाक्य कन्याओंकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये इसकी सूचना देता है । पाठक प्रथम मंत्रसे इस विषयका उपदेश देखें ।

[५] (६३३) (वाजिनीवती चित्रामघा) बल-वर्धक अन्नसे युक्त तथा विलक्षण धनसे युक्त (सूर्यस्य योषा) सूर्यकी पत्नी (वसूनां रायः ईशे) सब धनोंके ऐश्वर्यकी स्वामिनी है । (ऋषि-स्तुता) ऋषियोंद्वारा प्रशंसित (मघोनी) ऐश्वर्यवती (जरयन्ती) सबकी आयुका नाश करनेवाली (उषाः वह्निभिः गृणाना) उषा अग्नियोंके साथ प्रशंसित होकर (उच्छन्ती) प्रकाशित होती है ।

स्त्रीका अधिकार

१ यह उषा **(सूर्यस्य योषा)** सूर्यकी स्त्री है । '**वाजि-**

२ प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात् प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ६२८

तथा मरणको दूर करनेवाला है। सूर्य प्रकाश रोग बीजोंको दूर करता है, आरोग्य बढता है, अपमृत्युको दूर करता है। सूर्य स्थावर जंगमका आत्मा है(सूर्य **आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।** ऋ० १।११५।१) ऐसा इसीलिये वेदमें अन्यत्र कहा है। इस तरह सूर्य प्रकाश सर्व जनोंका हितकारी है।

१ देवानां चक्षुः कत्वा अजनिष्ट—यह सूर्य देव सबका आंख है, सब विश्वका चक्षु है। सूर्यके प्रकाशसे ही सब कुछ प्रकाशित होता है। सूर्यके प्रकाशसे सबके आंख कार्य करते है। इसलिये इसको (**चक्षुषः चक्षुः** । केन उ०) सबकी आंखका आंख कहते है। यह (क्रत्वा) कर्मके साथ उदय होता है। अर्थात् सूर्यका उदय होनेपर ही यज्ञ, याग आदि शुभ कर्म किये जाते हैं इसलिये इसको सत्कर्मके साथ जन्मा है ऐसा कहा है। मनुष्यको उचित है कि वह जन्मसे ही सत्कर्म करे और दूसरोंको भी सत्कर्ममें प्रेरित करे।

३ उषाः विश्वं भुवनं आविः अकः—उषाने सब भुवनोंको प्रकाशित किया। उषाके प्रकाशसे सब विश्व दिखने लगा है। इसी तरह स्त्रियां भी स्वयं ज्ञान-तेजसे तेजस्विनी बनें और अपने ज्ञानसे सबको ज्ञानवान् बनावें तथा सबको प्रकाशित करनेका श्रेय लें।

सूर्य और उषा ये दोनों स्वयं तेजस्वी होती हैं और सब विश्वको तेजस्वी बनाती और प्रकाशित करती है। मनुष्योंको भी ऐसा ही करना चाहिये। सूर्य मनुष्योंका आदर्श है और उषा सब स्त्रियोंका आदर्श है। अपने आदर्शके समान सबको बनना उचित हैं।

[२] (६२८) (**अमर्धन्तः वसुभिः इष्कृतासः**) **हिंसा न करनेवाले और निवासक तेजोंसे सुसंस्कृत हुए (देवयानाः पन्थाः) देवोंके जाने आनेके मार्ग (मे प्र अदृश्रन्) मैंने देखे हैं। मुझे दिखाई दे रहे हैं (पुरस्तात् उषसः केतुः अभूत् उ) पूर्व दिशामें उषाका ध्वज-प्रकाश-फहरने लगा है। और (प्रतीची) पूर्व दिशामें उषा (हर्म्येभ्यः अधि आ अगात्) बडे प्रासादोंके ऊपर प्रकाशित हो रही है।**

१ देवयानाः पन्थाः अमर्धन्त—दिव्य मार्ग हिंसासे रहित हुए हैं। उषा आनेके पूर्व चारों ओर अन्धेरा था, इस लिये चोर, डाकू, लुटेरे घात पात करते थे, अब उषा आ गयी, प्रकाश हुआ, इसलिये वे हिंसक भाग गये और सब मार्ग निष्कंटक हुए।

२ देवयानाः पन्थाः वसुभिः इष्कृतासः—देवोंके जाने आनेके मार्ग, श्रेष्ठ मार्ग धनोंसे भरपूर हुए हैं। क्योंकि अब प्रकाश हुआ, चोरोंका भय रहा नहीं, इसलिये उद्यमी लोग धन लेकर अपने व्यवहार करनेके लिये जा रहे हैं। अतः उषा आनेके पश्चात् सब मार्ग धन-संपन्न हुए है जो उषाके पहिले धन शून्य थे।

३ देवयानाः पन्थाः प्र अदृश्रन्—दिव्य मार्ग उषाके प्रकाशसे दीखने लगे हैं। जो उषाके पूर्व अन्धेरेसे व्याप्त थे।

भगवा ध्वज

४ पुरस्तात् उषसः केतुः अभूत्—पूर्व दिशामें उषाका ध्वज फहरने लगा है। उषाका ध्वज उषःप्रकाश है। यह ध्वज भगवा है, गेरुवा है। उषाका प्रकाश ही यह ध्वज है। इस ध्वजसे पता लगता है कि सूर्य आ रहा है।

५ प्रतीची हर्म्येभ्यः अधि आ अगात्--पूर्व दिशासे उगनेवाली उषा बडे बडे प्रासादोंके ऊपर अपना तेज डालती हुई आ रही है। उषाका प्रकाश सबसे प्रथम ऊंचे स्थानोंपर चमकता है, पहाडोंके शिखर, ऊंचे मकानोंके ऊपरके भाग, ऊंचे वृक्षोंके ऊपरके भाग सबसे प्रथम प्रकाशित होते हैं।

राज-प्रासाद

यहां '**हर्म्य**' शब्द है, यह राजमहलका वाचक है। जो घर पांच पांच सात सात मंजलोंके होते हैं उनका नाम हर्म्य होता है। राजाओं तथा धनिकोंके घर ऐसे बडे होते हैं। और उनके शिखर सबसे प्रथम उषाके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं। जिनका विचार यह है कि वेदके समय झोंपडियां ही रहनेके लिये होती थीं, उनके अशुद्ध मतका निराकरण यह 'हर्म्य' शब्द कर रहा है और यह शब्द बता रहा है कि उस सभ्यताके समय बडे बडे प्रासाद होते थे जिनमें राजा, राजपुरुष तथा धनी लोग रहते थे।

३ तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।
यतः परि जार इवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ६२९
४ त इद् देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः ।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन् त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ६३०

[३] (६२९) हे (उषः) उषा देवी ! (तानि इत् बहुलानि अहानि आसन्) वे बहुत दिन थे कि (सूर्यस्य उदिता प्राचीना) जो सूर्यके उदयके पूर्व प्रकाशित होते थे । अर्थात् सूर्य उदयके पूर्व उषा बहुत दिन प्रकाशती रहती है । (यतः जारः इव परि आचरन्ती) क्योंकि तू पतिकी सेवा जैसी सती स्त्री करती है वैसी सेवा करती है, परन्तु (पुनः यती इव न) संन्यासिनी स्त्रीके समान पतिसे विमुख कभी तू नहीं होती ।

सूर्योदयके पूर्व उषाके बहुत दिन

१ सूर्यस्य प्राचीना उदिता बहुलानि अहानि आसन्—सूर्यके उदयके पूर्व प्रकाशित हुए बहुत दिन हैं । प्रथम बहुत दिन उषा प्रकाशित होती है और पश्चात् सूर्यका उदय होता है । सूर्य उदय होने पूर्व उषाके कई दिन जाते हैं। ये दिन उषाके न्यूनाधिक प्रकाशसे समझे जाते हैं । (बहुलानि अहानि) बहुत दिन उषा प्रकाश रही है, और पश्चात् सूर्यका उदय हुआ है, ऐसी परिस्थिति भारत वर्षमें कदापि नहीं होती है । उत्तरीय ध्रुवके भागमें तीस दिन तक उषा प्रकाशती है और पश्चात् सूर्यका उदय होता है । यह परिस्थिति वहां है । भारत वर्षका कोई कवि सूर्योदयके पूर्व उषाके बहुत दिन गये ऐसा वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि वैसा दृश्य यहां नहीं है । हां जो कवि भारत वर्ष तथा उत्तरीय ध्रुवकी परिस्थिति स्वयं जानता हो वही अपने काव्यमें ऐसा कह सकता है कि इस स्थानमें सूर्य उदयके पूर्व उषा देवी बहुत दीन (बहुलानि अहानि) प्रकाशित होती है । इस मंत्रका विचार पाठक करें और जाने कि सूर्योदयके पूर्व उषाके बहुत दिन प्रकाशित होनेका आशय क्या है ।

२ उषा जारः इव पर्याचरन्ती--उषा जारकी सेवा करनेके समान सूर्य-पतिकी सेवा करती है । यहां के ' जार ' का अर्थ ' पति ' ऐसा सबने किया है, क्योंकि सूर्य उषाका पति है । इसमें संदेह नहीं है । यह भी पतित्व आलंकारिक है । पर हमारे विचारसे यहांका ' जार ' पद ' जार ' का ही वाचक है । क्योंकि (१) **' साध्वी स्त्री '** पतिकी सेवा करती है, (२) **' जारिणी स्त्री '** जारकी सेवा करती है और (३) **' यती संन्यासिनी '** विरक्त संसारसे उदास बनी स्त्री पतिसेवासे विमुख होती है । इन तीन स्त्रियोंमें जारिणि स्त्री की आतुरता अधिक होती है, तथा वह अधिक तत्परतासे जारकी सेवा करती है । यहां उषा अधिक तत्पर है यह बताया है, इसलिये ' जार ' शब्दका प्रयोग यहां किया है । इसलिये इसका यह अर्थ करना योग्य है । तथापि सब भाष्यकारोंने इसका अर्थ साध्वी स्त्री पतिकी सेवा करती है वैसी उषा है ऐसा अर्थ किया है । हम भी इसका खंडन करना नहीं चाहते ।

३ यती इव न—' यती ' का अर्थ संयमशील संन्यासिनी है । संसारसे विरक्त हुई स्त्री संसारमें रही तो भी वह संसारके कार्योंमें तत्पर नहीं रहती । वैसी उषा नहीं है, उषा अत्यंत तत्परतासे पति सेवा करती है । सब स्त्रियां तत्परतासे पति सेवा करें यह उपदेश यहां है । कोई स्त्री संन्यासिनी न बने, संसारमें रहकर तत्परतासे पति सेवा करे, दक्षतासे संसारके कर्म करती रहे ।

[४] (६३०) जो (ऋतावानः पूर्व्यासः कवयः) सत्यके पालनकर्ता प्राचीन ज्ञानी और (सत्य-मन्त्राः पितरः) जिनके मन्त्र सिद्ध किये होते थे, जो सबके पिता जैसे पालक थे, (ते इत् देवानां सधमादः आसन्) वे देवोंके साथ बैठकर सोम-रसका आस्वाद लेनेवाले थे, जिन्होंने (गूळ्हं ज्योतिः अनु अविंदन्) गुप्त सूर्यकी ज्योतीको प्राप्त किया और जिन्होंने (उषसं अजनयन्) उषाको प्रकट किया ।

यह प्राचीन ऋषियोंका वर्णन है । (पूर्व्यासः) पूर्व समयके (कवयः) कवि (ऋतावानः) सत्यका पालन करते थे, वे

५ समान ऊर्वे अधि संगतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।
ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ६३१
६ प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ६३२

(सत्य-मन्त्राः) मन्त्रोंका साक्षात्कार करते थे तथा (पितरः) सबके पूर्वज तथा पालक थे, (देवानां सधमादः) देवोंके साथ साथ बैठकर सोमरस पीकर आनंदित होनेवाले थे, अर्थात् देवोंकी पंक्तिमें बैठनेका जिनका अधिकार था ऐसे अंगिरस ऋषि थे । इन ऋषियोंने (गूळ्हं ज्योतिः) अन्धेरेमें गुप्त हुआ सूर्यका प्रकाश फलाने स्थानसे प्रकट होगा, ऐसा ज्योतिर्विद्यासे कहा और वैसा ही हुआ । उनके कहनेके अनुसार उषा प्रकट हुई और पश्चात् सूर्य भी प्रकट हुआ । ये प्राचीन ऋषि अंगिरस थे, अत्रि कुलके भी थे । ज्योतिष विद्यासे वे जान सकते थे कि दीर्घ कालके पश्चात् फलाने दिन प्रथम उषाका प्रादुर्भाव होगा और उसके पश्चात् उस दिन सूर्य प्रकट होगा । जैसा वे कहते थे वैसा ही होता था ।

यह मंत्र वासिष्ठ ऋषिका देखा है और इसमें इनको 'पूर्व्यासः पितरः' कहा है ।

[५] (६३१) (समाने ऊर्वे) **एक महत्कार्यके अन्दर वे (अधि सं-गतासः) एक होते हैं, संघटित होते हैं, और (सं जानते) अपना एक विचार करते हैं, तथा (ते मिथः न यतन्ते) वे कभी आपसमें कलह नहीं करते, (ते देवानां व्रतानि न मिनन्ति) वे देवोंके अनुशासनोंका भंग कभी नहीं करते और (अमर्धन्तः) हिंसा न करते हुए (वसुभिः यादमानाः) धनोंके साथ संगत होते हैं ।**

यहां उन्नतिके छः नियम बताये हैं, जो वे प्राचीन कालके पूर्वज अंगिरस आदि ज्ञानी पालते थे, वे नियम ये हैं—

१ समाने ऊर्वे अधि संगतासः—एक महत्कार्य करनेके लिये आपसकी संघटना करना, आपसका विद्वेष हटाना और एक होना, एक अनुशासनमें रहना ।

२ सं जानते—सबका एक विचार, एक संस्कार, एक मत करना, आपसमें मतभेद न रखना,

३ ते मिथः न यतन्ते—आपसमें विद्वेष बढे ऐसा यत्न कभी न करना, अपना संघटन टूट जाय ऐसा यत्न कभी न करना, परस्परका संघर्ष बढने न देना,

४ ते देवानां व्रतानि न मिनन्ति—देवोंके अनुशासनोंको वे कभी तोडते नहीं, स्थायी नियमोंको वे कभी तोडते नहीं । अनुशासनोंका उत्तम पालन करना,

५ अमर्धन्तः—किसीकी हिंसा नहीं करना, दूसरोंको कष्ट न देना, ऐसा व्यवहार करना कि जिससे किसी दूसरेको कष्ट न पहुंचे,

६ वसुभिः यादमानाः—धनोंको प्राप्त करना, ये छः नियम हैं, इनको जो पालन करेंगे वे निःसंदेह अभ्युदयको प्राप्त कर सकते है । ये नियम अभ्युदय चाहनेवालोंको अपने ध्यानमें रखना उचित है ।

[६] (६३२) **हे (सुभगे उषः) उत्तम भाग्यवती उषा देवी ! (उषर्बुधः तुष्टुवांसः वसिष्ठाः) उषःकालमें जागनेवाले, स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाले वसिष्ठ लोग (त्वा स्तोमैः ईळते) तुम्हारी स्तुति स्तोत्रोंसे करते हैं । (गवां नेत्री वाजपत्नी) गौओंको प्राप्त करनेवाली और अन्नका संरक्षण करनेवाली होकर (नः उच्छ) हमारे लिये प्रकाशित हो । हे (सुजाते) उत्तम जन्मवाली उषा ! (प्रथमा जरस्व) सब देवोंमें पहिली होकर प्रशंसित हो ।**

१ उषर्बुधः तुष्टुवांसः वसिष्ठाः स्तोमैः ईळते—प्रातःकाल उठकर स्तोत्रोंसे ईश्वरकी स्तुति करनी चाहिये । जो (वसिष्ठाः) निवास करनेवाले हैं, जो एकत्र निवास करते हैं, वे इकट्ठे होकर स्तोत्र पाठ करें और ईश्वरकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करें ।

२ गवां नेत्री वाज-पत्नी—गौओंको चलानेवाली और अन्नका पालन करनेवाली उषा है । उषःकालमें गौओंको

७ एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६३३

(७७) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ उषो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ६३४

चलाया जाता है और अन्नकी देखभाल की जाती है । उषा स्त्री है । अतः गौओंका संचालन और घरमें आये अन्नका रक्षण करना ये कार्य स्त्रियोंके हैं ऐसा मानना उचित है ।

६ सुजाते ! प्रथमा जरस्व— हे कुलीन स्त्री ! तू सबसे प्रथम ईश्वरकी स्तुति कर, प्रथम उठकर, प्रथम आगे हो और ईश्वरकी स्तुति कर । स्त्रियां भी स्तुति प्रार्थना करें ।

[७] (६३३) **(एषा उषाः राधसः सूनृतानां नेत्री) यह उषा स्तुति करनेवालेके सद्वचनोंको प्रेरित करनेवाली है । (उच्छन्ती वसिष्ठैः रिभ्यते) यह उषा अन्धकारको दूर करती है और वसिष्ठों द्वारा प्रशंसित होती है । (दीर्घश्रुतं रयिं अस्मै दधाना) बहुत प्रशंसा योग्य धन हमें देती है । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा उत्तम संरक्षक साधनोंसे संरक्षण करो ।**

उषःकाल इतना रमणीय होता है कि उसको देखकर कवियोंको काव्यगानका स्फुरण होता है । यह उषा अन्धकारको दूर करती है, प्रकाश देती है । इसलिये उषा प्रशंसाके योग्य है । जो एकत्र रहते हैं, एकत्र निवास करते हैं वे मिलकर उषाकी स्तुति करें ।

दीर्घश्रुतं रयिं अस्मे दधाना— अत्यंत प्रशंसित धन हमें देवे । हमें ऐसा धन चाहिये कि जो बहुत प्रशंसाके योग्य है । जिसकी निंदा होती है ऐसा धन हमें नहीं चाहिये ।

[१] (६३४) **(युवतिः योषा न) तरुणी स्त्रीके समान यह उषा (उषो रुरुचे) सूर्य पहिले प्रकाशित हो रही है । यह (विश्वं जीवं चरायै प्रसुवती) सब जीवोंको सर्वत्र संचार करनेके लिये प्रेरित करती है । (अग्निः मानुषाणां समिन्धे अभूत्) अब उषःकालमें अग्नि मनुष्योंको प्रदीप्त करना योग्य है । वह प्रदीप्त होकर (तमांसि बाधमाना ज्योतिः अकः) अन्धकारको दूर करनेवाली ज्योतिको प्रकट करता है ।**

१ युवतिः योषा न उषो रुरुचे—तरुणी स्त्री वस्त्रालंकारोंसे सुशोभित होकर अपने तरुण पतिके सामने चमकती है, उस तरह यह उषा अपने सूर्य पतिके पहिले उठकर उसके पहिले ही अपना अन्धकार दूर करनेका कार्य करने लगी है । इसी तरह पतिके पूर्व स्त्री उठे और अपना कार्य करे यह स्त्रीके लिये उत्तम आदेश है । स्त्री कभी पति उठनेके पश्चात् भी सोती न रहे ।

२ विश्वं जीवं चरायै प्रसुवंती— उषा सब जीवोंको विचरनेके लिये प्रेरित करती है, इसी तरह घरकी स्त्री पतिके पूर्व उठे और अपने घरके गौ आदि जीवोंकी उत्तम व्यवस्था करे । आलस्यमें न रहे ।

३ मानुषाणां अग्निः समिन्धे अभूत्—मानवोंके घरोंमें अग्नि प्रज्वलित करना योग्य है । उषःकालमें अग्नि प्रदीप्त करें ।

४ तमांसि बाधमाना ज्योतिः अकः— अन्धकारको दूर करनेवाली ज्योति प्रकाशित करो । दीप जलाकर अथवा अग्नि प्रदीप्त करके उसकी ज्योति जले जिससे घरका अन्धकार दूर हो ।

स्त्रीके लिये आदेश

स्त्री पतिके पूर्व उषःकालमें उठे । अपने वस्त्र संभाल कर कार्य करनेके लिये तत्पर हो जाय । गौ आदि पशुओंकी देख भाल करे । अग्नि प्रदीप्त करे और दीप जला कर अथवा अग्निकी ज्वालासे अन्धकारको दूर करे ।

२ विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद् रुशद् वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग् गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ६३५
३ देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ६३६

[२] (६३५) (**विश्वं प्रतीची सप्रथाः उदस्थात्**) सब जगतके सन्मुख अत्यंत प्रसिद्ध यह उषा उदित हुई है। और वह (**रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती अश्वैत्**) तेजस्वी शुभ्र वस्त्र पहन कर बढ रही है। वह (**हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृक्**) सुवर्णके समान वर्णवाली तथा सुन्दर दर्शनीय तेजवाली (**गवां माता**) गौओंकी माताके समान हित करनेवाली और (**अह्नां नेत्री**) दिनोंका संचलन करनेवाली (**अरोचि**) प्रकाशित हो रही है।

१ **विश्वं प्रतीची सप्रथाः उदस्थात्**—सबसे प्रथम यह प्रसिद्ध (उषा स्त्री, उठी है। इस तरह स्त्री सबसे प्रथम उठे।

२ **रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती अश्वैत्**—तेजस्वी चमकीला वस्त्र पहन कर कार्य करनेके लिये आगे बढे। स्त्री उठनेके पश्चात् अच्छे वस्त्र पहने और कार्यमें प्रवृत्त हो।

३ **हिरण्यवर्णा सुदृशीक-संदृक्**— स्त्री सुवर्णके समान वर्णवाली और सुंदर दर्शनीय बने। स्त्रीको सजकर अपनी सुन्दरता बढानी चाहिये।

४ **गवां माता**– स्त्री घरकी गौओंका माताके समान पालन करे।

५ **अह्नां नेत्री अरोचि**—दिनमें जो घरके कार्य करने होंगे उनका नेतृत्व करे। प्रकाशित होकर घरका नेतृत्व करे। जैसी उषा अपने विश्वरूप घरका नेतृत्व करती है।

इस मंत्रमें उषाके वर्णनसे स्त्रियोंके कर्तव्य बताये हैं।

[३] (६३६) (**देवानां चक्षुः वहन्ती**) देवोंके तेजको धारण करनेवाली (**सुभगा**) उत्तम भाग्यवाली (**सुदृशीकं श्वेतं अश्वं नयन्ती**) सुन्दर श्वेत किरणोंको– सूर्यके अश्वोंको चलानेवाली (**उषा रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि**) उषा किरणोंसे व्यक्त रूपमें दीखने लगी है। यह उषा (**चित्रामघा विश्वं अनु प्रभूता**) विलक्षण धनवाली संपूर्ण विश्वके सन्मुख बढ रही है।

१ **सुभगा देवानां चक्षुः वहन्ती**— यह भाग्यवती उषा देवोंके मध्यमें प्रकाशको फैलाती है। इस तरह सौभाग्यवती स्त्री अपने घरमें प्रकाश करे, तेजस्विनी होकर रहे।

२ **सुदृशीकं श्वेतं अश्वं नयन्ती**—सुंदर श्वेत अश्वको चलाती है। अश्व संचालनकी विद्या जानती है। इस तरह स्त्री अश्व संचालनकी विद्यामें प्रवीण हो। घोडोंको सुन्दर दर्शनीय स्थितिमें रखे। भगवान् श्रीकृष्ण अश्वविद्यामें निपुण थे और अर्जुनके रथके घोडोंका संचालन करते थे। इसमें कोई मान हानि नहीं है। राजा नल, नकुल ये अश्व विद्यामें निपुण थे। स्त्रियां भी अश्व संचालनमें कुशल हों।

३ **उषा रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि**—उषा किरणोंसे प्रकट होकर सुंदर दिखती है। इस तरह स्त्रियां सुशोभित होकर बाहर आ जांय।

४ **चित्रामघा विश्वं अनु प्रभूता**--अनेक प्रकारके श्रेष्ठ धनोंसे युक्त होकर विश्वके सन्मुख उषा बढती है। इसी तरह स्त्री भी अनेक वस्त्रों और अलंकारोंसे सजकर, सुशोभित होकर घरके बाहर आकर विराजे। स्त्रीके वस्त्र मलिन न हों, वह स्त्री आभूषण रहित न हो, जो उसके पास हो उससे जितना अधिक सुशोभित होनेकी संभावना हो उतना सौंदर्य बढावे।

४ अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वी गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ६३७
५ अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद् रथवच्च राधः ६३८
६ यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६३९

(७८) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते ।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ६४०

---

[४] (६३७) (आन्तिवामा) हमारे समीप धनको लानेवाली तू (अमित्रं दूरे उच्छ) हमारे शत्रुको दूर करके प्रकाशित हो। तथा ऊर्वी गव्यूतिं नः अभयं कृधि) विस्तृत भूमिको हमारे लिये निर्भय बनाओ। (द्वेषः यवय) शत्रुओंको दूर करो, (वसूनि आभर) धनोंको ला दो। हे (मघोनि) धनयुक्त उषा ! (गृणते राधः चोदय) स्तुति करनेवालेके लिये धन भेजो।

धनको पास लाना, शत्रुको दूर करना, प्रदेशको निर्भय करना, द्वेष कर्ताओंको दूर भगाना, धनसे घर भर देना, भक्तोंको धन देना ये मनुष्यके कर्तव्य हैं ।

१ **अन्तिवामा**-- अपने पास धनको लाना,

२ **अमित्रं दूरे उच्छ**--शत्रुको दूर भगा देना,

३ **ऊर्वी गव्यूतिं नः अभयं कृधि**--विस्तृत भूप्रदेशको निर्भय करना,

४ **द्वेषः यवय**—द्वेष बढानेवालोंको दूर करना,

५ **वसूनि आ भर**—धनसे घरको भर देना,

५ **गृणते राधः चोदय**—भक्तके लिये धनका प्रदान करना।

ये कार्य उषा करती है, ये कार्य स्त्रियां करें तथा ये कार्य पुरुषोंको भी करना उचित है ।

[५] (६३८) हे (उषः देवि) उषा देवी !) (असे श्रेष्ठेभिः भानुभिः वि भाहि) हमारे हितके लिये श्रेष्ठ किरणोंके साथ प्रकाशित हो। (नः आयुः प्रतरन्ती) हमारी आयुको बढाओ। हे (विश्ववारे) सबके द्वारा स्वीकार करने योग्य उषा देवी ! (नः इषं च) हमारे लिये अन्न (गोमत् अश्ववत् रथवत् च राधः दधती) गौओं, घोडों और रथोंके साथ रहनेवाला धन दे दो।

१ **नः आयुः प्रतरन्ती**—हमारी आयु बढाओ,

१ **गोमत् अश्ववत् रथवत् इषं राधः नः दधती**-जिस धनके साथ गौएं, घोडे, रथ, अन्न तथा कार्य सिद्धि रहती है ऐसा धन हमें दे दो।

[६] (६३९) हे (दिवः दुहितः सुजाते उषः) द्युलोककी दुहिता रूप उत्तम कुलीन उषा देवि ! (यां त्वा वसिष्ठाः मतिभिः वर्धयन्ति) वासिष्ठ लोग स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति गाते हैं। (सा अस्मासु बृहन्तं ऋष्वं रयिं धाः) वह तू हमारे पास बडा तेजस्वी धन धारण कर। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण साधक साधनोंसे सुरक्षित रखो।

१ **अस्मासु बृहन्तं ऋष्वं रयिं धाः**--हमें बडा विशाल तेजस्वी धन चाहिये।

[१] (६४०) (अस्याः प्रथमाः केतवः प्रति अदृश्रन्) इस उषाके पहिले किरण दीख रहे हैं। (अस्याः अंजयः ऊर्ध्वाः वि श्रयन्ते) इसके गतिशील किरण ऊर्ध्व भागमें आश्रय ले रहे हैं।

२ प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी ६४१
३ एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।
अजीजनन् त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ६४२
४ अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।
आस्थाद् रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ६४३
५ प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्ताऽस्माकासो मघवानो वयं च ।
तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६४४

(७९) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ व्यु१षा आवः पथ्या३ जनानां पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती ।
सुसंदृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद् वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ६४५

हे (उषः) उषा देवि ! (अर्वाचा बृहता ज्योतिष्मता रथेन) हमारी ओर आनेवाले बडे तेजस्वी रथसे (अस्मभ्यं वामं वक्षि) हमें उत्तम धन दे ।

[१] (६४१) (समिद्धः अग्निः सीं प्रति जरते) प्रदीप्त हुआ अग्नि बढ रहा है। (विप्रासः मतिभिः गृणन्तः प्रति जरन्ते) ज्ञानी लोग स्तोत्रोंसे स्तुति गाते हुए अपने कर्ममें बढ रहे हैं। (उषा देवी) उषा देवी (विश्वा तमांसि दुरिता) सब अन्धकारों और पापोंको (ज्योतिषा अपबाधमाना याति) अपने तेजसे दूर करती हुई जाती हैं।

[३] (६४२) (एताः त्याः उषसः) ये वे उषायें (विभातीः ज्योतिः यच्छन्तीः) प्रकाशती और तेजको देती हुई (पुरस्तात् प्रति अदृश्रन्) हमारे सामने दीख रही हैं। (सूर्यं अग्निं यज्ञं अजीजनन्) सूर्य, अग्नि और यज्ञको प्रकट किया है। (अजुष्टं तमः अपाचीनं अगात्) अप्रिय अन्धकारको दूर किया है।

इस मंत्रमें तथा कई अन्य मंत्रोंमें भी अनेक वचनमें उषाका प्रयोग हुआ है। सूर्य उदयके पूर्व अनेक उषाओंका होना इससे सिद्ध होता है। अनेक उषायें सूर्यको प्रकट करती हैं इसका स्पष्ट अर्थ यह है। प्रथम अनेक दिन उषःकाल ही होता है और पश्चात् सूर्यका उदय होता है।

[४] (६४३) (दिवः दुहिता मघोनी अचेति) द्युलोककी पुत्री धनवाली होकर आती है। (विश्वे विभातीं उषसं पश्यन्ति) सब प्रकाशित होनेवाली उषाको देखते हैं। यह उषा (स्वधया युज्यमानं रथं आ अस्थात्) अन्नसे भरे रथपर चढती है। (यं सुयुजः अश्वासः आ वहन्ति) जिसको उत्तम शिक्षित घोडे इष्ट स्थानतक पहुंचाते हैं।

[५] (६४४) (त्वा अद्य) तुझे आज (अस्माकासः मघवानः सुमनसः) हमारे धनी और बुद्धिमान पुरुष तथा (वयं च) हम सब (प्रतिबुधंत) जानते हैं, तेरा वर्णन करते हैं। हे (उषसः) उषाओ ! (विभातीः तिल्विलायध्वं) तुम प्रकाशित होकर जगत्को स्नेहयुक्त करो। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सब सदा हमको कल्याणपूर्ण साधनोंसे सुरक्षित करो।

विभातीः तिल्विलायध्वं-- स्वयं तेजस्वी बनो और विश्वको स्नेहसे भरपूर भर दो। जगत्से द्वेषभावको समूल दूर करो।

[१] (६४५) (जनानां पथ्या उषाः वि आवः) लोगोंके लिये हितकारिणी उषा विशेष रीतिसे प्रकट हुई है। वह (मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती)

२ व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून् विशो न युक्ता उषसो यतन्ते ।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ६४६

३ अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत् सुविताय श्रवांसि ।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि ६४७

मानवोंके पांचों लोगोंको जगाती है। वह (सुसंदृग्भिः उक्षभिः भानुं अश्रेत्) सुन्दर गौओंके साथ तेजका आश्रय करती है। (सूर्यः रोदसी चक्षसा वि आवः) सूर्य भी अपने तेजसे द्यावा पृथिवीको भर देता है।

१ जनानां पथ्याः— लोगोंके हितके कर्म करने चाहिये।

२ मानुषी पञ्च क्षितीः बोधयन्ती—मनुष्योंके ज्ञानी, शूर, व्यापारी, कर्मचारी और अन्य लोगोंको अर्थात् सब मानवोंको ज्ञान देना चाहिये।

३ भानुं अश्रेत्—प्रकाशका आश्रय करना चाहिये।

४ सूर्यः रोदसी चक्षसा वि आवः--सूर्य अपने प्रकाशसे द्यावा पृथिवीको भर देता है। मनुष्य तेजस्वी बने और अपना प्रकाश चारों दिशाओंमें फैला देवे।

[२] (६४६) (उषसः अक्तून् दिवः अन्तेषु व्यञ्जते) उषाएं अपने तेजोंको द्युलोकके अन्तिम प्रदेशतक फैलाती हैं। (युक्ताः विशः न यतन्ते) संघटित प्रजाजनोंकी तरह वे उषाएं अन्धकारके नाश करनेके लिये यत्न करती हैं। हे (उषः) उषा देवी! (ते गावः तमः सं आ वर्तयन्ति) तेरी किरणें अन्धकारका नाश करती हैं। (सूर्यः इव बाहू ज्योतिः यच्छन्ति) सूर्य अपनी बाहुओं किरणों को जिस तरह फैलाता है, उस तरह उषाएं अपने तेजको फैलाती हैं।

१ उषसः अक्तून् दिवः अन्तेषु व्यञ्जते--उषाएं अपने प्रकाशको द्युलोकके अन्तिम प्रदेशतक फैलाती हैं। वैसी स्त्रियां अपने राष्ट्रके कोने कोनेतक ज्ञानका प्रकाश फैलाएं।

२ युक्ताः विशः न उषासः यतन्ते-संघटित प्रजाजनोंके समान उषायें अन्धकारके नाशके लिये यत्न करती हैं। इसी तरह प्रजाजन संघटित होकर, नाना संस्थाएं स्थापन करके ज्ञानके द्वारा प्रजाओंके अज्ञानको दूर करें।

३ ते गावः तमः समावर्तयन्ति- उषाकी किरणें अन्धकारको समेट लेती हैं। और

४ सूर्यः इव बाहू ज्योतिः यच्छन्ति— जैसे सूर्य अपने किरणोंको फैलाता है वैसे उषा अपने प्रकाशको फैलाती है।

जिस तरह सूर्य और उषा अपने प्रकाशसे जगत्के अन्धकरका नाश करते है, उस तरह पुरुष और स्त्री आलस्य छोडकर अपने ज्ञान द्वारा लोगोंके अज्ञानको दूर करें। ज्ञानका प्रकाश करें।

[३] (६४७) (इन्द्रतमा मघोनी उषा अभूत्) श्रेष्ठ स्वामिनी ऐश्वर्यवाली उषा प्रकट हुई है। (सुविताय श्रवांसि अजीजनत्) सबके कल्याणके लिये उसने अन्नोंका निर्माण किया है। (दिवः दुहिता देवी) द्युलोककी पुत्री उषा देवी (अंगिरस्तमा) अंगारके समान तेजस्विनी होकर (सुकृते वसूनि वि दधाति) सत्कर्म करनेवालेके लिये धनोंका प्रदान करती हैं।

१ इन्द्रतमा मघोनी उषा अभूत्— उत्तम शासकको इन्द्र कहते हैं। यह उषा उत्तम रीतिसे शासन करती है इसलिये उसको ' इन्द्र-तमा ' कहा है। उत्तमसे उत्तम शासनका प्रबंध करनेवाली उषा प्रकट हुई है। इस तरह स्त्रियां घरका शासन प्रबंध उत्तमसे उत्तम रीतिसे करनेवाली हों। नगरका शासन करनेकी योग्यता (पुरं-धी) धारण करें। ऐसी स्त्रियां हों। स्त्रियां ' इन्द्र ' ही नहीं, परंन्तु ' इन्द्र-तमा ' हों। उत्तमसे उत्तम शासन प्रबंध करनेकी शक्ति स्त्रियोंमें हो। **स्त्री-शिक्षा** ऐसी होनी चाहिये जिसे स्त्रियां कर्तव्यदक्ष हों और शासन प्रबंध करनेमें अत्यंत प्रवीण हों।

२ सुविताय श्रवांसि अजीजनत्— लोगोंके कल्याणके लिये अन्नोंको सिद्ध करें। अन्न पकानेका कार्य स्त्रियोंके

४ तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत् स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ६४८
५ देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक् सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६४९

(८०) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ६५०

अधीन हो । उनकी निग्रानीमें अन्नोंकी सिद्धता हो ।

३ **सुकृते वसूनि वि दधाति**— उषा सत्कर्म करनेवालेके लिये धन देती है । कर्म करनेवालेके कामको स्त्री देखे और उसके कर्मके अनुसार उसे धन देवे । कर्मचारीसे काम लेवे और उसको योग्य धन देवे । शासन प्रबंधका यह एक कार्य है ।

[४] (६४८) **हे (उषः) उषा देवी ! (यावत् राधः स्तोतृभ्यः अरदः) जितना धन तुमने स्तोताओंको पूर्व समयमें दिया था, (तावत् राधः गृणाना अस्मभ्यं रास्व) उतना धन प्रशंसित होकर हमें दे दो । (वृषभस्य रवेण यां त्वा जज्ञुः) बैलके शब्दसे तुम्हें सब जानते हैं, उषाके उदयमें बैल तथा गौवें शब्द करती हैं जिससे पता लगता है कि उष.काल हुआ है। और (दृळ्हस्य अद्रेः दुरः वि और्णोः) सुदृढ पर्वतके कीलेका द्वार खोल दिया है और गौओंको बाहर निकाला है।**

उषःकाल होते ही गायें और बैल शब्द करने लगते हैं। तब गोशालाका सुदृढ द्वार खोला जाता है और गौवें तथा बैल बाहर निकाले जाते हैं । चरनेके लिये उनको खुला छोडा जाता है। ' सुदृढ कीलेका द्वार ' (दृळ्हस्य अद्रेः दुरः) ये शब्द बता रहें हैं कि गोशालाएं कैसी सुदृढ हुआ करती हैं ।

[५] (६४९) **(देवंदेवं राधसे चोदयन्ती) प्रत्येक सत्कर्म कर्ताको ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये प्रेरित करती है, (अस्मद्र्यक् सूनृताः ईरयन्ती) हमारे सन्मुख सत्य भाषणको प्रेरित करती है। (व्युच्छन्ती नः सनये धियः धाः) अन्धकारको दूर करती हुई हमें धन देनेकी बुद्धिका धारण कर। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणमय साधनोंसे सुरक्षित रख ।**

१ **देवंदेवं राधसे चोदयन्ती**— प्रत्येक सत्कर्म कर्ताको सिद्धि प्राप्त करनेके मार्गसे जानेके लिये प्रेरित करो ।

२ **सूनृता ईरयन्ती**— उत्तम सत्य भाषण स्वयं करो और दूसरोंको भी उत्तम सत्य भाषण करनेकी प्रेरणा करो ।

३ **सनये धियः धाः**— दान देनेके लिये अपनी बुद्धिको प्रेरित करो।

प्रत्येक कर्मकर्ता धन प्राप्त करनेके लिये, सिद्धि प्राप्त होनेतक प्रयत्न करे । सत्य तथा सरल भाषण करे और दान देनेकी बुद्धिको अपने अन्तःकरणमें रखे । यह मानवधर्म है ।

[१] (६५०) **(विप्रासः वसिष्ठाः) ज्ञानी वसिष्ठ गोत्रके ऋषि (प्रथमाः स्तोमेभिः) सबसे प्रथम स्तोत्रोंसे और (गीर्भिः) वाणियोंसे (उषसं प्रति अबुध्रन्) उषाको जगाते हैं। उषाके समय जागते हैं। यह उषा (समन्ते रजसी विवर्तयन्ती) समान अन्तवाली, द्यावा पृथिवीको घुमानेवाली, (विश्वा भुवना आविः कृण्वन्ती) सब भुवनोंको प्रकाशित करती है ।**

' **प्रथमाः विप्रासः वसिष्ठाः** '– ऐसा वसिष्ठोंका वर्णन यहां है । वसिष्ठ गोत्री विप्र पहिले थे । अन्य ऋषियोंके पूर्व समयके ये ज्ञानी थे । सबसे प्राचीन ऋषि ये थे। ये उषःकालमें उठते और उषाके स्तोत्र गाते थे ।

' **समन्ते रजसी विवर्तयन्ती** '— द्युलोक और

२ एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत् सूर्यं यज्ञमग्निम् ६५१
३ अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६५२

पृथिवी लोक, इनका आपसमें (सं-अन्ते) अन्त भाग जोडा है, एक दूसरेसे संबंध जुडा है ऐसा दीखता है। ये दोनों लोगोंको (विवर्तयन्ती) घुमानेवाली उषा है। ये दोनों लोग समान रीतिसे जैसे भ्रमण हो रहे हैं ऐसा दीखनेवाला इस भूमंडलपर एक ही स्थान है और वह है उत्तरीय ध्रुव प्रदेश। इस प्रदेशमें रहनेवाला मनुष्य देख सकता है कि भूमि और द्युलोक परस्पर लगे हैं और वे (विवर्तयन्ती) वर्तुल गतिसे घूम रहे हैं। प्रदक्षिणा कर रहे हैं। अपने चारों ओर इनका भ्रमण हो रहा है। उषा इन लोगोंको घुमा रही है यह आलंकारिक वर्णन है।

[२] (६५१) **(एषा स्या उषा नव्यं आयुः दधाना) यह वह उषा नवीन तारुण्यकी आयु धारण करती है, (गूढ्वी तमः ज्योतिषा) और गाढ अन्धकारको अपने तेजसे निवारण करती हुई (अबोधि) जागती है। (अग्रे) प्रारंभमें (अह्रयमाणा युवतिः एति) लज्जा न करनेवाली तरुण स्त्रीके समान यह सूर्यके पूर्व चलने लगती है। तथा (सूर्यं अग्निं यज्ञं प्र अचिकितत्) सूर्य, अग्नि और यज्ञको बतलाती है।**

१ एषा नव्यं आयुः दधाना उषा ज्योतिषा गूढ्वी तमः अबोधि— यह तरुण आयुवाली उषा अपने तेजसे अन्धकार दूर करती हुई पतिके पूर्व जाग उठी है। इसी तरह स्त्री पतिके पूर्व उठे, अपने कर्तव्य कर्मको करे, प्रकाश करके अन्धकारको दूर करे।

२ अह्रयमाणा युवतिः अग्रे एति अग्निं यज्ञं अचिकितत्— लज्जा न करनेवाली तरुण स्त्री पतिके पहिले उठती है और अग्नि प्रदीप्त करके यज्ञको करती है।

पतिके पूर्व स्त्री उठे, अपने कर्तव्य कर्म करे, जिससे पतिका प्रेम वैसी तरुणीपर जमता है। परंतु जो सुस्त स्त्री होती है, वह पतिके लिये उतनी प्रिय नहीं होती। स्त्री पहिले उठे ऐसा कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि पति बहुत देरी करके उठे। **' उषर्बुध् '** उषःकालमें उठनेवाले पुरुषोंका वर्णन अन्यान्य मंत्रोंमें किया ही है।

[३] (६५२) **(अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः) घोडे, गौवें और वीर पुरुष-वीरपुत्र जिसके साथ है ऐसी (भद्राः उषासः नः सदं उच्छन्तु) कल्याण करनेवाली उषाएं हमारे घरको प्रकाशित करें। ये उषायें (घृतं दुहानाः) घी अथवा जलको दुहकर देनेवाली और (विश्वतः प्रपीताः) सब ओरसे परिपुष्ट हुई हों। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणमय साधनोंसे सुरक्षित रखो।**

उषःकालमें घोडे, गौवें और वीर पुत्र घरसे बाहर आते हैं, घर इनसे शोभावाला होता है। गौके दूधका घी पर्याप्त तैयार होता है। कल दोहे दूधका रात्रीमें दही बनाकर सवेरे मक्खन निकाल कर उसका घी बनाना। इस घीका नाम ' हैयंगवीन ' है। यह घी सवेरे ही तैयार होता है इसलिये ऐसे घीको उषा देती है ऐसा कहा है।

इस मंत्रमें **' उषासः '** अनेक उषाएं ऐसा कहा है। सूर्य उदयके पहिले अनेक उषाएं इस तरह वैभव संपन्न आती हैं। पश्चात् सूर्य देव, उषाके पति देव आते हैं। **(उषासः नः सदं उच्छन्तु)** ऐसी भाग्ययुक्त उषाएं हमारे घरको उज्वल बनावें। सूर्योदयके पूर्व अधिक उषाएं आयें और वे हमारे घरको तेजस्वी बनावें।

(८१) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

१ प्रत्यु अदर्श्यायत्यु१च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ६५३

२ उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमार्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ६५४

३ प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ६५५

४ उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम सूनवः ६५६

---

[१] (६५३) (आयती उच्छन्ती दिवः दुहिता) आनेवाली अन्धकारको दूर करनेवाली द्युलोककी दुहिता उषा (प्रति अदर्शि उ) दिखाई देती है। (महि तमः अप उ व्ययति) बडे अन्धकारको दूर करती है। और (सूनरी चक्षसे ज्योतिः कृणोति) उत्तम नेतृत्व करनेवाली यह उषा देखनेके लिये प्रकाशको करती है। फैलाती है।

द्युलोककी पुत्री उषा आती है, लोगोंको मार्ग दिखानेके लिये अन्धकार दूर करती है और प्रकाशको फैलाती है। इसी तरह घरकी गृहिणी अपने घरमें प्रकाश करे और अन्धेरा दूर करे। और घरका प्रबंध उत्तम करे।

[२] (६५४) (सूर्यः उस्रियाः सचा उत् सृजते) सूर्य किरणोंको साथ साथ ऊपर फेंकता है। तथा (उद्यत् नक्षत्रं आर्चिमत्) सूर्य उदय होनेके पहले नक्षत्रोंको तेजस्वी बनाता है। हे उषा देवी ! (तव इत् सूर्यस्य च व्युषि) तेरे तथा सूर्यके प्रकाशित होनेपर (भक्तेन संगमेमहि) अन्नके साथ मिलेंगे, अन्नको प्राप्त होंगे।

सूर्य जबतक पृथ्वीके नीचे रहता है, तबतक वह अपने किरणोंको ऊपर फेंकता है जिससे चन्द्रादि प्रकाशित होते हैं। यहां ' नक्षत्र ' शब्दका अर्थ चन्द्र, बुध, शुक्र, आदि ग्रह ही हैं। क्योंकि नक्षत्रका स्वयं प्रकाश है और वहांत हमारे सूर्यका प्रकाश पहुंच नहीं सकता। **' सूर्यरश्मिः चन्द्रमाः । '** वा० य० १८ । ४० ऐसे मंत्रोंमें सूर्यके रश्मि चन्द्रमाको प्रकाशित करते हैं ऐसा कहा है। इन मंत्रोंके साथ इस मन्त्रका विचार करनेसे यहांका ' नक्षत्र ' पद चन्द्रादि ग्रहोंका वाचक दीखता है। सूर्य तथा उषाका उदय होनेपर चावल पकाते हैं, उसका हवन होता है और फिर वह सब खाते हैं।

[३] (६५५) हे (दिवः दुहितः उषः) द्युलोककी पुत्री उषा देवी ! (जीराः त्वा प्रति अभुत्स्महि) हम शीघ्र कर्म करनेवाले तुझे जगावेंगे। हे (वनन्वति) धनवाली उषा ! (या पुरु स्पार्हं वहसि) जो तू बहुत स्पृहणीय धनको लाती है और (दाशुषे मयः रत्नं न) दाताके लिये सुख और धन देनेके समान तू सबको सुख और धन देती है।

हम सब प्रभात समयमें उठते हैं, (जीराः) अपने कर्तव्य कर्म अतिशीघ्र तथा अत्यंत उत्तम रीतिसे करते हैं इसलिये हम स्पृहणीय धन तथा उत्तम सुख प्राप्त करते हैं। जो इस तरह प्रातः उठकर अपने कर्तव्य करेगा वह भी उत्तम धन प्राप्त करेगा।

[४] (६५६) हे (महि देवि) महति उषा देवते ! तू (व्युच्छन्ती मंहना) अन्धकार दूर करती और अपने महत्त्वको प्रकट करती है, (या स्वः दृशे प्रख्ये कृणोषि) और जो तू विश्वके दर्शन और प्रबोधनके लिये प्रकाश करती है। (तस्याः ते रत्नभाजः ईमहे) इस तरह तुझ रत्नोंका सेवन

५ तच्चित्रं राध आ भरोषो यद् दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत् ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद् रास्व भुनजामहै ६५७

६ श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः । ६५८

[८२] इंद्रावरुण प्रकरण

(८१) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रावरुणौ । जगती ।

१ इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयुज्यमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ६५९

करनेवालोंसे हम प्रार्थना करते हैं कि (वयं मातुः सूनवः न स्याम) हम माताके जैसे पुत्र होते हैं वैसे हम तेरे पुत्र बनें ।

उषा प्रकाशती है, उससे सब लोग जागते हैं और मार्ग देखते हैं । यह उषा रत्नोंवाली माता जैसी है । उसके हम पुत्र जैसे हों और वह हमारी माता जैसी हो । माता जैसी पुत्रोंको प्रेमसे अन्न धन देती है वैसी उषा हमें अन्न धन और सुख देवे ।

[५] (६५७) हे उषा देवी ! (यत् दीर्घश्रुत्तमं चित्रं राधः) जो अत्यंत यशस्वी विलक्षण धन है (तत् आ भर) वह हमें भर दो । हे दिवः दुहितः) द्युलोककी पुत्री उषा देवी ! (यत् ते मर्तभोजनं) जो तुम्हारे पास मनुष्योंके योग्य भोजन है. (तत् रास्व) वह भोजन हमें दो, हम (भुनजामहै) भोजन करेंगे ।

हमें यशस्वी धन और मानवोंके योग्य अन्न मिले ।

[६] (६५८) हे उषा देवी ! (सूरिभ्यः अस्मभ्यं अमृतं वसुत्वनं श्रवः) हम ज्ञानियोंके लिये अमर धन और यश तथा (गोमतः वाजान्) गौओंसे युक्त अन्न दे दो । (मघोनः चोदयित्री सूनृतावती उषाः) धनवानोंको यज्ञ करनेकी प्रेरणा करनेवाली और सत्य भाषणकी प्रेरणा करनेवाली उषा (स्रिधः अप उच्छत्) शत्रुओंका नाश करती है ।

ज्ञानियोंको अमर धन युक्त यश मिले, उनको गौवें मिलें, अन्न पर्याप्त प्रमाणमें प्राप्त हों, उससे वे यज्ञ करें, सत्य व्यवहारको बढा देवें और मानवताके शत्रुओंका नाश करें और सज्जनोंकी उन्नति करें ।

॥ यहां उषा प्रकरण समाप्त ॥

[१] (६५९) हे इन्द्र और वरुण ! (युवं नः विशे जनाय) तुम दोनों हमारे प्रजा जनोंके लिये (अध्वराय) हिंसारहित सत्कर्म करनेके लिये (महि शर्म यच्छतं) बडा सुख, घर आदि दे दो । तथा (दीर्घ-प्रयुज्यं यः अति वनुष्यति) बडे यज्ञ करनेवाले सत्कर्म कर्ताको जो अत्यंत कष्ट देता है, और जो (पृतनासु दूढ्यः) युद्धोंमें पराजित होना कठिन है उस शत्रुपर (वयं जयेम) हम विजय करेंगे ।

सज्जनोंकी सुरक्षा

१ विशे जनाय अध्वराय महि शर्म यच्छतं— प्रजा जनोंको हिंसा कुटिलता रहित प्रशंसित कर्म करनेके लिये बडा सुख, बडा संरक्षण, बडा घर या स्थान दे डालो । जहां वह रहे और सुखसे अपने प्रशंसित कर्म करे और जनताको सुखी करे ।

दुष्टोंको दण्ड

१ यः पृतनासु दूढ्यः दीर्घं प्रयुज्यं अति वनुष्यति— जो युद्धोंमें पराजित होना कठिन है, ऐसा प्रबल

२ सम्राळन्यः स्वराळन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ६६०
३ अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ६६१

शत्रु, सत्कर्म करनेमें सदा दक्ष रहनेवाले सज्जनको अत्यंत कष्ट देता है, उसीको (**वयं जयेम-**) हम पराजित करेंगे । इस को पराजित करनेसे सब प्रजाजन सुखी होंगे और सज्जन अपना नियमित कर्म करते रहेंगे जिससे जनता सुखी होगी ।

दुष्टोंका नाश और सज्जनोंकी सुरक्षा करना ही कर्तव्य है । यह इस मंत्रमें बताया है । दुष्ट प्रबल शत्रुका पूर्ण नाश करनेका सामर्थ्य प्राप्त करना चाहिये ।

[२] (६६०) **हे इन्द्र और वरुण ! (वां) तुममेंसे (अन्यः संराट्) एक वरुण सम्राट है और (अन्यः स्वराट्) दूसरा स्वराट् है (उच्यते) ऐसा कहा जाता है । आप दोनों (महान्तौ महावसू) बडे हैं और बडे धनवाले हैं । हे (वृषणा) सामर्थ्यवानों ! (परमे व्योमनि विश्वे देवासः) परम उच्च आकाश में सब देवोंने (वां) तुम दोनोंके लिये (ओजः बलं च सं दधुः) ओज और बल धारण किया है ।**

राजाका बडा धनकोश ।

इन्द्र और वरुण ये दो बडे देव हैं । इनमें वरुण सम्राट् है, और इन्द्र स्वराट् है । सम्राट् वह होता है कि जो अनेक राज्यों-पर अपना शासन चलाता है और स्वराट् वह है कि जो केवल अपने ही सामर्थ्यसे अपने सब कर्म निभाता है । दूसरेकी सहायता जिसको नहीं लेनी पडती । इस तरह ये दोनों बडे शासक हैं । ये (महान्तौ महावसू) ये स्वयं बडे हैं और अपने पास बहुत धन रखनेवाले हैं । राष्ट्रके शासकोंको अपने पास बहुत धन रखना चाहिये । राजाका कोश बडा होना चाहिये । कोशहीन राजा निर्बल होता है । राजाको बडे धनकोशकी अत्यंत आवश्यकता है यह यहां बताया है ।

राजा अथवा शासक (वृषणा) बलवान् चाहिये । सामर्थ्यवान् चाहिये । निर्बल और निर्धन नहीं होना चाहिये ।

विश्वे देवासः परमे व्योमनि ओजः बलं संदधुः- सब देव वीर परम सुरक्षित स्थानमें इस सम्राट्के लिये बल और ओजका धारण करते हैं । ' **परमे व्योमनि** ' (परतमे वि-ओमनि) ओम्का अर्थ संरक्षण है (अवति इति ओम्) जो रक्षक है वही ओम् है । ' वि-ओम् ' का अर्थ विशेष संरक्षण । ' **परमे व्योमनि** ' श्रेष्ठतम विशेष संरक्षणके स्थानमें उसको रखते हैं । सम्राट्, स्वराट् तथा उनकी प्रजा उत्तम सुरक्षित रखनी चाहिये । देव उनको कहते हैं कि जो व्यवहार करनेवाले विबुध होते हैं । ये राष्ट्रका व्यवहार उत्तम करनेवाले विबुध इन शासकोंके लिये ओज और बल धारण करें और बढावें ।

राष्ट्रमें ऐसी व्यवस्था हो कि जिससे सब राष्ट्र सुरक्षित हो और सब व्यवहार करनेवाले विबुध उसका बल बढाते हों । देव शरीरमें इन्द्रियगण हैं, राष्ट्रमें अधिकारी तथा ज्ञानी और विश्वमें सूर्यादि देवगण हैं । राष्ट्रका बल वे ही बढा सकते हैं कि जो राष्ट्रके सुप्रबंधसे सुरक्षित होते हैं और अपना कर्तव्य उत्तम रीतिसे कर सकते हैं ।

[३] (६६१) **हे इन्द्रावरुणो ! (अपां खानि ओजसा अनु अतृन्तं) जलोंके द्वार अपने बलसे तुमने खोल दिये, (सूर्यं दिवि प्रभुं आ ऐरयतं) तुमने सूर्यको द्युलोकका प्रभु बनाकर प्रेरित किया । (अस्य मायिनः मदे अपितः अपिन्वतं) इस शक्तिशाली सोमके पानसे आनंदित होकर जल-रहित नदियोंको तुमने भरपूर भर दिया । और (धियः पिन्वतं) हमारे बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंको पूर्ण किया ।**

इन्द्रने तथा वरुणने जलोंके द्वार खोल दिये जिनसे जलोंके प्रवाह बहने लगे, जल रहित नदियां भी जलसे परिपूर्ण हो गयी । सूर्य आकाशमें प्रकाशने लगा और यज्ञ कर्म शुरू हुए । बडे अन्धकारके दूर होनेपर यह हुआ । अन्धकारके समय जल प्रवाहोंका बंद होना और सूर्य प्रकाश होनेपर जल प्रवाहोंका खुल जाना यह उत्तरीय प्रदेशोंमें, हिम प्रदेशोंमें ही होनेवाली बात है ।

४ युवामिद् युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ६६१

५ इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ६६२

---

[४] (६६१) हे इन्द्र और वरुणो! (वह्नयः युत्सु पृतनासु युवां इत्) अग्निवत् तेजस्वी वीर युद्धोंमें शत्रुसेनाओंमें तुम्हें ही बुलाते हैं। (मितज्ञवः क्षेमस्य प्रसवे युवां) संकुचित जानुवाले रक्षणके समय तुम्हें बुलाते हैं। (कारवः उभयस्य वस्वः ईशाना) हम कारीगर लोग भूलोक और द्युलोकके स्वामी (सुहवा हवामहे) सहजहीसे बुलाने योग्य आप दोनोंको हम सहाय्यार्थ बुलाते हैं।

युद्धमें लडनेवाले वीर, आसन लगाकर बैठनेवाले ध्यानस्थ ज्ञानी और कारीगर लोग काठिन समयमें सहायार्थ इनको बुलाते हैं। ऐसा बल सबको प्राप्त करना चाहिये।

१ मितज्ञवः क्षेमस्य प्रसवे युवां हवन्ते—घुटने जोडकर आसन लगाकर बैठनेवाले आत्मिक क्षेमकी प्राप्तिके लिये तुम्हें बुलाते हैं। यह योग साधन करनेवाले ज्ञानियोंकी पुकार है।

२ वह्नयः युत्सु पृतनासु युवां इत् हवन्ते-अग्निके समान तेजस्वी क्षत्रिय युद्धोंमें लडनेके लिये आयी शत्रुसेनाओंके साथ लडनेके समय सहायार्थ तुम्हें बुलाते हैं। यह क्षत्रियोंकी पुकार है।

३ कारवः उभयस्य वस्वः ईशाना हवन्ते— कारीगर लोग दोनों प्रकारके धनोंके स्वामी ऐसे जो तुम दोनों, उनको बुलाते हो। यह वैश्यों और शूद्रोंकी पुकार है।

इस तरह चारों वर्णोंके लोग इन्द्र और वरुणको बुलाते हैं। ऐसे शक्तिशाली ये इन्द्र और वरुण हैं। इस तरह शक्ति प्राप्त करनी चाहिये और चारों वर्णोंके लोगोंको सहायता पहुंचानी चाहिये।

[५] (६६२) हे इन्द्र और वरुण! (यत् भुवनस्य इमानि विश्वा जातानि मज्मना चक्रथुः) जो तुमने इस भुवनके अन्दरके इन सभी प्राणियोंको अपने बलसे निर्माण किया है, उस कारण (मित्रः क्षेमेण वरुणं दुवस्यति) मित्र सबके कल्याण करनेके हेतुसे वरुणकी सेवा करता है और (अन्यः मरुद्भिः उग्रः शुभं ईयते) दूसरा इन्द्र मरुतोंके साथ रहनेसे उग्र वीर बनकर सबका शुभ करता है।

१ भुवनस्य विश्वा जातानि मज्मना चक्रथुः— इस भुवनमें जो नाना प्रकारके पदार्थ हैं उनको तुम दोनों अपनी निज शक्तिसे निर्माण करते हो।

२ क्षेमेण मित्रः वरुणं दुवस्यति— सबका क्षेम साधन करनेके लिये मित्र वरुणकी सहायता करता है। मित्र और वरुण सबका क्षेम करते हैं। जो पदार्थ हैं उनके उपयोगसे जो सुख मिलता है उसका नाम क्षेम है। यह सुख 'मित्र तथा वरुण' देते हैं। मित्र भावसे रहना और वरिष्ठ श्रेष्ठ उच्च विचारोंके साथ जीना यह मित्र वरुणोंका स्वभाव है। इससे वे विश्वका कल्याण करते हैं।

३ अन्यः इन्द्रः उग्रः मरुद्भिः शुभं ईयते— दूसरा इन्द्र बडा शूरवीर है। वह मरनेतक लडनेवाले सैनिकोंको साथ लेकर सबकी सुरक्षा करता है। और सुरक्षा करके सबका कल्याण करता है।

राज्यशासनके दो कर्तव्य

यहां राज्य शासनके दो कर्तव्य बताये हैं। शूर सेनापति (उग्रः) उग्र भावसे अपने सैनिकोंके द्वारा अन्तर्बाह्य शत्रुओंका निर्मूलन करके प्रजाका शुभ करे। और दूसरा मित्र भाव नागरिकोंमें बढाकर सब प्रजाजनोंका क्षेम साधन करे। इन्द्र वरुणोंके वर्णनसे राज्य शासकके ये दो कर्तव्य यहां बताये हैं।

६ महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत् स्वम् ।
अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद् दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ६६४

७ न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन ।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ६६५

८ अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ६६६

---

[६] (६६४) (वरुणस्य त्विषे ओजः मिमाते) मित्र और वरुणका तेज बढानेके लिये बलको बढाते हैं। (महे शुल्काय) विशेष धनकी प्राप्ति हो इसलिये तथा (अस्य यत् ध्रुवं स्वं) इसका जो स्थायी निज धन है उसको बढानेके लिये यह किया जाता है। (अन्यः श्नथयन्तं अजामिं आ अतिरत्) इनमेंसे एक वरुण हिंसक शत्रुके पार हो जाता है, और (अन्यः दभ्रेभिः भूयसः प्र वृणोति) दूसरा इन्द्र अल्प साधनोंसे ही महान् शत्रुओंको घेरता है।

राज्यशासकके पांच कर्तव्य

१ अन्यः श्नथयन्तं अ-जामिं आ अतिरत्— एक अधिकारी बन्धुभाव न रखनेवाले हिंसक दुष्टको दूर करे अर्थात् इस गुण्डेके कष्टोंसे नागरिकोंको बचावे। नागरिकोंमें जो भाईके समान परस्पर व्यवहार करते हैं उनकी सुरक्षा होनी चाहिये, परंतु बन्धुवत् व्यवहार न करके जो गुण्डापन करेंगे उनको दण्ड देना चाहिये। यह दण्ड देनेका कार्य यहां वरुण करता है। यह न्यायाधीशका कार्य है। नागरिकोंके अन्दर शान्ति इससे रखी जाती है।

२ अन्यः दभ्रेभिः भूयसः प्र वृणोति— दूसरा अधिकारी अपने थोडेसे सैनिकों द्वारा बहुतसे शत्रुओंको घेरता है और प्रजाको सुरक्षित रखता है। यह इन्द्रका कार्य है। शत्रुओंको दबाना और राष्ट्रकी सुरक्षा करना यह एक महत्त्वका कार्य है। यह सैनिकीय कार्य है।

३ त्विषे ओजः मिमाते— तेज बढानेके लिये बलको निर्माण करते हैं और बढाते हैं। राष्ट्रमें जितना बल होगा, उतना उसका तेज बढ सकता है।

४ महे शुल्काय— बडा धन प्राप्त करनेके लिये, धनकी वृद्धि करनेके लिये प्रयत्न करते हैं और—

५ यत् ध्रुवं स्वं— जो स्थायी निजधन है उसकी सुरक्षाके लिये प्रयत्न करते हैं।

राष्ट्रमें बल और तेज बढाना चाहिये, धन बढाना चाहिये, और जो स्थायी निजधन व्यक्तिके पास है वह भी सुरक्षित करना चाहिये। राज्यशासनके ये पांच तत्त्व इन्द्र वरुणके वर्णनके द्वारा बताये हैं

[७] (६६५) हे इन्द्र और वरुणो! (तं मर्तं अंहः न नशते) उस मानवका नाश पाप नहीं कर सकता। (न दुरितानि) न दुष्ट कर्म उसके पास जाते हैं, (कुतः च न तपः न) न किसी तरह संताप उसके पास जाता है। वह इन कष्टोंसे दूर रहता है। हे (देवा) देवो! तुम (यस्य अध्वरं गच्छथः) जिसके यज्ञके पास जाते हो, (वीथः) जिसका हित तुम चाहते हो, (तं मर्तस्य परिह्वृतिः न नशते) उसके पास मानवोंका विनाश नहीं पहुंच सकता।

इन्द्र तथा वरुण जिसका रक्षण करते हैं उसके पास पाप, दुःख, दुष्कर्म, पीडा, बाधा अथवा अन्य प्रकारके कष्ट पहुंच ही, नहीं सकते।

[८] (६६६) हे (नरा) नेता इन्द्रवरुणो! (दैव्येन अवसा) दिव्य रक्षणके साथ (अर्वाक् आगतं) हमारे पास आओ। (हवं शृणुतं) मेरी प्रार्थना श्रवण करो। (यदि मे जुजोषथः) यदि मुझपर तुम्हारी प्रीति है तो ऐसा करो। हे मित्र और वरुणो! (युवयोः सख्यं) तुम्हारी मित्रता,

९ अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा।
यद् वां हवन्त उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ६६७

१० अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ६६८

(उत वा यत् आप्यं) जो बन्धुता है और जो तुम्हारा (मार्डीकं) सुख देनेका साधन है वह हमें (नि यच्छतं) दे दो।

सुरक्षा, मित्रभाव, बन्धुभाव और सुख

१ **दैव्येन अवसा अर्वाक् आगतं**— सुरक्षाके दिव्य साधनके साथ हमारे पास आओ। अर्थात् हमारे पास आओ और उत्तम साधनोंसे हमारी सुरक्षा करो।

२ **युवयोः सख्यं आप्यं मार्डीकं नियच्छतं**- तुम्हारी मित्रता, बन्धुता और सुखदायिता हमें प्राप्त हो।

सुरक्षाके दिव्य साधनोंसे हम सब प्रजाजनोंकी सुरक्षा करो। और मित्रता, बन्धुता और सुखदायिताकी प्राप्ति सबको हो। जनता सुरक्षित हो और मित्रभाव, बन्धुभाव तथा सुखसे वह युक्त हो।

[९] (६६७) **हे (कृष्ट्योजसा) शत्रुको खींचनेवाले बलसे युक्त इन्द्रवरुणो! (भरे भरे पुरोयोधा भवतं) प्रत्येक युद्धमें हमारे पक्षमें रहकर अग्र भागमें रहकर युद्ध करनेवाले बनो। (यत् उभये नरः स्पृधि वां हवन्ते) दोनों प्रकारके मनुष्य स्पर्धा करनेके समय तुम्हें बुलाते हैं (अध तोकस्य तनयस्य सातिषु) और बाल बच्चोंकी सेवाके समय भी तुम्हें बुलाते हैं।**

प्रभावी सामर्थ्य

१ **कृष्टि-ओजस्**— (कृष्टि) शत्रुको अपनी और आकर्षित करनेवाली (ओजस्) शक्ति जिसमें है। जिसकी शक्ति इतनी है कि शत्रु स्वयं उनके पास खींचे जाते हैं और विनष्ट होते हैं। स्वयं शत्रु पर आक्रमण करके उनका नाश करना यह शक्ति एक प्रकारकी है। पर यहां जिस शक्तिका वर्णन किया है वह शक्ति ऐसी है कि जिससे शत्रु स्वयं इसके पास आकर्षित होता है और बांधा जाकर विनष्ट होता है। शत्रु इसके जालमें स्वयं फंसता है और विनष्ट होता है।

२ **भरे भरे पुरोयोधा भवत**— पूर्वोक्त प्रकारके शक्तिशाली वीर प्रत्येक युद्धमें अग्र भागमें रहकर युद्ध करनेवाले हों। अग्र भागमें रहकर युद्ध करनेवाले वीर बडे प्रबल होने चाहिये।

३ **उभये नरः स्पृधि हवन्ते**— दोनों प्रकारके लोग, धनी-निर्धन, ज्ञानी-अज्ञानी, शूर-भीरु, स्त्री-पुरुष ये दो प्रकारके लोग सर्वत्र होते हैं। ये दोनों प्रकारके लोग स्पर्धाके समय पूर्वोक्त प्रकारके शक्तिवाले वीरोंको ही अपनी सहायार्थ बुलाते हैं।

४ **तोकस्य तनयस्य सातिषु हवन्ते**— बाल बच्चोंकी उन्नति के कार्य करनेके समय पूर्वोक्त प्रकारके बलवान् वीरोंको ही लोग बुलाते हैं।

इस मंत्रमें कहा बल प्राप्त करना वीरोंके लिये उचित है।

[१०] (६६८) **इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा ये देव (अस्मे) हमें (सप्रथः महि द्युम्नं शर्म यच्छन्तु) विशेष विस्तृत महान तेजस्वी घर, धन या सुख प्रदान करें। (ऋतावृधः अदितेः ज्योतिः अवध्रं) सत्य मार्गका संवर्धन करनेवाली अदितिका तेज हमारे लिये विनाशक न बने। हम (सवितुः देवस्य श्लोकं मनामहे) सविता देवकी स्तुति करेंगे।**

अस्मे महि द्युम्नं सप्रथः शर्म यच्छन्तु— हमें बडा तेजस्वी अति विस्तृत घर प्राप्त हो। हमारा घर ऐसा सुन्दर और बडा विस्तृत हो। शर्म-संरक्षण, घर, सुख, धन।

(८३) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रावरुणौ । जगती ।

१ युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ६६९
२ यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजौ भवति किं चन प्रियम् ।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ६७०

---

[१] (६६९) हे (नरा मित्रावरुणा) नेता मित्र तथा वरुण! (युवां आप्यं पश्यमानासः) तुम्हारे बन्धुभावकी ओर देखनेवाले (गव्यन्तः पृथुपर्शवः) गौओंकी प्राप्ति की इच्छा करनेवाले और बडे परशुको धारण करनेवाले (प्राचा ययुः) पूर्वकी ओर चले। तुम (दासा च वृत्रा आर्याणि च हतं) विनाशक, घेरनेवाले शत्रु और जो क्षुद्र आर्य भी शत्रुसे मिले हैं उनको भी मारो। (सुदासं अवसा अवतं) अपने सुदासको अपनी शक्तिसे सुरक्षित रखो।

'**पृथुपर्शवः** = बडे परशु धारण करनेवाले। दर्भ तथा समिधा काटनेके लिये परशु अपने पास रखनेवाले।

'**दासा, वृत्रा, आर्याणि**' = (दासानि, वृत्राणि, आर्याणि) ये नपूंसक लिंगी प्रयोग क्षुद्र शत्रुका अर्थ बता रहे हैं। इनमें 'आर्य' पद भी नपूंसक लिंगमें है। वास्तवमें आर्य शब्द पुल्लिंग है, परंतु यहां नपूंसक लिंगमें उसका प्रयोग किया है। यह शत्रुभाव बतानेके लिये है। (दासानि) विनाश घात पात करनेवाले शत्रु, (वृत्राणि) घेरकर नाश करनेवाले शत्रु, (आर्याणि) आर्योंके समान दीखनेवाले परंतु शत्रुके साथ मिले हुए शत्रु ये सब शत्रु ही हैं। अपने आर्य भाई जिस समय शत्रुके साथ मिलते हैं, और शत्रुका बल बढाकर अपना नाश करना चाहते हैं, तब तो वे बडे शत्रु जैसे ही वध्य होते हैं। नपूंसक लिंगमें 'आर्य' पदका प्रयोग शत्रुभावका दर्शक है। जहां पुल्लिंगमें 'आर्य' शब्दका प्रयोग होगा वहां उसका अर्थ 'श्रेष्ठ, सज्जन, सत्पुरुष' ऐसा होगा। यह पुल्लिंग और नपूंसक लिंग प्रयोगका भाव पाठक ध्यानमें धारण करें।

कई अनुवादकोंने यहांके 'आर्याणि' पदका अर्थ 'आर्य, श्रेष्ठ' ऐसा अर्थ करके सुदासके साथ उनकी रक्षा करो ऐसा भाव बताया है, परंतु वह भाव अशुद्ध है। वैसा अर्थ यहां आर्य पदका होता तो वह पद पुल्लिंगमें रहता।

'दासानि तथा सुदासं' ये दो पद यहां है। पहिला नपूंसक लिंग है, अतः शत्रुभाव बताता है और दूसरा पुल्लिंगमें तथा उसके पूर्व 'सु' लगा है इसलिये उसका अर्थ अच्छा है। दास शब्द पुल्लिंग होनेपर भी उसका अर्थ दुष्ट ऐसा ही है, पर नपुंसक लिंगमें प्रयोग होनेसे वह सर्वथा निंदनीय समझना योग्य है। इसलिये इस मंत्रमें 'सुदास' की सुरक्षा और 'दासानि' का विनाश करनेकी सूचना यहां दी है।

[२] (६७०) (यत्र कृतध्वजः नरः समयन्ते) जहां मनुष्य अपने ध्वज उठाकर युद्धके लिये एकत्रित होते हैं, (यस्मिन् आजौ किंचन प्रियं भवति) जिस युद्धमें कुछ भी हित नहीं होता है। (यत्र स्वर्दृशः भुवना भयन्ते) जिस युद्धमें स्वर्गदर्शी लोग भयभीत होते हैं, हे इंद्र और वरुण! (तत्र नः अधि वोचतं) वहां हमारे अनुकूल बात करो।

१ **कृतध्वजः नरः समयन्ते**— अपने अपने ध्वज ऊपर उठाकर युद्धके लिये मनुष्य इकट्ठे होते हैं। यहां ध्वजको ऊपर उठाना यह एक विशेष उत्साहका चिन्ह बताया है।

युद्धका परिणाम अच्छा नहीं है

१ **आजौ किंच प्रियं न भवति**— युद्धमें कुच्छ भी प्रिय अथवा हितकारक नहीं होता। युद्धका परिणाम अच्छा नहीं होता। इसलिये युद्ध टालनेका यत्न करना योग्य है। युद्ध अपरिहार्य हुआ तो ही करना, यह आर्योंकी नीति यहां दीखती है। भगवान् श्रीकृष्णने पांच गांव मिलनेपर युद्ध न करनेका पांडवोंका निश्चय घोषित किया था। आधे राज्यके स्वामी पांच गांव लेकर चुप होना चाहते हैं यह आर्यनीति है। युद्ध जहां-तक हो सके वहां तक न करना यह आर्योंकी इच्छा रहती है। क्योंकि युद्धका परिणाम ठीक नहीं होता। इसलिये युद्ध टालना योग्य है। पर युद्धकी तैयारी रखनी चाहिये। पांच गांव भी नहीं मिले, सूईके अग्र भाग पर रहनेवाली मिट्टी भी विना

३ सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम् ६७१
४ इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम् ।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहितिः ६७२

युद्धके प्राप्त होनेकी संभावना न रही तो युद्ध अपरिहार्य होगा और वह करना ही पडेगा । ऐसे युद्ध आर्य करते ही थे। इसलिये आर्य युद्ध टालनेकी इच्छा करते हुए भी युद्धके लिये सदा सिद्ध करते थे । अर्थात् नियम यह हुआ कि युद्ध टालनेका प्रयत्न करना, पर सदा युद्धके लिये पूर्ण रीतिसे सुसज्य रहना चाहिये ।

३ यत्र स्वर्दृशः भुवना भयन्ते--युद्धके लिये आत्मज्ञानी मनुष्य भयभीत होते हैं । ज्ञानी मनुष्योंको युद्धका विशेष भय होता है । क्योंकि युद्धमें सभ्यताका नाश होता है । और उस सभ्यताका निर्माण करना बडे समयका कार्य होता है ।

४ तत्र नः अधिवोचत— उस युद्धमें हमारे पक्षका समर्थन करो । अपना पक्ष निर्दोष है ऐसा बताओ । इतना तो अवश्य ही करना चाहिये । अपना पक्ष समर्थनीय है ऐसा बतानेकी शक्यता अपने पक्षके पास होनी चाहिये । अपना पक्ष आक्रमक नहीं है, युद्ध टालनेका यत्न पूर्ण रूपसे हमारे पक्षने किया, शत्रुपक्ष आक्रमणकारी है, उसने हमारे ऊपर हमला किया, तत्पश्चात् हमें अपने बचाव करनेके लिये युद्धमें उतरना पडा । ऐसा बताना चाहिये । इससे अपने पक्षकी निर्दोषता सिद्ध होगी।

युद्धकी नीति कैसी होनी चाहिये, इस विषयमें यह मंत्र बडे उत्तम निर्देश देता है । युद्ध टालनेका यत्न करना चाहिये, अपने पक्षकी निर्दोषता सिद्ध होनी चाहिये, त्याग करके भी हमने युद्ध टालनेका यत्न किया था, इतना स्पष्ट होना चाहिये।

[३] (६७१) हे इंद्र और वरुण! (भूम्याः अन्ताः ध्वसिराः सं अदृक्षत) भूमिके सारे प्रदेश उध्वस्त हुएसे दीख रहे हैं। (दिवि घोषः आरुहत्) आकाशमें सैनिकोंके आक्रमणका कोलाहल फैल गया है। (जनानां अरातयः मां उप अस्थुः) लोगोंके शत्रु मेरे सन्मुख युद्ध करनेके लिये खडे हुए हैं। हे (हवन श्रुता) आह्वानको सुननेवाले वीरो! (अवसा अर्वाक् आगतं) संरक्षणकी शक्तिके साथ हमारे पास आओ।

युद्धका भयानक परिणाम

१ भूम्याः अन्ताः ध्वसिराः सं अदृक्षत— भूमीके ऊपरके प्रदेश उध्वस्त हो जाते हैं। नगर, उपनगर, खेत, उद्यान विनष्ट होते हैं। महल, मंदिर और सभ्यताके केन्द्र विनष्ट हो जाते हैं । यह युद्धका भयानक परिणाम है ।

२ दिवि घोषः आरुहत्— दोनों ओरके सैनिकोंका शब्द आकाशमें फैलता है। इसी तरह लोगोंका आर्तनाद भी आकाशमें भर जाता है । असहाय्य जनताका दुःख भरा शब्द आकाशमें भर जाता है । सर्वत्र यही आर्तनाद सुनाई देता है

३ जनानां अरातयः मां उपतस्थुः-- जनताके ये शत्रु मेरे सामने युद्ध करनेकी ईर्ष्यासे खडे हुए हैं । इनके आक्रमण होनेके कारण अब हम युद्धको टाल नहीं सकते । युद्ध टालनेके लिये हमने बडा यत्न किया । पर ये मानवताके शत्रु युद्ध करनेके लिये ही यहां मेरे सन्मुख तैयार होकर आगये हैं और हमला कर रहे हैं । ऐसी अवस्थामें युद्ध अनिवार्य हुआ है। हमारी इच्छा न होते हुए भी अब हमें युद्ध करना ही पडेगा ।

४ अवसा अर्वाक् आगतं— संरक्षक साधनोंके साथ अब शत्रुके सामने आजाओ । अपने पास संरक्षण करनेके उत्तम साधन हैं, हमारे शस्त्रास्त्र उत्तम हैं। इनको लेकर अब हमें युद्ध ही करना है । अतः हे वीरो ! अब आगे बढो । शत्रुपर धावा बोलो ।

[४] (६७२) हे इंद्र और वरुण ! (वधनाभिः अप्रति भेदं वन्वन्ता) तुमने अपने वध करनेके साधनोंसे न बढे हुए आपसके भेदका— आपसकी फूटका— नाश किया। भेद रूप शत्रुका नाश किया। और (सुदासं प्र आवतं) सुदासका संरक्षण किया। और (एषां हवीमनि ब्रह्माणि शृणुतं) इनके संग्राममें तुमने स्तोत्र सुने। तथा इस कारण (तृत्सूनां पुरोहितिः सत्या अभवत्) तृत्सु लोगोंका पौरोहित्य सफल हुआ।

५ इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति माघान्यर्यो वनुषामरातयः ।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथोऽध स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ६७३
६ युवां हवन्त उभयास आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ६७४

आपसकी फूट बढानेवालोंका वध

१ अप्रति भेदं वधनाभिः वन्वन्ता— अप्राप्त भेदका वध करनेके साधनोंसे नाश किया। 'भेद' यह शत्रु है। आपसकी फूटको भेद कहते हैं। यह बडा भारी राष्ट्रीय शत्रु है। इसको (अ-प्रति) अप्राप्त अवस्थामें ही-न बहुत बढनेकी अवस्थामें ही नाश करना चाहिये। आपसकी फूट बहुत बढ गयी तो वह सबका नाश करेगी। यह आपसकी फूट (वधनाभिः) वध करनेसे नाश होती है। जो फूट बढानेवाले हैं उनका वध करना चाहिये। आपसकी फूट बढाकर अपना लाभ करनेवालोंका वध करना यही एक इसका उपाय है। पर समाजका संरक्षण करनेके लिये आपसकी फूट बढानेवालोंका वध करना चाहिये।

२ सुदासं प्र आवतं— सज्जनोंका संरक्षण करो।

३ हवीमनि ब्रह्माणि श्रुणुतं— संग्राममें अथवा यज्ञमें अच्छे वचनोंका श्रवण करो। संग्राममें भी बुरे शब्द न सुनो।

४ तृत्सूनां पुरोहितिः सत्या अभवत्— लोगोंका पौरोहित्य सफल करके दिखाना चाहिये। पुरोहितका कार्य जिसका लिया उसका यश बढाना चाहिये। 'तृत्सु' उनका नाम है कि जो अपने अभ्युदयकी तृषासे तृषित हुए होते हैं। अपने अभ्युदयके लिये प्रयत्नशील लोगोंका नेतृत्व स्वीकार किया तो अनेक उपायोंसे उनकी उन्नति सिद्ध करके दिखानी चाहिये।

[५] (६७३) हे इंद्र और वरुण! (अर्यः अघानि मा अभि आ तपन्ति) शत्रुके पाप- शस्त्र- मुझे बहुत ताप दे रहे हैं। और (वनुषां अरातयः) हिंसकोंके मध्यमें जो शत्रु हैं वे भी मुझे कष्ट दे रहे हैं। (यूयं हि उभयस्य वस्वः राजथः) तुम दोनों प्रकारके- ऐहिक और पारलौकिक धनके स्वामी हो। इसलिये (अध पार्ये दिवि नः अवतं स्म) स्पर्धाके दिनोंमें हमारी सुरक्षा करो।

१ अर्यः अघानि मा अभि आ तपन्ति— शत्रुके पाप बुरे कार्य, घातक योजनाएं मुझे ताप दे रहे हैं। चारों ओरसे शत्रुने बहुत बुरी परिस्थिति निर्माण की है। इससे मुझे बडे कष्ट हो रहे हैं। इनको दूर करना चाहिये।

२ वनुषां अरातयः मा अभि आ तपन्ति— घात पात करनेवालोंके बीचमें जो हमारे शत्रु हैं वे चारों ओरसे हमें कष्ट दे रहे हैं, उनका नाश करना चाहिये।

३ उभयस्य वस्वः यूयं राजथः— ऐहिक तथा पारमार्थिक धनके तुम अधिपति हो। ये दोनों प्रकारके धन मनुष्यको प्राप्त करने चाहिये।

४ पार्ये दिवि नः अवतं— जिससे पार होना चाहिये उस संकटके समय हमें सुरक्षित रखो। संकटका समय हमसे दूर हो।

[६] (६७४) (उभयासः वस्वः सातये) दोनों लोग धनको जीतनेके लिये (युवां इंद्रं वरुणं च) तुम दोनों इंद्र और वरुणको (आजिषु हवन्ते) युद्धोंमें बुलाते हैं। (यत्र तृत्सुभिः सह) जहां तृत्सुओंके साथ रहनेवाले और (दशभिः राजभिः निबाधितं) दस राजाओंके द्वारा कष्ट पहुंचाये (सुदासं प्र आवतं) सुदास राजाकी तुमने सुरक्षा की।

१ उभयस्य वस्वः सातये— ऐहिक और पारलौकिक धनकी प्राप्ति करनेकी इच्छा लोग करते हैं। वे-

२ आजिषु हवन्ते— युद्धोंके समय तुम वीरोंको अपने सहायार्थ बुलाते हैं।

३ दशभिः राजभिः निबाधितं तृत्सुभिः सह सुदासं प्रावतं— दश राजाओंने जिसपर आक्रमण किया ऐसे सुदास राजाकी, जिनके साथ सहायार्थ तृत्सु भी आये थे, तुमने सुरक्षा की।

सुदास राजा था, जिनके पुरोहित वासिष्ठ थे और उनके सहायक तृत्सु थे। सुदास राजा उनके सहायक तृत्सु और इनके

७ दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन् देवहूतिषु ६७५
८ दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ६७६
९ वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ६७७

पुरोहित वसिष्ठ थे। इनपर दस राजाओंका आक्रमण हुआ। ऐसे समयमें इन्द्र और वरुणोंने सुदासकी सहायता की और दसों आक्रमणकारियोंका पराभव किया। इसी तरह करना चाहिये यह इसका तात्पर्य है।

[७] (६७५) हे इंद्र और वरुणो! (अयज्यवः दश राजानः समिताः) यज्ञ न करनेवाले दस राजे इकट्ठे हुए तथापि तुम्हारी सहायता होनेसे वे (सुदासं न युयुधुः) सुदास राजाके साथ युद्ध न कर सके। (अद्मसदां नृणां उपस्तुतिः सत्या) अन्नदान करनेके लिये बैठे लोगोंकी प्रार्थना सफल हुई और (एषां देवहूतिषु देवाः अभवन्) इनके यज्ञोंमें सब देव उपस्थित थे।

दस राजाओंका संघ

१ अयज्यवः दश राजानः समिताः— अयाजक दस राजाओंका एक संघ बना था। अयाजक, यज्ञ न करनेवाले, अनार्य शत्रु राजाओंका संघ बना था। पर ये दस मिलकर भी-

यज्ञ करनेवालोंका बल बढता है

२ सुदासं न युयुधुः— सुदासके साथ युद्ध नहीं कर सके। क्योंकि सुदास आर्य राजा था और यज्ञ करनेवाला था। जिसका पुरोहित वसिष्ठ था। यज्ञ करनेसे शक्ति बढती है और यज्ञ न करनेसे शक्ति घटती है यह यहां दर्शाया है। यज्ञ न करनेवाले दस अनार्य राजाओंका संघ परास्त होता है और यज्ञ करनेवाला एक राजा विजयी होता है। यह यज्ञका बल है।

३ अद्मसदां नृणां उपस्तुतिः सत्या— अन्नदान अर्थात् यज्ञ करनेवालोंकी आकांक्षाएँ-प्रार्थनाएं-सफल होती हैं। यज्ञ न करनेवाले इस जगत्में परास्त होते हैं। यज्ञसे जो संघटना होती है वह अपूर्व बल देनेवाली होती है।

४ एषां देवहूतिषु देवाः अभवन्— इनके यज्ञोंमें स्वयं देव उपस्थित रहते हैं। इसलिये यज्ञ करनेवालोंका बल बढता है।

[८] (६७६) हे इंद्र और वरुण! (दाश राज्ञे विश्वतः परियत्ताय) दस राजाओंके संघ द्वारा चारों ओरसे घेरे गये (सुदासे शिक्षतं) सुदास राजाको तुमने बल दिया। क्योंकि (यत्र श्वित्यंचः कपर्दिनः) जहां निर्मल जटाधारी (धीवन्त तृत्सवः) बुद्धिमान तृत्सु लोग (नमसा धिया असपन्त) नमस्कार पूर्वक किये शुभ कर्मसे परिचर्या करते थे।

(श्विति-अञ्चः) अन्तर्बाह्य पवित्र रहनेवाले जटाधारी बुद्धिमान तृत्सु लोग नमस्कारपूर्वक किये शुभ कर्मोंको जहां करते रहते हैं, वहांका बल बढता है। सुदासके साथ ऐसे लोग थे इसलिये सुदासका बल बढ गया और वह विजयी हुआ। तथा दस राजा यज्ञ न करनेवाले होनेसे उनका बल घट गया और वे परास्त हुए। वसिष्ठके पौरोहित्यमें जटाधारी पवित्र तृत्सु याजक थे। ये सुदासका बल बढाते थे। दस राजाओंके संघके पास ऐसी यज्ञकी शक्ति नहीं थी। इस कारण वे पराभूत हुए। पवित्र रहकर ज्ञानपूर्वक किये यज्ञसे शक्ति बढती है, यह इसका आशय है।

[९] (६७७) हे मित्र और वरुण! तुममेंसे (अन्यः समिथेषु वृत्राणि जिघ्नते) एक इंद्र युद्धके समय शत्रुओंका नाश करता है। (अन्यः सदा व्रतानि अभि रक्षते) दूसरा वरुण सदा सत्कर्मोंकी सुरक्षा करता है। हे (वृषणा) बलवान् वीरो! (वां सुवृक्तिभिः हवामहे) तुम्हारी स्तुति हम अच्छे स्तोत्रों-

१० अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ६७८

(८४) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ६७९
२ युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ६८०

... करते हैं। इसलिये (अस्मे शर्म यच्छतं) हमें सुखका प्रदान करो।

बाह्य शत्रुका नाश करो

१ अन्यः समिथेषु वृत्राणि जिघ्नते— एक वीर युद्ध करता है और घेरनेवाले बाह्य शत्रुओंका नाश करता है। राष्ट्रके बाह्य शत्रुका नाश करना यह एक महत्त्वका कार्य है।

अन्दरके व्यवहारोंकी सुरक्षा

२ अन्यः व्रतानि सदा अभि रक्षते— दूसरा वीर लोगोंके सत्कर्मोंको सुरक्षित रखता है। यह अन्दरकी सुरक्षितता है। राष्ट्रके अन्दरके सब लोगोंके परिशुद्ध व्यवहारोंकी सुरक्षा करनी चाहिये।

राष्ट्रकी सुस्थितिके लिये बाह्य शत्रुओंका नाश करना चाहिये और अन्दरके सब लोगोंके कार्य व्यवहार सुरक्षित रीतिसे चलते रहने चाहिये। यहांका ' वृत्र ' शब्द घेरनेवाले बाह्य शत्रुका दर्शक है।

३ अस्मे शर्म यच्छतं— हमें सुख चाहिये। शर्मका अर्थ सुख, घर, संरक्षण, धन है। जब बाह्य शत्रुका निर्दालन होगा और अन्दरके सब व्यवहार सुरक्षित रीतिसे होते रहेंगे, तभी सुख मिल सकता है।

[१०] (६७८) देखो ६६८ वाँ मंत्र। इसकी व्याख्या वहां हो चुकी है।

[१] (६७९) हे (राजानौ इन्द्रावरुणौ) राजा इंद्र और वरुण! (अध्वरे वां हव्येभिः नमोभिः आ ववृत्यां) हिंसारहित इस यज्ञमें तुम्हें हवनों और नमनोंद्वारा इधर बुलाता हूं। (बाह्वोः दधाना विषुरूपा घृताची) विविध रूपोंवाली घीकी आहुती डालनेवाली जुहू (त्मना वां परि प्र जिगाति) स्वयं ही तुम्हारे पास जाती है। तुम्हारे लिये आहुती देती है।

इन्द्रा वरुणौ राजानौ— इन्द्र तथा वरुण ये राजा हैं। स्वामी हैं। अधिपति या अधिकारी हैं। इस दृष्टिसे इनके मंत्रोंका अर्थ करना चाहिये।

[२] (६८०) (युवोः बृहत् राष्ट्रं द्यौः इन्वति) तुम दोनोंका बडा विशाल द्युलोक रूपी राष्ट्र सबको प्रसन्नता देता है। (यौ सेतृभिः अरज्जुभिः सिनीथः) जो तुम दोनों बंधन करनेके रज्जुरहित रोगादि साधनोंसे पापीयोंको बांध देते हैं। (वरुणस्य हेळः नः परि वृज्याः) वरुणका क्रोध हमें छोडकर दूसरे स्थानपर जावे। (इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्) इन्द्र हमारे लिये विस्तृत कार्यक्षेत्र निर्माण करके देवे।

१ युवोः बृहत् राष्ट्रं द्यौः इन्वति— तुम दोनोंका बडा विशाल द्युलोक रूपी राष्ट्र है वह सब लोगोंको प्रसन्न करता है। इस तरह पृथ्वीपरका राजा अपनी प्रजाको प्रसन्न करे, प्रजाकी प्रगति करे, प्रजाका अभ्युदय करे।

२ यौ अरज्जुभिः सेतृभिः सिनीथः— तुम दोनों रज्जुरहित बंधनोंसे पापीयोंको बांधते हो। रोगादि क्लेश होते हैं वे इनके बंधन हैं। आधि-व्याधि ये इनके बंधन हैं। राजा भी अपने राष्ट्रमें जो पापी, दुष्कर्मी, डाकू, चोर आदि हों, उनको

३ कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् ६८१
४ अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि ६८२
५ इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत् तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६८३

दण्ड देवे, बंधनमें डाले । प्रतिबंधनोंमें रखे जिससे वे दुष्टता कर न सकें ।

३ वरुणस्य हेळः नः परिवृज्याः— वरुणका क्रोध हमपर न आवे । हमसे ऐसा आचरण न हो कि जिससे वरुणका क्रोध हमपर आ जाय । वरुण निःपक्ष शासक है । वह किसीका पक्षपात नहीं करता । वैसा हमारा राजा निःपक्ष शासन करे और दण्डनीयोंको ही दण्ड देवे ।

४ इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्— इन्द्र हमारे लिये विस्तृत कार्यक्षेत्र निर्माण करके देवे । प्रजाजनोंके लिये विस्तृत कार्यक्षेत्र मिले ऐसा राज्यप्रबंध हो । प्रजा अनेक विस्तृत कार्यक्षेत्रोंमें कर्तव्य करे और अधिकाधिक सुखको प्राप्त करती जाय । राज्य शासनका यह कर्तव्य है कि जिससे प्रजाको विस्तृत कार्यक्षेत्र मिलता रहे ।

[३] (६८१) (नः विदथेषु यज्ञं चारुं कृतं) **हमारे युद्धोंमें अथवा सभागृहोंमें यज्ञको सुन्दर बनाओ। तथा (सूरिषु ब्रह्माणि प्रशस्ता कृतं) विद्वानोंके स्तोत्रोंको प्रशंसित बनाओ। (देवजूतः रयिः नः उपो एतु) देवों द्वारा प्रेरित धन हमें प्राप्त हो! (स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः प्र तिरेतं) प्रशंसा योग्य संरक्षणोंसे हमें संवर्धित करो ।**

१ विदथेषु नः यज्ञं चारुं कृतं— युद्धों, सभाओं और यज्ञस्थानोंमें हम जिस यज्ञको करना चाहते हैं, वह यज्ञ उत्तमसे उत्तम तथा निर्दोष बने । मनुष्य जीवन एक यज्ञ ही है, फिर वह मनुष्य किसी स्थान पर रहे । जिस स्थानपर मनुष्य रहे वहां उसने जो भी जीवनका यज्ञ बनाना है वह सर्वांग-सुंन्दर हो, उसमें त्रुटि न हो । मनुष्य सत्कर्म करे और वह निर्दोष करे ।

२ सूरिषु ब्रह्माणि प्रशस्ता कृतं— विद्वान् जो स्तोत्र करें वे प्रशंसा योग्य स्तोत्र हों । विद्वानोंके ज्ञानवचन सदा प्रशंसाके योग्य हों ।

३ देवजूतः रयिः नः उपो एतु— जो धन देव हमें देना चाहते हैं वह हमें सत्वर प्राप्त हो । देवोंके सेवन करने योग्य धन हमें प्राप्त हो । असुरोंके सेवन योग्य धन हमें न मिले ।

४ स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः प्र तिरेतं— प्रशंसित संरक्षणोंसे हमारा अभ्युदय होता और बढता रहे ।

[४] (६८२) **हे इन्द्र और वरुण!** (अस्मे) **हमारे लिये** (विश्ववारं वसुमन्तं पुरुक्षुं रयिं धत्तं) **सबके सेवनके योग्य ऐश्वर्य युक्त और बहुत अन्न वाला धन दो।** (यः आदित्यः अनृता प्र मिनाति) **जो आदित्य असत्य आचरण करनेवालोंका नाश करता है,** (शूरः अमिता वसूनि दयते) **शूर अपरिमित धनोंको देता है ।**

धन कैसा हो ?

१ (विश्ववारं) सब लोग जिसको स्वीकार करते हैं, सब जिसकी प्राप्तीकी इच्छा करते है, (वसुमन्तं) मानवोंका निवास करनेमें सहायक होनेवाला, (पुरुक्षुं) जिसके साथ अनेक प्रकारका अन्न रहता है, तथा जो अनेकों द्वारा प्रशंसित होता है ऐसा (रयिं धत्तं) धन हमें चाहिये ।

२ यः अनृता प्र मिनाति— जो असत्य कार्य करने-वालोंको रोकता है, उनको बुरे कार्य करने नहीं देता,

३ शूरः अमिता वसूनि दयते— शूर वीर अपरिमित धन देता है । जो ऐसा उदार होता है वह शूर ही प्रशंसाके योग्य है ।

[५] (६८३) (मे इयं गीः) **मेरी यह स्तुति** (इंद्रं वरुणं अष्ट) **इंद्र और वरुणको प्राप्त हो।** मेरी

*

(८५) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ६८४

२ स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।
युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान् हतं पराचः शर्वा विषूचः ६८५

३ आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।
कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति ६८६

स्तुति (तूतुजाना तोके तनये प्र आवत्) देवोंके पास जाकर हमारे बाल-बच्चोंको सुरक्षा करे। हम (सुरत्नासः देववीतिं गमेम) उत्तम रत्नोंसे सुशोभित होकर देवोंके यज्ञमें जायेंगे (यूयं सदा नः स्वस्तिभि पात) तुम सदा हमारा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो।

देवताओंकी स्तुति पुत्र-पौत्रोंका संरक्षण करती है। देवता वर्णन सुननेसे वैसा आचरण करनेकी स्फूर्ति मनमें उत्पन्न होती है, पश्चात् वैसा देवतावत् आचरण करनेसे मनुष्योंकी सुरक्षा होती है।

सुरत्नासः देववीतिं गमेम— उत्तम रत्न धारण करके, उत्तम वस्त्रों और अलंकारोंको धारण करके हम जहां यज्ञ होता हो वहां जायगे। यज्ञस्थानमें जानेकी इच्छा धारण करनी चाहिये।

[१] (६८४) (वां अरक्षसं मनीषां पुनीषे) आप दोनोंकी राक्षस भाव-रहित प्रशंसाको मैं पवित्र करता हूं। (इन्द्राय वरुणाय सोमं जुह्वत्) इन्द्र और वरुणके उद्देश्यसे सोमका हवन करता हूं। (देवीं उषसं न घृतप्रतीकां) उषा देवी की तरह तेजस्वी अवयवोंवाली हमारी यह स्तुति है। (ता) वे इन्द्र और वरुण (अभीके यामन् नः उरुष्यतां) युद्ध उपस्थित होनेपर शत्रुपर आक्रमण करनेके समय हमारा संरक्षण करें।

१ **अरक्षसं मनीषां पुनीषे**— इच्छा आसुरभावसे रहित हो और वह शुद्ध हो।

२ **उषसं देवीं न घृतप्रतीकां**— उषा देवीके समान बुद्धि तेजस्विनी हो।

३ **अभीके यामन् नः उरुष्यतां**— युद्धमें शत्रुपर आक्रमण करनेके समय हमारे सब वीरोंका उत्तम संरक्षण हो।

[२] (६८५) (अत्र देवहूये स्पर्धन्ते वै) इस संग्राममें शत्रुके और हमारे वीर परस्पर स्पर्धा करते हैं। (येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति) जिन युद्धोंमें ध्वजोंपर शस्त्र गिरते हैं। हे इन्द्र और वरुण! (युवं तान् अमित्रान् हतं) तुम दोनों उन शत्रुओंको मारो और (शर्वा (विषूचः पराचः) हिंसक शस्त्रसे चारों ओर और विरुद्ध दिशासे शत्रुओंको भगा दो।

१ **देवहूये स्पर्धन्ते**— (देवाः विजिगीषवः वीराः) विजयकी इच्छा करनेवाले वीर जहां स्पर्धा करते हैं वह संग्राम है। मनुष्य इस तरहके संग्राममें खडा है।

२ **येषु दिद्यवः ध्वजेषु पतन्ति**— इन संग्रामोंमें तीक्ष्ण शस्त्र ध्वजोंपर गिरते हैं। ध्वजोंको देखकर शत्रुके शस्त्र एक दूसरे पर फेंकतें हैं।

३ **युवं तान् अमित्रान् हतं**— तुम वीरोंको उचित है कि तुम उनका वध करो। वीर शत्रुके वीरोंका वध करे।

४ **शर्वा विषूचः पराचः**— घातक अस्त्रशस्त्रसे सब शत्रु चारों ओर भ्रांत होकर भागें, इतस्ततः दौडें और पराङ्मुख होकर भागें ऐसा करो। शत्रुको ऐसा तितर बितर करना चाहिये।

[३] (६८६) (आपः चित् स्व यशसः देवीः) जल मिश्रित अपने निज यशवाले दिव्य सोमरस (सदः सु इन्द्रं वरुणं देवता धुः) यज्ञके स्थानोंमें इन्द्र वरुण आदि देवताओंको धारण करते हैं। उनमेंसे (अन्यः प्रविक्ताः कृष्टीः धारयति) एक वरुण

४ स सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान् ।
आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित् स सुविताय प्रयस्वान् ६८७
५ इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत् तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६८८

(८६) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वरुणः । त्रिष्टुप् ।

१ धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ६८९
२ उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत् कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ६९०

पृथक् पृथक् प्रजाओंका धारण करता है, (अन्य अप्रतीनि वृत्राणि हन्ति) दूसरा इन्द्र अप्रतिम शत्रुओंका भी विनाश करता है।

१ **अन्यः प्रविक्ताः कृष्टीः धारयति**— एक अधिकारी प्रत्येक प्रजाजनका पृथक् पृथक् धारण पोषण करता है। यह वरुण देव है। प्रत्येक प्रजाजनका पृथक् पृथक् निरीक्षण करना और उनका पालन करना यह इसका कर्तव्य है। राष्ट्रमें ऐसा एक अधिकारी हो कि जो व्यक्तिशः प्रत्येकका हित देखता रहे।

२ **अन्यः अप्रतीनि वृत्राणि हन्ति**-- दूसरा इन्द्र प्रबल घेरनेवाले बाह्य शत्रुओंका नाश करता है। ऐसा एक अधिकारी सेनापति जैसा हो कि जो राष्ट्रको बाहरके शत्रुओंसे बचावे, बाहरसे आक्रमण करनेवाले शत्रुओंसे राष्ट्रको बचावे, इतना ही नहीं परंतु अपने राष्ट्रको घेर कर अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले शत्रुओंका संपूर्णतया वध करे। शत्रुका निःशेष विनाश करे।

[४] (६८७) **(सुक्रतुः होता ऋतचित् अस्तु) उत्तम कर्म करनेवाला होता यज्ञके विधिका ज्ञाता हो। हे आदित्यो ! (यः शवसा नमस्वान् वां) जो बलसे युक्त और अन्नसे युक्त ऐसे तुम दोनोंकी सेवा करता है, तथा (यः हविष्मान् अवसे वां आवर्तयत्) जो अन्नका यज्ञ करनेवाला अपनी सुरक्षाके लिये आपको अपने पास लाता है, (सः प्रयस्वान् सुविताय असत् इत्) अन्नवान् होकर उत्तम फल प्राप्त करनेके लिये योग्य होता है।**

जो यज्ञ करनेवाला है उसको यज्ञकी विधि अच्छी तरहसे विदित होनी चाहिये। यज्ञ करनेवालेके पास पर्याप्त अन्न हो, अन्नका दान करनेकी इच्छा हो, उस यज्ञ करनेवालेका संरक्षण हो, यज्ञस्थान सुरक्षित हो। इस तरह किया यज्ञ सफल होगा।

[५] (६८८) यह मंत्र ६८३ इस स्थानपर अनुवाद सहित है।

वरुण देवता

[१] (६८९) **(अस्य जनूंषि महिना धीरा) इस वरुणके जीवन उनकी निज महिमासे धैर्यवाले कर्मोंसे युक्त हैं। (यः उर्वी रोदसी चित् वि तस्तंभ) जो वरुण विस्तीर्ण द्युलोक और भूलोकको स्थिर करता है। (बृहन्तं नाकं) बडे विशाल सूर्यको और (ऋष्वं नक्षत्रं द्विता प्र नुनुदे) तेजस्वी नक्षत्रोंको दो समयोंमें जो प्रेरित करता है। दिनमें सूर्य और रात्रीके समय नक्षत्रोंको प्रेरित करता है तथा (भूम पप्रथत् च) भूमिको विस्तृत किया है।**

वरुणका कर्तृत्व बडा प्रभावशाली है, उसके कर्म बडे प्रभावशाली हैं, वह द्युलोक और भूलोकको यथास्थान सुस्थिर रखता है। सूर्यको प्रकाशित करके दिन बनाता है और अन्धकारके समय नक्षत्रोंको प्रकाशित करता है। उसीने भूमिको ऐसी विशाल बनाया है। यह वरुण ईश्वर ही है जो यह सब करता है।

भक्तके विचार

[२] (६९०) **(उत स्वया तन्वा सं वदे) क्या मैं अपने इस शरीरसे वरुणके साथ बोलूं ? और**

३ पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ६९१
४ किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत् स्तोतारं जिघांससि सखायम् ।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावो ऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ६९२
५ अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नो ऽव या वयं चकृमा तनूभिः ।
अव राजन् पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम् ६९३

(कदा तत् वरुणे अन्तः भुवानि) कब मैं वरुणके अन्दर हो जाऊं ? (मे हव्यं अहृणानः जुषेत किं) मेरा क्या हवनीय द्रव्य क्रोध रहित होकर वरुण स्वीकार करेगा ? (कदा सुमनाः मृळीकं अभिख्यं) कब मैं उत्तम विचारवाला होकर सुखदायी वरुणको देख सकूं ?

" क्या मैं परमेश्वरके साथ बोल सकूंगा ? मैं कब प्रभुके अन्दर पहुंचूंगा ? मेरा अर्पण किया हुआ क्या प्रभु स्वीकार करेगा ? और मैं प्रभुका साक्षात्कार कब कर सकूंगा ? " ऐसे विचार भक्तके मनके अन्दर उठते हैं ।

वास्तवमें हरएक मनुष्यकी प्रार्थना परमेश्वर सुनता है, प्रत्येक व्यक्ति प्रभुके अन्दर ही है, भक्त जो अर्पण करता है उसका स्वीकार प्रभु करता है । भक्तका अन्तःकरण निर्मल होनेपर प्रभुका साक्षात्कार होता है ।

भक्तकी चिन्ता

[३] (६९१) हे वरुण ! (दिदृक्षु तत् एनः पृच्छे) जाननेकी इच्छा करके मैं उस अपने पापके विषयमें उससे पूछता हूं । (विपृच्छं चिकितुषः उपो एमि) मैं पूछनेकी इच्छासे विद्वानोंके पास भी गया हूं. उन (कवयः चित् मे समानं इत् आहुः) ज्ञानियोंने मुझे एक ही उत्तर दिया है कि (अयं वरुणः तुभ्यं हृणीते ह) निश्चयसे यह वरुण तुम्हारे ऊपर क्रोधित हुआ है ।

मैं अपने पापके विषयमें सच सच बात जानना चाहता हूं कि मैंने कौनसा पाप किया है जिसके कारण मुझे ये कष्ट हो रहे हैं । मैंने विद्वानोंसे भी पूछा, सभी विद्वानोंने एक स्वरसे कहा कि तुम्हारे ऊपर प्रभुका क्रोध हुआ है ।

निष्पाप बननेका निश्चय

[४] (६९२) हे वरुण ! (किं ज्येष्ठं आगः आस) क्या मेरा ऐसा कोई बडा भारी अपराध हुआ है ? (यत् सखायं स्तोतारं जिघांससि) जो तू अपने भक्त स्तोत्र पाठक मुझ जैसेको भी मारता है ? हे (दुर्दभ स्वधावः) न दबनेवाले तेजस्वी वरुण देव ! यदि (तत् मे प्रवोचः) वह मेरा पाप है तो मुझे कह दो जिससे मैं (अनेनाः तुरः नमसा त्वा अव इयां) निष्पाप बनकर सत्वर नम्रतापूर्वक तुम्हारे पास प्राप्त होऊं ।

भक्त कहता है कि– ' यदि मेरा ऐसा बडा पाप है जिससे कि मुझे इतने कष्ट हो रहे हैं, तो मुझे बताओ । जिससे मैं निष्पाप बननेका यत्न करूं और तुम्हारे पास आजाऊं ।

पापसे छुटकारा

[५] (६९३) हे वरुण ! (पित्र्या नः द्रुग्धानि अवसृज) हमारे पिता आदिसे हुए द्रोहको दूर करो । (वयं तनूभिः या चकृम अवसृज) हमने अपने शरीरोंसे किये जो पाप होंगे उनको भी दूर करो । हे राजन् वरुण ! (पशुतृपं तायुं न अवसृज) पशुकी चोरी करके उस पशुको तृप्त करनेवाले चोरको जैसे दूर करते हैं वैसे मेरे पाप दूर करो । (दाम्नः वत्सं न वसिष्ठं अवसृज) रस्सीसे बच्छडेको छोडनेके समान इस वसिष्ठको पापसे छुडाओ ।

१ आनुवंशिक द्रोह-पाप-(नः पित्र्या द्रुग्धानि)- पिता पितामहसे जो पाप हुए हों, उनका संस्कार हमारे शरीर पर होता है, बीजरूपसे वे सब दोष हमारे अन्दर आते हैं उनसे- छुटकारा प्राप्त करना चाहिये ।

६ न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ६९४
७ अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ६९५

---

२ अपने पाप- (वयं तनूभिः चकृम) -जो पाप हम अपने निज शरीरसे करते हैं, उनसे छुटकारा प्राप्त करना चाहिये।

३ पापीका पुण्य— (पशुतृपं तायुं) — पशुओंकी चोरी करनेवाला चोर चुराकर लाये पशुओंको घास और पानी देता ही है। यहां चोरीका पाप करके उनको घास-पानी देकर तृप्त करनेका पुण्य है। ऐसे लोगोंको तथा ऐसे भावोंको भी दूर करना चाहिये।

४ दाम्नः वत्सं न वसिष्ठं अवसृज--रस्सीसे बछडेको छोड देते हैं वैसा मुझ वसिष्ठको पापकी पूर्वोक्त रस्सीसे छोड दो। ' वासिष्ठ ' का अर्थ यहां सुखसे वसनेकी इच्छा करनेवाला। पूर्वोक्त पापोंसे छुटकारा प्राप्त करनेसे ही यहां उत्तम निवास हो सकता है।

पापके सात कारण

[६] (६९४) हे वरुण! (सः स्वः दक्षः न) वह अपना निज बल पापके लिये कारण नहीं होता। (ध्रुतिः) प्रगतिमें रुकावट होनेसे पापमें प्रवृत्ति होती है, (सुरा) मद्य, शराब, (मन्युः) क्रोध, (विभीदकः) द्यूत, जूआ, (अचित्तिः) अज्ञान, चित्त लगाकर कार्य न करनेकी वृत्ति ये पापमें प्रवृत्त करनेवाली प्रवृत्तियां हैं। (कनीयसः ज्यायान् उपारे अस्ति) हीन पुरुषको श्रेष्ठ पुरुष पास रहकर पापमें प्रवृत्त करता है तथा (स्वप्नः चन अनृतस्य प्रयोता इत्) निद्रा या सुस्ती भी अनृत या पापमें प्रवृत्त करनेवाली है।

१ ध्रुतिः (ध्रु गतिस्थैर्ययोः) —अपनी प्रगतिमें रुकावट हुई तो मनुष्य पाप करने लगता है। गतिमें स्थिरता होना गतिमें प्रतिबंध होना पाप प्रवृत्ति उत्पन्न करता है।

२ सुरा— मद्य, मदिरा, आसव, सुरा ये जो मादक पदार्थ हैं, इनके सेवनसे मनुष्य पाप करनेमें प्रवृत्त होता है। मद्यपान छोडना चाहिये।

३ मन्युः— क्रोध मनुष्यको पाप कर्म कराता है।

४ विभीदकः—जुआ, द्यूतक्रीडा पापकारी है।

५ अचित्तिः— अज्ञानसे पाप होता है, चित्त लगाकर काम न करनेसे पाप होता है।

६ कनीयसः ज्यायान् उपारे अस्ति— छोटेको बडा मनुष्य समीप रहकर पापमें प्रवृत्त करता है। धनी निर्धनको, बलवान् निर्बलको, ज्ञानी अज्ञानीको पापमें प्रवृत्त करता है। निर्बलको बलिष्ठके भयसे वह पाप करना पडता है।

७ स्वप्नः अनृतस्य प्रयोता —निद्रा, सुस्ती, आलस्य ये पापके प्रवर्तक दुर्गुण हैं।

इनसे पाप होता है। मनुष्य इन पाप प्रवृत्तियोंसे अपने आपको बचावे।

[७] (६९५) (मीळ्हुषे भूर्णये) इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले और भरण पोषण करनेवाले (देवाय) ईश्वरके लिये- वरुण देवको (अनागाः) निष्पाप होकर (अहं) मैं (अरं कराणि) सेवा करता हूं। (दासः न) सेवकके समान मैं ईश्वरकी सेवा करूंगा। (अर्यः देवः अचितः अचेतयत्) वह श्रेष्ठ देव हम अज्ञानियोंको प्रेरित करता है। (कवितरः गृत्सं राये जुनाति) वह अधिक ज्ञानी ईश्वर स्तोताको धनकी ओर प्रेरित करता है।

१ मीळ्हुषे भूर्णये देवाय अनागाः अहं अरं कराणि- भक्तकी सदिच्छाओंको पूर्ण करनेवाले, सबका भरण पोषण करनेवाले ईश्वरकी सेवा निष्पाप बनकर मैं करता हूं। निष्पाप बननेके लिये मैं प्रभुकी सेवा करता हूं। परमेश्वर सबका पालक है और सबको निष्पाप बनानेवाला है, इसलिये उसकी सेवा करनेसे मनुष्य निष्पाप बनता है। यहां (देवाय अलंकराणि) देवको अलंकार डालता हूं, सुशोभित करता हूं, सेवा करता हूं यह भाव है। (अरं कराणि) पर्याप्त सेवा करता हूं ऐसा भी इसका भाव है।

८ अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६९६

(८७) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वरुणः । त्रिष्टुप् ।

१ रदत् पथो वरुणः सूर्याय प्राणांसि समुद्रिया नदीनाम् ।
सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ६९७

२ आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत् पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान् ।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ६९८

---

१ अर्यः देवः अचितः अचेतयत्— श्रेष्ठ देव अज्ञानियोंको ज्ञान देकर सत्कर्ममें प्रेरित करता है।

३ कवितरः देवः गृत्सं राये जुनाति— अधिक ज्ञानी देव भक्त उपासकको धनकी प्राप्तिकी ओर प्रेरित करता है। प्रभु भक्तका ऐहिक अभ्युदय करनेके लिये उसे पर्याप्त धन देता है।

[८] (६९६) हे (स्वधावः वरुण) अन्न पास रखनेवाले वरुण! (तुभ्यं अयं स्तोमः) तुम्हारे लिये यह स्तोत्र (हृदिचित् सु उपश्रितः अस्तु) हृदयमें उत्तम रीतिसे रहनेवाला हो। तुम्हारे लिये यह हृदयंगम हो। (नः क्षेमे शं) हमारे क्षेममें कल्याण हो और (नः योगे शं अस्तु) हमारे लाभमें भी कल्याण हो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो।

१ नः क्षेमे शं अस्तु— हमारे क्षेममें भी हमारा सच्चा कल्याण हो। प्राप्त हुई वस्तुओंका रक्षण होनेका नाम क्षेम है। वह क्षेम हमारे लिये कल्याण करनेवाला हो।

२ नः योगे शं अस्तु— अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिका नाम योग है। अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति करनेके समय जो प्रयत्न हम करेंगे उनमें हमारा कल्याण हो।

३ हमारी सेवा प्रभुके लिये प्रसन्नता देनेवाली हो (हृदि उपश्रितः अस्तु)।

[१] (६९७) यह (वरुणः देवः सूर्याय पथः प्र रदत्) वरुण देवने सूर्यके लिये मार्ग नियत कर दिया ह। (नदीनां अर्णांसि समुद्रिया प्र) नादियोंके जल प्रवाह समुद्रके बन चुके हैं। (सर्गः अर्वतीः सृष्टः न) घोडा जैसा घोडियोंके पास दौडता है, उस तरह (ऋतायन् महीः अवनीः अहभ्यः चकार) शीघ्र जानेवाले सूर्यने बडी रात्रियोंको दिनोंसे पृथक् निर्माण किया है। पर वे परस्पर जुडे हैं। एकके पीछे दुसरा लगा है।

सूर्यका मार्ग नियत हुआ है। वृष्टिका जल नदियोंद्वारा समुद्रमें जाता है और समुद्र रूप हो जाता है। घोडा घोडीके पास दौडता है उस तरह सूर्य दौडता है और उस कारण दिन और रात्री पृथक् होती है।

सूर्य जैसा अपना मार्ग नहीं छोडता वैसा सज्जनोंको अपना मार्ग छोडना नहीं चाहिये। वृष्टिका जल जैसा समुद्रमें जाकर एक जीवन होता है वैसा सबका जीवन आत्माके समुद्रमें जाकर एक रूप होना चाहिये। घोडा निसर्ग नियमसे घोडीके पास आकर्षित होता है, उस तरह स्त्रीपुरुषोंको इस गृहस्थ धर्ममें परस्पर प्रेमपूर्वक रहना चाहिये। जिस तरह दिन और रात्री परस्पर संगत हुई हैं। दिनके पीछे रात्री और रात्रीके पिछे दिन लगे हैं। इस तरह स्त्री-पुरुषको परस्पर प्रेमपूर्वक रहना चाहिये।

अपना सन्मार्ग नहीं छोडना, सबका समान जीवन बनाना, राष्ट्रके जीवनमें विषमता नहीं रखना, स्त्रीपुरुषोंका परस्पर प्रेम पूर्वक बर्ताव होना ये तीन उपदेश यहां हैं।

[२] (६९८) (ते वातः आत्मा) तेरा आत्मा वायु है। वह वायु (रजः आ नवीनोत्) धूलिको चारों ओर उडाता है। (पशुः न यवसे ससवान्) पशु जैसा घाससे अन्नवान् होता है, उस तरह

३ परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके ।
ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयन्त मन्म ६९९

४ उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिः सप्त नामाघ्न्या बिभर्ति ।
विद्वान् पदस्य गुह्या न वोचद् युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ७००

५ तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन् तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः ।
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम् ७०१

(भूर्णिः) भरण पोषण करनेवाला प्रभु अन्नवान् है । हे वरुण ! (इमे मही बृहती रोदसी) ये बडे द्युलोक और भूलोकके (अन्तः) मध्यमें (ते विश्वा धाम प्रियाणि) तेरे सब स्थान सब लोगोंको प्रिय हैं ।

सब विश्वका प्राण यह वायु है । यह वायु सब धूलिको उडाता है अथवा अन्तरिक्षसे वृष्टिके जलको लाता है । सबका पोषण करनेवाला प्रभु सब प्रकारके अन्नसे युक्त है । इसलिये उसके सब स्थान मानवोंको प्रिय होते हैं ।

आत्मा सबका प्रेरक है, वह सब शरीर चलाता है, उसी तरह सब विश्वको चलानेवाला विश्व प्राण है । विश्व प्राणको चलानेवाला प्रभु सब पोषक अन्नसे युक्त है । इसलिये इसने इस विश्वमें जो स्थान बनाये हैं वे सबको प्रिय होने योग्य है ।

प्रभुके गुप्तचर

[३] (६९९) (वरुणस्य स्पशः स्मदिष्टाः) वरुणके चर प्रशस्त गतिवाले हैं । वे (सुमेके उभे रोदसी परि पश्यन्ति) सुन्दर रूपवाले द्युलोक और भूलोकका निरीक्षण करते हैं । (ये ऋतावानः कवयः यज्ञधीराः प्रचेतसः) जो सत्कर्म कर्ता ज्ञानी यज्ञ करनेवाले विशेष बुद्धिमान होते हैं, जो (मन्म इषयन्त) स्तोत्र पाठको प्रभुतक पहुंचाते हैं उनका भी वे चर निरीक्षण करते हैं ।

वरुणके गुप्तचर सर्वत्र गमन करते हैं और सबका निरीक्षण करते हैं । विश्व भरमें उनकी गति होती है और वे ज्ञानी यज्ञ कर्ता कवि भक्तका भी निरीक्षण करते हैं । कोई उनके निरीक्षणसे छूटता नहीं । जो अच्छा कार्य करते हैं वे पुण्यके भागी होते हैं और जो बुरा कर्म करते है वे पापके भागी होते हैं । मनुष्योंको इनसे सावध रहना चाहिये ।

[४] (७००) (मेधिराय मे वरुणः उवाच) बुद्धिमान मुझको वरुणने कहा था, (अघ्न्या त्रिः सप्त नाम बिभर्ति) गौके तीन गुणा सात अर्थात् इक्कीस नाम होते हैं । पृथिवी, वाणी तथा गौके नाम इक्कीस हैं । (विद्वान् विप्रः) उस ज्ञानी बुद्धिमान वरुणने (उपराय युगाय शिक्षन्) समीप आनेवाले अपने शिष्यको सिखानेकी इच्छासे (पदस्य गुह्या न वोचत्) पदके गुप्त रहस्योंको जैसा कहते हैं वैसा कहा । वैसा उपदेश किया है ।

१ अघ्न्या त्रिः सप्त नाम बिभर्ति-- गौ, वाणी, भूमिके इक्कीस नाम हैं । निघण्टुमें पृथ्वीके २१ ही नाम कहे हैं । वैसे ही वाणी और गौके भी हैं ।

२ मेधिराय उवाच-- बुद्धिमान शिष्यको उत्तम श्रेष्ठ गुरु उपदेश देता है ।

३ विद्वान् विप्रः उपराय युगाय शिक्षन्-- ज्ञानी विद्वान गुरु समीप रहे शिष्यको इस गुप्त विद्याका उपदेश देता है और रहस्य समझाता है ।

४ पदस्य गुह्या प्रवोचत्-- वेद मंत्रके प्रत्येक पदके गुह्य भाव समझाता है । प्रत्येक उच्च स्थानके विषयमें जो रहस्य हैं उसको बता देता है । इस तरह ज्ञानका प्रसार होता है ।

[५] (७०१) (अस्मिन् अन्तः तिस्रः द्यावः निहिताः) इसके मध्यमें तीन द्युलोक हैं । द्युलोकके तीन विभाग हैं । (तिस्रः भूमीः) तीन भूमियां हैं । भूमिके तीन विभाग हैं । (उपराः षड्विधाः)

६ अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद् द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान् ।
गम्भीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ७०२

७ यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः ।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७०३

(८८) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वरुणः, (७ पाशविमोचनी) । त्रिष्टुप् ।

१ प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व ।
य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ७०४

उनमें छः विभाग छः ऋतुओंके कारण हुए हैं। (गृत्सः राजा वरुणः) प्रशंसनीय राजा वरुणने (एतं हिरण्यं कं प्रेंखं) इस सुवर्ण जैसे सुखदायी प्रेक्षणीय सूर्यको (दिवि शुभे चक्रे) द्युलोकमें सब लोकोंका हित करनेवाले सूर्यको किया है।

तीन द्युलोक— द्युलोकके तीन विभाग । भूमिके पासका, मध्यका तथा इनके बीचका ऐसा आकाशके तीन विभाग हैं ।

तीन भूमियाँ— समुद्र तीर परकी भूमि, हिमालय जैसे पर्वत शिखरोंपर जो भूमि है वह एक, और इनके बीचकी जो भूमि है वह तीन प्रकारकी भूमि है । इस भूमिके छः ऋतुओंके अनुसार (षड्विधाः उपराः) छः उपविभाग होते है ।

राजा वरुणः— इन सबका राजा परमेश्वर है जिसका वर्णन वरुण करके यहां किया है ।

इस वरुणने सबका कल्याण करनेके लिये आकाशमें सूर्यको स्थापन किया है ।

[६] (७०२) (वरुणः द्यौः इव सिन्धुं अवस्थात्) वरुणने आकाशके समान ही समुद्रकी स्थापना की है। यह वरुण (द्रप्सः न श्वेतः) सोमरसके समान गौरवर्ण है, (मृगः तुविष्मान्) गौरमृगके समान बलवान् है। (गंभीरशंसः रजसः विमानः) विशाल प्रशंसावाला और अन्तरिक्षका निर्माण करनेवाला (सुपारक्षत्रः अस्य सतः राजा) उत्तम रीतिसे दुःखसे पार करनेवाला जिसका बल है और यह इस जगतका एकमात्र राजा है ।

परमेश्वरने जैसा आकाश स्थापन करके ऊपर रखा है वैसा ही समुद्र भी उसके योग्य स्थानपर रखा है । यह प्रभु निष्कलंक है, बलवान् है, प्रशंसनीय है, अन्तरिक्षका निर्माता है, दुःखसे पार करनेवाला इसका सामर्थ्य है और यह सब जगत्का राजा है । सबका एक मात्र प्रभु है ।

[७] (७०३) (यः आगः चक्रुषे चित् मृळयाति) जो पाप करनेवालेको भी सुख देता है। उस (वरुणे वयं अनागाः स्याम) वरुणमें हम निष्पाप होकर रहेंगे, निवास करेंगे । (अदितेः व्रतानि अनु ऋधन्तः) अदीन वरुणके व्रतोंका हम संवर्धन करेंगे। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो।

परमेश्वर दयालु है अतः वह पाप करनेवालेको भी सुख देता है । हम निष्पाप बनकर वरुणमें रहेंगे । परमेश्वरके नियमोंका हम पालन करेंगे । और इस कारण हम सुखी हो जायंगे ।

[१] (७०४) हे वसिष्ठ ! (मीळ्हुषे वरुणाय) कामनापूरक वरुण देवके लिये (शुन्ध्युवं प्रेष्ठां मतिं प्र भरस्व) शुद्ध करनेवाली प्रिय स्तुति करो। (यः) जो वरुण (यजत्रं सहस्रामघं बृहन्तं वृषणं ईं) यजनीय, सहस्रों प्रकारके धनसे युक्त बडे बलवान इस सूर्यको (अर्वाञ्चं करते) हमारे सन्मुख करता है।

१ शुन्ध्युवं प्रेष्ठां मतिं— प्रभुकी स्तुति भक्तकी शुद्धि करनेवाली और बुद्धिको प्रेमयुक्त बनानेवाली होती है ।

सूर्यको जो ईश्वर हमारे सामने लाता है वह बडा सामर्थ्य वाला है इसलिये वही स्तुतिके योग्य है ।

२ अधा न्वस्य संदृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।
स्वर्यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात् ७०५

३ आ यद् रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत् समुद्रमीरयाव मध्यम् ।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ७०६

४ वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः ।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन् यादुषासः ७०७

---

[२] (७०१) (अध अस्य वरुणस्य संदृशं जगन्वान्) अब मैं इस वरुणके सुंदर दर्शनको प्राप्त कर चुका हूं और (अग्नेः अनीकं मंसि) अग्निकी ज्वालाओंका वर्णन करता हूं (यत् स्वः अश्मन् अन्धः अधिपाः) जब सुखकर पत्थरपर सोमका रस निकाल कर वरुण अधिक प्रमाणमें पान करते हैं, तब (मा दृशये वपुः अभि निनयात् उ) मुझे अपने दर्शनीय सुंदर रूपको दर्शाते हैं।

यज्ञ स्थानमें अग्नि प्रदीप्त किया जाता है, सोमका रस निकाला जाता है, वरुण देवको वह दिया जाता है, तब उसका रूप अधिक सुन्दर दीखता है । यह यज्ञका वर्णन है ।

भवसमुद्रकी नौका

[३] (७०६) मैं और (वरुणः च) वरुण देव ये दोनों (नावं आ रुहाव) नौकापर आरूढ होते हैं और (समुद्रं मध्ये प्र ईरयाव) समुद्रमें नौकाको हम चलाते हैं, (यत् अपां स्नुभिः) जब हम जलोंके मध्यमें अन्य नौकाओंके साथ (अधि चराव) विचरते हैं तब (शुभे कं प्रेंखं प्र ईंखयावहै) कल्याणके लिये झूलेपर हम खेलते जैसे होते हैं ।

मैं भक्त और वरुण देव ये दोनों हम नौकापर चढते हैं, उस नौकाको समुद्रमें ले जाते और जलके तरंगोंके ऊपर अन्य नौकाओंके साथ हम अपनी नौकाको जब चलाते है तब हमारी नौका जल तरंगोंकी गतिके अनुसार नीचे ऊपर हो जाती है, जैसा झूला आगे पीछे होता है वैसी हमारी नौका आगे पीछे होती है । इस गतिमें आनंद और कल्याणकी प्राप्ति है ।

जब जीव इस शरीर रूपी नौकामें आता है, उसी नौकामें परमेश्वर भी चलानेवाला बैठता है । यह नौका भव समुद्रमें चलायी जाती है जिसमें ऐसी ही अन्य नौकाएं भी रहती है । भव समुद्रके तरंगके कारण हमारी नौका कभी ऊपर कभी नीचे होती है, कभी अन्य नौकाओंके साथ मिलती कभी दूर होती है । इस तरह हमारी नौका (शुभे कं) कल्याण और सुखको प्राप्त करती है ।

यह शरीर ही भव समुद्रकी नौका है । इसमें जीव बैठा है । कल्याणके स्थानको इसने पहुंचना है । नौका चलानेवाला प्रभु है । कभी ऊँचा कभी नीचा होकर अन्तमें यह प्राप्तव्य आनन्द धामको प्राप्त करता है । यह वर्णन कितना हृदयंगम है । पाठक इस मंत्रका जितना अधिक विचार करेंगे उतना अधिक गहरा अर्थ उनको प्रतीत होगा ।

अर्जुनके रथपर भगवान् सारथ्य कर रहे हैं और वह रथ युद्धमें खडा है, अर्जुन युद्ध करके विजय प्राप्त कर रहा है । वही वर्णन इस मंत्रमें नौकाके रूपमें वर्णन किया है । वहां युद्ध वर्णन है, यहाँ गहरा जल है । पाठक विचार करें और अर्थकी गहराईको जाने ।

[४] (७०७) (वसिष्ठं ह वरुणः) वसिष्ठको वरुणने अपनी (नावि आ अधात्) नौकापर चढाया और (सु-अपाः महोभिः ऋषिं चकार) उसको उत्तम कर्म करनेवाला ऋषि अपने सामर्थ्योंसे बनाया । (विप्रः स्तोतारं अह्नां सुदिनत्वे यात्) ज्ञानी वरुणने स्तोत्रपाठक वसिष्ठको दिनोंमेंसे उत्तम शुभ दिनमें सफल कर्मकर्ता बनाया । और (द्यावः यात् उषसः यात्) दिन और उषः रात्रियोंको गतिमान बनाकर (ततनन्) फैला दिया । कालको निर्माण किया, इसमें यह साधक प्राप्तव्यको प्राप्त करे ऐसी योजना वरुणने बनायी ।

५ क्व१ त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुरा चित् ।
बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ७०८
६ य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन् त्वामागांसि कृणवत् सखा ते ।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन् भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम् ७०९
७ ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्यस्मत् पाशं वरुणो मुमोचत् ।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७१०

यह शरीर रूपी नौका ईश्वरने बनायी, उस नौकापर इस साधकको बिठलाया, उसको ज्ञानी तथा कर्म कर्ता बनाया । इधर कालको निर्माण करके शुभ दिन बनाये और शुभ दिनोंमें कर्मोंको करके इसको आनंदके स्थानपर पहुंचा दिया ।

इधर अर्जुनको रथपर चढाया, युद्ध करना नाहीं चाहता था उसको युद्ध करनेके लिये प्रेरित किया, उससे युद्ध करवाया, उसका रथ चलाया, उसके घोडोंको धोया, अच्छी अवस्थामें रखा और अन्तमें विजय भी प्राप्त करके दिया ।

यद्यपि अर्जुन इतिहासिक पुरुष है तथापि उसका वर्णन आध्यात्मिक वातोंका दर्शक होने योग्य किया है । इस मंत्रका वर्णन आध्यात्मिक है, पर यह वसिष्ठ अपना ही वर्णन करनेके समान यहां करता है । पर यह वर्णन सनातन वर्णन है और जो यहां वसनेका इच्छुक है उसका ऐसा ही वर्णन हो सकता है । अतः यह वासिष्ठका होते हुए भी सनातन ही है ।

[५] (७०८) **हे वरुण ! (तानि नौ सख्या क बभूव) वे हमारे मित्रभाव भला कहां बने थे ? (पुरा चित् यत् अवृकं तत् सचावहे) प्राचीन कालका हिंसारहित जो सख्य है, वह हम चाहते हैं। हे (स्वधावः) अपनी निज धारण शक्तिसे युक्त वरुण देव ! (ते बृहन्तं मानं) मैं तेरे बडे परिमाणवाले (सहस्रद्वारं गृहं जगम) सहस्रों द्वारोंवाले घरको जाना चाहता हूं ।**

हमारे सख्य प्राचीन हैं, सनातन हैं । वे कब बने किसको भी पता नहीं है । इस हमारे सख्यमें निष्कपटता है, अहिंसा है । यह मित्रता स्थिर रहे ऐसा हम चाहते हैं । प्रभुके विशाल घरमें जाकर रहनेकी इच्छा है । हम उधर ही चल रहे है । जीवका यह आध्यात्मिक और आलंकारिक प्रवास है । जीव तो ईश्वरके विशाल घरमें ही रहता है, पर यहां यह ज्ञानका प्रवास है, स्थलका प्रवास नहीं है ।

[६] (७०९) **हे वरुण ! (यः नित्यः आपिः) जो यह वसिष्ठ तुम्हारा नित्य बन्धु और (ते सखा प्रियः सन्) तुम्हारा प्रिय मित्र होता हुआ अब (त्वां आगांसि कृणवत्) तुम्हारे संबंधमें थोडेसे अपराध करनेवाला हुआ है । हे (यक्षिन्) पूजनीय देव ! (ते एनस्वन्तः मा भुजेम) हम तुम्हारे हैं, इसलिये हमसे पाप होनेपर भी उसका भोग हमें करना न पडे ऐसी कृपा करो । (विप्रः स्तुवते वरूथं यंधि स्म) तुम ज्ञानी हो इसलिये मुझ जैसे तुम्हारे भक्तके लिये उत्तम सुखदायी घर दे दो ।**

हे प्रभो ! मैं तुम्हारा सनातन बंधु हूं, तुम्हारा प्रिय मित्र हूं । अब मुझसे थोडेसे अपराध हुए तो क्या तुम मुझे उसके लिये दण्ड दोगे ! तुम्हारा मै भक्त हूं, तुम्हारी भक्ति अब भी कर रहा हूं, इसलिये थोडेसे पाप होनेपर भी मैं तुम्हारा ही मित्र बनकर रहूं ऐसा करो ।

यह भक्तका कहना है । पुत्र पिताके पास, मित्र मित्रके पास और भक्त प्रभुके पास ऐसा ही अन्तःकरणसे कहता है ।

[७] (७१०) **(ध्रुवासु आसु क्षितिषु क्षियन्तः) इन स्थायी भूप्रदेशोंमें रहनेवाले हम (त्वा) तुम्हारी भक्ति करते हैं । वह (वरुणः अस्मत् पाशं वि मुमोचत्) वरुण हमें अपने पाशसे छुडावे । (अदितेः उपस्थात् अवः वन्वानाः) अदीन वरुणसे हम अपना संरक्षण प्राप्त करते हैं । (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमें कल्याणके साधनोंसे सदा सुरक्षित करो ।**

(८९) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वरुणः । गायत्री, ५ जगती ।

१ मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ७११
२ यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः । मृळा सुक्षत्र मृळय ७१२
३ क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे । मृळा सुक्षत्र मृळय ७१३
४ अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ७१४
५ यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि ।
अचित्ती यत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ७१५

ईश्वरकी भक्ति करो, वही तुम्हारे बंधन दूर करेगा और तुम्हें मुक्त करेगा ।

मुझे मिट्टीका घर नहीं चाहिये

[१] (७११) हे वरुण राजन् ! (अहं मृन्मयं गृहं मो गमं) मैं मिट्टीके घरमें रहना नहीं चाहता, परंतु (सु) सुंदर घर रहनेके लिये चाहता हूं । हे (सुक्षत्र) उत्तम क्षात्रबलवाले प्रभो ! (मृळय) मुझे सुखी कर, (मृळ) आनंदित कर ।

मिट्टीकी झोंपडीमें मैं रहना नहीं चाहता । मैं तुम्हारा मित्र हूं, इसलिये तुम्हारे जैसा सुंदर घर मुझे चाहिये । जिसके अन्दर क्षात्र बल होता है वही दूसरोंको सुखी कर सकता है, इसलिये मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूं ।

दुःखसे पार होनेका मार्ग

[२] (७१२) हे (अद्रिवः) पर्वतके किलेमें रहनेवाले ! (यत् ध्मातः दृतिः न) जब वायुसे भरपूर भरी चमडेकी थैलीके समान मैं (प्रस्फुरन् एमि) स्फुरण प्राप्त करके चलता हूं तब हे उत्तम क्षात्र तेजवाले ! (मृळ मृळय) मुझे सुखी करो, मुझे आनंदित करो ।

१ अद्रिवः सुक्षत्र— उत्तम बलवान् वीर पर्वतके किलेमें रहता है जिससे वह अधिक सामर्थ्यवान् होता है ।

२ ध्मातः दृतिः— वायुसे भरपूर भरी चमडेकी थैली नदी पार करनेमें सहायक होती है, वह स्वयं तरती है और दूसरोंको तराती है । उस तरह साधकोंको बनना चाहिये । वे ऐसे समर्थ बनें कि वे स्वयं दुःखके पार हों और दूसरोंको दुःखके पार करें ।

३ प्रस्फुरन् एमि— स्फूर्ति प्राप्त करके प्रगति करता हूं । जिसके पास स्फूर्ति होती है वही उन्नति प्राप्त कर सकता है ।

किले जैसे सुरक्षित स्थानमें रहो, तो शत्रुसे बचोगे, वायुसे भरी थैली जैसे बनो तो डूबनेका भय नहीं रहेगा । यहां आत्मशक्तिका वायु अपने अन्दर भरना है । जिसमें स्फुरण है, उत्साह होता है वही प्रयत्न करके उन्नति प्राप्त करता है । दुःखसे पार होनेके ये तीन साधन है, सुरक्षित स्थान, आत्मिक बल और उत्साह ।

[३] (७१३) हे (समह शुचे) धनवान् और पवित्र ! (क्रत्वः दीनता प्रतीपं जगम) कर्म करनेकी दीनताके कारण मैं प्रतिकूल परिस्थितिको प्राप्त हुआ हूं । इसलिये मुझे सुखी करो, आनंदित करो ।

प्रशस्त कर्म करनेकी शिथिलता ही मनुष्यकी अवनति करती है । इसलिये इस तरहकी दीनताको कोई मनुष्य अपने पास आने न दे ।

[४] (७१४) (अपां मध्ये तस्थिवांसं) जल प्रवाहोंके मध्यमें मैं हूं तो भी मुझे जैसे (जरितारं तृष्णा अविदत्) स्तोता भक्तको प्यास लग रही है । इसलिये मुझे सुखी करो, आनंदित करो ।

पानीमें रहनेवाला प्याससे तडफ रहा है । वैसी मेरी अवस्था हुई है । आनन्द सागरमें डूबता हुआ मैं दुःखी हो रहा हूं । हे प्रभो मुझे आनंदका भागी बनाओ ।

यह प्रार्थना अत्यंत ही हृदयस्पर्शी है ।

[५] (७१५) हे वरुण ! (दैव्ये जने यत् किं च) दिव्य जनोंके संबंधमें जो भी कुछ (मनुष्याः अभिद्रोहं चरामसि) हम मनुष्य द्रोह कर रहे हैं

अनुवाक ६ वाँ [अनुवाक ५५ वाँ]

(९०) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वायुः; ५-७ इन्द्रवायू । त्रिष्टुप् ।

१ प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ७१६

२ ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य ७१७

३ राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ७१८

४ उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः ।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ७१९

तथा (अचित्ती तव यत् धर्म युयोपिम) अज्ञानी अवस्थामें तेरे कर्तव्यका जो हम लोप करते हैं, हे देव ! (तस्मात् एनसः नः मा रीरिषः) उस पापसे तुम हमारा नाश न कर ।

इस मंत्रमें मनुष्यसे होनेवाले प्रमादका वर्णन है । ये प्रमाद मनुष्य न करे ।

वायु देवता

[१] (७१६) हे वायो ! (वीरया वां अध्वर्युभिः शुचयः मधुमन्तः सुतासः) तुम वीरके लिये अध्वर्युओं द्वारा शुद्ध मधुर सोमरस (प्र दद्रिरे) दिये जाते हैं । अतः हे वायु ! (नियुतः वह) घोडियोंको जोतो, (अच्छ याहि) हमारे पास आओ । और (मदाय सुतस्य अन्धसः पिब) आनंदके लिये सोमरस रूप अन्नरसका पान करो ।

[२] (७१७) हे वायो ! (ईशानाय ते प्रहुतिं यः आनट्) ईश्वर रूप तुमको आहुति जो देता है । हे (शुचिपाः) शुद्ध रसका पान करनेवाले ! (तुभ्यं शुचिं सोमं) तुम्हारे लिये जो शुद्ध सोमरस देता है (तं मर्त्येषु प्रशस्तं कृणोषि) उसको तुम मर्त्योंमें प्रशंसनीय बना देता है, और वह (जातः जातः) सर्वत्र प्रसिद्ध होकर (अस्य वाजी जायते) इस धनको प्राप्त करनेवाला होता है ।

[३] (७१८) (इमे रोदसी यं राये जज्ञतुः) इन द्यावा पृथिवीने जिस वायुको ऐश्वर्यके लिये निर्माण किया, उस (देवं धिषणा देवी राये धाति) देवको तेजस्वी बुद्धि धनके लिये धारण करती है । (अध स्वाः नियुतः वायुं सश्चत) अपनी घोडियां उस वायुकी सेवा करती हैं । (उत श्वेतं वसुधितिं निरेके) और वे उस तेजस्वी धनका धारण करनेवालेको दरिद्रके पास पहुंचाती हैं । [तब वह उसको धन देकर धनी बना देता है ।]

[४] (७१९) उनके लिये (अरिप्राः सुदिनाः उषसः उच्छन्) निष्पाप दिनोंकी उषायें प्रकाशित हो गयी हैं । वे दिन (दीध्यानाः उरु ज्योतिः विविदुः) प्रकाशित होकर विशेष प्रकाशको प्राप्त हुए । उन्होंने (उशिजः गव्यं ऊर्व्यं वि वव्रुः) इच्छा करके गौओंके समूहको प्राप्त किया । (तेषां प्रदिवः आपः अनुसस्रुः) उनका द्युलोकसे आये जल प्रवाहोंने अनुसरण किया । जल प्रवाह बहने लगे ।

५ ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति ।
इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ७२०
६ ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः ।
इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ७२१
७ अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७२२

(९१) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १, ३ वायुः; २, ४-७ इन्द्रवायू । त्रिष्टुप् ।

१ कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।
ते वायवे मनवे बाधितायाऽवासयन्नुषसं सूर्येण ७२३
२ उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः ।
इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम् ७२४

---

[५] (७२०) (ते सत्येन मनसा दीध्यानाः) वे सत्यनिष्ठ मनसे प्रकाशित होनेवाले (स्वेन क्रतुना युक्तासः वहन्ति) अपने यज्ञके साथ संयुक्त होनेके लिये अपने रथको चलाते हैं। हे इन्द्र और हे वायो! (वां ईशानयोः वीरवाहं रथं) आप स्वामी जैसोंके वीर बैठनेवाले रथको वे वहां ले चलते हैं जहां (पृक्षः अभि सचन्ते) अन्नका प्रदान होता है।

[६] (७२१) हे इन्द्र और वायो! (ये ईशानासः) जो स्वामी (गोभिः अश्वैः वसुभिः हिरण्यैः) गौओं, घोडों, धनों और सुवर्णोंसे युक्त (स्वः नः दधते) सुख हमें देते हैं, वे (सूरयः) ज्ञानी लोग अपने (विश्वं आयुः) संपूर्ण जीवनको (अर्वद्भिः वीरैः पृतनासु सह्युः) अश्वारोही वीरोंके द्वारा शत्रु सैनिकोंके मध्यमें युद्धोंमें शत्रुका पराभव करके विजयी बनाते हैं।

[७] (७२२) (अर्वन्तः न) घोडोंके समान श्रवसः भिक्षमाणाः) अन्नको लेजानेवाले (वाजयन्तः वसिष्ठाः) और अन्नसे अपना बल बढानेकी इच्छा करनेवाले वसिष्ठ ऋषि (सुष्टुतिभिः सु अवसे) उत्तम स्तोत्रोंके द्वारा हमारे उत्तम संरक्षणके लिये इन्द्र और वायुको (हुवेम) बुलाते हैं। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो।

[१] (७२३) (पुरा ये वृधासः देवाः) प्राचीन समयके जो वृद्ध स्तोतागण (कुवित् अंग नमसा) बहुत वार प्रिय स्तोत्रोंके कारण (अनवद्यासः आसन्) प्रशंसित हुए थे वे (बाधिताय मनवे) दुःखी मानवोंके हितके लिये (वायवे) वायुको हवि देनेके समय (सूर्येण उषसं अवासयन्) सूर्यके साथ उषाकी स्तुति करते रहे।

[२] (७२४) हे इन्द्र वायु! (उशंता दूता गोपा दभाय न) तुम हितकी इच्छा करनेवाले दूत हमारा संरक्षण करते हो, परंतु कदापि हिंसाके लिये तुम्हारी प्रवृत्ति नहीं होती। तुम (मासः पूर्वीः शरदः च पाथः) महिनों और पूर्ण वर्षोंमें हमारी सुरक्षा करते आये हो। तुम हमारी की हुई (सुष्टुतीः इयाना) उत्तम स्तुतिको सुनो। मैं (मार्डीकं नव्यं सुवितं च ईट्टे) सुखदायक नवीन सुविधाजनक धनकी प्रशंसा करता हूं। वैसा धन मुझे चाहिये।

३ पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ७२५
४ यावत् तरस्तन्वो३ यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः ।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ७२६
५ नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक् ।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ७२७

सुप्रजाका निर्माण

[३] (७२५) **(पीवो अन्नान् रयिवृधः) बहुत अन्नवाले और धनसे समृद्ध जनोंकी (सुमेधाः नियुतां अभिश्रीः श्वेतः) उत्तम मेधावाला घोडोंकी शोभा बढानेवाला श्वेतवर्ण वायु (सिषक्ति) सेवा करता है। (ते नरः) वे नेता लोग (समनसः वायवे वि तस्थुः) समान विचारवाले होकर वायुकी उपासना करते हैं। उन लोगोंने (विश्वा सु अपत्यानि चक्रुः) सब सुप्रजा निर्माण करनेके कार्य उत्तम रीतिसे किये।**

पर्याप्त अन्न और धनवाले लोग उत्तम वायुका सेवन करते हैं और समान विचारवाले होकर सुप्रजा निर्माण करनेका कार्य करते हैं।

१ **सु अपत्यानि चक्रुः**— वे नेता सुप्रजाका निर्माण करते रहे। सुप्रजा निर्माण करनेके लिये ये साधन यहां कहे हैं—

पीवो अन्नाः— पुष्टि कारक अन्नका सेवन करना, इससे शरीर पुष्ट होता है,

रयिवृधः— धनका संवर्धन करना, धनसे अनेक प्रकारकी सहायता प्राप्त होती है। उद्योग वृद्धी करनी जिससे कर्म करनेवालोंको काम मिलता है जिसके करनेसे वे धन लाभ करते हैं।

सुमेधाः— अपनी मेधा उत्तम करना, धारणावती बुद्धिको बढाना,

अभि श्रीः— अपनी शोभाका संवर्धन करना,

समनसः— समाजके लोगोंको समान विचारोंसे युक्त करना, माता पितामें ये गुण वढनेसे उनको जो अपत्य होंगे वे '**विश्वा सु अपत्यानि चक्रुः**' — सबके सब सुप्रजा कहने योग्य होंगे। माता पिताओंमें पुष्टी, समृद्धि, उत्तम मेधा, उत्तम कान्ति, उत्तम विचार रहेंगे, तो उनकी प्रजा उत्तम होती है। वह सुप्रजा कहलाती है। यहां सुप्रजा निर्माण करनेका पक्का कार्यक्रम बताया है। यह जैसा वैयक्तिक है वैसा ही राष्ट्रीय भी है। पाठक इसका बहुत विचार करें और सुप्रजा उत्पन्न करनेका अनुष्ठान करें।

[४] (७२६) हे इन्द्रवायू! **(यावत् तन्वः तरः) तुम्हारे शरीरका जितना वेग है, (यावत् ओजः) जितना बल है, (यावत् नरः चक्षसा दीध्यानाः) जितने मनुष्य ज्ञानसे तेजस्वी होते हैं, उस प्रमाणसे (शुचिपा अस्मे शुचिं सोमं पातं) शुद्ध सोमरसको पीनेवाले देव हमारे इस शुद्ध सोमरसको पीयें। (इदं बर्हिः आ सदतं) इस आसनपर आकर बैठें।**

जितना शरीरमें बल और सामर्थ्य है, जितनी दृष्टी जाती है वहां तक शुद्धता और पवित्रतासे प्रयत्न करना चाहिये।

[५] (७२७) हे इन्द्रवायू! **(स्पार्हवीरा) स्पृहणीय वीर ऐसे (नियुतः) घोडोंको अपने (सरथं नियुवाना) एक ही रथमें जोतनेवाले तुम (अर्वाक् यातं) हमारे पास आओ। (इदं मध्वः अग्रं वां प्रभृतं) यह मधुर सोमका मुख्य भाग तुम्हारे लिये भरा रखा है। (अध प्रीणाना अस्मे वि मुमुक्तं) अब इससे संतुष्ट होकर तुम हमें पापसे मुक्त करो।**

६ या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते ।
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक् पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ७२८
७ अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७२९

(९१) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वायुः, १, ४ इन्द्रवायू । त्रिष्टुप् ।

१ आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ७३०
२ प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात् सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै ।
प्र यद् वां मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ७३१
३ प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ७३२
४ ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः ।
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ७३३

---

[६] (७२८) हे इन्द्र वायू! (याः नियुतः शतं वां) जो सौ घोडे तथा (याः विश्ववाराः सहस्रं सचन्ते) जो सबका वरणीय सहस्र घोडे तुम्हारी सेवा करते हैं, (आभि सुविदत्राभिः अर्वाक् आ यातं) इन उत्तम धन देनेवाले घोडोंके साथ हमारे समीप आओ। हे (नरा) नेता लोगो! (प्रतिभृतस्य मध्वः पातं) इस भरे रखे सोमरसका पान करो।

[७] (७२९) इसकी व्याख्या ७२२ स्थानपर हुई है।

[१] (७३०) हे (शुचिपाः वायो) शुद्ध सोमरसका पान करनेवाले वायो! (नः उप आ भूष) हमारे समीप आओ। हे (विश्ववार) सबके सेवनीय! (ते सहस्रं नियुतः) तेरी घोडियां सहस्रों हैं। (ते मद्यं अन्धः उपो अयामि) तुम्हारे लिये यह आनन्ददायक सोमरस पात्रमें भरकर लाता हूं। हे देव! (यस्य पूर्वपेयं दधिषे) जिस रसका तुम प्रथम पान करते हो।

[२] (७३१) (जीरः सोता) सत्वर कर्म करनेवाले रस निकालने वालेने (इन्द्राय वायवे च पिबध्यै) इन्द्र और वायुके पानके लिये (अध्वरेषु सोमं प्र अस्थात्) यज्ञोंमें सोमको रखा है। हे इन्द्रवायो! (देवयन्तः अध्वर्यवः शचीभिः) देवत्व प्राप्तीकी कामना करनेवाले अध्वर्युगण अपनी शक्तियोंसे (यत् वां मध्वः अग्रियं प्रभरन्ति) इस सोमके प्रथम भागको आपके लिये भर रखते हैं।

[३] (७३२) हे वायो! (दुरोणे इष्टये) यज्ञ स्थानमें इष्टिके लिये (दाश्वांसं याभिः नियुद्भिः अच्छ प्रयासि) दाताके पास जिन घोडियोंसे तुम जाते हो। वैसे हमारे पास आओ और (नः सुभोजसं रयिं) हमें उत्तम अन्नवाले धनको तथा (वीरं गव्यं अश्व्यं च राधः) वीर पुत्र गौ घोडे आदि वैभव (नि युवस्व) देदो।

[४] (७३३) (ये इन्द्र-मादनासः) जो इंद्रको आनंद देनेवाले तथा (वायवे) वायुको प्रसन्न करनेवाले हैं तथा (ये आ देवासः) वे देवके भक्त (अर्यः नितोशनासः) शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं, वैसे हम सब (सूरिभिः वृत्राणि घ्नन्तः स्याम)

५ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन् त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७३४

(९३) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्राग्नी । त्रिष्टुप् ।

१ शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ७३५

२ ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा ।
क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः ७३६

विद्वान् वीरोंके साथ रहकर शत्रुओंका नाश करनेवाले तथा (युधा अमित्रान् नृभिः ससह्वांसः) युद्धमें शत्रुओंका वीरोंसे पराभव करनेवाले हों ।

१ अर्यः नितोशनासः—शत्रुका नाश करनेवाले हम हों ।

२ सूरिभिः वृत्राणि घ्नन्तः-- विद्वान् वीरोंके द्वारा शत्रुओंका नाश करनेवाले हम हों,

३ नृभिः युधा अमित्रान ससह्वांसः— वीरोंके द्वारा युद्धमें शत्रुओंका पराभव करनेवाले हम हों ।

हमारे वीर ऐसे शूर और प्रभावी हों ।

[५] (७३४) हे वायो ! (नः अध्वरं यज्ञं) हमारे हिंसा रहित यज्ञके पास तुम (शतनीभिः सहस्रणीभिः नियुद्भिः उप आ याहि) सौ अथवा सहस्र घोडियोंके साथ आओ (अस्मिन् सवने मादयस्व) इस सवनमें रस पीकर आनन्दित हो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो ।

प्रातः सवनमें सोमरस निछोडा जाता है और उसी समय पीया जाता है इसलिये इसमें मूर्छा आनेवाली ' मादकता नहीं होती । '

इन्द्र-अग्नी ।

[१] (७३५) हे (वृत्रहणा इन्द्राग्नी) शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्र और अग्नि ! (शुचिं नवजातं स्तोमं अद्य जुषेथां) शुद्ध नवीन स्तोत्रका तुम अद्य सेवन करो । (सुहवा उभा हि वां जोहवीमि) उत्तम प्रशंसा योग्य तुम दोनोंको मैं बुलाता हूँ। (ता उशते वाजं धेष्ठा) वे तुम दोनों उन्नतिकी इच्छा करनेवालेके लिये अन्न बल वा सामर्थ्य धारण करनेवाले बनो ।

१ वृत्रहणौ-- (वृत्र) आवरक घेरनेवाले शत्रुका नाश करनेवाले बनो । इन्द्र और अग्नि ऐसे हैं ।

२ नवजातं स्तोमं जुषेथां— नवीन उत्पन्न स्तोमका सेवन करो । नवीन उत्पन्न हुआ स्तोत्र अथवा यज्ञ करो ।

३ उशते वाजं धेष्ठा-- उन्नतिकी इच्छा करनेवालेके लिये अन्न बल और सामर्थ्य दे दो । उनका सामर्थ्य बढाओ ।

[२] (७३६) हे इन्द्र और अग्नि ! (ता सानसी शवसाना भूतं) वे आप दोनो सेवाके योग्य और बलवान हो । तथा (साकं वृधा शूशुवांसा) साथ साथ बढनेवाले तथा प्रभावी बनो । और (रायः भूरेः यवसस्यं क्षयन्तौ) धन और बहुत अन्नको अपने पास रखनेवाले बनो । और (स्थविरस्य वाजस्य घृष्वेः पृङ्क्तं) बहुत अन्न और शत्रुनाशक बल हमें दे दो ।

१ शवसानौ-- बलके कारण सेवाके योग्य,

२ साकं वृधौ— साथ साथ बढनेवाले बनो । एक बढे और दूसरेको प्रतिबंध हो ऐसा न हो । समाजके दोनों घटक साथ साथ बढते रहें ।

३ भूरेः रायः यवसस्य क्षयन्तौ— बहुत धन और बहुत अन्न अपने पास रखनेवाले बनो । यह अन्न और धन यज्ञके लिये रखना चाहिये । यज्ञसे सब लोगोंका कल्याण होता है । इसलिये ऐसे संग्रह दोष उत्पन्न नहीं करते । पर जो अन्न

३ उपो ह यद् विदथं वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ७३७

४ गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ७३८

५ सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।
अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ७३९

और धनके संग्रह स्वकीय भोग बढानेके लिये किये जाते हैं वे समाजमें विक्षेप निर्माण करते हैं । इसलिये ' अपरिग्रह ' वृत्तिका उपदेश आगेके ग्रन्थ करते हैं । यज्ञ भावसे वही सिद्ध होता है । यज्ञके लिये होनेवाला संग्रह दोष उत्पन्न नहीं करता ।

४ **स्थविरस्य धृष्वेः वाजस्य पृक्तं**— बहुत शत्रु नाशक बल हमें चाहिये । वैसा हमें मिले । यहां शत्रु नाशके लिये बल बढानेका उपदेश है । शत्रुका नाश होना चाहिये । अथवा वह शत्रुता करना छोड देवे । यदि वह शत्रुता करता है तब तो वह विनाश करने ही योग्य है । अपने पास अन्न तथा धन इसलिये रखना है कि उससे अपना बल बढे और शत्रुका नाश करनेका सामर्थ्य बढ जाय ।

[३] (७३७) **(वाजिनः विप्राः प्रमतिं इच्छमानाः) बलवान ज्ञानी उत्तम बुद्धिकी इच्छा करनेवाले (यत् विदथं उपो गुः) यज्ञके पास जाते हैं, यज्ञमें भाग लेते हैं। वैसे (ते नरः) वे नेता लोग (अर्वन्तः न काष्ठां) घोडे युद्ध भूमिमें जानेके समान (नक्षमाणाः इन्द्राग्नी जोहुवन्त) जाते हुए इन्द्र और अग्निको बुलाते हैं ।**

बुद्धि बढानेकी स्पर्धा

१ **वाजिनः विप्राः प्रमतिं इच्छमानाः विदथं उपोगुः**-- बलवान् ज्ञानी अपनी बुद्धिका प्रकर्ष करनेकी इच्छासे स्पर्धा क्षेत्रमें जाते है और वहां अपनी बुद्धिको प्रकट करते हैं । विदथ= यज्ञ, स्पर्धा, युद्ध । स्पर्धासे बुद्धि बढती है ।

२ **अर्वन्तः काष्ठां न नरः नक्षमाणाः**— घोडे जैसे अपनी गतिसे पराकाष्ठाको पहुंचते हैं वैसे नेता लोग अपनी प्रगति करनेकी इच्छा करें ।

[४] (७३८) **हे इन्द्र और अग्नि ! (प्रमतिं इच्छमानः विप्रः) विशेष बुद्धिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला ज्ञानी (यशसं पूर्वभाजं रयिं ईट्टे) यशस्वी और प्रथम उपभोग लेने योग्य धनकी प्रशंसा गाता है । हे (वृत्रहणा सुवज्रा इन्द्राग्नी) वृत्रका वध करनेवाले उत्तम वज्रधारी इन्द्र और अग्नि ! (नव्येभिः देष्णैः नः प्रतिरतं) नवीन तथा देने योग्य धनोंसे हमें संवर्धित करो ।**

१ **प्रमतिं इच्छमानः विप्रः पूर्वभाजं यशसं रयिं ईट्टे**— विशेष बुद्धिके प्रकर्षकी इच्छा करनेवाला ज्ञानी पुरुष प्रथम उपभोग लेने योग्य यशस्वी धनका ही गुण गाने करता है । यशकी वृद्धि करनेवाला धन ही प्राप्त करने योग्य हैं ।

२ **सुवज्रा वृत्रहणा**— जिनके पास उत्तम शस्त्र रहते हैं वे ही घेरनेवाले शत्रुका नाश कर सकते हैं ।

३ **नव्येभिः देष्णैः नः प्रतिरतं**-- नये तथा देने योग्य धनोंसे हमें दुःखोंसे पार करो । नये नये धन उत्पन्न करो और वे धन ऐसे हों कि जो दुःखोंसे पार कर सकते हैं ।

[५] (७३९) **(मही मिथती) विशाल और परस्पर स्पर्धा करनेवाली (शूरसाता तनूरुचा सं यतैते) शूरोंके लिये भाग लेने योग्य शत्रुसेनाओंके मध्यमें वीर अपने शरीरके तेजसे मिलकर यशके लिये यत्न करते हैं, वहां (सोमसुता जनेन सत्रा) यज्ञ करनेवाले मनुष्यके साथ रहकर तथा (देवयुभिः) देव भक्तोंके साथ रहकर वीर (अदेवयुं विदथे हतं) देव विरोधी शत्रुका नाश करें ।**

१ **मही मिथती शूरसाता तनूरुचा सं यतैते**- बडी विशाल लडनेवाली शूरों द्वारा भाग लेने योग्य शत्रु सेनाओंके

६ इमामु षु सोमसुतिमुप न इन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्माना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ७४०
७ सो अग्न एना नमसा समिद्धोऽच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रं वोचेः ।
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृळ तदर्यमादितिः शिश्रथन्तु ७४१
८ एता अग्न आशुषाणास इष्टीर्युवोः सचाभ्यश्याम वाजान् ।
मेन्द्रो नो विष्णुर्मरुतः परि ख्यन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७४२

(९४) १२ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्राग्नी । गायत्री, १२ अनुष्टुप् ।

१ इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद् वृष्टिरिवाजनि ७४३
२ शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः ७४४

युद्धके समय जिन वीरोंमें अपना तेज है वे ही वीर मिलकर विजयके लिये प्रयत्न करते हैं। वीरोंको मिलकर विजयके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

१ **देवयुभिः सोमसुता जनेन सत्रा अदेवयुं विदथे हतं**— देव भक्तोंके साथ तथा यज्ञकर्ताके साथ रहकर देव द्वेष्टा शत्रुका नाश करो। देव भक्तकी सहायता और देव द्वेष्टाका विनाश करो।

[६] (७४०) हे इन्द्र और अग्नि! (इमां नः सोमसुतिं) इस हमारे सोमयागके पास (सौमनसाय सु आयातं) उत्तम मनके भावको बढानेके लिये आओ। (अस्मान् नूचित् परि मम्नाथे) हमारा त्याग करनेका विचार भी तुम कदापि नहीं करते हो। (वां शश्वद्भिः वाजैः आ ववृतीय) इसलिये तुम्हें बारं बार अन्नोंसे इधर बुलाता हूं। हमारी ओर आनेके लिये प्रवर्तित करता हूं।

सौमनसाय सोमसुतिं सु आयातं— मनको उत्तम विचारोंसे युक्त करनेके लिये सोम यज्ञके स्थानमें जाओ। वहांके सुविचारोंसे मनमें शुभ भावोंका धारण करो।

[७] (७४१) हे अग्ने! (सः एना नमसा समिद्धः) वह तूं उत्तम मनसे प्रदीप्त होकर (मित्रं इन्द्रं वरुणं च वोचेः) मित्र इन्द्र और वरुणके पास जाकर कह कि हमने (यत् आगः सीं चकृम) जो अपराध किया है (तत् सु मृळ) उससे हमें बचा कर सुखी करो तथा (तत् अर्यमा अदितिः शिश्रथन्तु) उसको अर्यमा अदिति हमसे पृथक् करें। उस अपराधको हमसे दूर करें। हम निर्दोष हों।

[८] (७४२) हे अग्ने! (एताः इष्टीः आशुषाणासः) इन इष्टियोंका शीघ्र सेवन करनेवाले हम (युवोः वाजान् सचा अभि अश्याम) तुम्हारे अन्नोंका हम साथ साथ प्राप्त करेंगे। इन्द्र, विष्णु और मरुत् (नः मा परिख्यन्) हमारा त्याग न करें। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारा संरक्षण करो।

[१] (७४३) हे इन्द्र और अग्नि! (इयं पूर्व्य स्तुतिः) यह पहिली स्तुति (अस्य मन्मनः) इस मननशील ऋषिसे (वां अभ्रात् वृष्टिः इव अजनि) आप दोनोंके लिये मेघसे वृष्टि होनेके समान हुई है, उसका श्रवण करो।

[२] (७४४) हे इन्द्र और अग्नि! (जरितुः हवं शृणुतं) स्तोताकी प्रार्थना सुनो। (गिरः वनतं) उनके वचन श्रवण करो। और (ईशाना धियः पिप्यतं) तुम स्वामी हो इसलिये हमारी बुद्धि पूर्वक किये कर्मोंको सफल बनाओ।

३	मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे		७४५
४	इन्द्रे अग्ना नमो बृहत् सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः		७४६
५	ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये		७४७
६	ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः		७४८
७	इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा । मा नो दुःशंस ईशत		७४९
८	मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम्		७५०
९	गोमद्धिरण्यवद् वसु यद् वामश्वावदीमहे । इन्द्राग्नी तद् वनेमहि		७५१

[३] (७४५) हे (नरा इन्द्राग्नी) नेता इन्द्र और अग्नि! (नः पापत्वाय) हमारे पापके लिये (अभिशस्तये) पराभवके कारण, शत्रुकृत हीन-भाव प्रदर्शनके लिये, तथा (नः निदे) हमारी निंदा हो रही तो उसके कारण (मा मा मा रीरधतं) हमें परवश न करो। हम किसी भी कारण पराधीन होना नहीं चाहते। हमारा विनाश न हो।

[४] (७४६) (अवस्यवः इन्द्रे अग्ना) सुरक्षाकी इच्छा करनेवाले हम इन्द्र और अग्निके पास (बृहत् नमः) बहुत अन्न, (सु वृक्तिं) उत्तम स्तुति और (धिया धेनाः) बुद्धि पूर्वक बोले वचनोंको (आ ईरयामः) प्रेरित करते हैं। उनकी स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं।

[५] (७४७) (ता हि) उन इन्द्र और अग्निकी सचमुच (शश्वंतः विप्रासः) बहुत ही ज्ञानी जन (ऊतये इत्था ईळते) अपने संरक्षणके लिये इस तरह स्तुति गाते हैं। तथा (सबाधः वाजसातये) समान पीडासे युक्त हुए लोग अन्न प्राप्तिके लिये उन्हीकी प्रशंसा करते हैं।

समान पीडासे संगठन

सबाधः विप्राः वाजसातये ईळते— समान रीतिसे पीडित हुए ज्ञानी लोग अपनी पीडा दूर करनेके लिये संगठित होते हैं और सुख साधन बढानेके लिये मिलकर उनके काव्य गाते हैं।

[६] (७४८) (विपन्यवः प्रयस्वन्तः) विशेष ज्ञानी और प्रयत्नशील (सनिष्यवः) धन प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम लोग (मेधसाता) यज्ञमें (ता वां गीर्भिः हवामहे) तुम दोनोंको अपनी स्तुति प्रार्थनाके वचनोंसे बुलाते हैं।

[७] (७४९) हे (चर्षणीसहा इंद्राग्नी) शत्रु-सेनाका पराभव करनेवाले इन्द्र और अग्नि! (अस्मभ्यं अवसा आ गतं) हमारे पास अपने संरक्षणके साधनोंके साथ आओ। (दुःशंसः नः मा ईशते) दुष्टोंका शासन हमपर न हो।

८ दुष्टोंका राज्य न हो।

१ **दुःशंसः नः मा ईशत—** दुष्टका राज्यशासन हमपर न हो। दुष्टके अधीन हम न हों।

२ **चर्षणी- सहा अस्मभ्यं अवसा आगतं--** शत्रुका पराभव करनेवाले वीर हमारे पास रक्षण करनेके साधनोंसे आजाय और वे हमारे पास रहें।

[८] (७५०) हे इन्द्र और अग्नि! (कस्य अररुषः मर्त्यस्य) किसी भी शत्रुरूप मानवकी (धूर्तिः नः मा प्रणक्) धूर्तता या हिंसा हमारा नाश न करे। हमें (शर्म यच्छतं) सुख दो, हमें सुखी करो।

[९] (७५१) हे इंद्र और अग्नि! (गोमत् हिरण्यवत् अश्ववत् वसु) गौओं, सुवर्ण और घोडोंसे युक्त धन (यत् वां ईमहे) जो तुम्हारे पास हम मांगते हैं (तत् वनेमहि) वह हमें प्राप्त हो।

हमें धन, रत्न, सुवर्ण, गौवें, घोडे पर्याप्त प्रमाणमें प्राप्त हों।

१० यत् सोम आ सुते नर इन्द्राग्नी अजोहवुः । सप्तीवन्ता सपर्यवः ७५२
११ उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा । आङ्गूषैराविवासतः ७५३
१२ ताविद् दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम् ।
आभोगं हन्मना हतमुदधिं हन्मना हतम् ७५४

(९५) १ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सरस्वती, ३ सरस्वान् । त्रिष्टुप् ।

१ प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ७५५
२ एकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ७५६

---

[१०] (७५२) (सोमे सुते) सोमका रस निकालनेपर (सपर्यवः नरः) पूजा करनेवाले मनुष्य (सप्तीवन्ता इंद्राग्नी) प्रशंसित घोडोंवाले इंद्र और अग्निको (आ अजोहवुः) बुलाते हैं ।

[११] (७५३] (वृत्रहन्तमा मंदाना या) शत्रुका हनन करनेवाले और आनंदित होनेवाले इन्द्र और अग्निकी (उक्थेभिः गिरा आंगूषैः आ आविवासतः) स्तोत्रों, वचनों और काव्योंके गानसे प्रशंसा करते हैं।

शत्रुका नाश करो ।

[१२] (७५४) हे इंद्र और अग्नि! (ता) वे तुम दोनों (दुःशंसं दुर्विद्वांसं) दुष्ट और दुष्ट विद्वान (आ भोगं रक्षस्विनं) अपहरणशील राक्षसरूप शत्रुका (हन्मना हतं) घातक शस्त्रसे नाश करो । (उदधिं हन्मना हतं) पानीसे भरे घडेका जैसा विनाशक साधनसे नाश करते हैं वैसा शत्रुका नाश करो ।

सरस्वती

[१] (७५५) (एषा सरस्वती) यह सरस्वती नदी (आयसी पूः) लोहेके प्राकारवाली नगरीके समान (धरुणं) सबकी सुरक्षाका धारण करती है । यह अपने (धायसा क्षोदसा प्र सस्रे) धारक जलके साथ दौड रही है । यह (सिन्धुः) नदी अपनी (महिना) महिमासे (विश्वाः अन्याः अपः) दूसरे सब जलोंको (रथ्या इव प्रबाबधाना) रथ चलानेवाले सारथी की तरह बाधा पहुंचाती हुई (याति) जाती है ।

सरस्वती नदी है, इसका अखंड प्रवाह है । यह पत्थरों और लोहेसे बने हुए किलेके समान शत्रुसे प्रजाका संरक्षण करती है । जिस तरह किला प्रजाका संरक्षण करता है वैसी नदी भी प्रजाका संरक्षण करती है । नदी अन्न उत्पन्न करके, शत्रुको दूर रखके ऐसे अनेक प्रकारसे संरक्षण करती है । यह दूसरे जल प्रवाहोंको अपने अन्दर लेकर उनका नाम निशान मिटा देती है और उनसे स्वयं बढती रहती है, अपनी महिमाको बढाती है । रथ चलानेवाला उत्तम सारथी जिस तरह मार्गके पत्थरों और गढोंको दूर रखकर अपने सरल मार्गसे रथको ले जाता है उस तरह यह सरस्वती नदी अपने प्रवाहके वेगसे मार्गको काटती हुई और बीचके विघ्नोंको दूर करती हुई जाती है । मनुष्यको इस तरह विघ्नोंको दूर करते हुए बढना चाहिये । यह उपदेश मनुष्यके लिये इससे मिलता है ।

[२] (७५६) (नदीनां शुचिः) नदियोंमें शुद्ध (गिरिभ्यः आ समुद्रात् यती) पहाडोंसे समुद्र पर्यंत जानेवाली (एका सरस्वती अचेतत्) यह एक ही सरस्वती नदी चेतनायुक्त सी चल रही है । (भुवनस्य भूरेः रायः चेतंती) इस पृथ्वीपरके बहुत धनोंको बताती है और (नाहुषाय पयः घृतं दुदुहे) नहुषके लिये दूध और घी देती रही ।

३ स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु ।
स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ७५७

४ उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत् सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ७५८

५ इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ७५९

सरस्वती नदी सब नदियोंमें अधिक शुद्ध है। यह नदी पर्वतोंसे चलकर समुद्रको मिलती है। जैसी कोई चेतनावाली हो वैसी यह दौड रही है। पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाले सब धान्य आदि धनोंको यह देती है और इस नदीके तीरपर रहनेवालोंको पर्याप्त दूध और घी देती है।

[३] (७५७) (**नर्यः वृषा) मानवोंके लिये हितकारी बलवान् (सः शिशुः वृषभः) वह बछडे बैलके समान तरुण (यज्ञियासु योषणासु) यज्ञके लिये रखी स्त्रियोंमें गौओंमें (ववृधे) बढता है। (सः मघवद्भ्यः वाजिनं दधाति) वह यज्ञकर्ताओंके लिये बलवान् पुत्र प्रदान करता है। और (सातये तन्वं वि ममृजीत) लाभ करनेके लिये शरीरकी विशेष प्रकारसे शुद्धता करता है।**

तरुण कैसा हो ?

(नर्यः) सब मानवोंका कल्याण करनेमें तत्पर (वृषा) बलवान् बैल जैसा पुष्ट (वृषभः शिशुः) तरुण बैल जैसा सामर्थ्यवान् (यज्ञियासु योषणासु) पूजनीय पवित्र स्त्रीके साथ रहता है। और सब प्रकारसे पुष्ट होता है वह (वाजिनं दधाति) वह उत्तम बलवान वीर पुत्र उत्पन्न करता है; ऐसे तरुणसे बलवान संतान उत्पन्न होती है। यह तरुण अधिक (सातये) लाभ प्राप्त करनेके लिये (तन्वं विममृजीत) अपने शरीरको मलीनता रहित निर्दोष रखता है और अन्तर्बाह्य शुद्ध रहता है। इस कारण वह नीरोग और पुष्ट रहता है और संतान भी सुदृढ निर्माण कर सकता है।

राष्ट्रमें ऐसे तरुण हों और वे परिशुद्ध रहकर उत्तम संतान उत्पन्न करें।

[४] (७५८) (**उत जुषाणा सुभगा स्या सरस्वती) और प्रसन्न हुई वह भाग्यवाली सरस्वती (नः अस्मिन् यज्ञे उप श्रवत्) हमारे इस यज्ञमें हमारी की हुई स्तुति सुने। (मितज्ञुभिः नमस्यैः इयाना) घुटने टेककर नमन करनेवाले उपासक उस नदीके पास जाते हैं। (युजा राया चित्) वह नदी योग्य धनसे युक्त है और (सखिभ्यः उत्तरा) मित्रभावसे रहनेवालोंके लिये उच्चतर अवस्था देती है।**

घुटने टेककर प्रार्थना

१ सरस्वती मित-ज्ञुभिः नमस्यैः इयाना— सरस्वती नदीके तीर पर उपासना करनेवाले घुटने टेककर नमस्कार करते हुए स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं। दोनों घुटने जोडकर टेककर नमन करना आज कल यवनोंमें है। वैदिक कर्म करनेके समय भी किसी समय घुटने टेकने होते हैं। पर यह प्रथा इस समय आर्योंमें सर्वत्र प्रचलित नहीं है। यवनोंमें तथा ईसाइयोंमें दीखती है।

२ सुभगा सरस्वती— उत्तम भाग्य देनेवाली सरस्वती नदी है। वह जलसे धान्य देती है, गौओंमें दूध और दूधसे घृत देती है। सरस्वती नदीपर ऋषि रहते थे जो सारस्वत कहलाते हैं, इसलिये वह विद्याका स्थान है। ऐसी उत्तम सरस्वती नदी है।

३ युजा राया सखिभ्यः उत्तरा सरस्वती— योग्य धन धान्य होनेसे परस्पर प्रेम भावसे रहनेवालोंके लिये उच्चतर अवस्था देनेवाली यह नदी है।